इकाई 1 व्यापारिक अर्थशास्त्र की आधारभूत अवधारणाएं

इकाई की रूपरेखा

1.1 प्रस्तावना
1.2 व्यापारिक अर्थशास्त्र का अर्थ
1.3 व्यापारिक अर्थशास्त्र की विशेषताएं
1.4 व्यापारिक अर्थशास्त्र का कार्यक्षेत्र
1.5 व्यापारिक अर्थशास्त्र के उद्देश्य
1.6 व्यापारिक अर्थशास्त्रीयों की भूमिका
1.7 व्यापारकि अर्थशास्त्रीयों के उतरदायित्व
1.8 व्यापारिक अर्थशास्त्र एवं अन्य विज्ञान
1.9 अवसर लागत
1.10 वृद्धिमान लागत की अवधारणा और आय/आगम
1.11 समय परिप्रेक्ष्य और लागत बंटवारे का सिद्धांत
1.12 बट्टे का सिद्धांत
1.13 सम सीमान्त सिद्धान्त
1.14 अनुकूलतम
1.15 सारांश
1.16 शब्दावली
1.17 बोध प्रश्न
1.18 बोध प्रश्नों के उत्तर
1.19 स्वपरख प्रश्न
1.20 सन्दर्भ पुस्तकें

उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप इस योग्य हो सकेंगे कि –

- व्यापारिक अर्थशास्त्र का अर्थ एवं विशेषताएं का वर्णन कर सकें।
- व्यापारिक अर्थशास्त्र का कार्यक्षेत्र समझ सकें।
- व्यापारिक अर्थशास्त्र की आवश्यकता को समझ सकें।
- व्यापारिक अर्थशास्त्र की आधारभूत स्वरूप को समझ सकें।
- व्यापारिक अर्थशास्त्रियों की भूमिका एवं जिम्मेदारियां समझ सकें।
- व्यापारिक अर्थशास्त्र का अन्य विषयों से संबंध का वर्णन कर सकें।
- व्यापारिक अर्थशास्त्र के विभिन्न आधारभूत अवधारणाएं समझ सकें।

1.1 प्रस्तावना

व्यापारिक अर्थशास्त्र जो प्रबंधकीय अर्थशास्त्र के रूप में भी जाना जाता है, अर्थशास्त्र की वह शाखा है जो व्यापार के आर्थिक मुद्दे से संबंधित है। यह प्रबंधकीय प्रक्रिया को आर्थिक सिद्धान्तों से जुड़ते हुए, व्यापारिक फर्मों द्वारा अनुभव किये गये वास्तविक समस्याओं का विश्लेषण करता है। यह आर्थिक अवधारणाओं तथा सिद्धान्तों का प्रयोग करते हुए, प्रबंधकों को विवेकपूर्ण निर्णय लेने में मदद करता है। अर्थशास्त्र की यह विशिष्ट शाखा काल्पनिक सिद्धान्त तथा व्यापारिक प्रक्रिया के बीच की खाई को पाटने का काम करता है। यह व्यवहारिक अर्थशास्त्र

या फर्म के अर्थशास्त्र के रूप में और व्यष्टिभावी अर्थशास्त्र के रूप में जाना जाता है।

1.2 व्यापारिक अर्थशास्त्र का अर्थ

व्यापारिक संगठन को नित्य/दैनिक रूप से कई निर्णय लेने होते हैं, जिनमें से कुछ रोजमर्रा के दैनिक निर्णय होते हैं। तथा कुछ सामरिक निर्णय हाते हैं। तकनीकी विकास तथा विश्व का एक वैश्विक गांव के रूप में उदारीकरण, वैश्वीकरण तथा नीजिकरण के माध्ययम से तब्दिल होने के कारण व्यापारिक भव में निदर्शनात्मक परिवर्तन हुआ है। व्यापार की सफलता आज इन निर्णयों की गुणवता पर निर्भर है। हर नये दिन के साथ व्यापारिक निर्णय लेना कठिन होता जा रहा है, व्यापारिक क्षेत्र के जटिलताओं के कारण। व्यापारिक अर्थशास्त्र की उस विशेष शाखा को अभिव्यक्त करता है, व्यापार पंबंधकों को अर्थशास्त्र के सिद्धान्त एवं तकनीकी के माध्यम से विवेकपूर्ण व्यापारिक निर्णय लेने मं सहायता प्रदान करता है। निर्णय लेना उपलब्ध विकल्पों में सबसे अच्छे विकल्प के चुनाव से संबंधित है। सांख्यिकी और संक्रियात्मक शोध तकनीकी, लिनियर प्रोग्रामिंग, खेल सिद्धान्त, अवकलज, अनुक्रमण, प्रयोजना नियंत्रण जैसे सांख्यिकीय और संक्रियात्मक शोध तकनीकी जोखिम तथा अनिश्चितता का मूल्यांकन और अन्य समीक्षात्मक मुद्दों तथा प्रबंधन में निर्णय के सबसे बेहतर तरीके के चुनाव के लिए व्यवस्थित प्रक्रिया प्रदान करता है। व्यापारिक अर्थशास्त्र प्रबंधनों को व्यापारिक समस्याओं को समझने और प्रासंगिक तथा सही निर्णय लेने के लिए ठोस आधार प्रदान करता है।

1.3 व्यापारिक अर्थशास्त्र की विशेशताएं

व्यापारिक अर्थशास्त्र की निम्नांकित विशेषताएं इसकी प्रकृति को स्पष्ट करता हैः

1. **व्यष्टि अर्थशास्त्रः** व्यापारिक अर्थशास्त्र का चरित्र व्यष्टिभावी अर्थशास्त्र के समान हैं, क्योंकि दानों व्यक्तिक व्यापारिक इकाईयों की समस्याओं का अध्ययन करते हैं। यह पूरे अर्थव्यवस्था की समस्याओं का अध्ययन नहीं करता है, पर निश्चित रूप से यह समष्टिभावी अर्थशास्त्र की सहायता लेता है जैसे किसी व्यापारिक इकाई की समस्या का निराकरण के लिए आर्थिक वातावरण का विश्लेषण यह प्रबंधन को बाजार की प्रवृति का पूर्वानुमान तथा मूल्यांकन में सहायता करता है।
2. **आदर्शात्मक विज्ञानः** व्यापारिक अर्थशास्त्र प्रबंधन को विभिन्न परिस्थितियों में विभेदी निर्णय लेने में सहायता प्रदान करता है। यह केवल उद्देश्य के चुनाव में ही सहायता प्रदान नहीं करता वरन् उन उद्देश्यो की पूर्ति के रास्ते के चयन में भी मदद करता है। भविष्य की योजना, संसाधन का अनुकूलतम प्रयोग आदि सभी प्रबंधकीय अर्थशास्त्र की सीमा में आते हैं।
3. **व्यवहारिकः** विशुद्ध अर्थशास्त्र से इतर व्यापारिक अर्थशास्त्र एक व्यवहारिक उपागम है, जो कुछ काल्पनिक मान्यताओं पर आधारित होता है। जबकि प्रबंधकीय अर्थशास्त्र आर्थिक सिद्धान्तों के व्यवहारिक पक्ष को महत्व देता है। यह प्रबंधकीय समस्योओं को हल करने की कोशिश करता है।
4. **निर्देशात्मकः** व्यापारिक अर्थशास्त्र निर्देशात्मक होता है। जैसा की पहले कहा गया व्यापारिक अर्थशास्त्र प्रबंधन को केवल उद्देश्य स्थापित करने में

सहायता नहीं करता वरन् उन उद्देश्यों को प्राप्त करने का निर्देशन भी करता है।

5. **समष्टीभावी अर्थशास्त्रः** व्यापार एकांकी में कार्य नहीं करता है। यह वाह्य आर्थिक वातावरण से मजबूती से जूड़ा रहता है तथा आर्थिक वातावरण में परिवर्तन से प्रभावित भी होता है। व्यापारिक अर्थशास्त्र समष्टीभावी अर्थशास्त्र का सहारा बाहय कारकों जैसे व्यापार चक्र, राष्ट्रीय आय, सरकार की आर्थिक नीति आदि को समझने के लिए करता है। जिससे यह प्रबंधन को व्यापार की समाजिक प्रासंगिकता और वितीय सहायता को सुनिश्चित करने में मदद करता है।
6. **प्रबंधन उन्मूखीः** व्यापारिक अर्थशास्त्र का मुख्य उद्देश्य प्रबंधन को विवेकपूर्ण आर्थिक निर्णय लेने में सहायता प्रदान करता है। यह प्रबंधन को व्यापारिक समस्याओं के कारणों के निदान में सहयोग देता है, तथा प्रबंधन को व्यापारिक उद्देश्य को निश्चित करने तथा व्यापारिक नीतियों और भविष्य की योजना बनाने में मदद करता है। प्रबंधकीय अर्थशास्त्र व्यापार के लिए वहीं भूमिका अदा करता है, जो डॉक्टर मरीज के लिए करता है।
7. **बहु प्रशैक्षणिकः** व्यापारिक अर्थशास्त्र बहु प्रशैक्षणिक उपागम है। यह व्यापारिक समस्याओं के निदान एवं विश्लेषण के लिए क्रियात्मक शोध, सांख्यिकीय, प्रबंधन तथा गणितीय तकनीकी का उपयोग करता है।
8. **विज्ञान और कलाः** जिस प्रकार विज्ञान सत्यापित सिद्धान्तों का संग्रह है, व्यापारिक अर्थशास्त्र भी निश्चित सिद्धान्तों पर आधारित है और विज्ञान की तरह हीं व्यापारिक अर्थशास्त्र तथ्यों के संग्रह, वर्गीकरण तथा विश्लेषण के द्वारा कारण–कारक प्रभाव को स्थापित करता है। साथ हीं कला की तरह व्यापारिक अर्थशास्त्र के सिद्धान्तों का प्रयोग में दक्षता की भी आवश्यकता होती है। अतः व्यापारिक अर्थशास्त्र विज्ञान और कला दोनों है।

1.4 व्यापारिक अर्थशास्त्र का कार्यक्षेत्र

व्यापारिक अर्थशास्त्र का विषय क्षेत्र काफी विस्तृत है तथा निम्नांकित क्षेत्र को समाहित करता हैः

1. **मांग विश्लषण के सिद्धान्तः** किसी भी व्यापारिक संगठन का मूख्य दायित्व है कि वह समाज के लिए वस्तुओं का उत्पादन करे तथा सेवा प्रदान करे, और अपने इस कार्य को सुचारू रूप से करने के लिए एक व्यापारिक फर्म के लिए आवश्यक है कि उपभोक्ता को किस प्रकार की वस्तु की आवश्यकता है, मांग की मात्रा, कारक जो फर्म द्वारा प्रदत वस्तु एवं सेवा के मांग को प्रभावित करते हैं। वस्तु तथा सेवा की मांग पर उपभोक्ता के आय में परिवर्तन के कारण पड़ने वाला प्रभाव। व्यापारिक अर्थशास्त्र फर्म कसे उपर बताए गये मुद्दों के विस्तृत विश्लेषण में मदद करता है।
2. **उत्पादन का सिद्धान्त तथा लागत के सिद्धांतः** उत्पादन तथा लागत विश्लेषण वह धूरी है जिसके इर्द–गिर्द सारी आर्थिक चर्चायें घूमती हैं। फर्म को एक तर्क संगत लाभ अर्जित करने के लिए एक निश्चित मात्रा स्तर का उत्पादन प्राप्त करना आवश्यक है और उसके लिए उन्हें अनुकूलतम उत्पादन स्तर को प्राप्त करने के लिए स्थिर तथा

परिवर्तनशील लागत की विस्तृत विश्लेषण आवश्यक है जिस पर उत्पादन का औसत लागत न्यूनतम हो। उत्पादन का सिद्धान्त प्रबंधन को फर्म की आकार के साथ उत्पादन का स्तर तथा उत्पादन में परिवर्तन का औसत तथा सीमांत लागत पर प्रभाव मूल्यांकन करने में सहायता करता है। यह प्रबंधन को अनुकूलतम उत्पादन स्तर को 'इफ दैन एनालिसिश' के माध्यम से पहचानने में मदद करता है। अर्थात् उत्पादन लागत पर उत्पादन के एक या अधिक कारकों के व्यक्तिक या संयुक्त परिवर्तन का प्रभाव।

3. **विनिमय का सिद्धान्तः** विनिमय का सिद्धान्त या कीमत सिद्धान्त विभिन्न बाजार की स्थिति में कीमत निर्धारण का कार्य करता है। उत्पाद कीमत किसी प्रतिष्ठान की सफलता को प्रभावित करने वाला एक महत्वपूर्ण प्रबंधकीय मुद्दा है है। उत्पादन कीमत, वस्तु की मांग को प्रभावित करता है, जो अंततः व्यापारिक लाभ को प्रभावित करता है।
4. **लाभ का सिद्धान्तः** किसी भी व्यापारिक संगठन का अंतिम उद्देश्य लाभ को अधिकतम करना है। लाभ कुल आय तथा कुल लागत का अंतर है। किसी भी फर्म की लाभ देयता उत्पाद की मांग, उत्पादन साधनों की कीमत बाजार में प्रतियोगिता की प्रकृति तथा सघनता इत्यादि द्वारा प्रभावित होता है। लाभ का सिद्धान्त प्रबंधन को लाभ की योजना तथा फर्म की लाभ अर्जन की दक्षता को बढ़ाने में मदद करता है।
5. **पूंजी तथा निवेश का सिद्धांतः** व्यापारिक अर्थशास्त्र कुछ अन्य प्रबंघकीय मुद्दे जैसे व्यवहार्य निवेश प्रस्ताव से संबंधित महत्वपूर्ण पूंजी व निवेश के मुद्दे सीमित व्यापारिक पूंजी का दक्षतापूर्ण आंवटन, अल्प पूंजी या अधि पूंजी की संभावना कम करना इत्यादि।
6. **व्यापारिक पर्यावरणः** सामाजिक राजनैतिक वातावरण के कारक जैसे व्यापार चक्र देश में आर्थिक व्यवस्था के प्रकार, औद्योगिक, व्यापार, कर, राजकोषीय तथा श्रम नीति, उत्पादन से संबंधित सामान्य आर्थिक प्रकृति, रोजगार, आय इत्यादि। कीमतें बचत तथा निवेश आदि। व्यापारिक योजनाओं की सफलता को प्रभावित करते हैं।

   ये कारक अनियंत्रित हैं और इसलिए नीतियां, कार्यक्रम और फर्म के क्रियाकलापों से संबंधित योजना, उपर उल्लेखित सामाजिक–राजनैतिक कारकों के प्रभाव को समझने के बाद हीं करना चाहिए।
7. **माल सूची प्रबंधनः** सूची प्रबंधन का एक नाजूक स्थिति वाला क्षेत्र है। जहां अधि माल सूची का रख रखाव व्यापारिक लाभ देयता पर प्रतिकूल प्रभाव डाल सकता हैं, वहीं माल सूची मे कमी उत्पादन प्रक्रिया को अवरूद्व कर सकता है। फार्म को हमेशा एक अनुकूलतम स्टॉक को बनाये रखना चाहिए। व्यापारिक अर्थशास्त्र माल सूची प्रबंधन स्टॉक प्रबंधन तकनीक जैसे ABC विश्लेषण, VED विश्लेषण, आर्डर का स्तर, आर्डर की मात्रा व्यापारिक प्रबंधन को स्टॉक लागत को कम करने मे मदद करते हैं।

1.5 व्यापारिक अर्थशास्त्र के उद्देश्य

व्यापारिक अर्थशास्त्र प्रबंधन की निर्णय लेने की प्रक्रिया में सहायता प्रदान करता हैं। यह प्रबंधन को निम्नलिखित प्रश्नों का उतर देने में सहायता प्रदान करता है:

- कहां निवेश हो?
- कितना निवेश हो?
- कौन सा मशीन तथा यंत्र खरीदा जाय?
- उत्पादन का मिश्रण क्या होना चाहिए?
- आगत का मिश्रण क्या होना चाहिए जिससे उत्पादन लागत न्यूनतम हो?
- कितनी मात्रा में उत्पादन होना चाहिए?
- बिक्री कीमत क्या होना चाहिए?

व्यापारिक अर्थशास्त्र प्रबंधन को उपर्युक्त प्रश्नों के उतर आंकड़ों का संकलन, विश्लेषण के माध्यम से प्रासंगिक तकनीकी द्वारा प्रदान करता है। फिर भी, व्यापारिक अर्थशास्त्र के विस्तृत उद्देश्य निम्नलिखित हैं:

1. आर्थिक सिद्धांत तथा व्यापारिक प्रक्रिया के बीच सेतु का कार्य करने हेतु,
2. जोखिम तथा अनिश्चितता को कम करने हेतु,
3. व्यापारिक समस्याओं का आर्थिक अवधारणाओं तथा सिद्धान्तों के प्रयोग द्वारा प्रबंधन को सहायता प्रदान करने हेतु,
4. प्रबंधन को दुलर्भ संसाधनों का अनुकूलतम बंटवारा करने में सहायता प्रदान हेतु,
5. मांग के पूर्वानुमान में प्रबंधन को सहायता प्रदान हेतु,
6. प्रबंधन को उत्पादन योजना तथा लागत विश्लेषण में सहायता हेतु,
7. प्रबंधन को कार्य योजन नियंत्रण में सहायता हेतु,
8. फर्म को औद्योगिक नेतृत्व को उभारने हेतु,
9. प्रबंधन को बाजार की हिस्सेदारी के विस्तार की रणनीति तैयार करने हेतु,
10. फर्म के सम्पूर्ण विकास हेतु,
11. लाभ को अधिकतम करने हेतु।

1.6 व्यापारिक अर्थशास्त्रीयों की भूमिका

व्यापारिक अर्थशास्त्री व्यापार के लिए एक सलाहाकार की भूमिका अदा करता है। वह अपने कौशल तथ ज्ञान का उपयोग कर व्यापारिक प्रतिष्ठान के प्रबंधकों को महत्वपूर्ण प्रबंधकीय निर्णय लेने में मदद करता है। आज व्यापारिक अर्थशास्त्रियों की भूमिका व्यापार के बढ़ते पैमाने, कड़ी प्रतिस्पर्धा तथा वैश्विक शक्तियों के कारण बहुत अधिक बढ़ गया है। पहले केवल कुछ विकसित देशों यूनाईटेड किंगडम, संयुक्त राज्य अमेरिका, जर्मनी, ऑस्ट्रेलिया और फ्रांस ही व्यापारिक अर्थशास्त्र से संबंधित विशषज्ञों की सेवाये फर्मों में लेते थे। पर आजकल रिलायंश, हिन्दूस्तान लिवर आदि जैसे भारतीय फर्म भी व्यापारिक अर्थशास्त्र के विशेषज्ञों की मदद ले रहे हैं। निम्नांकित तथ्य आपको व्यापारिक अर्थशास्त्रियों की भूमिका के बारे में जानकारी प्रदान करेगा।

1. व्यापारिक वातावरण का अध्ययनः

अब तक आप समझ गये होगें कि व्यापारिक अर्थशास्त्र एक आदर्श विज्ञान है, व्यापारिक अर्थशास्त्रियों की प्रमुख भूमिका प्रासंगिक आर्थिक पारंम्परिक आर्थिक सिद्धान्तों का प्रयोग आज के तेजी से बदलते व्यापारिक वातावरण से है।

व्यापारिक वातावरण को कारकों की सम्पूर्णता में परिभाषित किया जा सकता है। जो व्यापारिक संगठनों के नियंत्रण से बाह्य तथा दूर है। और जो संगठन के प्रबंधकीय निर्णयों पर सघन प्रभाव डालता है।

अतः सभी फर्मों को बाह्य आर्थिक वातावरण जैसे जनसंख्या का वृद्धि दर प्रतिव्यक्ति आय, शिक्षा का दर, राष्ट्रीय आय में वृद्धि, व्यापार की मात्रा, उपभोक्ता की रूचि मे परिवर्तन, सरकार की व्यापारिक नीति, औद्योगिक नीति, आयात–निर्यात नीति और सामान्य कीमत स्तर की प्रवृति का विश्लेषण, प्रबंधन को उचित व्यापारिक निर्णय लेने के लिए आवश्यक होता है। बाह्य आर्थिक कारकों का विश्लेषण संगठन को भविष्य की योजना तथा व्यापारिक नीतियों को बनाने में मदद करते हैं। यह व्यापार को व्यापार की रेखा खींचने, विभिन्न काल खण्ड में किस क्षमता के साथ कियाशील होगा, फर्म को वैश्विक होने की आवश्यकता है या नहीं, यदि है तो वह और देश है जो व्यापार की क्षमता रखते है आदि मे सहायता प्रदान करता है। व्यापारिक अर्थशास्त्री राष्ट्रीय तथा अर्न्तराष्ट्रीय व्यापारिक वातावरण को समझते हैं तथा प्रबंधन को विवेकपूर्ण निर्णय लेने में सहायता करते हैं।

2. व्यापारिक योजना तथा पूर्वानुमान

सभी व्यापारिक प्रतिष्ठान भविष्य के लिए योजना बनाते हैं तथा व्यापक आर्थिक योजना तैयार करने के पश्चात् उसके उद्देश्य की प्राप्ति के कार्य में जूट जाते हैं। अर्थशास्त्री प्रबंधन को पूर्वानुमान लगाने तथा व्यापारिक योजना का विकास करने मे मदद करते हैं, जैसा कि पहले बताया गया है। प्रबंधकीय अर्थशास्त्री भूत के व्यापारिक प्रवृति के आंकड़ों, सरकारी नीतियों, राष्ट्रीय तथा अर्न्तराष्ट्रीय व्यापारिक वातावरण तथा जानाकीय विशेषताओं से संबंधित आंकड़ों का संग्रह व विश्लेषण कर भविष्य की व्यापारिक योजना तथा पूर्वानुमान में मदद करते हैं।

3. आन्तरिक व्यापारिक संकिया के बारे में सलाह

अर्थशास्त्री विश्लेषणात्मक पूर्वानुमान तकनीकि के माध्यम से प्रबंधन को आंतरिक संगठन के कार्य के बारे में सलाह देते हैं। जैसे विभिन्न समय बिन्दु पर प्रतिशत क्षमता उपयोग की आवश्यकता। वे प्रबंधन को इस प्रश्न का भी उतर तलाशने में मदद करते हैं कि क्या उपयुक्त उत्पादन सूची हैं? स्टॉक के प्रबंधन के लिए क्या नीति होना चाहिए? संतुलित बिकी क्या होगी? फर्म कहां से अपने वितीय आवश्यकता की पूर्ति करेगा? इसके लिए वह विभिन्न उपयुक्त सांख्यिकीय तकनीकी जैसे प्रतीपगमन, संहसंबंध, प्रवृति विश्लेषण आदि का प्रयोग करता है। तथा इस अध्ययन के आधार पर प्रबंधन को व्यापारिक संगठन के आंतरिक व्यापारिक संक्रिया के संबंध में सलाह देता है।

4. आर्थिक प्रज्ञा का अध्ययन

व्यापारिक अर्थशास्त्री अर्थव्यवस्था के बारे में प्रबंधन को सामान्य जानकारी उपलब्ध कराते हैं। यह सूचना प्रबंध के लिए बहुत ही उपयोगी होता है, क्योंकि प्रबंधन के लोग की सामान्य बुद्धि को बढ़ाता है और उनके विश्लेषणात्मक क्षमता को दूरूस्त करता है। और इसका प्रयोग प्रबंधन द्वारा कम्पनी के वार्षिक रिर्पोट तैयार करने सेमिनार और संगोष्ठी में प्रस्तुतीकरण में सहायता करता है।

5. विशिष्ट कार्य

व्यापार की जटिलता के बढ़ने के साथ व्यापारिक अर्थशास्त्रियों के कार्य भी जटिल हो गया है। सेवा की गुणवता को बनाये रखने के लिए कुछ अर्थशास्त्री किसी एक क्षेत्र मे हीं अपनी विशेषज्ञता रखते हैं, तथा उससे सम्बंधित हीं सलाह देते हैं। यह विशिष्ट क्षेत्र मांग का पूर्वानुमान, औद्योगिक बाजार शोध, उद्योग की कीमत समस्या, उत्पादन कार्यक्रम, निवेश विश्लेषण तथा पूर्वानुमान को समाहित करता है। वे व्यापार तथा लोक नीति, कृषि उद्योग, यातायात तथा पर्यटन, प्राथमिक वस्तुएं तथा विदेशी पूंजी परियोजना और निर्यात वातावरण पर भी सलाह देते हैं।

1.7 व्यापारिक अर्थशास्त्रियों के उतरदायित्व

किसी भी व्यापारिक संगठन का मूख्य उद्देश्य जितना संभव हो लाभ कमाना होता है। व्यापारिक अर्थशास्त्रियों का प्रमुख दायित्व फर्म को अपने लाभ अधिकतम करने के उद्देश्य को प्राप्त करने में सहायता करना है। तथा अन्य सारे दायित्व भी लाभ अधिकतम करने के उद्देश्य की प्राप्ति के सहायता से हीं संबंधित है। व्यापारिक अर्थशास्त्रियों के दायित्व की व्याख्या निम्नांकित हैंः

1. **उचित पूर्वानुमान लगानाः** आज के प्रतिस्पर्धी विश्व में व्यापारिक प्रतिष्ठान की सफलता फर्म की अतिक्रियाशीलता पर निर्भर है, और यह अतिक्रियाशीलता इस बात पर निर्भर करता है कि कितना सटीक भविष्य की घटनाओं का पूर्वानुमान लगाया जाय। भविष्य की अनिश्चियतता के कारण इसका सही अनुमान लगाना कठिन है। व्यापारिक भवष्यि से संबंधित घटनाओं से अनिश्चितता को पूरी तरह से समाप्त नहीं किया जा सकता है। परन्तु, व्यापारिक अर्थशास्त्री वैज्ञानिक तकनीक का प्रयोग कर इसे कम करने में बहुत हद तक सफलता पाई है। एक व्यापारिक अर्थशास्त्री जो पूर्वानुमान लगाने के तकनीकी मे दक्ष होता है तथा सफल पूर्वानुमान लगाता है, उसकी बाजार में अत्याधिक सम्मान होता है। यह व्यापारिक अर्थशस्त्री का दायित्व होता है कि वह व्यापार की प्रवृतियों का जितना हो सके सटीक पूर्वानुमान लगाये तथा बदलते परिदृश्य में अपने सूचनाओं को व्यवस्थित कर प्रबंधन को अगाह करते रहें हैं।
2. **संबंधों को बनाये रखनाः** व्यापारिक अर्थशास्त्री को अपने दायित्व का प्रभावशाली तथा दक्षतापूर्ण निर्वहन के लिए आंकड़ों को विभिन्न स्त्रोतों से एकत्रित करना चाहिए। विभिन्न आंकड़ा स्त्रोतों से आंकड़े प्राप्त करने के लिए उनसे अच्छे संबंध आवश्यक है, इसलिए व्यापारिक अर्थशास्त्री को चाहिए की आंकड़ा स्त्रोतो से अच्छे संबंध स्थापित करें। और उनसे अच्छे संबंध स्थापित करने के लिए विभिन्न व्यवसायिक संघों से जुड़ना चाहिए तथा जर्नल के माध्यम से सामसामिक सूचना प्राप्त करना चाहिए।
3. **प्रबंधन के दल में पूर्ण नियंत्रणः** एक व्यापारिक अर्थशास्त्री को प्रबंधन दल मे पूर्ण सम्मान एवं नियंत्रण होना चाहिए। क्योंकि उसका कार्य क्षेत्र प्रबंधन को सहायता व सलाह देना है, जो फर्म के व्यापारिक क्रिया कलाप को पूर्णतः बदल सकता है। उसका सलाह का कोई मूल्य नहीं होगा, यदि उस प्रबंधन दल में सम्मान व नियंत्रण हासिल न हो। प्रबंधन दल में

जगह पाने के लिए अपने महत्व को स्थापित करना होगा। उसके पास न केवल यह योग्यता होनी चाहिए कि वह अपनी धारणा की व्याख्या कर सके, वरन् लोगों को संतुष्ट भी कर सके। उसे विशेष परियोजन के कार्य को पूरा करने के लिए भी तैयार रहना चाहिए।

निष्कर्षतः हम कह सकते हैं कि व्यापारिक अर्थशास्त्री का कार्य प्रबंधन दल में सम्मान व नियंत्रण प्राप्त करना है जिसे प्राप्त करने के लिए इसे अपनी जिम्मदारियों को समझना व उठाना होगा। तथा उसकी योग्यता इतनी होनी चाहिए कि वह अपने विचारों का सही तरीके से व्याख्या कर सके।

1.8 व्यापारिक अर्थशास्त्र एवं अन्य विज्ञान

भूमिका

व्यापारिक अर्थशास्त्र अलगाव में कार्य नहीं करता है। यह केवल अर्थशास्त्र से संबंधित नहीं बल्कि प्रबंधकीय अर्थशास्त्र अध्ययन के अन्य क्षेत्रों से भी संबंधित है। प्रबंधकीय अर्थशास्त्र से संबंधित अन्य विषय, अर्थशास्त्र, गणित, सांख्यिकी, लेखा विज्ञान, संक्रियात्मक शोध, संगणक एव प्रबंधन। व्यापारिक अर्थशास्त्र के प्रकृति और क्षेत्र को सहीं तरीके से समझने के लिए यह जरूरी है कि अन्य विज्ञानों से इसके संबंध को तलाशें। व्यापारिक अर्थशास्त्र का अध्ययन के अन्य महत्वपूर्ण क्षेत्र से संबंध निम्नांकित हैंः

आर्थिक एवं व्यापारिक अर्थशास्त्रः अर्थशास्त्र वह नींव है जिसके आधार पद प्रबंधिकीय अर्थशास्त्र का महल खड़ा है। अर्थशास्त्र प्रबंधन को अपने कार्य जिम्मेदारियों का पालन करने में महत्वपूर्ण भूमिका अदा करता है। अर्थशास्त्र, व्यापारिक अर्थशास्त्र के लिए वहीं भूमिका निभाता है जो जीव विज्ञान, चिकित्सा विज्ञान के लिए तथा अभियंत्रिकी के लिए भौतिकी निभाता है, जिससे वह संगठन के उद्देश्य, लाभ अधितम करने को सीमित संसाधनों के अनुकूलतम आंवटन द्वारा प्राप्त कर सके। अर्थशास्त्र प्रबंधकीय अर्थशास्त्र में अत्याधिक योगदान करता है।

व्यापारिक अर्थशास्त्र एवं सांख्यिकीः व्यापारिक अर्थशास्त्र आंकड़े के सग्रहण तथा विश्लेषण से संबंधित है। सांख्यिकी तकनीक का प्रयोग व्यापारिक आंकड़ों का संग्रह, क्रमवद्ध तथा विश्लेषण आर्थिक सिद्धांतों को जांचने में व्यापारिक निर्णय के पूर्व किया जाता है। सांख्यिकी तकनीकि जैसे प्रायकिता का सिद्धांत, पूर्वानुमान तकनीक और प्रतीपगमन विश्लेषण भविष्य की कार्य योजनाओं का अनुमान लगाने और अनुमानित परिणाम से व्यापारिक निर्णय लेने में सहायता करते हैं।

व्यापारिक अर्थशास्त्र एवं गणितः व्यापारिक अर्थशास्त्र उन अवधारणाओं के साथ कार्य करता है, जो प्रकृति में परिमाणात्मक है, उदाहरण स्वरूप मांग, कीमत, लागत, पूंजी, मजदूरी, स्टॉक इत्यादि। गणित प्रबंधक का सबसे उपयोगी तार्किक हथियार है। आर्थिक कारकों का तार्किक गणित के उपयोग से विश्लेषण ने केवल अवधारणाओं को स्पष्ट करता है बल्कि समस्याओं को तार्किक व व्यवस्थित रूप में समझ कर व्यापारिक निर्णय के संभावित परिणाम को भ स्पष्ट करता है।

व्यापारिक अर्थशास्त्र और संक्रियात्मक षोधः संक्रियात्मक शोध और व्यापारिक अर्थशास्त्र कुछ हद तक संबंधित हैं। रेखीय कार्यक्रम और उद्देश्य कार्यक्रम, संक्रियात्मक शोध के दो तकनीक हैं, जो व्यापारिक निर्णयों में अत्याधिक प्रयोग किया जाता है। व्यापारिक अर्थशास्त्र और संक्रियात्मक शोध के संबंध को

कुछ महत्वपूर्ण समस्याओं के संदर्भ में प्रदर्शित किया जा सकता है, जिसे संक्रियात्मक शोध के तकनीक से हल किया जा सकता है। जैसे, समस्यओं का चुनाव, प्रतिस्पर्धा समस्या, प्रतीक्षा रेखा की समस्या और स्टॉक की समस्या। संक्रियात्मक शोध तकनीक का उपयोग विभिन्न कारकों के अनुकूलतम संयोजन के लिए किया जाता हैं जो अधिकतम लाभ, न्यूनतम लागत व समय इत्यादि के उद्देश्य को प्राप्त कर सके।

व्यापारिक अर्थशास्त्र और लेखांकनः लेखांकन फर्म के कार्य तथा संक्रिया से संबंधित मूख्य आंकड़ों का स्त्रोत एक व्यापारिक अर्थशास्त्री को निर्णय लेने के लिए बाजार की जानकारी उत्पादन की जानकारी तथा लेखांकन की जानकारी की अवश्यकता होती है। वित्तीय प्रदर्शन तथा वित्तीय स्थिति की जानकारी, लाभ तथा हानि के लेखांकन कथन एवं संतुलन कथन से प्राप्त होता है, जो प्रबंधक को निर्णय लेने तथा भविष्य की योजना बनाने में सहायता प्रदान करता है।

संगणक और व्यापारिक अर्थशास्त्रः वर्तमान युग सूचना तकनीक तथा संगणक का है। संगणक मानव जीवन के प्रत्येक भाग में सहायता कर रहा है, चाहे वह उत्पाद संरचना हो, प्रयोजना का निर्माण, प्रयोजना का क्रियान्वयन तथा उत्पादन क्रिया इत्यादि। व्यापारिक अर्थशास्त्री भी सूचना का उपयोग आंकड़ों के प्रसंस्करण, विश्लेषण तथा प्रदर्शन में करते हैं।

कुछ आधारभूत अवधारणाये जो व्यापारिक अर्थशास्त्र में निर्णय लेने के समय आवश्यक है, निम्नांकित हैः

1.9 अवसर लागत

सभी आर्थिक संसाधनों का विभिन्न वैकल्पिक उपयोग हैं लेकिन उनकी सीमित उपलब्धता के कारण उसका उपभोग सबसे बेहतर उपयोग तक सीमित रहता है और इस प्रक्रिया में उसका अन्य प्रयोग को छोड़ना पड़ता है। आर्थिक संशाधनो का अवसर लागत वह प्राप्ति है जिसका परित्याग संसाधन के दूसरे सबसे बेहतर उपयोग के लिए नहीं करते हैं। अतः अवसर लागत का मापन निर्णय में त्याग के माध्यम से किया जाता है। यदि किसी विशिष्ट निर्णय में किसी प्रकार का त्याग शामिल न हो किसी प्रकार का अवसर लागत नहीं होगा। मान लीजिए आपके दुकान में दो कम्प्यूटर है और आपको दो कार्य प्राप्त हुए है। एक कार्य प्रयोजना रिर्पोट टंकण और मुद्रण से संबंधित और दूसरा कार्य कॉलेज परिचायिका का मूद्रण एवं टंकण का है। प्रयोजना रिपोर्ट से 1000 रूपये प्राप्त होगें, जबकि कॉलेज परिचायिका का मुद्रण एवं टंकण से 1200 रूपये की प्राप्ति होगें। दोनो प्रयोजना समान कार्य को प्रदर्शित करते हैं। यदि आप कॉलेज परिचायिका के मुद्रण का कार्य स्वीकार करते हैं तो आपको प्रयोजना रिर्पोट के कार्य का परित्याग करना होगा। इस स्थिति में अवसर लागत 1000 रूपये अर्थात् वह प्राप्तियां जो परियोजना कार्य के अस्वीकार करने से हुए है। अवसर लागत वैकल्पिक लागत तथा स्थानान्तरण लागत भी कहलाता है। अवसर लागत की अवधारणा प्रबंधकीय निर्णय प्रणाली में बहुत हीं महत्वपूर्ण भूमिका अदा करता हैं। यह अवधारणा उपलब्ध संसाधनों का अनुकूलतम वितरण में सहायता प्रदान करता है। इस अवधारणा के आधार पर प्रबंधन विभिन्न उपलब्ध विकल्पों मे से सबसे संभव विकल्य का चुनावि कर सकता है।

1.10 वृद्धिमान लागत की अवधारणा और आय/आगम

वृद्धिमन लागत तथा आय की अवधारणा प्रबंधकीय अर्थशास्त्र में बहुत हीं महत्वपूर्ण है तथा यह प्रबंधक को महत्वपूर्ण प्रबंधकीय निर्णय लेने में सहायता प्रदान करता है। व्यापारिक प्रतिष्ठान के प्रबंधन में साामान्यतः ऐसी स्थितियां आती है जिनमें उन्हें निर्णय लेना होता है। जैसे उत्पादन क्षमता को बढ़ाना चाहिए या नहीं? उसे नये उत्पाद को लाना चाहिए या नहीं? और उसे किसी उत्पाद का उत्पादन बंद करना चाहिए? क्या उसे कोई निर्यात का ऑर्डर स्वीकार करना चाहिए या नहीं? वृद्धिमान आय तथा वृद्धिमान लागत की यह अवधारणा भी प्रबंधकीय अर्थशास्त्र के रूप में जाना जाता है, जहां यह सिद्धांत प्रबंधन को उपयुक्त मुद्दों को समझाने में मदद करता है। वृद्धिमान लागत किसी निर्णय के कारण कुल लागत में परिवर्तन हैं। वृद्धिमान आय किसी निर्णय के कारण कुल आय में परिवर्ततन हैं। वृद्धिमान लागत तथा वृद्धिमान आय का तुलनात्मक अध्ययन प्रबंधन को उस निर्णय की लाभ देयता का मूल्यांकन करने में सहायता प्रदान करता है। तदनुसार कोई निर्णय लाभ देय हो सकता है यदिः

(i) यह आय में लागत से अधिक वृद्धि करता है,

(ii) यह कुछ आय को अन्य की तुलना मे अधिक तेजी से वृद्धि करता है,

(iii) यह कुछ लागत को अन्य की तुलना में तेजी से कम करता है,

(iv) यह लागत में कमी आय की तुलना में तेजी से कम करता है।

यह नोट करने लायक है कि कोई भी विवेकशील फर्म किसी आर्डर में इसलिए अस्वीकार नहीं करता क्योंकि वह कुल लागत को प्राप्त नहीं कर सकता है अर्थात् श्रम लागत, आगत लागत, संरचनात्मक लागत तथा लाभ का प्रावधान। वृद्धिमान सिद्धांत बताता है कि यह सोच अल्पकाल में लाभ अधिकतम करने से असत्त है। किसी करार को पूरा लागत मूल्य प्राप्त न होने के कारण अस्वीकार करना आय प्राप्त की संभावन को समाप्त करना है। अतः वृद्धिमान लागत कुल लागत की तुलना में अधिक महत्वपूर्ण है। आपको निम्नलिखित उदाहरण से इस अवधारणा को समझने में सहायता प्राप्त है।

माना लीजिये एक फर्म की अतिरिक्त प्रत्याशित आय नये ऑर्डर प्राप्त करने से 100000 रूपये हैं। लागत की गणना निम्न तरीके से की जायेगी।

क्रम सं.	मदें	लागत (रू. में)
1	पदार्थ	40,000
2	संरचना (श्रम लागत के 12% आंवटित)	30,000
3	बिक्री एवं प्रशासनिक खर्च	36,000
4	श्रम और पदार्थ लागत का 20% आंवटित	14,000
5	कुल लागत	1,20,000

इससे स्पष्ट है कि यदि इस ऑर्डर को पूरा करने पर फर्म को 20,000 रूपये की हानि होगी। अब यदि यह मान लिया जाय कि फर्म के पास 10,000 की अतिरिक्त लागत पहले से है (अर्थात् उर्जा संबंधी लागत, प्रवेक्षण तथा हृषि लागत इत्यादि) केवल 20,000 रू. के श्रम लागत लगेगी क्योंकि कुछ कामगार उसके पास पहले से मॉजूद हैं, जिन्हें किसी अतिरिक्त लागत के काम पर लगाया जा

सकता है। अतः वृद्धिमान लागत को निम्नांकित तरीके से आंकलित किया जा सकता है।

कम सं.	मदें	लागत (रू. में)
1	पदार्थ	40,000
2	श्रम	20,000
3	संरचना	10,000
4	कुल वृद्धिमान लागत	70,000

अब यह विकल्प का परिणाम 30,000 रू. (10,00–70,000) लाभ के रूप में होगा। सीमान्त लागत और विभेदी लागत तकनीक जो अति महत्वपूर्ण प्रबंधकीय निर्णय लेने में प्रयोग किया जाता है वृद्धिमान लागत और आय की अवधारणा पर आधारित है।

1.11 समय परिप्रेक्ष्य और लागत बंटवारे का सिद्धांत

समय परिप्रक्ष्य और लागत बंटवारे का सिद्धान्त जो प्रबंधकीय अर्थशास्त्र में स्थिर तथा परिवर्तनशील लागत है, प्रबंधन को निर्गत, ऑर्डर की स्वीकार्यता या अस्वीकार्यता और कीमत का निर्धारण, बाजार की चढ़ती–उतरती परिस्थिति से संबंधित उपयोगी निर्णय लेने में सहायता प्रदान करता है। अल्पकाल एवं दीर्घ काल का अन्तर दिये हुए बाजार प्रकृति में कीमत निर्धारण में सहायता प्रदान करता है। दीर्घ काल में फर्म अपने पूरे लागत को अवश्य ही प्राप्त करती है, जबकि अल्पकाल में कुछ स्थिर लागतों को दरकिनार कर सकती है, पर परिवर्तनशील लागत अवश्य ही प्राप्त होना चाहिए। समय परिप्रेक्ष्य सिद्धान्त के अनुसार कोई भी निर्णय अल्प–काल व दीर्घ काल दोनों को स्वीकारते हुए उसके आय और लागत के बीच में सहीं संतुलन बनाने के लिए अल्पकाल व दीर्घकाल दोनों के प्रभाव को देखना चाहिए।

1.12 बट्टे का सिद्धांत

बट्टे का सिद्धान्त या मूद्रा के समय मूल्य की अवधारणा इस मान्यता पर आधारित है कि समय के साथ मूद्रा का मूल्य परिवर्तित होता है। सामान्यतः आज प्राप्त मुद्रा भविष्य में प्राप्त मुद्रा से अधिक मूल्यवांन होता है। इसके कई कारण है जैसे, लोग भविष्य की ईच्छाओं की पूर्ति के बजाय वर्तमान ईच्छा की पूर्ति करना चाहत हैं क्योंकि भविष्य अनिश्चित होता है, तथा वर्तमान में प्राप्त पूंजी को निवेश कार भविष्य में ब्याज प्राप्त किया जा सकता है। सामान्य कहावत भी है कि हाथ की एक चिड़िया घोसले के दो से अधिक मूल्यान होती है। व्यापारिक अर्थशास्त्र का यह बट्टे का सिद्धांत भविष्य में प्राप्त होने वाली प्राप्ति का वर्तमान में मूल्य ज्ञात करता है, जो दीर्घकाल में की प्रयोजन में निवेश संबंधी समस्या, बैंक में जमा पूंजी तथा वित के स्त्रोत आदि का चुनाव करने में मदद करत हैं।

वर्तमान कारक मूल्य जो भविष्य क प्राप्तियों का वर्तमान मूल्य की गणना में उपयोग किया जाता हैः

$XPVF = 1 + (1+ r)^n$, जहां, r बट्टे की दर को दर्शाता है और n समय को दर्शाता है अर्थात जितने वर्ष के बाद भुगतान की प्राप्ति होगी।

उदाहरणः

मान लीजिये की आपको बैंक से एव वर्ष बाद 1000 रू. की प्रप्ति होगी। बट्टे की दर 10 प्रतिशत है तब 1000 रू. का वर्तमान मूल्य है।

वर्तमान मूल्य $= 1000 \times 1/(1+.10)^1$

वर्तमान मूल्य $= 1000 \times 0.909 = 909$ रू.

इसी तरह आप उस मुद्रा का भी वर्तमान मूल्य ज्ञात कर सकते हें जो एक वर्ष से अधिक समय में प्राप्त होगा। यदि 1000 रू. की प्राप्ति एक वर्ष के बजाय तीन वर्ष पर प्राप्त हो तो, वर्तमन मूल्य का मन निम्नांकित तरीके से आकलित की जयेगी।

वर्तमान मूल्य $= 1000 \times 1/(1+.10)^3$

वर्तमान मूल्य $= 1000 \times 0.751 = 751$ रू.।

यह सिद्धांत वहां पर अवश्य हीं लागू होना चाहिए जहां निर्णय भविष्य में लागत तथा आय के प्रभावित करने वाले है। ऐसी स्थिति में यह आवश्यक है कि वर्तमान मूल्य प्राप्त करने के लिए लागत तथा आय के बट्टे क प्रयोग करें। उसके बाद विकल्पों के बीच सहीं तुलना किया जा सके।

1.13 सम–सीमान्त सिद्धान्त

सम अर्थात बराबर और सीमान्त अर्थात अतिरिक्त। सम–सीमान्त सिद्धांत व्यापारिक अर्थशास्त्र में प्रयोग होने वाला एक महत्वपूर्ण सिद्धान्त हैं, जो संशोधनों के अनुकूलतम बंटवारे को सुनिश्चित करता है।

इसके लिए जरूरी है कि आगत संसाधनों का आवंटन इस प्रकार होना चाहिए कि प्रत्येकक आगत के अंतिम इकाई से प्राप्त मूल्यवर्धन सभी उपयोग के लिये बराबर हो। जब आगत संसाधनों का आंवटन इस प्रकार से होता है, तब यह सभी आगतों का अधिकतम दोहन करता है, ताकि लाभ को अधिकतम किया जा सके।

सम–सीमांत उपयोगिता के सिद्धांत का उद्देश्य संसाधनों का आवंटन है, इसलिए इसका प्रयोग प्रबंधन के विभिन्न क्षेत्रों में किया जाता है। इस सिद्धान्त का सर्वश्रेष्ठ उपयोग बजट निर्माण में होता है, जिससे यह सुनिश्चित किया जा सके कि संसाधनों का सबंसे उत्पादक उपयोग हो रहा है। सम–सीमान्त सिद्धांत का प्रयोग बहु–वस्तु कीमत निर्धारण में भी होता है, संसाधनों के निर्धारक उपयोग की पहचान कर संसाधनों को निरर्थक उपभोग से उत्पादक उपयोग में लगाना।

1.14 अनुकूलतम

प्रबंधन को व्यापार से संबंधित विभिन्न रणनीतिक तथा क्रियात्मक निर्णय लेना होता है। इन निर्णयों को लेने में उन्हें खुली छूट नहीं होती हैं, बल्कि विभिन्न कारकों के बीच में संतुलन स्थापित करना पड़ता है। उदाहरणस्वरूप निवेश निर्णय के समय उसे प्राप्तियों तथा जोखिम के बीच संतुलन बनाना पड़ता है, क्योंकि ज्यादा जोखिम से ज्यादा प्राप्तियां होती है। इसी तरह वस्तु सूची प्रबंधन में भी इन्भेन्टरी रखने की लागत तथा इन्भेटंरी आर्डर की लागत के बीच संतुलन बनाना पड़ता है। अतः कहा जा सकता है कि प्रबंधन निर्णय लेने के समय अधिकतम सिद्धांत के बजाय अनुकूलतम सिद्धांत से प्रेरित होता है। व्यापारिक अर्थशास्त्र का उद्देश्य अक्सर अपने उद्देश्य को अनुकूलतम् करने का होता है। अनुकूलतम के

कुछ महत्वपूर्ण तकनीक सीमान्त विश्लेषण, आंकलन, लिनियर प्रोग्रामिंग इत्यादि है।

1.15 सारांश

व्यापारिक अर्थशास्त्र की वह विशेष शाखा है, जो व्यापारिक मुद्दों को अर्थशास्त्र के सिद्धांत अवधारणा और तकनीक के माध्यम से सुलझाने में मदद करता है। अर्थव्यवस्था में व्यापार के स्केल में वृद्धि और कड़ी प्रतिस्पर्धा की मौजूदगी के कारण व्यापारिक अर्थशस्त्रियों की भूमिका महत्वपूर्ण हो गई है। और व्यापारिक अर्थशास्त्रियों का उद्योगो में मूल्य बढ़ गया है। अन्य विद्याओं के विशेषज्ञ भी व्यपारिक अर्थशास्त्र के विशिष्ट क्षेत्र में विशेषज्ञता अर्जित कर व्यापारिक अर्थशास्त्र में अपनी भूमिका अदा कर रहे हैं। व्यापारिक अर्थशास्त्र एक बहुआयामी विद्या है जिसका अर्थशास्त्र, संगणक, गणित तथा क्रियात्मक शोध से नजदीकी संबंध है।

1.16 शब्दावली

- **अवसर लागतः** आर्थिक संशाधनो की अवसर लागत वह प्राप्ति है जिसका परित्याग संसाधन के दूसरे सबसे बेहतर उपयोग के लिए नहीं करते हैं।
- **प्रबंधकीय अर्थशास्त्रः** से आशय एक उद्यम द्वारा व्यापार में पेश आ रही समस्याओं के समाधान के लिए आर्थिक विश्लेषण के उपयोग से है ।

1.17 बोध प्रश्न

(A) खाली स्थान को भरें

1. व्यापारिक अर्थशास्त्र ————————— मान्यतओं पर आधारित नहीं है।
2. अवसर लागत किसी संसाधन पर वह प्राप्ति हैं ———————— जो इसमें ——————— सबसे अच्छे विकल्प के लिए उपयोग होता है।
3. एक फर्म कुछ ———————— लागतों का अनदेखी कर सकती है।
4. किसी उपभोक्ता के रूचि में परिवर्तन ———————— एक कारक है।
5. सीमान्तवादी अवधारणा सहायता है ——————————।
6. ————————— प्रबंधकीय अर्थशास्त्र का स्तंभ है।
7. ————————— ने आंकड़े विश्लेषण के कार्य को आसान कर दिया है।

(B) सही या गलत

1. व्यापारिक अर्थशास्त्र समष्टि अर्थशास्त्र की प्रवृति का होता है।
2. व्यापारिक अर्थशास्त्र क प्रबंधकीय विज्ञान से कोई संबंध नहीं है।
3. व्यापारिक अर्थशास्त्र कला नहीं है।
4. व्यापारिक अर्थशास्त्र सांख्यिकी से भी संबंधित है।
5. एक निर्णय लाभदायक नहीं होगा यदि यह कुछ आय को बढ़ाकर अन्य में कमी करे।
6. दीर्घकाल में एक फर्म अपने स्थिर लागत की अनदेखी कर सकता है।
7. लोग अपने भविष्य की इच्छा पूर्ति के बजाय वर्तमान की ईच्छा पूर्ति को बरियता देते हैं।

1.18 बोध प्रश्नों के उत्तर

(A)

1. अवास्तविक, 2. त्यागना, अगला, 3. स्थिर, 4. बाह्य वातावरण, 5. संसाधनों का आवंटन, 6. अर्थशास्त्र, 7. संगणक।

(B)

1. गलत, 2. गलत, 3. गलत, 4. सत्य, 5. गलत, 6. गलत, 7 सत्य

1.19 स्वपरख प्रश्न

(A) लघु उत्तरीय प्रश्न

1. अर्थशास्त्र से आप क्या समझते हैं? इसके उद्देश्य क्या हैं?
2. व्यापारिक अर्थशास्त्रियों की भूमिका तथा जिम्मेदारियों पर एक टिप्पणी लिखें ।
3. वृद्धिमान की अवधारणा को समझायें।

(B) दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

1. व्यापारिक अर्थशास्त्र की विशेषताओं की चर्चा करें तथा इसके कार्य क्षेत्र की व्याख्या करें।
2. व्यापारिक अर्थशास्त्र का अन्य विज्ञानों से संबंध का वर्णन करें।

1.20 सन्दर्भ पुस्तकें

1. गोल्ड, जे. पी. एवं सी. ई. फार्गुसन, माईक्रो इकोनॉमिक थ्यॉरी, 8वां संस्करण, होम उड ।।।, रिचर्ड डी. इरवीन (1980)।
2. झिंगन एम. एल., उच्चतर आर्थिक सिद्धांत, वृन्दा प्रकाशन प्रा. लि., नई दिल्ली।
3. Dr. D.M. Mithani, Managerial Economics – Theory and Applications: Himalaya Publishing House.
4. Mehta, P.L., Managerial Economics – Analysis, Problem and Cases, Sultan Chand & Sons, New Delhi.
5. S. K., Mishra and V. K. Puri, Advanced Microeconomic Theory, Himalaya Publishing House, Mumbai, 2001.

*****

इकाई 2 अर्थव्यवस्था की आधारभूत समस्याएं

इकाई की रूपरेखा

2.1 प्रस्तावना
2.2 अवसंरचना
2.3 यातायात व्यवस्था
2.3.1 रेलवे
2.3.2 सड़क यातायात तन्त्र
2.3.3 वायु यातायात तंत्र
2.3.4 उर्जा क्षेत्र
2.3.5 मुख्यक्षेत्र तथा अवसंरचना सेवाओं में वृद्धि
2.4 बेरोजगारी
2.5 शिक्षा का स्तर
2.6 भारत में गरीबी
2.7 क्षेत्रीय विषमताएं
2.8 धनी और गरीब के बीच बढ़ती खाई
2.9 भुगतान शेष का असंतुलन
2.10 मुद्रा स्फीति
2.11 सारांश
2.12 शब्दावली
2.13 बोध प्रश्न
2.14 बोध प्रश्नों के उत्तर
2.15 स्वपरख प्रश्न
2.16 सन्दर्भ पुस्तकें

उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप इस योग्य हो सकेंगे कि –

- अवसंरचना की समस्या का वर्णन कर सकें।
- बेरोजगारी की समस्या का वर्णन कर सकें।
- अशिक्षा की समस्या का वर्णन कर सकें।
- धनी और गरीब के बीच बढ़ती खाई की समस्या का वर्णन कर सकें।

2.1 प्रस्तावना

सभी अर्थव्यवस्थाएं विकास के चाहे जिस स्तर पर हो, कुछ मूलभूत आर्थिक समस्याओं का सामना करती है, पर समस्याओं की प्रकृति तथा गहनता अलग–अलग स्तर में अलग होती है। उन देशों की आर्थिक समस्याएं जो विकसित स्थिति में हैं, अल्पविकसित देशों से अलग हैं। भारतीय अर्थव्यवस्था जो विकासशील अवस्था में हैं, स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् विकास पथ पर काफी आगे बढ़ा है, पर एक विचित्र तरह की समस्या से ग्रस्त हैं। पिछले साठ वर्षों मे भारत ने खाद्यान्न उत्पादन में आत्मनिर्भरता हासिल की है, उद्योगों का एक मजबूत आधार स्थापित किया है तथा निवेशकों के लिए एक आकर्षण के केन्द्र कं रूप में उभरा है। अर्थव्यवस्था की मजबूत, आधार देश को संयुक्त राज्य अमेरिका सब

प्राईम सकंट, यूरोपियन संकट तथा ग्रीस के संकट जैसे बड़े आर्थिक संकट को वहन करने में सहायता प्रदान किया। लेकिन साथ हीं साथ भारतीय अर्थव्यवस्था रोगों से मूक्त नहीं है। यह कुछ आधारभूत आर्थिक संकटों से जूझ रहा है। जिसमें शहरों की गलत योजना, अवसंरचना की कमी जो औद्योगिक विकास को बढ़ाते हैं एवं अधि मात्रा में अकुशल तथा अशिक्षित कार्यबल विदेशी मुद्रा पर अत्याधिक निर्भरता, प्रगति तथा विकास के लिए कमजोर राजनैतिक इच्छा शक्ति लालफीता शाही एवं कार्यान्वित सामाजिक कल्याण योजनाएं, धनी एवं गरीब के बीच बढ़ती खाई आदि। निम्नांकित वाक्याशों में देश द्वारा सामना की जा रही समस्याओं की चर्चा की जायेगी।

2.2 अवसंरचना

किसी देश में अवसंरचना की महता, मकान के नींव के समान है। जिस प्रकार नींव मजबूत होने पर मकान भी मजबूत होता है और उसकी उंचाई बढ़ने की उम्मीद रहती है। संरचना में यातायात, कृषि, जल प्रबंधन, दूर संचार, औद्योगिक एवं वाणिज्यिक विकास, उर्जा, पेट्रोलियम तथा प्राकृतिक गैस, घर तथा अन्य घटक जैसे खनन, आपदा प्रबंधन सेवायें और तकनीक संबंधित संरचना शामिल हैं। अपने देश में भूत में संरचनात्मक विकास के लिए अत्यधिक संसाधन के साथ बड़े प्रयास किये है, जिसके परिणामस्वरूपम संरचनत्मक आधार में ठोस विकास हुआ है। लेकिन सही योजना का आभाव एवं संरचनात्मक विकास की योजनाओं का खराब क्रियान्वयन के कारण देशे के संरचनात्मक विकास में संतोषजनक प्रगति नहीं हुई है। विभिन्न प्रकार की संरचना तथा उससे संबंधित समस्याओं का विस्तृत विवरण नीचे दिया जा रहा है।

2.3 यातायात व्यवस्था

यातायात अर्थव्यवस्था की एक महत्वपूर्ण जरूरत हैं। भारत में यातायात क्षेत्र की प्रगति की विशेषताओं को निम्नवत् संक्षेपित किया गया हैः

1. भारत जो 1950 क दशक में रेल प्रधान अर्थव्यवस्था हुआ करती थी, आज सड़क प्रधान अर्थव्यवस्था बन गई है। सड़क यातायात आज कुल अंतरशहरी माल ढुलाई का 60 प्रतिशत से अधिक तथा यात्री यातायात क 80 प्रतिशत से अधिक का योगदान दे रहा है।
2. इसी समयावधि में रेल माल ढुलाई प्रधान यातायात से यात्री यातायात प्रधान बन गया है।

   निम्नांकित वाक्यांश यातायात के विभिन्न तरीके तथा उनकी समस्याओं का विवरण प्रस्तुत कर रहा है।

2.3.1 रेलवे

भारतीय रेल देश में यातायात का एक प्रमुख स्त्रोत हैं, जिसे एशिया का प्रथम तथा दूनिया का दूसरा रेल जाल होने का गौरव प्राप्त है, जो एक प्रबंधन व्यवस्था में है। रूट की लम्बाई के हिसाब से भारतीय रेलवे व्यवस्था दूनिया की चौथी बड़ी व्यवस्था हैं, यू. एस. ए., रूस, तथा चीन ही केवल भारत से ंआगे हैं। भारतीय रेल का जाल 63,273 किलोमीटर में कार्य करते हुए प्रतिदिन 11,000 रेलगाड़ी संचालित करता है। जिसमें से 7000 यात्री गाड़ियां 13 मिलियन लोगों को उनक गणतव्य तक पंहुचाता है। भारतीय रेल आर्थिक विकास को तेज करने

में अहम भूमिका निभाया है तथा आज भी यह अर्थव्यवस्था के विकास के रूप में अहम हिस्सा बना हुआ है। निकट भूत में भारतीय रेल का तेज गति से विकास हुआ है, बहुत अधिक मात्रा में वैसे रेलवे लाईन को बदल दिया गया है जिनका जीवन काल समाप्त हो गया तथा साथ हीं उनके स्थान पर नये विजली लाईन, भाप तथा डीजल इंजन के स्थान पर विद्युत इंजन में बदलना, रेलगाड़ी एवं प्लेटफॉर्म पर यात्री सुविधाओं में वृद्धि, दिल्ली मेट्रो रेल की सुविधा भारतीय रेल व्यवस्था को और भी चमकदार बनाता है। यात्री सूरक्षा पर भी विशेष बल दिया गया है पर भारतीय रेल को दूनिया का सबंसे अच्छा रेलवे व्यवस्था बनने के लिए लम्बी दूरी तय करना है। कुछ चिन्ताजनक समस्याओं में, पुराने रेलवे लाइन, पहियों की खराब स्थिति, बिना टिकट यात्रा, रेलवे हादसा, रेलवे पर नक्सलियों द्वारा विभिन्न क्षेत्रों में आक्रमण, आधूनिक प्रबंधन का आभाव तकनीकी, प्रतिस्थापन की समस्या, रेल लाईन दोहरीकरण की समस्या, रेल में भीड़ की समस्या आदि इनमें से कुछ है।

रेलवे विकास की समस्या

रेलवे की आधारभूत समस्याओं की चर्चा निम्नांकित बिन्दुओं में की जा सकती हैः

(i) **अप्रर्याप्त नेटवर्क तथा संरचनात्मक क्षमताः** 1950–51 से 2007–08 की समयाविधि में रेलवे रूट में 18% की तथा रेलवे लाईन में 11% की वृद्धि हुई है, जबकि माल ढूलाई तथा यात्रियों की संख्या में 12% तथा 11% की क्रमशः वृद्धि दर्ज की गई है।

(ii) **गिरती बाजार हिस्सेदारीः** भारतीय रेल सड़क यातायात से कड़ी प्रतिस्पर्धा कर रहा है। रेलवे के स्वेत पत्र के अनुसार रेल यातायात का बाजार में हिस्सेदारी 89% , 1950–51 से घटकर 2007–08 में 30% हो गया है। फिर भी भारी वस्तुओं जैसे, लौह अयस्क, रासायनिक खाद आदि की ढूलाई में अपनी प्रधानता बनाये हुये है। रेलवे प्रतिस्पर्धा प्रशुल्क पर बेहतर सेवा प्रदान करने के लिए केन्द्रीत रणनीति अपनाना होगा।

(iii) **सलीब आर्थिक साहायताः** भारत में माल ढुलाई की दर कम यात्री किराया दर को तिर्यक सहायता प्रदान करती है। यात्री किराया की दर इतनी कम है कि यात्री गाड़ियों का संचालन में रेलवे को नुकसान उठाना पड़ता है। यानि संचालन में हानि की मात्रा 2008–09 में 13958 करोड़ के बराबर थी। इस हानि की भरपाई के लिए भारतीय रेल माल ढूलाई की दर को बढ़ाता है, जिसके कारण वस्तुओं की कीमतें बढ़ जाती है और अर्थव्यवस्था पर अवस्फीतिक दबाव बनाती है।

(iv) **कोष तथा लागत से अधिक खर्च की समस्याः** नये प्रयोजनाओं को शुरू मरने का सत्त दबाव, ज्यादातर नये रेलवे लाईन बनाने के लिए अत्याधिक कोष की आवश्यकता होती हैं, पर इनमें ज्यादातर प्रयोजनाएं कोष की कमी के कारण आवश्यक समय पर पूरी नहीं होती है जिसके कारण लागत में और वृद्धि होती है और प्रयोजना का वित्तीय प्रबंधन मुश्किल हो जाता है।

(v) **पुरानी तकनीकः** विद्युत तथा डीजल दोनों में ही भारतीय रेल पुरानी तकनीक की समस्या से जूझ रहा है। भारतीय रेल के लिए यह आवश्यक है कि अपने जरूरत के अनुसार तकनीकी का विकास करे जो भारतीय

अर्थव्यवस्था के लिए उपयुक्त हो ना कि बाहर से आयातित तकनीकि पर निर्भर रहे।

भारतीय रेल के समक्ष सबसे बड़ी चुनौती 19,000 किलो मीटर से ज्यादा उंच घनत्व वाले पटरियों को पूर्णनवा करने की है, जो सभी प्रमुख बंदरगाहों तथा चार महानगरों को जोड़ता है, जो 64000 किलोमीटर दूरी के कुल पटरी में 80% यातायात के दबाव का वहन करता है। इसके अलावा 1,28,000 रेल पूलों में से 11.250 रेलवे पूल को अधिक यातायात दबाव तथा गति को वहन करने लायक बनाना है। अभी हाल मे ही दो समीतियां जो रेलवे के पुर्न उत्थान के लिए अगले पांच वर्ष में 6,60,000 करोड़ निवेश करने की आवश्यकता है। रेलवे सुरक्षा के लिए बनी अनील काकोदकर समिति की संस्तुती है कि अगले पांच वर्ष में 1,00,000 करोड़ निवेश होना चाहिए। रेलवे आधुनिकीकरण के लिए बनी सैम पिदोद्दा पैनल ने इसी समय अन्तराल में निवेश को 5,60,000 करोड़ करने की संस्तुति की है। भारत में रेलवे राष्ट्र जीवन रेखा है तथा यातायात व्यवस्था की रीढ़ है।

2.3.2 सड़क यातायात तन्त्र

रेलवे के बाद भारत में यातायात का दूसरा सबसे महत्वपूर्ण माध्यम सड़क यातायात है। ये देश के लगभग 90 प्रतिशत यात्री यातायात तथा 65 प्रतिशत माल ढूलाई के दबाव का वहन करता है। भारत मे राजमार्गों का घनत्व 0.66 किमी. प्रति 59 वर्ग किलोमीटर क्षेत्रफल के बराबर है, जो लगभग संयुक्त राज्य अमेरिका (0.65) के बराबर है। भारतीय राजमार्ग का घनत्व चीन (0.16) तथा ब्राजील (0.20) से अधिक है। जबकि, भारत में सड़क मार्ग यातायात के सबसे पसंदीदा यातायात व्यवस्था हैं, फिर भी इसकी क्षमता समाज के जरूरतों को पूरा करने लायक नहीं है। 1990 के बाद से भारत में सड़क मार्ग की लम्बाई तथा गुणवता में अत्याधिक प्रगति हुआं है। परन्तु अभी भी यह कई तरह की समस्याओं जैसे ज्यादातर राष्ट्रीय राजमार्ग या दो एकल पथ या दोहरी पथ है, जो आवश्यक क्षमता होने चाहिए, से कम है। भारत का लगभग एक चौथाई सड़क राजमार्ग जाम रिकरेंट, गति को 30–40 किमी / घंटा कम काम करता है। भारतीय सड़क मार्ग पर जाम, गाड़ियों की इंधन उपयोग क्षमता को कम कर देता है, गाड़ियों को नुकसान पहुंचाता है साथ हीं पर्यावरण को भी प्रभावित करता है। सड़क यातायात एवं राष्ट्रीय राज मार्ग मंत्रालय के अनुसार लगभग 22 प्रतिशत राष्ट्रीय राजमार्ग या तो एकल पथ / माध्यमिक पथ के हैं जबकि लगभग 53 प्रतिशत दोहरे पथ के तथा लगभग 25 प्रतिशत है तथा उनका रख रखाव अल्प वितीयन के अन्तर्गत है जिसके परिणाम स्वरूप केवल एक–तिहाई रख रखाव की जरूरतों को पूरा किया जा रहा है। इसके कारण सड़कों की स्थिति खराब हो रही है तथा उपभोक्ताओं को अधिक यातायात खर्च वहन करना पड़ रहा है। भारत में सड़क यातायात आठवीं सबसे अधिक सड़क अनिवार्यता दर रखता है। जहां तक ग्रामीण क्षेत्रों का सड़क मार्ग से संबंध है। भारत का लगभग का लगभग 70 प्रतिशत जनसंख्या ग्रामीण क्षेत्र में निवास करती है। भारत में ग्रामीण सड़क मार्गों का विकास हुआ है, लेकिन आज भी लगभग 40 प्रतिशत भारतीय गांव बारिश के मौसम में अलग–थलग पड़ जाते हैं, क्योंकि वे पक्की सड़कों से जूड़े नहीं हैं। यह समस्या उतर तथा उतर पूर्व के

राज्यों में अत्याधिक विकट है, जो देश के प्रमुख आर्थिक केन्द्रों से सही सड़क मार्ग से नहीं जुड़े है। इससे भी महत्वपूर्ण है कि जहां भी सड़क मार्गों का विकास हो रहा है, वह निजि तथा सार्वजनिक साझेदारी मॉडल है, जो निजि क्षेत्र को टोल वसुलने की अनुमति देता है। जो अत्याधिक टोल शुल्क, वसुलते हैं, कुछ तो कार्य शुरू होने के पहले से वसूलना शुरू करते हैं और कुल निवेश तथा लाभ पूरा होने के पश्चात् भी वसूलते रहते हैं।

2.3.3 वायु यातायात तंत्र

रेलवे तथा सड़क यातायात के अलावा, नागरिक उड्डयन भी आर्थिक विकास में महत्वपूर्ण भूमिका अदा करता है, विशेषतः आज के वैश्विक संसार में, सरकार द्वारा वायु यातायात व्यवस्था को सुदृढ़ करने में 1991 के सुधार के बाद से काफी प्रयास किया गया है। इन्दिरा गांधी हवाई अड्डा का उन्नयन कोलकता तथा चेन्नई हवाई अड्डे का उन्नयन, साथ हीं साथ नये सात्रिक का निर्माण आदि प्रगति पर है। अन्य नॉन मेट्रो 18 हवाई अड्डे विभिन्न उन्नयन कार्य जैसे सात्रिक भवनों का विस्तार एप्रन, टैक्सी के रास्ते और हवाईपूल का निर्माण शुरू किया गया है, वायु यातायात सेवा को बढ़ावा देने के लिए भारतीय विमानपतन् प्राधिकरण ने नया ए.टी.एस. ऑदोमेसन व्यवस्था चेन्नई में शुरू किया है। सरकार ने भारतीय विमानपतन् प्राधिकरण को 378.0 करोड़ रू. का एकमूश्त ग्रांट–इन–एड जी.पी.एस. एडेड जी.ई.ओ. ऑगमेंटेंड नेवीगेशन (GAGAN) प्रायोजना को दिया है। इन्दिरा गांधी हवाई अड्डा दिल्ली को वर्तमान काग्रो टर्मिनल के उन्नयन तथा ग्रीनफील्ड काग्रों टर्मिनल के निर्माण को शुरू किया गया है। मुबंई हवाई अडड्े पर विमानपतन् विकास प्रयोजना के साथ रनवे का उन्नयन 09/27 पूरा हो चुका है। बढ़ते हुए यातायात दबाव को पूरा करने के लिए टर्मिनल भवन का विस्तार तथ एप्रोन के कार्य को बैंगलो हवाई अड्डे पर शुरू किया गया है। सरकार ने सिद्धांतः पूडूचेरी के कारीकाल तथा महाराष्ट्र के श्रीडी में ग्रीनफील्ड हवाई अडड्ा बनाने की अनुमति दे दी है।

भारत में वायु यातायात आज तेजी से बढ़ रहा है, और पिछले सात साल में 18.5% की औसत वृद्धि दर दर्ज किया है। भारतीय विमान पत्तन द्वारा 90.5 मिलियन घरेलू यात्री को जनवरी– नवम्बर 2010 में सूविधा प्रदान की गई, जो जनवरी–नवम्बर 2011 में बढ़कर 108.1 मिलियन हो गया, जो 19.4% की वृद्धि प्रदर्शित करता हैं। भारतीय हवाई अड्डों द्वारा अर्न्तराष्ट्रीय यात्री तथा सामान यातायात के प्रबंधन में जनवरी नवम्बर 2011 में 7.7% की वृद्धि हुई है, जिसमें 33. 6 मिलियन यात्री और 1.4 मिलियन मैट्रिक टन काग्रों का परिवहन हुआ है। घरेलू समान ढुलाई जनवरी–नवम्बर 2011 तक 0.75 मैट्रिक टन रहा है, जो पिछले वर्ष के बराबर था।

सारणी 2.1: यातायात क्षेत्र के आंकड़े

मदें	इकाई	2009 के अनुसार
सड़क की लम्बाई	**Km.**	**3,516,452**
मुख्य सड़क	Km.	666,452
खड़ौजा सड़क	%	47.3

पक्का सड़क	%	61
सड़क घनत्व	km/1,000 sq. km.	1115
रेलवे पटरी की लम्बाई	***Km.***	***63,327***
बंदरगाह की संख्या		***199***
बदलने में लगा समय	दिन	3
विमानपत्तन्		***125***
अन्तर्राष्ट्रीय		11

2.3.4 उर्जा क्षेत्र

उर्जा किसी देश के आर्थिक विकास की रीढ़ होती है। किसी देश को कृषि विकास, विनिर्माण क्षेत्र तथा यहां तक सेवा क्षेत्र का विकास भी उर्जा उद्योग की क्षमता पर निर्भर करता है। भारत विश्व में उर्जा सृजन की क्षमता वाला पांचवा सबसे बड़ा देश है, जिसकी स्थापित क्षमता 30 सितम्बर 2009 तक 152 वॉट जौ वैश्वीक उर्जा सृजन का 4 प्रतिशत था। विश्व के चार प्रमुख देश यू. एस. ए., जापान, चीन, रूस वैश्वीक उर्जा सृजन को लगभग आधे का उपयोग करते हैं। भारत में 2008–09 में औसत प्रतिव्यक्ति विद्युत की खपत 704 किलोवॉट प्रतिघंटा अनुमानित की गई है, जबकि वैश्वीक औसत 2300 किलोवाट प्रतिघंटा हैं। इसके अलावा भारत में बिजली कटौती दैनिक प्रकृति है जिससे विकसित स्थान दिल्ली, मुबंई, चेन्नई, बैंगलोर भी अछूते नहीं है। भारत में कोई भी सम्मानित व्यापार या कारखाना के लिए डीजल जेनेरेटर विद्युत कटौती के समय सत्त विद्युत आपूर्ति के लिए अनिवार्य है। कटौती कुछ समय तक हीं सीमित नहीं हैं बल्कि घंटो तक कभी–कभी तो कई घंटों तक कई जगहों पर अंधेरा बना रहता है। औद्योगिक मशीन तथा संगणक के चलाने के अलावा कार्यलय के कार्य हेतु भी वातानुकूलित मशीन की इस प्रचण्ड गर्मी वाले देश में आवश्यक हैं। साथ हीं सेवा उपलब्ध कराने वालों को उर्जा की वैकल्पिक व्यवस्था करना अनिवार्य है।

किसी अच्छे होटल में लोग सबसे पहले जेनेरेटर की उपलब्धता को जांचते हैं, लेकिन यह आवश्यकता भारत में निर्माण तथा क्रियान्वयन लागत में वृद्धि कर देता है। क्योंकि सरकार संरचानत्मक लागत को निवेशकों की तरफ पास कर देती है, जिससे जेनेरेटर लागत सम्मिलित है। कुछ औद्योगिक पार्क तथा शोध पार्क सतत् उर्जा प्रदान करते हैं, जो छोटे कम्पनियों के लिए बड़ा पर्क का काम करती है, क्योंकि इसके रख रखाव पर लागत पर्क के लिए कम्पनी को कुछ प्रिमियम देना होता है। जो बड़े कारखानों के लिए उचित नहीं है। भारत में जेनेरेटर के साथ कैसे कार्य करना है, तथा कारखाने के स्थान पर जेनेरेटर मैकेनिक कैसे उपलब्ध हो भारत में कारखाने या कार्यालय खोलने के लिए आवश्यक है।

भारत सरकार राष्ट्रीय पावर ग्रीड का अन्नयन के लिए प्रतिबंध है। अतंतः मुद्रा केवल कुछ उत्पादन तक सीमित नहीं हैं पर उन्नत प्रबंधन, जो वर्तमान में हाई टेक कारखाना तथा निवास क्षेत्र एक जैसे प्रभावित है।

2.3.5 मुख्यक्षेत्र तथा अवसंरचना सेवाओं में वृद्धि

भारत में मुख्य क्षेत्र के उद्योग तथा संरचात्मक सेवा का विकास संतोषजनक नहीं है। बहुत सारी समस्यायें हैं जो इस क्षेत्र के विकास में बाधा का कार्य कर रहें है। उदाहरण स्वरूप उर्जा क्षेत्र कोयले की अनुपलब्धता, अन्य मुख्य उद्योग एवं उचित मात्रा में उर्जा की अनुपलब्धता से ग्रसित हैं। सारणी 2.2 मुख्य क्षेत्र में वृद्धि तथा संरचनात्मक सेवा में साल के वृद्वि के आंकड़े प्रस्तुत किये जा रहे हैं।

सारणी 2.2: मुख्य उद्योगों में वृद्धि तथा संरचनात्मक सेवायें (प्रतिशत में)

कम संख्या	क्षेत्र	2007–08	2008–09	2009–10	2010–11	2011–12 (अप्रैल–दिस.)
1.	उर्जा	6.3	2.5	6.8	5.7	9.3
2.	कोयला	6.0	8.2	8.0	0.0	–2.7
3.	विनिर्मित स्टील	6.8	13.2	3.2	9.6	5.7
4.	खाद्य	–8.6	–2.6	13.2	1.0	–0.5
5.	सीमेंट	7.8	7.6	10.1	4.3	5.1
6.	पेट्रोलियम					
	(क) क्रूड तेल	0.4	–1.8	0.5	11.9	1.9
	(ख) रिफाइनरी	6.5	3.0	–0.4	3.0	4.1
	(ग) प्राकृतिक गैस	2.1	1.4	44.8	9.9	–8.8
7.	रेलवे राजस्व, आय, स्त्रोत यातायात	9.0	4.9	6.6	3.8	4.7
8.	महत्वपूर्ण बंदरगाह पर कारगो प्रबंधन	12.0	2.2	5.7	1.6	0.4
9.	नागरिक उड्डयन					
	(क) निर्यात कार्गो पबंधन	7.5	3.4	10.4	13.4	–1.1
	(ख) आयात कार्गो प्रबंधन	19.7	–5.7	7.9	20.6	1.4
	(ग) अंर्तराष्ट्रीय टर्मिनल पर यात्री प्रबंधन	11.9	3.8	5.7	11.5	7.2
	(घ) यात्री घरेलू सिरा	20.6	–12.1	14.5	16.1	17.5

	का प्रबंधन					
10.	दूर संचार					
	सेल फोन कनेक्शन	38.3	80.9	47.3	18.0	–51.0
11.	सड़क उच्च मार्गों का उन्नयन*					
	(क) एन.एच. ए.आई.	164.6	30.9	214	–33.3	8.9
	(ख) एन.एच. (ओ) बी.आर. डी.बी.	12.5	17.3	4.0	–6.8	–36.5

स्त्रोतः सांख्यिकी एवं कार्यक्रम कियान्वयन मंत्रालय (MOSPI)

* यह दो मार्गों एवं चार में चौड़ीकरण तथा कमजोर सड़क की मरम्मत को समाहित करता है।

नोटः एन.एच.(ओ) अर्थात राष्ट्रीय उच्च मार्ग संगठन और बी.आर.डी.बी. (सीमा सूरक्षा विकास बोर्ड)।

2.4 बेरोजगारी

बेरोजगारी से आशय वे लोग जो काम करने योग्य हैं तथा काम करने को इच्छुक हैं पर बिना रोजगार के हैं। केन्ज के अनुसार, विकसित अर्थव्यवस्थाओं में बेरोजगारी का कारण प्रभावी मांग का न होना है, जबकि भारत जैसे विकासशील देशों में इसका कारण विल्कुल अलग है। विकासशील देशों में बेरोजगारी और महंगाई एक साथ चलती है। नीचे के सारणी में प्रतिशत के रूप में आंकडें पिछले नौ साल में भारतीय युवाओं की बेरोजगारी के आंकड़े प्रदर्शित कर रहें हैः

सारणी में दिये गये आंकड़े अमेरिका के केन्द्रीय खूफिया विभाग के वेबसाईट से लिया गया है। यह आंकड़े सूचित करते हैं कि भारत में बेरोजगारी की समस्या हमेशा से संकंटपूर्ण रहा है। जो 10 प्रतिशत के बरीब पूरे साल रहता है। 2009 तथा 2010 में बेरोजगारी और भी नाजूक हो गई क्योंकि यह 10 प्रतिशत से उपर चला गया था।

वर्ष	**बेरोजगार युवा का प्रतिशत**
2002	8.8
2003	9.5
2004	9.2
2005	8.9
2006	7.8
2007	7.2
2008	6.8
2009	10.7
2010	10.8

स्त्रोतः **सी.आई.ए. विश्व फैक्टबूक**

श्रम ब्यूरो के सर्वेक्षण के अनुसार 2010 में कुल बेरोजगार युवाओं की संख्या 40 मिलियन था। पुरूषों की बेरोजगारी 8 प्रतिशत तथा महिला युवतियों की बेरोजगारी 14.6 प्रतिशत विद्यमान है। मनरेगा (महात्मा गांधी राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारंटी अधिनियम) जा जो सरकार प्रत्येक वर्ष 100 दिन की रोजगार देने की गांरटी के साथ बेरोजगार युवाओं के लिये बनाया गया है। यह ऐक्ट बेरोजगारी की समस्या को दूर करने में विशेष कर ग्रामीण क्षेत्र में अच्छा काम कर रहा है। इसके अलावा इसने ग्रामीण क्षेत्र से शहरी क्षेत्र की ओर पलायन पर भी अंकुश लगाया है।

2.5 शिक्षा का स्तर

सामाज के विकास के स्तर को मापने का सबसे महत्वपूर्ण मापक शिक्षा की दर है। जनगणना की परिभाषा के अनुसार सात साल या उसके उपर का कोई व्यक्ति जो किसी भी भाषा में पढ़ना व लिखना जानता है, भारत में शिक्षित माना जाता है। भारत मे शिक्षा दर का कम होना, बेरोजगारी का एक मूख्य कारण माना जाता है। सामाज में शिक्षा का स्तर बढ़ाने के लिए सरकार ने कुछ साल पहले दो योजना 'मध्याह्न भोजन योजना' तथा सर्व शिक्षा अभियान लाई। इस दो योजनाओं के अलावा भारत सरकार ने अनेक अन्य उपाय किये हैं शिक्षा के स्तर को बढ़ाने के लिए दोनों ग्रामीण क्षेत्र तथा शहरी क्षेत्र में किया है। राज्य सरकारों को यह निर्देशित किया गया है कि ग्रामीण क्षेत्र में जहां गरीबों की संख्या अधिक हैं, वैसे जिलों में शिक्षा के स्तर को बढ़ाना सुनिश्चित किया जाय।

2011 के जनगणना के अनुसार भारत में शिक्षा का स्तर में लगभग 9% की वृद्धि हुई है। यह 2001 में 65.38% से बढ़कर 2011 में 74.04% हो गया है, जो पिछले 10 वर्ष में 9% की वृद्धि दर्शा रहा है। जिसमें पुरूष साक्षरता दर 82.14% और महिला साक्षरता दर 65.46% है। 93.9% साक्षरता दर के साथ केरल सबसे शीर्ष पर है, जबकि लक्ष्यद्वीप और मिजोरम 92.3% तथा 91.06% के साथ क्रमशः दूसरे और तीसरे स्थान पर है। बिहार 63.08% साक्षरता दर के साथ भारत में सबसे निचले पायदान पर है।

पिछले दस साल में भारत के साक्षरता दर में महत्वपूर्ण वृद्धि हुई है। नीचे के सारणी में राज्यों की साक्षरता दर को श्रेणीबद्व किया गया है।

सारणी 2.3 भारत में राज्यों की साक्षरता दर की श्रेणी

कम संख्या	राज्य/ केन्द्रशासित राज्य	साक्षरता दर (जनगणना 2011)	पुरूष साक्षरता दर (जनगणना 2011)	महिला साक्षरता दर (जनगणना 2011)
1	अण्डमान निकोबार द्वीप समूह	86.3%	90.1%	81.8%
2	आंध्र प्रदेश	67.7%	75.6%	59.7%
3	अरूणाचल प्रदेश	67.0%	73.7%	59.6%
4	असम	73.2%	78.8%	67.3%

5	बिहार	63.8%	73.5%	53.3%
6	चण्डीगढ़	86.4%	90.5%	81.4%
7	छतीसगढ़	71.0%	81.5%	60.6%
8	दादर नगर हवेली	77.7%	86.5%	65.9%
9	दमन और द्वीव	87.1%	91.5%	79.6%
10	दिल्ली	86.3%	91.0%	80.9%
11	गोवा	87.4%	92.8%	81.8%
12	गुजरात	79.3%	87.2%	70.7%
13	हरियाणा	76.6%	85.4%	66.8%
14	हिमाचल प्रदेश	83.8%	90.8%	76.6%
15	जम्मू और कश्मीर	68.7%	78.3%	58.0%
16	झारखण्ड	67.6%	78.5%	56.2%
17	कर्नाटक	75.6%	82.8%	68.1%
18	केरल	93.9%	96.0%	92.0%
19	लक्ष्यद्वीप	92.3%	96.1%	88.2%
20	मध्य प्रदेश	70.6%	80.5%	60.0%
21	महाराष्ट्र	82.9%	89.8%	75.5%
22	मणिपूर	79.8%	86.5%	73.2%
23	मेघालय	75.5%	77.2%	73.8%
24	मिजोरम	91.6%	93.7%	89.4%
25	नागालैंड	80.1%	83.3%	76.7%
26	उड़िसा	73.5%	82.4%	64.4%
27	पूडुचेरी	86.5%	92.1%	81.2%
28	पंजाब	76.7%	81.5%	71.3%
29	राजस्थान	67.1%	80.5%	52.7%
30	सिक्किम	82.2%	87.3%	76.4%
31	तमिलनाडू	80.3%	86.8%	73.9%
32	त्रिपूरा	87.8%	92.2%	83.1%
33	उतर प्रदेश	69.7%	79.2%	59.3%

34	उतराखण्ड	79.6%	88.3%	70.7%
35	पश्चिम बंगाल	77.1%	82.7%	71.2%
-	**भारत**	74.04%	82.14%	65.46%

स्त्रोतः भारत की जनगणना, 2011

2.6 भारत में गरीबी

गरीबी एक ऐसा सामाजिक परिघटना/तथ्य हैं जिसमें सामाज के कुछ लोगों के पास इतना भी संसाधन नहीं होता है कि वे अपनी आधारभूत जरूरतों को पूरा कर सकें। गरीबी विकसित देशों मे भी विद्यमान है पर यह समस्या अल्प विकसित तथा विकासशील देशों में अधि विकट हैं। विभिन्न प्राधिकरणों में गरीबी को अलग–2 तरीके से परिभाषित किये हैं। न्यूनतम आवश्यकता और प्रभावी उपभोग मांग पर टास्क फोर्स के अनुसार गरीबी को प्रतिव्यक्ति कैलोरी खपत क अनुसार किया गया है। इस टास्क फोर्स के अनुसार, कोई व्यक्ति जो शहरी क्षेत्र में 2400 कैलोरी तथा ग्रामीण क्षेत्र में 2100 प्राप्त करने में प्राप्त करने में असफल हैं, उसी गरीब कहेगें। भारतीय योजना आयोग के अनुसार व्यक्ति जो 28.65 रूपये शहरी क्षेत्र में तथा 22.42 रू. ग्रामीण क्षेत्र में अर्जित करता है, तो वह गरीब नहीं हैं। भारतीय योजना आयोग के अनुसार भारत में 2009–10 में 34.47 करोड़ लोग जो 29.8 प्रतिशत जनसंख्या के बराबर, गरीबी रेखा नीचे हैं। गरीबी रेखा के नीचे रह रहे, उंची जनसंख्या का अनुपात चिन्ता का प्रश्न हैं। पर इनके साथ कुछ नाजूक आयाम जुड़े हैं। एक बहुत हीं कष्टदायी स्थिति है कि उतर पूर्व भारतीय राज्यों असम, मेघालय, मणिपूर, मिजोरम तथा नागालैंड में गरीबी बढ़ी है। यहां तक बड़े राज्य बिहार, छतीसगढ़ और उतर प्रदेश में भी गरीबी अनुपात में एक मामूली कमी आयी है, विशेष रूप से ग्रामीण क्षेत्र में। हिमाचल प्रदेश, मध्य प्रदेश, महाराष्ट्र, उड़िसा, सिक्किम, तमिलनाडू, कर्नाटक तथा उतराखण्ड में गरीबी में 10 प्रतिशत की कमी देखी गई है।

बिहार जैसे राज्य जहां गरीबी दर 53.5 प्रतिशत, छतीसगढ़ 48.7 प्रतिशत, मणिपूर 47.1 प्रतिशत, झारखण्ड 39.1 प्रतिशत, असम 37.9 प्रतिशत और उतर प्रदेश 37.7 प्रतिशत सबसे अधिक प्रभावित है। ग्रामीण सामाजिक समूहों में सबसे अधि गरीबी अनुसूचित जन जाति 47.4 प्रतिशत, उसके बाद अनुसूचित जाति 42.3 प्रतिशत, अन्य पिछड़ी जाति 31.9 प्रतिशत तथा अन्य वर्ग में 33.8 प्रतिशत दर्ज की गई है।

बिहार तथा छतीसगढ़ के ग्रामीण क्षेत्रों में लगभग दो तिहाई अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति की आबादी गरीब है, जबकि मणिपुर, उड़िसा, उतर प्रदेश 50 प्रतिशत से अधिक लोग गरीबी रेखा के नीचे है।

शहरी क्षेत्र में 34.1 प्रतिशत अनुसूचित जाति, 30.4 प्रतिशत अनुसूचित जनजाति और 24.3 प्रतिशत अन्य पिछड़ी जाति के लोग गरीबी की श्रेणी में है जबकि अन्य वर्ग के 20.9 प्रतिशत गरीबी रेखा के नीचे हैं।

2.7 क्षेत्रीय विषमताएं

भारत में एक क्षेत्रीय द्वैत पाया जाता है। ऐसी स्थिति हमेशा खतरा उत्पन्न करती है जब एक क्षेत्र दूसरे से तेजी से विकास करता है। यह राष्ट्रीय अखण्डता के लिए खतरा उत्पन्न करता है तथा सबसे बड़ी सामाजिक–राजनैतिक

समस्या के रूप में देखी जाती है। यह क्षेत्रीय विषमता कही जाती है। राज्य की आय की वृद्धि दर तथा प्रतिव्यक्ति आय अन्तर काफी अधिक है। एक तरफ जहां पंजाब और महाराष्ट्र जैसे धनी राज्य हैं, जिनकी प्रतिव्यक्ति आय वर्तमान मूल्य पर 19000 रू. अधिक है, वहीं दूसरी तरफ बिहार, जहां प्रतिव्यक्ति आय क्रमशः 4700 रू. और 6800 रू. है। गुजरात, महाराष्ट्र और आंध्रप्रदेश जैसे पिश्चिमी और दक्षिणी राज्य में प्रत्यक्ष विदेशी निवेश अन्य राज्य से अधिक है, तथा तकनीकी रूप से ये राज्य अन्य राज्यों से अधिक विकसित है। सभी क्षेत्र में क्षेत्रीय विषमता हैं, जैस महाराष्ट्र, तमिलनाडू जैस औद्योगिक रूप से विकसित राज्य कुल और औद्योगिक निर्गत में 44 प्रतिशत योगदान करते है जबकि इनकी शहरी जनसंख्या 39 प्रतिशत और 34 प्रतिशत क्रमशः है। जबकि, असम जैसा गरीब राज्य में शहरी जनसंख्या 9 प्रतिशत मात्र है। केरल में शिशू मृत्यु दर 12 प्रति एक हजार जीवित बच्चे हैं जबकि उड़िसा में 96 प्रति एक हजार जीवित बच्चे है।

2.8 धनी और गरीब के बीच बढ़ती खाई

समाज में गरीब और अमीर वर्ग के बीच खाई काफी चौड़ी है। यह आय तथा धन वितरण में समानता कहीं जाती है। विशेषज्ञों के अनुसार उपर आय समूह के 10 प्रतिशत लोगों का राष्ट्रीय उत्पाद में 45 प्रतिशत का योगदान है, जबकि नीचे आय समूह के 10 प्रतिशत लोगों का राष्ट्रीय उत्पाद में 1.9 प्रतिशत का योगदान है। यहां तक की पंचवर्षीय योजनाओं का लाभ भी समाज के धनी वर्ग को जाता है, औद्योगिकीकरण तथा कृषि विकास छोटे व 'सीमान्त किसानों' के बजाय बड़े किसानो तथा पूंजी पतियों को अधिक फायदा हुआ है। यहां तक की आर्थिक सहायता का लाभ भी बड़े किसानो के पास जाता है, क्योंकि उनके पास बड़े खेत होते हैं। जिससे वे नये तकनीकी को अपना सकते हैं। जबकि 77 प्रतिशत किसान छोटे तथा मझौले हैं। ग्रामीण क्षेत्र में धनी और गरीब के बीच खाई और चौड़ी होती जा रही है। सामाज के उपरी वर्ग के पास कुल सम्पति का 80 प्रतिशत है, जबकि सामाज के निचले वर्ग के पास मात्रा 2 प्रतिशत सम्पति है।

2.9 भुगतान शेष का असंतुलन

भुगतान शेष किसी देश द्वारा किये गये आयात तथा निर्यात का लेखा जोखा है। भारत के संदर्भ में भुगतान शेष हमेशा घाटे का रहा है। हमारा विश्व व्यापार में निर्यात में हिस्सेदारी केवल 1 प्रतिशत है जबकि आयात प्रत्येक वर्ष लगातार बढ़ रहा है। भुगतान शेष का असंतुलन हमारी अर्थव्यवस्था के कई समस्याओं का कारण है। निर्यात को बढ़ाने की आवश्यकता है जिससे भुगतान शेष संतुलन में रह सके।

2.10 मुद्रा स्फीति

वस्तुओं और सेवाओं के मूल्य में लगातार वृद्धि मुद्रास्फीति कहलाती है। भारतीय अर्थव्यवस्था सदैव मुद्रा स्फीति से प्रभावित रही है, कभी–कभी यह कम चिंताजनक होती है लेकिन अधिकतर समय यह ज्यादा चिंताजनक होती है। मुद्रा स्फीति की उच्च दर ने केवल आम जनता के दो जून की रोटी जुटाने में समस्या पैदा करती है बल्कि यह देश के आर्थिक विकास की दर में भी बाधक होती है। मुद्रा स्फीति का मुख्य कारण मुद्रा पूर्ति में वृद्धि के साथ–साथ घाटे की वित व्यवस्था की तकनीक और भुगतान शेष का असंतुलन हैं। वर्तमान में भारतीय

अर्थव्यवस्था डालर की तुलना में रूपये के लगातार गिरते हुए मूल्यस्तर की गंभीर समस्या से जूझ रहीं है। कच्चे तेल के बढ़ते हुए मूल्य भी अन्य कारक के रूप में है जो मुद्रा स्फीति की वृद्धि में मुख्य भूमिका निभा रहे है।

यदि हम अपने देश के सम्पूर्ण आर्थिक विकास के स्तर को देखें तो विश्व बैंक द्वारा जारी मानव विकास सूचकांक रिर्पोट के अनुसार भारत का 127वां (कुल 177 देशों में) स्थान है। भारतीय अर्थव्यवस्था एक विकासशील अर्थव्यवस्था है जिसमें लोगों पिछड़ापन कृषि की निम्न उत्पादकता, निम्न जीवन स्तर, कमजोर औद्योगिक क्षेत्र और आधारभूत संरचना की कमी तथा सामाजिक समस्याओं जैसे गरीबी, असमानता, भ्रष्टाचार, असमता, उत्पादन में कमी, जल का अभाव, बिजली का अभाव, साफ–सफाई की खराब स्थिति आदि विकास को बुरी तरह प्रभावित कर रहे हैं।

भारतीय अर्थव्यवस्था मुख्य रूप से कृषि आधारित अर्थव्यवस्था हैं, जहां लगभग 40 प्रतिशत लोग कृषि पर निर्भर है, जबकि अमेरिका, कनाडा, इंग्लैंड आदि देशों में केवल उसे 4 प्रतिशत लोग हीं कृषि व्यवसाय में लगे हुए है। कृषि प्राकृतिक कारकों पर निर्भर है, सिंचाई एवं अन्य पुरातन तकनीक कृषि में प्रयुक्त होती है। साख का अभाव, भण्डारण अक्षमता और अक्षम परिवहन तंत्र आर्थिक विकास को बुरी तरह प्रभावित कर रहे हैं।

29 प्रतिशत लोग खराब चिकित्सकीय सुविधा और आधारभूत संरचना की वजह से गरीबी रेखा के नीचे जीवन यापन कर रहे हैं। यद्यपि पिछले कुछ वर्षों में भारत में संस्थागत साख में वृद्धि हुई है, लेकिन ग्रामीण भारत में अभी भी व्यवस्थित वितीय संस्थाओं से साख की आवश्यकताओं की पूर्ति में कठिनाईयां पाई जा रहीं है। ग्रामीण भारत में अभी भी लोग अपनी वितीय आवश्यकताओं के लिए साहूकारों पर निर्भर हे जो बहुत ज्यादा व्याजदर वसूल करते हैं।

2.11 सारांश

भारत अनेक प्रकार की आर्थिक समस्याओं से ग्रसित है। पिछले 60 वर्षों से ज्यादा के व्यवस्थित प्रयासों ने भारत में एक मजबूत अर्थव्यवस्था के आधार तैयार करने में सफलता पाई है, परन्तु अभी भी इसे काफी आगे तक जाना है। भारतीय रेलवे भीड़ग्रस्त, सुरक्षा मानक से कम है। रेल के अन्दर तथा प्लेटफॉर्म पर उपलब्ध यात्री सेवायें लोगों को परेशान करती है। उड्डयन उद्योग (वायु यातायात) डमाडोल स्थिति में हैं, उदाहरण के लिए एयर इंडिया और किंगफिशर अपन अस्तित्व के लिए संर्घष कर रही है। सड़क विकास की कार्ययोजना में अभाव के वजह से सड़क परिवहन समस्याओं से ग्रसित है। सड़कों का संकरा होना, अक्षम यातायात प्रबंधन यातायात में जाम की समस्या को हमेशा बढ़ावा देता है। भारत में राष्ट्रीय राजमार्गों पर वाहनों की औसत गति 30 से 40 किलोमीटर प्रतिघंटा की हैं। इन सबके अतिरिक्त तीव्र मुद्रा स्फीति की दर, बेरोजगारी की उच्च दर गरीबी, गरीब और अमीर के बीच बढ़ता हुआ अन्तर, कमजोर औद्योगिक आधार, आवश्यक वस्तुओं की कमी आदि, देश के आर्थिक विकास में सबसे बड़े बाधक हैं।

उपरोक्त समस्याओं से निपटने के लिए भारत को एक मजबूत राजनीतिक मतैक्य की आवश्यकता है।

2.12 शब्दावली

अवसंरचनाः से आशय समाज या उद्यम के संचालन के लिए आवश्यक बुनियादी भौतिक और संगठनात्मक ढांचे और सुविधाओं से हैं।

बेरोजगारीः से आशय वे लोग जो काम करने योग्य हैं तथा काम करने को इच्छुक हैं पर बिना रोजगार के हैं।

गरीबीः एक ऐसी सामाजिक परिघटना हैं जिसमें सामाज के कुछ लोगों के पास इतना भी संसाधन नहीं होता है कि वे अपनी आधारभूत जरूरतों को पूरा कर सकें।

भुगतान शेषः किसी देश द्वारा किये गये आयात तथा निर्यात का लेखा जोखा है।

मुद्रास्फीति : वस्तुओं और सेवाओं के मूल्य में लगातार वृद्धि।

2.13 बोध प्रश्न

(A) खाली जगह को भरें

1. भारतीय रेल की एक दिन में —————— गाड़ियां चलती हैं।
2. भारत सरकार चाहती है कि वह 2012 तक विजली की उपलब्धता का लक्ष्य ——————— इकाई प्रतिव्यक्ति है।
3. भारत में दो मार्ग वाले सड़क मात्र ——————— प्रतिशत हैं।
4. भारत में वायु परिवहन का औसत वृद्धि दर पिछले सात सालों में ————— है।
5. भारत मे सड़क परिवहन विश्व में सबसे अधिक ————— सड़क दूर्घटना के लिए जिम्मेदार है।

(B) सत्य या असत्य

1. विश्व रेलवे नेटवर्क में भारतीय रेल दूसरे नम्बर पर है।
2. जेनेरेटर के द्वारा उद्योंगों में बिजली की आपूर्ति करना एक आवश्यकता है।
3. लोक व निजी साझेदारी भारत में संरचनात्मक विकास के लिए एक मात्र रास्ता है।
4. भारत में 29 प्रतिशत लोग गरीबी रेखा के नीचे रहते हैं।
5. भारत मे 2011 की जनगणना के अनुसार 74.04 प्रतिशत साक्षरता दर है।
6. भारत में श्रम सर्वेक्षण ब्यूरो के अनुसार 2010 के अंत में बेरोजगार यूवा की संख्या 60 मिलियन था।
7. बिहार मे गरीबी रेखा के नीचे रहने वाले लोगों का प्रतिशत 67 प्रतिशत था।

2.14 बोध प्रश्नों के उत्तर

(A)

1. 11,000, 2. 1000, 3. 53, 4. 18.5 प्रतिशत, 5. 8वां

(B)

1. असत्य, 2. सत्य, 3. असत्य, 4. सत्य, 5. सत्य, 6. असत्य, 7. असत्य।

2.15 स्वपरख प्रश्न

1. भारत में सरंचना की स्थिति का आलोचनात्मक मूल्यांकन करें।
2. ''भारत में सभी समस्याओं की जड़ गरीबी और निम्न साक्षरता दर है'' इस कथन पर अपनी प्रतिक्रिया दें।
3. भारतीय सामाज के विभिन्न आधार भूत समस्याओं पर एक निबंध लिखें।
4. क्षेत्रीय विषमता से आप क्या समझते हैं? इसके कारणों की चर्चा कीजिए तथा इसे दूर करने के उपाय सुझाईए।

2.16 सन्दर्भ पुस्तकें

1. Edward Shaprio, Macroeconomic Analysis (1960).
2. Keynes, J. M., General Theory of Employment, Interest and Money, (1936).
3. Norman, P. Keiser, Macro-Economics, (1960).
4. Desai, Ashok, V., Technology Absorption in Indian Industry, New Delhi, Wiley Eastern, 1998.
5. Indian Economic Review (Delhi School of economics).
6. Lall, Sanjaya, Technology Development and Export Performance in LDCs: Leading Engineering and Chemical Firms in India, Review of World Economics, Vol. 122(1), pp. 80, 1996.
7. Economic Survey, Govt. of India.
8. Planning Commission, Govt. of India.

*****

इकाई 3 अर्थशास्त्र की कार्य प्रणाली

इकाई की रूपरेखा

3.1 प्रस्तावना
3.2 अर्थशास्त्र की अवधारणा एवं कार्य प्रणाली
3.3 आर्थिक सिद्धान्त की प्रकृति
3.4 आर्थिक सिद्धान्त का आधार
3.4.1 निगमन विधि
3.4.2 आगमन विधि
3.5 संस्थिति की अवधारणा
3.6 अर्थशास्त्र में मॉडल का निर्माण
3.7 स्थैतिक, तुलनात्मक स्थैतिक एवं प्रवैगिक संबंधों की अवधारणा
3.8 व्यष्टि एवं समष्टि उपागम
3.9 सारांश
3.10 शब्दावली
3.11 बोध प्रश्न
3.12 बोध प्रश्नों के उत्तर
3.13 स्वपरख प्रश्न
3.14 सन्दर्भ पुस्तकें

उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप इस योग्य हो सकेंगे कि –

- अर्थशास्त्र के कार्यप्रणाली की अवधारणा का वर्णन कर सकें।
- आर्थिक सिद्धान्त की प्रकृति का वर्णन कर सकें।
- संस्थिति की अवधारणा का वर्णन कर सकें।
- अर्थशास्त्र में मॉडल का निर्माण कर सकें।
- आर्थिक स्थैतिक एवं प्रवैगिक की व्याख्या कर सकें।
- व्यष्टि और समष्टि उपागम की व्याख्या कर सकें।

3.1 प्रस्तावना

अर्थशास्त्र वह विज्ञान है जो परिकल्पना, सिद्धान्त, नियम और सिद्धान्त तथा सामान्यीकरण का व्यूत्पन्न करता है, जो इसके अध्ययन के विषय व्यवहार की व्याख्या करता है। इन सामान्यीकरण तथा सिद्धान्त का व्यूत्पन्न करने के लिए कुछ कार्य प्रणाली अपनानी पड़ती है। अर्थशास्त्री निगमन तथा आगमन दोनों तर्क के कार्य प्रणाली का उपयोग करते हैं, जो इस बात पर निर्भर करता है कि वे व्यष्टि या समष्टि किस उपागम का उपयोग कर रहे हैं। अर्थमिति की तकनीकि की महत्ता आजकल बढ़ती जा रही है। आर्थिक विश्लेषण में वास्तविक तथा आदर्शात्मक अर्थशास्त्र के बीच संबंध को स्थापित करने में मूल्यगत निर्णय को नकारा नहीं जा सकता है। व्यष्टि उपागम को अर्थशास्त्र के समस्या अध्ययन के रूप में देखा जाता है, क्योंकि यह दूर्लभता, चयन तथा कीमत निर्धारण की समस्या पर केन्द्रित रहता है। वहीं समष्टि को पद्धति उपागम के रूप में देखते हैं। यह अर्थव्यवस्था की समस्याओं के समाधान के लिए महत्वपूर्ण है न कि केवल

समस्याओं की पहचान के लिए। इस इकाई में हम अर्थशास्त्र की कार्य प्रणाली वैज्ञानिक सिद्धान्त की प्रकृति, सिद्धान्तों का आधार, आर्थिक सिद्धान्त का व्युत्पन्न, संस्थिति की अवधारणा, अर्थशास्त्र में मॉडल का निर्माण, आर्थिक स्थैतिक, गतिज व्यष्टि और समष्टि उपागम और इनकी महत्व तथा तुलना का अध्ययन करेंगें।

3.2 अर्थशास्त्र की अवधारणा तथा कार्यप्रणाली

आप जानते है कि व्यापारिक अर्थशास्त्र, व्यापारिक निर्णय के लिए आर्थिक सिद्धान्त और का उपयोग करते हैं। अन्य विज्ञानों की तरह अर्थशास्त्र में भी व्युत्पन्न नियम और सिद्धान्त होता है। भौतिक विज्ञान जैस भौतिक शास्त्र जहां वैज्ञानिक प्रयोगशालाओं के सीमित दायरे में शोध करते हैं, जिसका पूर्वानुमान असंभव तथा निश्चित है। नियम व सिद्धान्त को अपनाने के लिए कुछ पद्धति अपनानी पड़ती है। यह नियम उन सिद्धान्तों, जैसे उपभोग, विनिमय, राष्ट्रीय आय तथा रोजगार से सम्बन्धित चरों के बीच की चर्चा, विश्लेषण और फलनात्मक संबंधों का परीक्षण करता है। अर्थशास्त्र की कार्य प्रणाली आर्थिक सिद्धान्त के निर्माण को समाहित करता है। आर्थिक सिद्धान्त इस रूप में होनी चाहिए कि भविष्य मे इसकी प्रसंगिकता के सत्यापित या खण्डन किया जा सके। सामान्य तौर पर इसे वास्तविक होना चाहिए और आवश्यक रूप से व्याख्यात्मक क्षमता होनी चाहिए, कम मान्यताओं पर आधारित वास्तविकता के करीब होनी चाहिए; तार्किक वास्तविकता का उपयोग जरूरी है। यूरोप के एक प्रसिद्ध वैज्ञानिक दार्शनिक ओकाम ने अपने सिद्धान्त ओकाम रेंजर में कहते हैं कि यदि सही सिद्धान्त एक ही परिणाम देते है तो कम मान्यताओं वाले सिद्धान्त को स्वीकार करना चाहिए। एक बार जब कोई सिद्धान्त बन जाय तो उसका सत्यापन जरूरी है। सिद्धान्त के निमाण के पश्चात् आर्थिक सिद्धान्त के निर्माण के लिए के लिए दो सामान्य पद्धति अपनाई जाती है; सैद्धान्तिक या निगमनात्मक विधि और दूसरा आनुभविक और आगमनात्मक विधि। पहले विधि में निष्कर्ष तक पहुंचने के लिए सही तार्किक सिद्धान्त मॉडल का निर्माण किया जाता है। दूसरे उपागम में वास्तविक जगत् के आंकड़ों का उपयोग कर निष्कर्ष पर पहुंचा जाता है।

अर्थशास्त्र की कार्य प्रणाली में अगला कदम मॉडल निर्माण से सम्बन्धित है, मॉडल एक सैद्धान्तिक संरचना है, जो घटनाओं का विश्लेषण तथा व्याख्या करता है। अन्य शब्दों में आर्थिक मॉडल वास्तविकता का सामान्यीकरण है। सामान्यतः दो प्रकार के आर्थिक मॉडल होते हैं; साधारण और जटिल, तथा मॉडल का मूख्यतः दो उद्देश्य होता है– विश्लेषण और पुर्वानुमान। एक मॉडल में चरों, प्राचालों का होना आवश्यक है साथ हीं चरों के बीच सम्बन्धों को बताता है। फलनात्मक सम्बन्धों को प्रदर्शित करने के लिए आजकल गणित का प्रयोग बढ़ गया है।

निष्कर्षतः हम यह कह सकते हैं कि आर्थिक कार्यविधि यह कल्पना करता है कि कैसे अर्थशास्त्र कार्य करता है, कैसे कार्य किया और कैसे इसे कार्य करना चाहिए तथा इसके विभिन्न मान्यतायें और प्रतिबंध क्या हैं।

3.3 आर्थिक सिद्धान्त की प्रकृति

अर्थशास्त्री विभिन्न आर्थिक कारकों जैसे मजदूरी, बेरोजगारी, संवृद्धि दर, मांगी गई मात्रा, पूर्ति और इत्यादि के बीच सम्बन्धों का परीक्षण करने में दिलचस्पी रखता है। वैज्ञानिक सिद्धान्तों को जैसे ही आर्थिक सिद्धान्त, आर्थिक विश्लेषण की तकनीकि प्रदान करता है, जो उपर्युक्त आर्थिक कारकों के बीच कारण—प्रभाव सम्बन्धों की व्याख्या करता है, आर्थिक घटनाओं को समझाता है, अर्थव्यवस्था की कार्यक्षमता को जांचता है, आर्थिक घटनाओं का पूर्वानुमान लगाता है और आर्थिक नीतियों को बनाता है। आर्थिक सिद्धान्त और आर्थिक नीति के बीच निकट सम्बन्ध होता है। आर्थिक सिद्धान्त सरकार की नीति को समझने का अपरिहार्य यंत्र है। यह उपभोक्ता, उत्पादक, व्यापारी, कामगार, प्रशासक और अर्थशास्त्रियों को विवेकपूर्ण योजना के लिए सहायता और मार्गदर्शन करता है।

आर्थिक सिद्धान्त, सरकार के नीतियों और कार्यक्रमों के आर्थिक प्रभाव को समझने, कार्यक्रमों की लागत तथा राजनैतिक साध्यता को स्पष्ट रूप से आवश्यक बनाता है। आर्थिक सिद्धान्त के कई उपयोग है; यह अर्थशास्त्रियों को आर्थिक यंत्र उपलब्ध कराता है। श्रीमति जॉन रॉबिन्सन आर्थिक सिद्धान्त को यंत्रों के सन्दूकों के रूप में चित्रित करती है। आर्थिक सिद्धान्त अर्थव्यवस्था के विभिन्न क्षेत्रों के निष्पादन क्षमता को जांचने में मदद करता है। उदाहरण के लिए यदि पेट्रोल की कीमत बढ़ रही है, तब कीमत यंत्र विज्ञान का ज्ञान यह जांचने के लिए जरूरी है कि कीमत में वृद्धि पूर्ति की कमी के कारण हो रहा है, हमारी मुद्रा का मुद्दा है, भुगतान संन्तुलन घाटा या सरकार की नीतियों के गलत क्रियान्वयन के कारण हो रहा है।

3.4 आर्थिक सिद्धान्त का आधार

आर्थिक सिद्धान्त कुछ मान्यताओं पर आधारित है। मान्यतायें विश्लेषण का सामान्यीकरण करने के लिए लिया जाता है, और ये मान्यतायें तकनीकि तथा व्यवहार से जुड़ें रहते हैं। इन मान्यताओं के आधार पर तार्किक प्रक्रिया को प्राक्कल्पना भी कहते हैं। वैज्ञानिक प्राक्कल्पना यह बताता है कि वास्तविक और चरों के रूप में सदृश्य सम्बन्ध को जांचा जा सकता है, तथा सदृश्यों को नकारने की क्षमता हो।

रार्बट रशल और एम विलकिनसन के अनुसार, ''आर्थिक सिद्धान्त का वास्ता उपभोक्ता, उत्पादक और अन्य आर्थिक कारकों के रूचि और प्रतिबन्धों के अंतःक्रिया का सउद्देश्य निहितार्थ निकालने से है'' अतः सिद्धान्त तीन प्रकार के तत्व को सामने लाता है, जो निम्नलिखित हैः

1. आर्थिक इकाई या कारक कुछ विशिष्ट उद्देश्य को प्राप्त करना चाहते हैं, जैस लाभ को अधिकतम करना।
2. आर्थिक इकाई पूर्वनिर्धारित उद्देश्य को सत्त रूप से प्राप्त करना चाहते हैं।
3. साधनों की दूर्लभलता आर्थिक इकाईयों की क्षमता पर प्रतिबंध के रूप में कार्य करता है।

ये तीन तत्व आर्थिक सिद्धान्त का आधार बनाते हैं। आर्थिक सिद्धान्त सामान्यीकरण के विभिन्न आर्थिक घटनाओं को शामिल करता है। राबिन्स के शब्दों में आर्थिक सामान्यीकरण कथनों की वह एकरूपता है जो मानव व्यवहार को दुलर्भ

साधनों के आवंटन तथा इसके वैकल्पिक उपयोग के लिए व्याख्या करता है। आर्थिक सिद्धान्त तार्किक विवेचन की प्रक्रिया के माध्यम से सामान्यीकरण दो तरीके से प्राप्त किया जा सकता है। पहला, निगमन कार्य प्रणाली और दूसरा आगमन कार्य प्रणाली।

3.4.1 निगमन विधि

यह विश्लेषणात्मक, अमूर्त और पूर्ववर्ती विधि भी कहा जाता है। यह आर्थिक सामान्यीकरण और सिद्धान्त का अमूर्त उपागम प्राप्त करने का प्रतिनिधित्व करता है। निगमन विधि से आर्थिक सामान्यीकरण तक पहुंचने की प्रक्रिया निम्नांकित हैः

1. समस्या की पहचान
2. मान्यताओं को लेना
3. परिकल्पनाओं को बनाना
4. परिकल्पनाओं का पूर्ननिरीक्षण करना
5. निष्कर्ष निकालना

अर्थशास्त्र में इस उपागम का प्रयोग क्लासिकल, नियोक्लासिकल जैसे रिकार्डो, माल्थस, मार्क्स, पीगू और मार्शल द्वारा किया गया है। गणितीय तर्क की सहायता से आर्थिक सिद्धान्त को बिना विस्तृत विश्लेषण और आंकड़ों के प्राप्त किया जा सकता है। यह कम समय में कम लागत वाली विधि है। यह यर्थातता, वस्तुनिष्ठता से परिचय कराता है, तथा वैज्ञानिक चरित्र प्रदान करता है।

3.4.2 आगमन विधि

यह आनुभविक विधि कहलाती है, जो आर्थिक सामान्यीकरण को अनुभव और प्रेक्षण के आधार पर किया जाता है। आगमन विधि इन तीन सिद्धान्तों पर आधारित हैः

1. प्रयोग
2. प्रेक्षण
3. सांख्यिकीय या अर्थमितिक विधि का उपयोग

आगमन विधि में किसी एक विशेष आर्थिक घटना से सम्बन्धित सही आंकड़े एकत्रित किये जाते हैं। इसके बाद आंकड़े का प्रेक्षण, विश्लेषण और अंत में निष्कर्ष निकाला जाता है। यह वैज्ञानिक प्रक्रिया पर आधारित वास्तविक उपागम है और प्रयोगिक उनमूखता रखता है।

दोनों कार्य प्रणाली का एकीकरण

आधुनिक मत यह है कि वैज्ञानिक सिद्धान्त के उचित विकास के लिए दोनों हीं उपागम की आवश्यकता होती है। ये एक दूसरे के पूरक की प्रकृति के है न की प्रतिद्वंदी के। आजकल अर्थशास्त्री निगमन विधि से परिकल्पना लेते है और उसे सांख्यकीय और अर्थमीतिक विधि से अनुभाविक जांच करते है। मार्शल ने बहुत सही इंगित किया है कि आगमन तथा निगमन दोनों विधियां आर्थिक सिद्धान्त के लिए आवश्यक है उसी प्रकार जिस प्रकार चलाने के लिए बांयें और दायें दोनों पैरों की आवश्यकता होती है।

आर्थिक सिद्धान्तो को अन्य आधार मान्यताओं को लेना है, अतः उचित मान्यताओं को लेने की आवश्यकता होती है। प्रो. फ्रीडमैन ने मान्यताओं की तीन भूमिका को बताया हैः

1. सिद्धान्त को प्रदर्शित करने का आर्थिक तरीका है।

2. परिकल्पनाओं को जांचने में अप्रत्यक्ष रूप से बढ़ावा देता है।
3. समस्याओं का विशिष्ट ब्योरा देने का आसान तरीका है।

मान्यतायें सामान्यतः वे प्रतिबंध या समस्याओं का समूह है जिनके आधार में सिद्धान्त टिकता है। मान्यताओं के चुनाव के चार मूख्य कसौटी हैं।

1. उनके पास व्याख्यात्मक शक्ति होनी चाहिए।
2. वे वास्तविकता पर आधारित होना चाहिए।
3. मान्यताओं की संख्या जितना संभव हो कम होना चाहिए।
4. मान्यताओं को तैयार करने में लचीचापन की कसौटी को अपनाना चाहिए।

3.5 संस्थिति की अवधारणा

संस्थिति की अवधारणा अर्थशास्त्र की कार्य विधि में एक महत्वपूर्ण स्थान रखता है और यह सभी आर्थिक सिद्धान्तों में उपयोग किया जाता है। यह सामान्यतः कीमत और संवृद्धि से सम्बन्धित समस्याओं के लिए उपयोग किया जाता है। यह एक व्यवस्था है, जिसमें कोई परिवर्तन नहीं होता है; और इसे स्थिर अवस्थ कहते हैं। एक आर्थिक व्यवस्था संस्थिति में कहीं जायेगी, जब महत्वपूर्ण चर कोई परिवर्तन प्रदर्शित नहीं करते। ऐसी कोई शक्ति नहीं होती जो महत्वपूर्ण चरों में परिवर्तन लायें। अतः एक फर्म संस्थिति में होगा, यदि उसके उत्पाद में परिवर्तन की प्रकृति न हों। संस्थिति आर्थिक व्यवस्था की सबसे अच्छी स्थिति मानी जाती है। अर्थशास्त्र में संस्थिति की स्थिति वह है जिसमें उपभोक्ता, फर्म, उद्योग या अर्थव्यवस्था में किसी समायोजन की प्रवृति नही होती है।

संस्थिति दो वर्गों में विभाजित की जा सकती है।

1. विशिष्ट या आंशिक संस्थिति
2. सामान्य संस्थिति

1. विशिष्ट या आंशिक संस्थिति

इस उपागम में हमारा ध्यान व्यक्ति इकाई पर केन्द्रित रहता है, जो व्यष्टि आर्थिक विश्लेषण में विस्तृत रूप से उपयोग होता है। इस प्रकार का विश्लेषण कुछ चरों का गहराई से अध्ययन करता है। इस विधि में हम यह मान लेते है कि आर्थिक प्रक्रिया बाह्य कारकों से प्रभावित नहीं होती है। इस उपागम में हम जिस चर का अध्ययन करते हैं, उसकी पर केन्द्रीय रहते है, अतः अन्य चरों को दिया हुआ मान लेते है। उदाहरण के लिए मांग के नियम के अनुसार, मांग कीमत का फलना हे यदि अन्य के लिए मांग के नियम के अनुसार, मांग कीमत का फलन है यदि अन्य कारक स्थिर हो।

$D = f(P, \{Y , “P_r, T, W………………\})$

डॉ. इरिच स्नैचर कहते हैं ''आसपास का संसार स्थिर या जामा हुआ माना जाता है।

जिस समय अन्तराल मे इसका अध्ययन किया जाता है।'' उसे अन्य चीचें दिये हुए उपागम भी कहा जाता है।

2. सामान्य संस्थिति

दूसरा उपागम को सम्पूर्ण या समान्य विश्लेषण कहा जाता है। इस विश्लेषण में विभिन्न चरों के मध्य आंतरिक सम्बन्धों को एक साथ अध्ययन किया जाता है। यह विभिन्न वस्तुओं तथा उत्पादन साधन की कीमत तथा मात्रा के

संस्थिति समन्वय की, एक दूसरे पर निर्भर से सम्बन्धित है। यह बहुबाजार संस्थिति के समान है, जिसमें सभी चरों का एक साथ अध्ययन किया जाता है, और वे एक दूसरे को प्रभावित करते हैं। N व्यक्तिगत चर है और निश्चित तौर पर एक दूसरे चर को प्रभावित करते हैं।

अतः इस सामान्य संस्थिति उपागम में पूरी अर्थव्यवस्था के संरचना का अध्ययन किया जाता है और समष्टि आर्थिक विश्लेषण में विस्तृत उपयोग किया जाता है।

सामान्य संस्थिति की अवधारणा "Pure Economics, theory to practical level" 1874 में प्रकाशित हुई, जो डब्लू. लेवोन्टीफ ने लिखा था। ये वही है जिन्होंने आगत–निर्गत विश्लेषण दिया है।

सामान्य संस्थिति ने इस विश्वास को और प्रबल किया की अर्थव्यवस्था में कीमत और उत्पाद को एक साथ निर्धारित किया जा सकता है। लेकिन समीकरणों की संख्या चरों की संख्या के बराबर होनी चाहिए।

3. स्थिर और अस्थिर संस्थिति की अवधारणा

बाजार की संस्थिति स्थिर कही जाती है, यदि संस्थिति से विस्थापन, बाजार शक्तियों के क्रियान्वयन से पूनः संस्थिति पर वापस आ जाय। यह चित्र 3.1 के माध्यम से दिखाया गया है। चित्र 3.1 में DD_1 मांग वक्र है जो ऋणात्मक ढाल का है। SS_1 पूर्ति वक्र है जो धनात्मक ढ़ाल का है। संस्थिति की मात्रा OM और कीमत OP है। क्योंकिक इससे अधिक कीमत पर पूर्ति की मात्रा मांग की मात्रा से अधिक होगी, जैसे कि OP_1 कीमत पर है, पूर्ति की अधिकता कीमत को संस्थिति कीमत OP पर वापस लायेगी। यदि कीमत संस्थिति कीमत से नीचे हो, तब मांगी गई मात्रा, पूर्ति की मात्रा से अधिक होगी, जैसा की OP_2 कीमत पर है। परिणामस्वरूप, वस्तु की मात्रा में कमी, कीमत को पुनः OP संस्थिति कीमत पर ले जायेगी। अतः स्थिर संस्थिति उपागम में आर्थिक शक्तियों का स्वतः समन्वय के द्वारा संस्थिति स्तर को प्राप्त करती है।

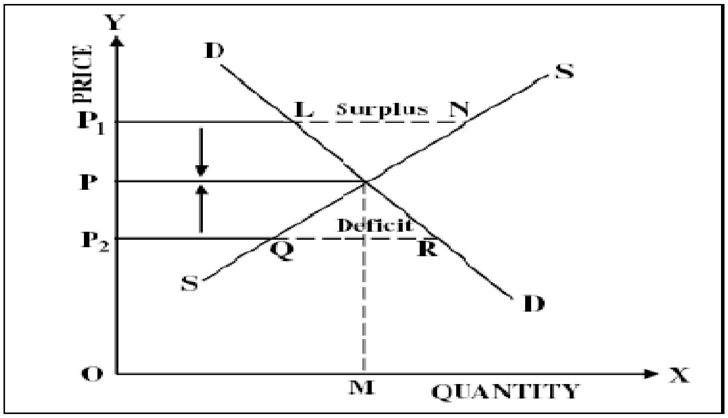

चित्र 3.1 स्थिर बाजार संस्थिति

अस्थिर संस्थिति

अस्थिर संस्थिति तब होती है जब पूर्ति वक्र बाजार मांग वक्र से कम ढ़ाल की हो और इस स्थिति में संस्थिति से विस्थापन से बाजारी शक्तियां क्रियाशील हो जाती है, जो बाजार को संस्थिति से और दूर ले जाती है। इसे चित्र 3.2 की

सहायता से दिखाया गया है। चित्र 3.2 में आप देख सकते है कि OP कीमत से अधिक कीमत पर वस्तु की मात्रा कम है, पूर्ति मांग से कम है। यह कमी कीमत वृद्धि में सहायता करता है, तथा संस्थिति से और दूर चला जाता है। इस स्थिति में मांग वक्र और पूर्ति वक्र दोनों नीचे की ओर गिरता हुआ होता है। और मांग वक्र पूर्ति वक्र से अधिक ढ़ाल का होता है। अतः बाजार में संस्थिति नहीं प्राप्त होगा।

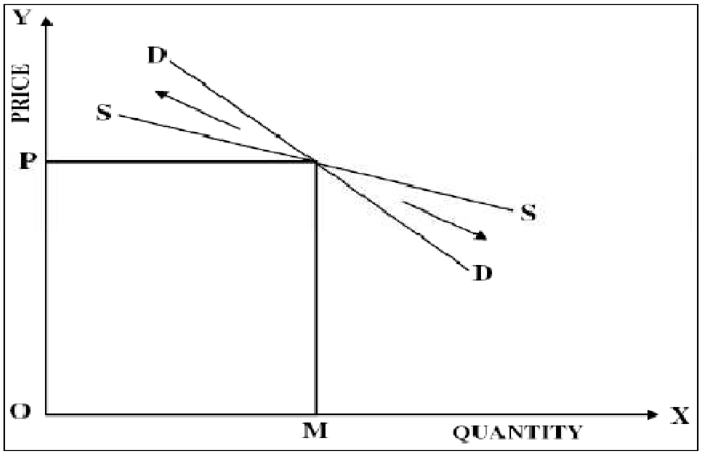

चित्र 3.2: बाजार की अस्थिर संस्थिति

3.6 अर्थशास्त्र में मॉडल का निर्माण

मॉडल वास्तविक स्थिति का सरल प्रतिनिधित्व है। एक आर्थिक मॉडल के समूह हो प्रदर्शित करता है, जो चरों के बीच के सम्बन्धों की जांच करता है। मॉडल चरों के बीच के परस्पर संबंध को दिखाता है। यह वास्तविकता से पृथक्करण दिखाता है। आर्थिक मॉडल विश्लेषण तथा पूर्वानुमान के उद्देश्य से बनाये जाते हैं। विश्लेषण का अर्थ प्रर्याप्तता जिसके द्वारा आर्थिक कारकों के व्यवहार की व्याख्या की जाती है और पूर्वानुमान का अर्थ मॉडल की उस दक्षता से है जिससे चरों के परिवर्तन का प्रभाव पूरे अर्थव्यवस्था पर अनुमानित की जाती है। मॉडल को अच्छा मॉडल माना जाता है यदि इसके पास वैधता और भविष्यवाणी दोनों शक्तियां हो। मिल्टन फ्रीडमैन के अनुसार मॉडल की सबसे महत्वपूर्ण विशेषता यह है कि इसके पास भविष्यवाणी शक्तियां होती है। अच्छा मॉडल मान्यताओं की वास्तविकता को समाहित करता है, और चरों के मध्य सम्बन्धों की व्याख्या करने की क्षमता होती है। अतः हम कह सकते है कि आर्थिक मॉडल चरों के मध्य अंतर सम्बन्धों को प्रदर्शित करता है। मॉडल का उपयोग व्यष्टि और समष्टि दोनों उपागम में किया जाता है।

(क) कीमत निर्धारण का व्यष्टि मॉडल

व्यष्टि मॉडल मांग और पूर्ति के आधार पर सम्बन्धो को प्रदर्शित करता है, और ये शक्तियां किस प्रकार कीमत का निर्धारण करती है, को प्रसिद्ध अर्थशास्त्री मार्शल ने बताया। उन्होंने अपने मॉडल में निम्नांकित समीकरणों का प्रयोग किया:

$Qd = a - bp$ (i)

$Qs = x + b'p$ (ii)

Qd = Qs (iii)

Qd यहां मांगी गई मात्रा को दिखाता है, Qs पूर्ति की मात्रा को दिखाता है p वस्तु की कीमत को प्रदर्शित करता है। a, b, x और b' स्थिर चर या प्राचल है। अतः ये सारे समीकरण मॉडल निर्माण करते हैं। इस मॉडल में, दो चर कीमत और मांगी गई मात्रा को लिया गया है। इस मॉडल का मुख्य उद्देश्य संस्थिति कीमत व मात्रा का निर्धारण है। यदि वस्तु के मांग और पूर्ति फलन का अंकों में मान उपलब्ध हो तो मॉडल का गणितीय हल प्राप्त किया जा सकता है:

Qd = 65-20p (iv)

Qs = -5+15p (v)

संस्थिति की स्थिति में मांगी गई मात्रा पूर्ति की मात्रा के बराबर होगी, जिससे हम उपर्युक्त समीकरण को निम्नांकित तरीके से लिख सकते हैं:

Qd = Qs

65 – 20p = - 5 + 15 p

-35 p = -70

P = 70/35 = 2

व्यष्टि आर्थिक मॉडल को चित्र 3.3 से समझाया जा सकता है:

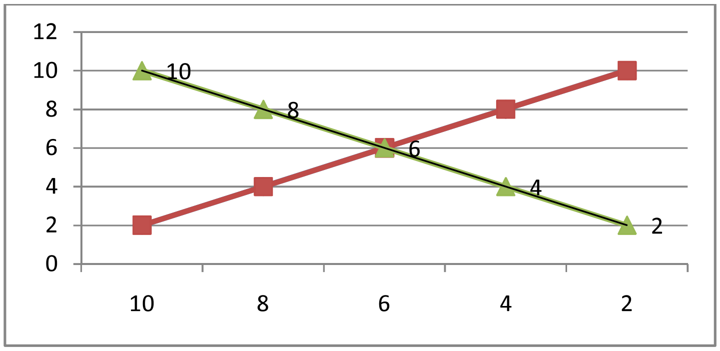

चित्र 3.3: व्यष्टि आर्थिक मॉडल

चित्र 3.3 में यदि वस्तु की कीमत संस्थिति कीमत 6 से कम हो। उदाहरण के लिए जैसा कि चित्र में दिखाया गया है, तो यह वस्तु पूर्ति की कमी को दिखायेगा। उत्पादक अधिक वस्तु की मात्रा की बिक्री करना चाहता है तथा उपभोक्ता अधिक मात्रा में मांग करता है, पर मांग के अनुसार वस्तु की मात्रा उपलब्ध नहीं है। अतः यह कीमत को पूनः संस्थिति कीमत पर स्थापित कर देगा। और इसके विपरीत भी।

(ख) समष्टि आर्थिक मॉडल

समष्टि आर्थिक मॉडल के जनक जे. एम. कीन्स है जिन्होंने संस्थिति स्तर के राष्ट्रीय आय का निर्धारण समग्र मांग के आधार पर होता है। कीन्स का आधारभूत समीकरण निम्नांकित है।

E = C+I (i)

C = a + bY (ii)

I = I' (iii)

Y = E (Iv)

यहां E, समग्र मांग को प्रदर्शित करता है, जिसके दो घटक, C और I (निवेश), Y राष्ट्रीय आय को दर्शाता है। I स्थिर है, जो बताता है कि निवेश स्थिर है। a और b स्थिरांक है और b उपभोग की सीमान्त प्रकृति को प्रदर्शित करता है।

मॉडल का गणितीय स्वरूप

Y = C + I

C = 40 +.50Y

I = 30

अतः, Y = 40+0.50Y + 30

0.50 Y = 70

Y = 70/0.50 = 140

मॉडल का चित्रमय निरूपण

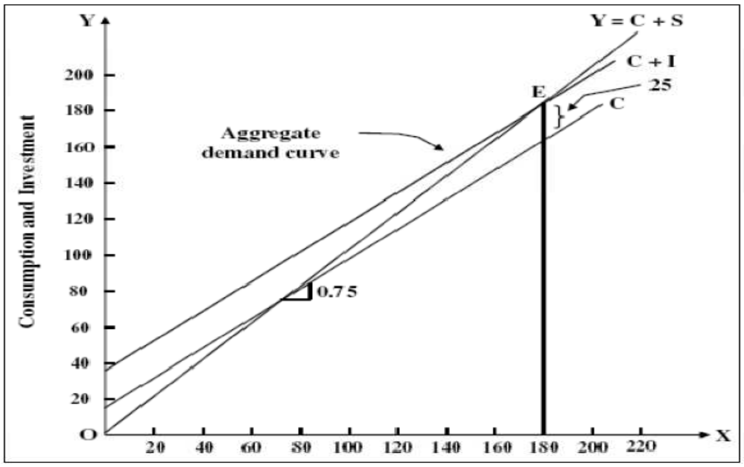

चित्र 3.4: कीन्स का राष्ट्रीय आय का निर्धारण का समष्टि मॉडल

आर्थिक मॉडल में चरों का उपयोग

आर्थिक मॉडल में दो तरह के चरों का प्रयोग होता है, आंतरिक और बाह्य। आंतरिक चर वे होते है जिसमे एक चर का मान दूसरे चर पर निर्भर करता है। अर्थात चरों का निर्धारण व्यवस्था में ही होता है। बाह्य चर व चर होते है जिनका मान मॉडल के हीं अन्य चरों पर निर्भर नहीं करता है। इन चरों के मान का निर्धारण, व्यवस्था से बाहर होता है।

3.7 स्थैतिक, तुलनात्मक स्थैतिक एवं प्रवैगिक संबंधों की अवधारणा

(क) स्थैतिज सम्बन्ध

आर्थिक स्थैतिज की अवधारणा आर्थिक सिद्धान्त के महत्वपूर्ण भाग है। यह ऐसी घटनाओं का प्रतिनिधित्व करता है, एक आर्थिक चर स्थिर कहा जाता है, यदि इसका मूल्य समय के साथ न बदले। स्थैतिज विश्लेषण की अवधारणा व्यष्टि अर्थशास्त्र में उपयोग किया जाता है और दो चरों के मध्य फलनात्मक सम्बन्ध स्थापित किया जाता है, इसका मान एक ही समय विन्दू से सम्बन्धित होता है। अर्थव्यवस्था के स्थैतिज अवस्था का अर्थ यह नहीं होता है कि अर्थव्यवस्था में कोई परिवर्तन नही है। स्थैतिज अवस्था वह है जिसमें अर्थव्यवस्था में परिवर्तन है, लेकिन वह परिवर्तन स्थिर, नियमित बराबर और निश्चित है। इस तरह की अर्थव्यवस्था अचानक के झटके और आघात से बंचित रहता है। स्थैतिज

अर्थव्यवस्था में अनिश्यिचतता की मान्यता से दूर रहती है। जबकि अन्य सभी परिणामाणात्मक माप और सभी परिमाणात्मक कारक जैस तकनीकि और रूचि आदि स्थिर रहता है, जिस पर अर्थव्यवस्था घुमता है। क्लासिकल अर्थशास्त्रियों ने स्थैतिज विश्लेषण की अवधारणा का उपयोग, कीमत निर्धारण, उत्पादन साधनों के भूगतान का वितरण इत्यादि की व्याख्या के लिये किया। स्थैतिज बाजार की संस्थिति स्थिति की व्याख्या 'से' के बाजार नियम से किया जाता है, जहां 'पूर्ति अपने मांग का सृजन स्वयं करती है। और मांग और पूर्ति समान होगा, जब अन्य बातें समान रहे।

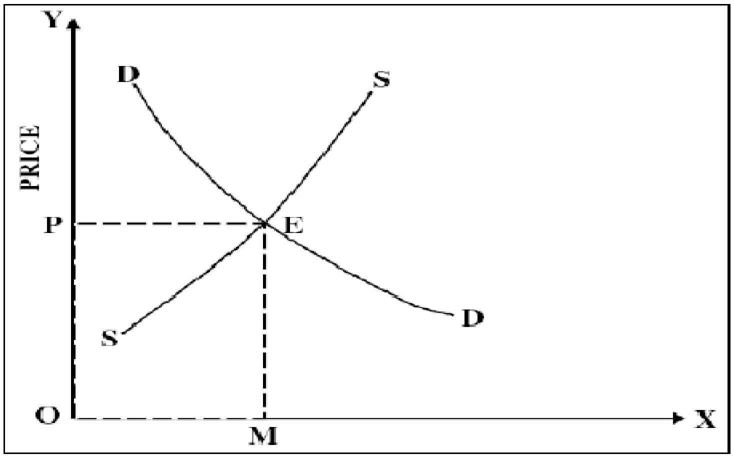

चित्र 3.4: व्यष्टि–स्थैतिज संस्थिति

(ख) **सापेक्षिक स्थैतिज**

सपेक्षिक स्थैतिज विश्लेषण एक संस्थिति स्थिति का विश्लेषण दूसरे संस्थिति स्थिति से करता है। सापेक्षिक स्थैतिज विश्लेषण में संस्थिति स्थिति को आंकड़ों के दा समूहों के आधार पर तुलना किया जाता है। प्रो. शिंडर के अनुसार ''आंकड़ों का समूह समय के साथ परिवर्तित होता है। और आंकड़ों के समूह के लिए नीय संस्थिति स्थिति रहती है। अतः यह बहुत ही महत्व की है कि दोनों आंकड़ों की संस्थिति को कैसे तुलना करें। जेनरल थेयरी में कीन्सीयन विश्लेषण सामान्यतः सापेक्षिक स्थैतिक पर आधारित है जो संस्थिति स्थिति की श्रेणी से सम्बन्धित है जहां व्यवस्था एक स्थिति से दूसरे स्थिति में चला जाता है। हैंसन के अनुसार सापेक्षिक गतिज विभिन्न समय अन्तराल प्रति उत्तरोतर संस्थिति बिन्दूओं को परिवर्तन है। सापेक्षिक स्थैतिज अवधारणा पूर विश्लेषण को जटिल किये बिना बदलते घटना का व्याख्या करने का अपयोगी तकनीकि है। सापेक्षिक स्थैतिज विभिन्न आंकड़ों के दिये हुए परिस्थितियों में दिये हुए चरों के माना का संस्थिति निर्धारण है। साधारणा भाषा में यह कह सकते है कि सापेक्षिक स्थैतिज तकनीकि का प्रयोग एक संस्थिति स्थिति को दूसरे संस्थिति बिन्दु के साथ तुलना करने के लिए करते हैं। सापेक्षिक स्थैतिक की व्याख्या चित्र 3.6 की सहायता से की गई है।

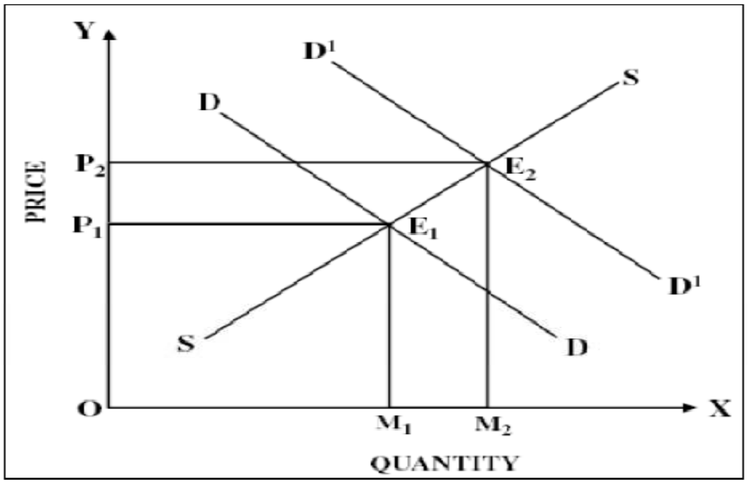

चित्र 3.6: कीन्स का समष्टि–स्थैतिज संस्थिति

चित्र 3.6 में मांग और पूर्ति फलन दिया हुआ है और DD_1 मांग वक्र का परिवर्तन $D'D'_1$वक्र है अर्थात् बांये से दायें मांग वक्र का परिवर्तन यह दिखाता है कि मांग में वृद्धि होने से संस्थिति बिन्दु में परिवर्तन होगा, जबकि पूर्ति स्थिर है। नयी संस्थिति E बिन्दु पर है यह कीमत में वृद्धि के कारण है। सापेक्षिक स्थैतिक विश्लेषण में हम नहीय संस्थिति विन्दु की तुलना पूरानी संस्थिति बिन्दु E_1 से करने में रूचि रखते हैं न कि पूरे संस्थिति पथ E_1 से E_1 का। हमलो अंतिम संस्थिति बिन्दु E और E_2 के लिए चिंतित है।

(ग) गतिज आर्थिक विश्लेषण

आर्थिक गतिज कुछ विशिष्ट चरों के बीच के सम्बन्धों का अध्ययन करता है जिसका मान अलग–2 समय बिन्दुओं औस समय अन्तराल में होता है। यह गतिज सम्बन्धों का अध्ययन है। प्रो. रैगनर फ्रीश ने मूलतः गतिज विश्लेषण की तकनीकि का विकास किया और उसको कुछ इस प्रकार परिभाषित किया। ''एक व्यवस्था गतिज है यदि इसका व्यवहार समय के साथ फलनात्मक समीकरणों से निर्धारित होता है। जिसमें विभिन्न समय बिन्दुओं पर चरों की आवश्यक आलिप्त रहते हैं।'' गतिज विश्लेषण समय पश्चचता को शामिल करता है, यह इससे सम्बन्धित है। कि एक संस्थिति बिन्दु से दूसरे संस्थिति बिन्दु का संस्थिति पथ क्या है। यह अंतिम पड़ाव से अधिक मात्रा पर जोर देता है। गतिज व्यवस्थ स्वतः सतत आर स्वतः समाविष्ट होता है। गतिज विश्लेषण संस्थिति के सम्पूर्ण पथ का पता लगााता है, जिस पर समय के साथ एक संस्थिति बिन्दु दूसरे संस्थिति बिन्दु में परिवर्तित होती है। आर्थिक गतिज समय तत्व को महत्व देता है। यह चरों के मध्य समय पश्चयता के सम्बन्धों का अध्ययन करता है, जिसमें अनिश्चितता के तत्व रहते हैं। यह आर्थिक घटनाओं का अध्ययन बिते हुये घटनाओं के संदर्भ में करता है। यह अर्थव्यवस्था में समान्यजन्य की प्रक्रिया या संस्थिति पथ या असंस्थिति पथ का विश्लेषण करता है। गतिज संस्थिति की अवधारणा को चित्र में दिखाया गया है। गतिज संस्थिति का उपयोग समष्टि आर्थिक मॉडल में किया जाता है।

चित्र 3.7 मे समग्र मांग को C+I से प्रदर्शित किया गया है, राष्ट्रीय आय का स्तर t समय में निर्धारित किया जाता है। परिणाम स्वरूप निवेश में वृद्धि समग्र

मांग वक्र को उपर की ओर परिवर्तित होकर नई संस्थिति पर आय OY_0 से बढ़कर OY_1 हो जायेगा। आय t+1 समय अंतराल में बढ़ेगा जो उपभोग मांग को भी बढ़ायेगा, उत्पादन में भी वृद्धि करना पड़ेगा, परिणामस्वरूप t+2 समय में आय में और वृद्धि होगी और अंततः नई संस्थिति OY_1 पर स्थापित होगी। गतिज विश्लेषण वह पथ दिखाता है कि कैसे नयी संस्थिति प्राप्त किया गया है और नई संस्थिति प्राप्त करने में कितना समय लेता है।

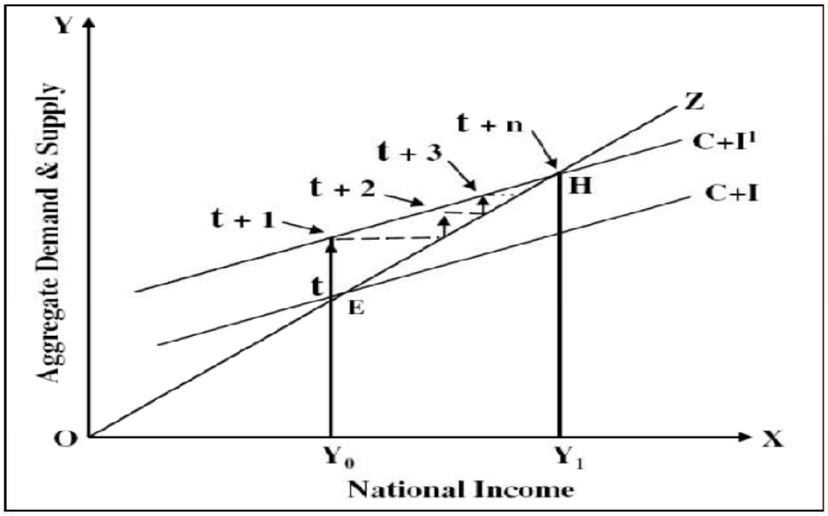

चित्र 3.7 समष्टि गतिज संस्थिति

3.8 व्यष्टि और समष्टि उपागम

अर्थशास्त्र की कार्य विधि विश्लेषण विधि को अपनाता है। अर्थशास्त्र के विभिन्न समस्याओं को हल करने के लिए व्यष्टि और समष्टि दो मुख्य उपागम है। व्यष्टि और समष्टि शब्द का सबसे पहला उपयोग रैगनर फ्रीश ने किया। व्यष्टि अर्थशास्त्र ग्रीक शब्द 'माइक्रोज' अर्थात छोटा और समष्टि अर्थशास्त्र ग्रीक शब्द 'मैक्रोज' अर्थात् बड़ा से लिया गया है। व्यष्टि अर्थशास्त्र एक फर्म विशेष के अध्ययन से सम्बन्धित है। अर्थव्यवस्था के छोटे व्यक्तिक इकाई जैसे व्यक्तिक फर्म, किसान, उपभोक्ता व्यक्तिक घर इत्यादि।

(क) व्यष्टि अर्थशास्त्र का क्षेत्र

व्यष्टि अर्थशास्त्र का सिद्धान्त मांग के सिद्धान्त, उत्पादन, साधन कीमत, संसाधनों का अनुकूलतम् आवंटन और कल्याण के सिद्धान्त का अध्ययन करता है।

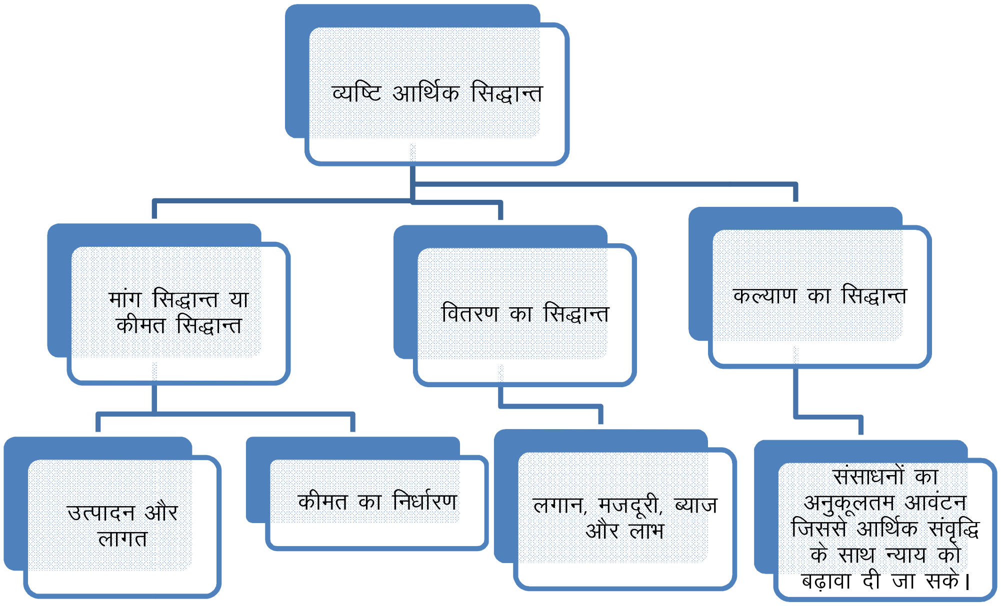

व्यष्टि अर्थशास्त्र, अर्थशास्त्र का एक महत्वपूर्ण हथियार है, क्योंकि यह अर्थव्यवस्था के कियान्वयन को समझने के लिए आवश्यक है, वस्तु तथा साधन के कीमत निर्धारण के लिए। यह आर्थिक कल्याण को बढ़ाता है, यह आर्थिक नीतियों के निर्माण में सहायक होता है, यह व्यक्तिक इकाईयों जैसे व्यक्तिक फार्म इत्यादि की समस्याओं का अध्ययन करता है। यह भविष्य के अनुमान लगाने में सहायता करता है। व्यष्टि अर्थशास्त्र समान्यतः स्थैतिज उपागम पर आधारित दीर्घकालीन विश्लेषण है। जो निष्कर्ष तक पहूंचने के लिए आंशिक संस्थिति विधि को अपनाता है। अतः यह व्यष्टि अर्थशास्त्र की सीमायें है। यह अर्थव्यवस्था की संभावनाओं का अध्ययन व्यक्तिक विचारों के आधार पर करता है, जो पूरे अर्थव्यवस्था पर खराब प्रभाव डालता है। उदाहरण के लिए बचत किसी व्यक्ति के संदर्भ में अच्छा है पर पूरी अर्थव्यवस्था केवल बचत करे तो अर्थव्यवस्था के लिए नुकसानदेह है।

(ख) समष्टि अर्थशास्त्र

समष्टि अर्थशास्त्र समग्रता का उपागम कहा जाता है। यह सम्पूर्ण अर्थव्यवस्था का अध्ययन है। प्रो बेल्डिंग के अनुसार, ''समष्टि अर्थशास्त्र व्यक्तिक परिमाणों से सम्बन्धित न होकर इन परिमाणों की समग्रता का आय के बजाय राष्ट्रीय आय से, व्यक्तिक कीमत के बजाय राष्ट्रीय कीमत से, व्यक्तिक उत्पाद के बजाय राष्ट्रीय आय का अध्ययन करता है।

समष्टि अर्थशास्त्र का कार्यक्षेत्र

समष्टि अर्थशास्त्र को कीन्सीयन कांति भी कहा जाता है, जिससे राष्ट्रीय आय तथा रोजगार का निर्धारण किया जाता है। यह सामान्य कीमत स्तर का अध्ययन करता है, यह अर्थव्यवस्था में स्फीतिक और अवस्फीतिक अवस्था से सम्बन्धित रहता है। यह आर्थिक संवृद्धि का सिद्धान्त भी कहा जाता है। और यह मजदूरी और लाभ का राष्ट्रीय आय के सापेक्षिक हिस्सेदारी का विश्लेषण करता है।

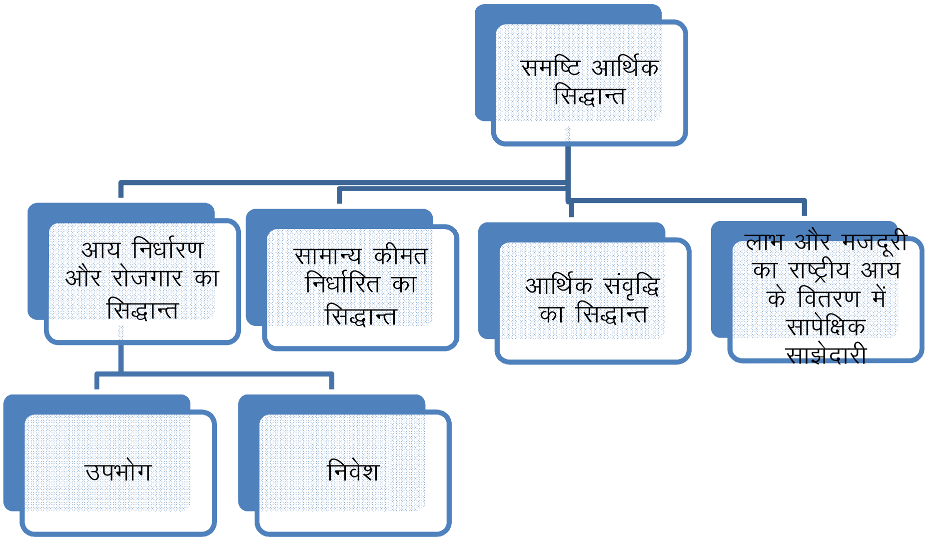

समष्टि अर्थशास्त्र व्यवस्थित और समग्रता का चिंतन है। यह निवेश की महता को प्रदर्शित करता है, राज्य हस्ताक्षेप की भूमिका को रेखांकित करता है और अर्थव्यवस्था की समग्रता में अध्ययन करता है। यह अर्थव्यवस्था के विभिन्न क्षेत्रों के अंतर सम्बन्धों का अध्ययन करता है। यह आर्थिक योजना का महत्वपूर्ण हथियार है, यह अंर्तराष्ट्रीय तुलना को बढ़ावा देता है, और समष्टि आर्थिक द्वन्दों को समझने में सहायक है। इस अवधारणा पर कुरिहारा ने टिप्पणी की है, सम्पूर्ण अर्थव्यवस्था को जटिल अंतरसम्बन्धों के माध्यम से देखने और उन बड़े समग्रों पर केन्द्रित होना जो सम्पूर्ण अर्थव्यवस्था को प्रभावित करते हैं का भी प्रयोगिक फायदे हैं।''

व्यष्टि और समष्टि आगम में अंतर

व्यष्टि अर्थशास्त्र एक विशेष आर्थिक इकाई जैसे, उपभोक्ता, एक फर्म, विशिष्ट कीमत इत्यादि का अध्ययन करता है। वहीं समष्टि अर्थशास्त्र समग्र या सम्पूर्ण का अध्ययन करता है। इन दोनों आधारों में अंतर निम्नांकित आधार पर किया जा सकता है।

समष्टि और व्यष्टि अर्थशास्त्र में तुलना

आधार	समष्टि अर्थशास्त्र	व्यष्टि अर्थशास्त्र
विश्लेषण इकाई	बड़ा	छोटा
मान्यतायें	उपलब्ध संसाधन पर आधारित	पूर्ण रोजगार, पूर्ण प्रतियोगिता राज्य हस्तक्षेप की अनुपस्थिति, या कीमत यंत्र का स्वतंत्र कियाशीलन।
विश्लेषण का उद्देश्य	सिद्धान्त, संशोधन के पूर्ण रोजगार से सम्बन्धित समस्यायें और नीतियों और सम्पूर्ण अर्थव्यवस्था का	अधिकतम संतुष्टि, लाभ के उद्देश्य से संसाधनो का अनुकूलतम आवंटन

	विकास	
यंत्र	आय का स्तर, सामान्य समग्र उत्पादन, निवेश और उपभोग (सभी आय से नियंत्रित होता है)	विशिष्ट फर्म, साधन, उद्योग (सभी कीमत से नियंत्रित होता है।)
उपागम	सामान्य संस्थिति उपागम	आंशिक संस्थिति उपागम
संस्थिति या असंस्थिति	असंस्थिति की अवस्था का विश्लेषण	अर्थव्यवस्था में संस्थिति की स्थिति को मानता है।
परिवर्तन	चरों में परिवर्तन नहीं होता है या धीमा होता है।	चरों में शीघ्रता से परिवर्तन होता है।

व्यष्टि और समष्टि अर्थशास्त्र का एकीकरण

अर्थशास्त्र के कार्य को स्पष्ट तौर पर समझने के लिए बहुप्रायोजित हथियार और यंत्र का होना आवश्यक है। व्यष्टि और समष्टि दोनों उपागमों का मिलना आवश्यक है। जैसा कि सैमूलशन पाते हैं, ''व्यष्टि और समष्टि उपागमों में कोई विरोध नही हैं। दोनों हीं जरूरी है। पूर्णतः शिक्षित नही होने पर भी आप एक को दूसरे के जाने बगैर समझ सकते है। आर्थिक व्यवस्था को समग्रता के रूप में समझना चाहिए, जो छोटे–छोटे इकाईयों से मिल कर बनते हैं। दोनों उपागम वास्तव में एक दूसरे के पूरक हैं।'' कुछ समष्टि आर्थिक व्यवहारों से सम्बन्धित सिद्धान्त व्यक्तिक व्यवहारा के सिद्धान्त से निकाला जाता है। वास्तव में ये दोनों आगम एक दूसरे से स्वतंत्र हैं। यहां प्रो. एक्ले का कहना है, ''समष्टि अर्थशास्त्र और व्यक्तिक व्यवहार का सिद्धान्त दोनों एक हीं गली के दो मार्ग है।'' एक तरफ जहां व्यष्टि आर्थिक सिद्धान्त को समग्रता के सिद्धान्त क लिए आगत प्रदान करना चाहिए। लेकिन समष्टि अर्थशास्त्र को भी व्यष्टि अर्थशास्त्र को समझने में योगदान करना चाहिए। यदि हम ढूंढते हैं, उदाहरण के लिए तथ्यात्मक रूप से समष्टि अर्थशास्त्र का सामान्यीकरण जो व्यष्टि आर्थिक सिद्धान्त से असत्त है या व्यष्टि अर्थशास्त्र के उस भा से सम्बन्धित है जिसको नकारा गया है, समष्टि अर्थशास्त्र हमें व्यक्ति व्यवहार की समझदारी बढ़ाने की इजाजत देता है।

3.9 सारांश

अर्थशास्त्र की कार्य विधि बहुत महत्वपूर्ण है। यह नियम, सिद्धान्त, मूल तत्व, परिकल्पना को निकालता है, जो उन घटनाओं के व्यवहार की ब्याख्या करने की कोशिश करता है। अर्थशास्त्र की कार्य विधि किस प्रकार की विधि अपनाई जा रही है से सम्बन्धित है, जैसे निगमनात्मक और आगमनात्मक विधि। अर्थशास्त्र के कार्य विधि में यह बहुत जरूरी है कि परिस्थितियों का विश्लेषण और व्याख्या करें। विश्लेषण के लिए अपनाई गई तकनीकि, स्थैतिज, सापेक्षिक स्थैतिज और गतिज है। विश्लेषण के पश्चात् प्रस्तुतीकरण महत्वपूर्ण हो जाता है। प्रस्तुतीकरण के भाग को ध्यान में रखते हुए, आर्थिक मॉडल का उपयोग किया जाता है। अर्थशास्त्र की कार्य विधि आर्थिक सिद्धान्त के निर्माण के साथ शूरू होता है, जो परिकल्पनाओं का निर्माण, मान्यताओं के रखने तत्पश्चात् सिद्धान्त का विश्लेषण, जबकि कार्य विधि का दूसरा भाग सिद्धान्त के उपयोग से सम्बन्धित होता है, जो चरों के

उपयोग, प्राच्यों, विधियों, मॉडलों, आर्थिक नीतियों के निर्माण और भविष्य की घटनाओं के पूर्वानुमान सांख्यिकी का प्रयोग।

3.10 शब्दावली

1. **व्यष्टि अर्थशास्त्रः** व्यष्टि अर्थशास्त्र एक फर्म विशेष के अध्ययन से सम्बन्धित है। अर्थव्यवस्था के छोटे व्यक्तिक इकाई जैसे व्यक्तिक फर्म, किसान, उपभोक्ता व्यक्तिक घर इत्यादि।
2. **समष्टि अर्थशास्त्रः** समष्टि अर्थशास्त्र व्यक्तिक परिमाणों से सम्बन्धित न होकर इन परिमाणों की समग्रता का आय के बजाय राष्ट्रीय आय से, व्यक्तिक कीमत के बजाय राष्ट्रीय कीमत से, व्यक्तिक उत्पाद के बजाय राष्ट्रीय आय का अध्ययन करता है।

3.11 बोध प्रश्न

(A) खाली स्थानों को भरें:

1. एक बार सिद्धान्त के बनने पर यह जरूर हीं ——————————।
2. आंशिक संस्थिति उपागम —————————— प्रतिबन्धों को मानता है।
3. सामान्य संस्थिति विश्लेषण —————————— अर्थशास्त्र में उपयोग होता है।
4. —————————— आर्थिक कार्यविधि की दो प्रमुख समस्यायें हैं।
5. स्थैतिक स्थिति के —————————— स्थिरांक है।

(B) सत्य या असत्य

1. मान्यतायें सामान्यतः विश्लेषण को जटिल करती है।
2. निगमनात्मक विधि को विश्लेषणात्मक या आमूर्त विधि भी कहते हैं।
3. आगमनात्मक विधि अनुभव और प्रेक्षण पर आधारित है।
4. सामान्य संतुलन बहुबाजार संतुलन की तरह प्रतीत होती है।
5. आंतरिक चरों का निर्धारण व्यवस्था के बाहर होता है।
6. संस्थिति की अवधारणा का अर्थ संतुलन की स्थिति है।
7. व्यष्टि अर्थशास्त्र सम्पूर्ण अर्थव्यवस्था से सम्बन्धित होता है।
8. आर्थिक मॉडल विश्लेषण और भविष्य के पूर्वानुमान के लिए बनाया जाता है।

3.12 बोध प्रश्नों के उत्तर

(A)

1. जांचा हुआ, 2. अनय बातें समान/स्थिर रहने पर, 3. समष्टि, 4. विश्लेषण और भविष्यवाणी, 5. परिवर्तन, 6. रैगनर फ्रिश

(B)

1. सत्य, 2. सत्य, 3. असत्य, 4. असत्य, 5. सत्य, 6. असत्य, 7. सत्य।

3.13 स्वपरख प्रश्न

1. संस्थिति क्या है? स्थिर और अस्थिर संस्थिति के उपागम की व्याख्या करें।
2. वैज्ञानिक सिद्धान्त क्या है? वैज्ञानिक सिद्धान्त के निर्माण में समाहित कदमों की व्याख्या करें।

3. आर्थिक मॉडल की प्रकृति की चर्चा व्यष्टि और समष्टि अर्थशास्त्र के संदर्भ में करें।

3.14 सन्दर्भ पुस्तकें

1. Deein J., Managerial Economics, Prentice Hall, Englewood Cliffs, N. J.
2. Jhingan, M. L. Advanced Economic Theory, Vrinda Publications (P) Ltd., New Delhi.
3. Dr. D.M. Mithani, Managerial Economics- Theory and Applications: Himalaya Publishing House.
4. Mehta, P. L., Managerial Economics – Analysis, Problem and Cases, Sultan Chand & Sons, New Delhi.

*****

इकाई 4 मांग एवं पूर्ति के नियम

इकाई की रूपरेखा

4.1 प्रस्तावना
4.2 मांग का नियम
4.3 मांग वक्र के विभिन्न स्वरूप और आंकृति के कारण
4.4 मांग के नियम के अपवाद
4.5 पूर्ति की अवधारणा
4.6 सारांश
4.7 शब्दावली
4.8 बोध प्रश्न
4.9 बोध प्रश्नों के उत्तर
4.10 स्वपरख प्रश्न
4.11 सन्दर्भ पुस्तकें

उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप इस योग्य हो सकेंगे कि –

- मांग एवं पूर्ति के अर्थ की व्याख्या कर सकें।
- मांग के नियम की व्याख्या कर सकें।
- मांग को प्रभावित करने वाले कारकों का वर्णन कर सकें।
- मांग के नियम के अपवादों का वर्णन कर सकें।
- मांग के प्रकारों की व्याख्या कर सकें।
- पूर्ति के नियम की व्याख्या कर सकें।
- मांग के नियम के महत्व का वर्णन कर सकें।

4.1 प्रस्तावना

मांग तथा पूर्ति के नियम अर्थशास्त्र के आधारभूत नियम हैं। ये आर्थिक सिद्धांत को आधार प्रदान करते हैं। मांग का नियम मांग तथा कीमत के बीच संबंध प्रदर्शित करता हैं और बताता है कि मांग तथा कीमत के बीच व्युत्क्रम फलनात्मक संबंध होता है। पूर्ति के नियम पूर्ति तथा कीमत के बीच के संबंध को प्रदर्शित करता है और यह बताता है कि पूर्ति तथा कीमत के बीच सीधा संबंध होता है। इन नियमों के सत्य होने के लिए कुछ शर्त अवश्य पूरे होने चाहिए, जैसे उपभोक्ता को विवेकशील होना चाहिए तथा कीमत के अलावा अन्य कारक जो मांग और पूर्ति को प्रभावित करते हैं, स्थिर होना चाहिए। इस इकाई में हम मांग और पूर्ति के नियम की व्याख्या करेगें तथा उन कारकों और अन्य संबंधित अवधारणाओं की व्याख्या करेंगें, जो मांग तथा पूर्ति को प्रभावित करते हैं।

मांग की अवधारणा

'मांग' की व्याख्या इस प्रकार से की जा सकती है ''किसी वस्तु की किसी विशिष्ट समय में प्राप्त करने की चाह तथा क्रमशः उपलब्ध क्रय शक्ति''। दिये हुए कीमत पर किसी वस्तु की वह मात्रा जो प्रति इकाई समय में खरीदा जा सके। अतः किसी वस्तु का प्राप्त करने की इच्छा हीं मांग नहीं हो सकती है, जब तक

कि उसके साथ भुगतान करने की क्षमता हो। अर्थात् पर्याप्त मात्रा में मुद्रा की उपलब्धता तथा किी निश्चित समय तथा कीमत पर वस्तु को प्राप्त करने की ईच्छा मंग है। जबकि मांग को प्रभावित करने वो वहुत सारे कारक है। जिसमें से कुछ प्रभावी कारक है। 1. वस्तु की कीमत, 2. संबंधित वस्तुओं की कीमत, 3. खरीदार की आय, 4. उपभोक्ता क रूचि, 5. केता की भविष्य की प्रत्याशा। इन्हें निम्नांकित संकेतों के माध्यम से प्रदर्शित किया जा सकता है। मान लीजिये की x, वस्तु की मांग को लेना है, तो इसे Dx के रूप में रखेंगें। Dx अर्थात् वस्तु की मांग को इस प्रकार रख सकते हैं।

$D_x = f(P_X, P_o, Y, T$ एवं $E)$

जहां, P_x ; x वस्तु की कीमत है,

P_o; अन्य संबंधित वस्तु (स्थानपन्न वस्तु तथा पूरक वस्तु) की कीमत है,

Y; केता की आय है,

T; उपभोक्ता की रूचि/फैशन को प्रदर्शित करता है,

E; भविष्य की प्रत्याशा को दिखा रहा है।

ये पारूप प्रकट करता है कि सबसे पहले उपभोक्ता के दिमाग में किसी वस्तु को खरीदने की चाह उत्पन्न होनी चाहिए। मांग चक्र को पूरा हाने के लिए उसके पास कय शक्ति होनी चाहिएं और अंत में उस वस्तु की खरीदारी होनी चाहिए।

मांग के निर्धारक तत्व

1. **वस्तु की कीमतः** कुछ अपवादों को छोड़कर वस्तु की मांग तथा कीमत के बीच व्युत्क्रमानुपाति संबंध होता है। सामान्य शब्दों में कह सकते हैं कि वस्तु की कीमत जितनी उंची होगी, मांगी गई मात्रा उतनी हीं कम होगी। जबकि कीमत में वृद्धि मांग में कमी लायेगी और इसके विपरीत भी।
2. **संबंधित वस्तुओं की कीमतः** संबंधित वस्तुएं स्थानापन्न या पूरक वस्तयें होंगी। संबंधित वस्तु की कीमत भी वस्तु की मांग को प्रभावित करते हैं। स्थानापन्न वस्तु के संदर्भ में जब वस्तु की कीमत बढ़ेगी तो स्थानापन्न वस्तु की मांग बढ़ जायेगी। और इसके विपरीत भी। उदाहरणस्वरूप DTH और केबल टी.वी. एक दूसरे के स्थानापन्न है। यदि DTH की कीमत में वृद्धि होती है तो केबल टी.वी. के कनेक्सन बढ़ जायेगें। इसी तरह पूरक वस्तुओं के संदर्भ में यदि वस्तु की कीमत बढ़ती है तो पूरक वस्तु की मांग में कमी होगी और इसके विपरीत भी। उदाहरण स्वरूप पेट्रोल की वृद्धि से पेट्रोल चालित कार की मांग में कमी होगी।
3. **केता की आय एवं उसका वितरणः** अन्य महत्वपूर्ण कारक जो मांग को प्रभावित करता है वह है आय का स्तर और अर्थव्यवस्था में आय का बंटवारा। कुछ अपवादों को छोड़कर वस्तु की मांग तथा उपभोक्ता की आय के बीच धनात्मक संबध होता है। साधारण शब्दों मे हम कह सकते हैं कि ज्यादातर वस्तुओं के लिए 'अधिक आय पर अधिक वस्तुओं की मांग का नियम लागू होगा। किसी राष्ट्र के नागरिकों के बीच आय का बंटवारा भी मांग को प्रभावित करने वाला एक कारक है।

4. **उपभोक्ता की रूचिः** वस्तु की मांग को प्रभावित करने वाला यह भी महत्वपूर्ण कारक है। लोग उसी वस्तु को खरीदते हैं, जो उनकी पसंद से मेल खाता है और उनकी ईच्छा के अनुसार हो। पसंदगी को व्यवक्तिनिष्ठ होने के बावजूद भी कम्पनियों को उपभोक्ता के रूचि और पसंदगी का विशेष ध्यान देना पड़ता है। इतना हीं नहीं समय के साथ उपभोक्ता की रूचि तथा पंसदगी परिवर्तित होते रहती है और मांग को प्रभावित करती है। वहीं दूसरी ओर ऐसी वस्तु जो उपभोक्ता की रूचि के अनुसार हो अर्थव्यवस्था में उनकी मांग अधिक होती है, इसके बावजूद की उस वस्तु की कीमत उच्ची है।
5. **भविष्य की प्रत्याशाः** उपभोक्ता द्वारा भविष्य की कीमत की प्रत्याशा भी मांग के आकार को महत्वपूर्ण रूप से प्रभावित करता है। उदाहरण के लिए यदि उपभोक्ता भविष्य में वस्तु की कीमत में वृद्धि की प्रत्याशा लगाता है तो वर्तमान अधिक मात्रा में वस्तु की खरीदारी करेगा। पर यदि कीमत में कमी की प्रत्याशा करता है तो अपने कुछ मांग को विलम्बित कर सकता है।

इसके अलावा अन्य बहुत सारे कारक हैं, जो मांग को प्रभावित करते हैं। ये है सरकारी नीति, क्रेता की सम्पति, जनसंख्या आकार व संरचना, विज्ञापन और राष्ट्रीय आय का वितरण इत्यादि। इन सभी कारकों में कीमत मांग को प्रभावित करने वाला सबसे महत्वपूर्ण कारक है। अतः अन्य कारक (Po, y, T और E) स्थिर माने जाते हैं। इस मान्यता के साथ मांग फलन निम्नांकित दर्शाया जा सकता है। $DX = f(PX) < 0$, (अन्य बातें समान रहने पर) यह दर्शाया जाता है कि वस्तु की मांग और कीमत के बीच विपरीत संबंध होता है।

4.2 मांग का नियम

मांग का नियम कीमत तथा उत्पाद की मांग के बीच संबंध की व्याख्या करता है। मांग के नियम के अनुसार अन्य बातें समान रहने पर कीमत और मांग के बीच विपरीत संबंध होता है।

अतः साधारण शब्दों मे मांग का नियम कहता है कि यदि वस्तु की कीमत में वृद्धि होती है, तब वस्तु की मांगी गई मात्रा में कमी होगी और इसके विपरीत भी। मांग का नियम केवल मांग और पूर्ति के बीच उपलटब्ध संबंधों को केवल बताता है। इसके परिमाणात्मक संबंध को नहीं दर्शाता है। लेहमैन के शब्दों में ''मांग का नियम कहता है कि कीमत में कमी होने पर मांग में वृद्धि होगी तथा कीमत में वृद्धि होने पर मांग में कमी होगी पर यह नहीं बताता कि यह परिवर्तन किस अनुपात में होगा। यह पद की अन्य बातें समान रहने पर इस नियम की मान्यता है। अर्थात यह नियम तभी लागू होगा जब अन्य बातें जैसे उपभोक्ता की रूचि, क्रेता के आय का स्तर, कीमत के अलावा अन्य कारक स्थिर है।

मांग सारणी

मांग सारणी वस्तु की कीमत तथा मांगी गई मात्रा की एक काल्पनिक सारणी है, जो किसी विशेष क्रेता के मांग को विभिन्न कीमतों पर प्रदर्शित करता है। सामान्य शब्दों में हम कह सकते हैं कि मांग सारणी वह सारणी है जिसमें किसी वस्तु की विभिन्न मात्रा को उपभोक्ता द्वारा खरीद की मात्रा को प्रदर्शित

किया जाता है। संतरे के क्रेता की एक काल्पनिक मांग सारणी नीचे दिखलाई गई है:

सारणी 1: एक उपभोक्ता द्वारा संतरे की मांग

प्रति इकाई संतरे की कीमत (रूपये में)	संतरे की मांगी गई मात्रा (दर्जन में)
10	3
8	5
6	6
4	8

एक विवेकशील उपभोक्त कीमत में परिवर्तन की प्रतिक्रिया मांग में वृद्धि तथा कमी कर देता है। ऊपर की मांग सारणी विभिन्न कीमतों पर उपभोक्ता द्वारा मांगी गई संतरें की मात्रा को प्रदर्शित करता है। मांग सारणी यह प्रदर्शित कर रहा है कि जैसे–2 संतरे की कीमत बढ़ रही है, उपभोक्ता द्वारा संतरे की मांगी गई मात्रा कम हो रही है। जब कीमत 4 रूपये प्रति संतरा है तो उपभोक्ता 8 संतरे खरीदता है, जब कीमत बढ़कर 6 रूपये प्रति संतरा हो जाय तो उपभोक्ता 6 संतरे की मांग करता है। जब पुनः कीमत बढकर 8 रूपये प्रति संतरा हो जाती है, तो मांग गीरकर 5 संतरा के बराबर हो जाता है । कीमत बढ़कर 10 रूपये प्रति संतरा हो जाता है तो संतरे की मांगी गई मात्रा केवल 3 रह जाता है।

मांग फलन एवं मांग वक्र

मांग का नियम वस्तु की मांग (अश्रित चर) और इसके निर्धारक तत्व स्वतंत्र चर के बीच के सम्बध को दर्शाता है, जिसे मांग फलन कहते हैं। हम पहले से ही इसे अवधारणा से परिचित हैं, जो $D_x = f(P_x)$ के रूप में प्रदर्शित है। चूंकि D_x एव P_x के बीच विपरीत सम्बंध, मांग वक्र की ढ़ाल हमेशा ऋणात्मक होती है। इसे इस प्रकार से भी दिखाया जा सकता है।

$$D_X = a - bP_X$$

मांग वक्र रैखिक होगा जब इसकी ढ़ाल ($\Delta P/\Delta D$) वक्र के हर बिन्दु पर स्थिर हो। अब यह समीकरण में 'a' अंर्तरोध पर शून्य कीमत पर मांग को दर्शाता है, और 'b' वक्र की ढ़ाल ($\Delta P/\Delta D$) को जो स्थिर मान लिया गया है। इसे चित्र से देखा जा सकता है।

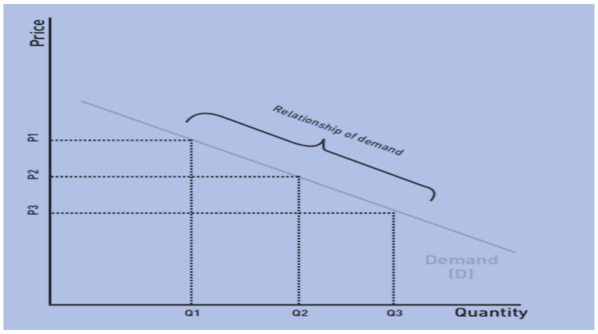

चित्र 4.1

जैसा आप देख सकते हैं, मांग वक्र रैखिक है तथा इसकी ढ़ाल बायें से दायें गिरती हुई है। दिये हुए मांग फलन में यदि a और b का मूल्य ज्ञात है D_X तब को दिये हुए कीमत के सापेक्ष प्राप्त किया जा सकता हैं। इसी तरह D_X के लिए

P_X की गणना की जा सकती है। जिसे निम्नांकित उदाहरण से स्पष्ट किया जा सकता है।

माना कि X = 50 – 2P और कीमत 5 प्रति इकाई है,

तब, X = 50 – (2 × 5)

= 50 – 10 = 40 वस्तुएं।

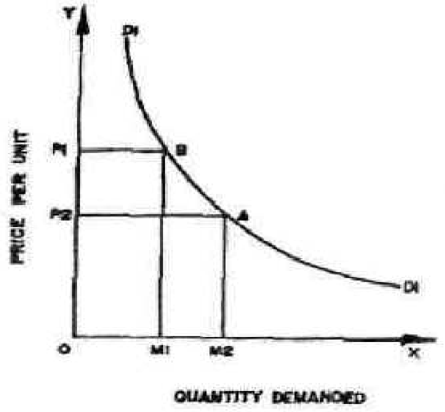

चित्र 4.2

मांग वक्र गैर–रैखिक होगा तब ढ़ाल (ΔP/ΔD) बदलता हुआ होगा। इस स्थिति में मांग फलन को $D_X = aP_X - b$ के रूप में दर्शाया जाता है। इसकी आकृति अतिपरिवलय की होगी। अर्थात्

Dx = $\frac{a}{Dx-c^{-b}}$, जहां a, b, c > 0, है।

मांग वक्र कीमत तथा वस्तु की मांगी गई मात्रा के बीच के संबंध को ग्राफ के माध्यम से प्रदर्शित करता है। मांग वक्र बायें से दायें से दायीं ओर गिरता होता है। यदि हम संतरे की मांगी गई मात्रा गई मात्रा को अक्ष पर लेते हैं तथा संतरे के कीमत को अक्ष पर तब उपर दिये गये कीमत तथा मांग के आधार पर ग्राफ खींचे, तो वह वक्र मांग वक्र को प्रदर्शित करेगा।

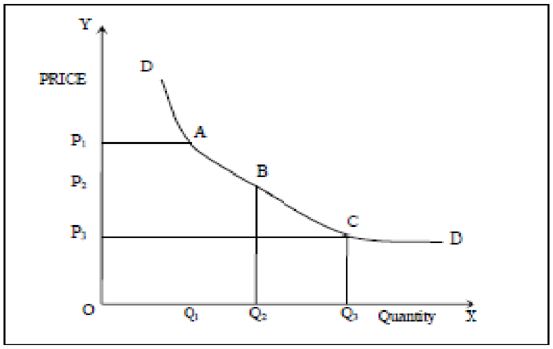

चित्र 4.3

चित्र 4.3 में आप देख सकते हैं कि मांग वक्र बायें से दायें गिरता हुआ है, जो कीमत और मांग के बीच विपरीत सम्बन्ध को प्रदर्शित करता है जैसा कि चित्र 4.3

में है। प्रत्येक उतरोतर कीमत में वृद्धि मांग की मात्रा को कम करती है। चित्र में जब कीमत OP_3 है तो मांग की मात्रा OQ_3, जब कीमत बढ़कर OP_2 हो जाता है तो मांग की मात्रा OQ_2 और जब कीमत OP_1 हो तो मांग की मात्रा घटकर OQ_1 हो होता है।

बाजार मांग, बाजार अनुसूची और बाजार मांग वक्र

बाजार मांग, विभिन्न कीमत स्तर पर बाजार में वस्तु की समग्र मांग है। यह बाजार में प्रत्येक व्यक्ति द्वारा मांगी गई मात्रा का योग है। इसका निर्धारण किसी विशिष्ट कीमत पर प्रत्येक उपभोक्ता द्वारा मांगी गई मात्रा के योग से होता है। सभी उपभोक्ता द्वारा वैकल्पिक काल्पनिक कीमत पर वस्तु वस्तु की मांगी गई मात्र की श्रेणी को बाजार मांग सारणी कहते हैं। यदि आंकड़े को ग्राफ में प्रदर्शित करेगा। विक्रेता के मतानुसार बाजार मांग वक्र विभिन्न कीमतों पर उसके द्वारा बाजार में वस्तु की बेची गई मात्रा को प्रदर्शित करता है। व्यक्तिक मांग वक्र की तरह ही बाजार मांग वक्र नीचे की ओर गिरता हुआ होता है। क्योंकि एक व्यक्तिक मांग मांग वक्र को हीं योग है।

मांग वक्र पर हीं परिवर्तन और मांग वक्र में परिवर्तन

किसी भी व्यापार प्रबंधक के लिए यह जानना आवश्यक है कि कीमत में परिवर्तन तथा अन्य मांग के करकों में परिवर्तन के कारण मांग वक्र की आकृति और संरचना पर क्या प्रभाव पड़ता है। कुछ वस्तुओं के मांग के संदर्भ में अन्य कारकों की अपेक्षा कीमत को अधिक प्रभाव पड़ता है, जबकि कुछ वस्तुओं के मांग पर कीमत से ज्यादा अन्य कारकों का प्रभाव रहता है। कीमत तथा अन्य करकों में परिवर्तन को मांग पर पड़ने वाले प्रभाव की व्याख्या निम्नांकित है।

1. **मांग वक्र पर कीमत में परिवर्तन के प्रभाव**

   मांग में परिवर्तन दो कारणों से होता है। पहला, कीमत में परिवर्तन के करण, दूसरा कीमत के अलावा अन्य करकों में परिवर्तन के कारण। जब मांग में परिवर्तन कीमत में परिवर्तन के कारण होता है, तो वह मांग में विस्तार व मांग में संकुचन के रूप में क्रमशः जाना जाता है। और मांग में परिवर्तन उसी मांग वक्र पर होता है। ऐसे परिवर्तन जो उसी मांग वक्र पर होता है हो चित्र 4.4 में दिखाया गया है। कीमत जब घटकर P_1 से P_2 होता है तब मांगी गई मात्रा बढ़कर Q_1 से Q_2 हो जाता है। इस स्थिति में विन्दु A से B की ओर परिवर्तन मांग के विस्तार के रूप में प्रदर्शित होता है। इसके विपरीत में परिवर्तन जब P_1 से P_2 होता है तो मांग Q_2 से Q_1 घटकर हो जाता है। इस स्थिति में विन्दू B से A की ओर परिवर्तन को मां के संकुचन के रूप में जाना जाता है।

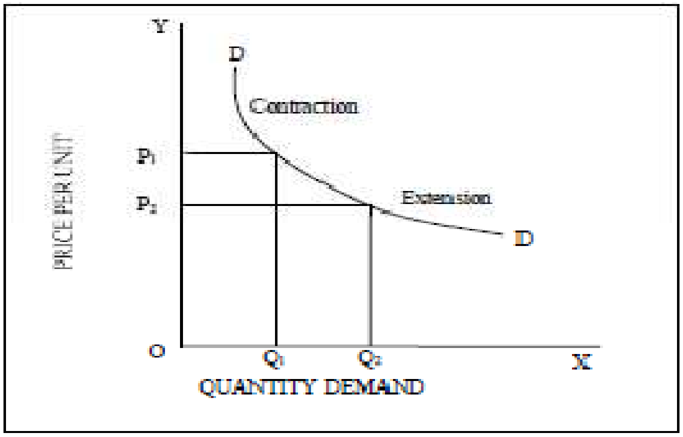

चित्र 4.4

2. अन्य कारकों में परिवर्तन का मांग वक्र प्रभाव

यदि मांग में परिवर्तन मांग के अन्य कारक जैसे उपभोक्ता की रूचि और आय में परिवर्तन के कारण होता है, तो वैसे परिवर्तन को मांग वक्र में परिवर्तन के माध्यम से दिखाया जाता है। न की उसी मांग वक्र के विभिन्न विन्दूओं में परिवर्तन से। जब अन्य बातें स्थिर व अपरिवर्तित रहनें की मान्यता को छोड़ा जाता है तब कीमत के अलावा अन्य कारक मांग को प्रभावित करते हैं, और इसे मांग वक्र में परिवर्तन, मांग वक्र में वृद्धि या कमी को दिखाता है। इस तरह का परिवर्तन चित्र 4.5 में दिखाया गया है।

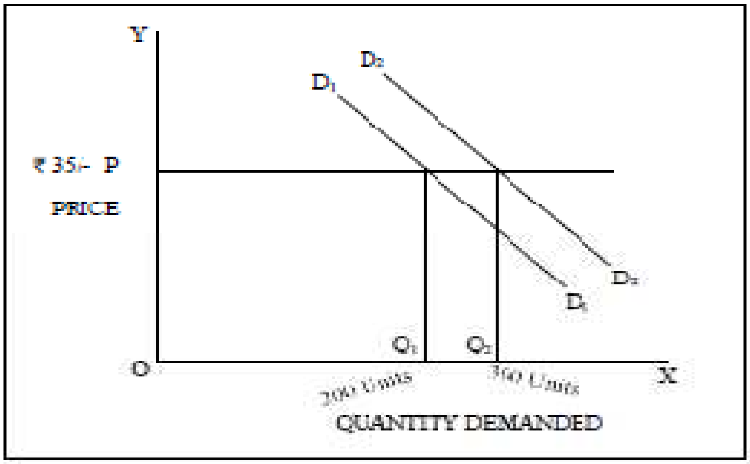

चित्र 4.5

मान लीजिये कि 35 रू. प्रति इकाई कीमत पर किसी उपभोक्ता द्वारा मांगी गई मात्रा 200 इकाई है, अब यदि उसकी आय में वृद्धि होती है तो, माना कि वह 300 इकाई की मांग करता है। अतः अब उसकी मांग 200 इकाई से 300 इकाई हो जाती है, पर कीमत 35 रूपये हीं बनी रहती है। अब यह नया 300 इकाई का मांग नये मांग वक्र D_2D_2 पर दिखाया गया है। यह मांग वक्र में परिवर्तन की स्थिति है। आय में कमी

के कारण उसी कीमत पर कम वस्तु मांगी जायेगी। अतः मांग में वृद्धि और कमी, मांग वक्र के उपर और नीचे के परिवर्तन के कारण, मांग में विस्तार और संकुचन से अलग है।

4.3 मांग वक्र के विभिन्न स्वरूप और आंकृति के कारण

आपने यह ध्यान दिया होगा कि मांग का नियम वस्तु की मांग का नियम वस्तु की मात्रा और कीमत में विपरीत सम्बन्ध होता है जिसे मांग वक्र से प्रदर्शित किया जाता है। मांग वक्र नीचे की ओर गीरता हुआ होता है, इसके कारणों का पता लगाते हैं।

सामान्य वक्र के आकार के कारण

1. **घटते हुए सीमान्त उपयोगिता के नियमः** मांग का नियम घटते सीमान्त उपयोगिता के नियम पर आधारित हैं। क्योंकि प्रत्येक उतरोतर इकाई से कम उपयोगिता प्राप्त होती है। अतः उपभोक्ता अधिक वस्तु की इकाई का क्रय तभी करेगा जब वस्तु की कीमत इतनी कम होगी कि उससे प्राप्त सीमान्त उपयोगिता कीमत के बराबर हो तथा इसके विपरीत भी।
2. **प्रतिस्थापन प्रभावः** प्रतिस्थापन प्रभाव का आशय है वस्तु की कीमत में परिवर्तन के कारण उस वस्तु की मांगी गई मात्रा में परिवर्तन, जब प्रतिस्थापन वस्तु उपलब्ध हो। प्रतिस्थापन प्रभाव के कारण मांग क्र बायें से दायें नीचे की ओर गिरता हुआ होता है। यदि वस्तु की कीमत गिरती है, और उसकी प्रतिस्थापन वस्तु की कीमत स्थिर रहती हैं, तब उपभोक्ता उस वस्तु कीम मांग में वृद्धि करेगा। अर्थात् प्रतिस्थापन वस्तु की मांग भी उस वस्तु की तरफ परिवर्तित हो जायेगी। उदाहरण के लिए चाय और कॉफी स्थानापन्न वस्तु है। यदि चाय की कीमत कम होती है तब उपभोक्ता कॉफी की जगह चाय को प्रतिस्थापित करेगा। तब भी जब कॉफी की कीमत स्थिर रहे। अतः कीमत घटाने के साथ मांग अनुकूल प्रतिस्थापन्न प्रभाव के कारण बढ़ेगा तथा इसके विपरीत भी। यह सत्यापित करता है कि मांग वक्र ऋणात्मक होगा।
3. **आय प्रभावः** आय प्रभाव भी मांग वक्र के गीरते हुए ढाल में योगदान करता हैं। आय प्रभाव वास्तविक आय में परिवर्तन के कारण क्रेता द्वारा मांगी गई मात्रा में परिवर्तन हैं। वास्तविक आय क्रेता की वह आय है जो वस्तु और सेवा के रूप में मापी जाती है। उदाहरण के लिए जब वस्तु के कीमत जब कम होती है, तब उपभोक्ता का वास्तविक आय बढ़ता है। मान लीजिये कि उपभोक्ता का वास्तविक आय बढ़ती है। मान लीजिये कि किसी उपभोक्ता के पास 30 रूपये है और वह सेव खरीदना चाहता है, सेव की कीमत 15 रूपये प्रति किलो है, तो उपभोक्ता अपनी आय से दो किलो सेब खरीद सकता है। अब यदि सेब की कीमत घटकर 10 रूपये प्रति किलो जो जाय, तो उपभोक्ता की वास्तविक आय में 10 रूपये की वृद्धि होगी। जो उपभोक्ता के पास दो विकल्प प्रदान करता है, या तो वह सेब की अधिक मात्रा क्रय करे या अपनी बढ़ी आय से अन्य वस्तु का क्रय करें। दोनों ही स्थिति में मांग में वृद्धि होगी।

4. **मनोवैज्ञानिक प्रभावः** मनोवैज्ञानिक प्रभाव भी मांग वक्र के ऋणात्मक ढ़ाल में योगदान करता है। मांग के नियम को सहायता प्रदान करता है यह मनोवैज्ञानिक प्रभाव हीं हे जिसके कारण से कीमत में कमी होने पर लोग अधिक मात्रा में क्रय करते है। अतः कीमत में कमी से मांग में वृद्धि होता है तथा इसके विपरीत भी। उदाहरणस्वरूप, जब आम के भाव कम होते हैं तब पूरे परिवार के सदस्यों के लिए खरीदारी की जाती है।
5. **नया उपभोक्ताः** वस्तु की कीमत उपभोक्ता की संख्या के बीच विपरीत सम्बन्ध होता है। वस्तु की कीमत उच्ची होने पर उपभोक्ता की संख्या कम होगी और इसके विपरीत भी जब वस्तु की कीमत कम होती है तब जो उपभोक्ता उस वस्तु का उपभोग पहले नहीं कर रहे थे, वे भी उपभोग करने लगते हैं। जिसके कारण कुल बाजार मांग बढ़ जाता है। जब टी.वी. सेट का कीमत कम होता है तब गरीब भी व्यक्ति भी टी.वी. सेट खरीदने लगता है जिससे टी.वी. सेट की मांग बढ़ जाती है।
6. **बहु उपयोगः** कुछ वस्तुओं का कई वैकल्पिक उपयोग होता है अर्थात् उनका कई उपयोग किया जा सकता है। ऐसे वस्तु के संदर्भ में जब इनकी कीमत बढ़ती है तो केवल बहुत जरूरत पर उपयोग होता है और इनकी मांग सीमित हो जाती है। और जब इनकी कीमत कम होती है तो उपभोक्ता इसका उपयोग कई जरूरतों के लिए करने लगते हैं, और मांग बढ़ जाती है। जैसे दूध की कीमत बढ़ने पर केवल महत्वपूर्ण जरूरत की पूर्ति के लिए होगा जबकि कीमत घटने पर कई तरह से उपयोग किया जायेगा और मांग में वृद्धि हो जायेगी।

4.4 मांग के नियम के अपवाद

अन्य नियमों की तह मांग का नियम भी अपवादों से स्वतंत्र नहीं है। कुछ प्रतिबंध तथा स्थितियां है, जिसमें मांग का नियम लागू नहीं होता है। कुछ स्थितियों ऐसी है जिसमें अधिक कीमत पर वस्तु की मांगी गई मात्रा अधिक होती है तथा कम कीमत पर कम होती है। इसमें मांग वक्र की ढ़ाल भी अलग होगी। निम्नांकित मांग के नियम के कुछ अपवाद है।

(a) **विशिष्ट वस्तुएंः** कुछ वस्तुओं की मांग इसलिए होती है, क्योंकि उसकी कीमत ऊंची होती है। कुछ उपभोक्ता अपनी उपयोगिता को कीमत से मापते हैं। यदि वस्तु महंगी होती है जो वे समझते हैं, वह उनके लिए अधिक उपयोगी है और उसके लिए और ऊंची कीमत देने को तैयार रहते हैं। अतः कीमत अधिक होने पर हीं उस वस्तु की मांग करते हैं औ इसके विपरीत भी। उदाहरण के लिए सोना और हीरा। सोने और हीरे के कीमत जितनी अधिक होगी उतना हीं उससे जुड़ी प्रतिष्ठा मूल्य होगा, उतनी ही अधिक कीमत होगी।

(b) **गीफन वस्तुएंः** सामान्यतः वैसी वस्तु जो उपभोक्ता द्वारा निम्न कोटि की समझी जाती है, जिनकी कीमत कम होती है, और उपभोक्ता के बजट में उसका स्थान होता है, तो उसे गीफेन वस्तु कहते हैं। उदाहरण के लिए मोटे अनाज जैसे बाजरा, कम गुणवता वाला चावल, गेहूं इत्यादि। सर रॉबर्ट गीफेन नामक अर्थशास्त्री ने यह पाया की ब्रेड का कीमत बढ़ने पर ब्रिटिश कामगारों ने ब्रेड की मांग कम करने के बजाय बढ़ा दी है। उन्हें

आश्चर्य हुआ, क्योंकि यह मांग के नियम के विपरीत था, और वे उसका कारण ढूंढने लगे। और कारण यह निकला की ब्रेड हीं नहीं मीट और खाद्य पदार्थ के दाम भी अत्यधिक बढ़ गये है, जबकि ब्रेड की कीमत बढ़ने के बावजूद एक सस्ता खाद्य पदार्थ बना हुआ है। अतः लोग इसके उपभोग को कीमत बढ़ाने के बाद भी बढ़ाते हैं।

(c) **कीमत के लिए भविष्य की प्रत्याशाः** यह मांग के नयम का अन्य अपवाद है। जब कीमत बढ़ने की प्रत्याशा होती है तो लोग उस वस्तु की मांग बढ़ा देते हैं। लोगों की यह सामान्य प्रवृति होती है कि यदि वस्तु की कीमत बढ़ रही है तो भविष्य में भी उसकी कीमत बढ़ेगी और उसका मांग बढ़ा देते हैं। जब तेल उत्पादक देशों के बीच युद्ध चल रहा हो तो लोगों की यह प्रत्याशा होती है कि भविष्य में तेल की कीमत बढेगी और वे बढ़े हुए कीमत पर भी अधिक तेल उत्पादों की मांग करते है। अतः लोगों की कीमत प्रत्याशा में परिवर्तन के कारण मांग का नियम लागू नहीं होता है।

(d) **प्रचलित कीमत की अनभिज्ञयता/अज्ञानताः** कभी–कभी अनभिज्ञयता बस भी लोग ऊंची कीमत पर अधिक वस्तु की मांग करते हैं। क्रेता को प्रचलित कीमत का ज्ञान नहीं होता है और वह ऊंची कीमत पर अधिक वस्तु को खरीदता है।

(e) **जब उपभोक्ता विवेकपूर्ण नहीं होताः** यह मान्यता है कि उपभोक्ता विवेकपूर्ण है। जब उपभोक्ता विवेकपूर्ण नहीं है, तो उसका व्यवहार मांग के नियम के विपरीत होता है। मांग का नियम अन्य बातें समान रहने की मान्यता पर आधारित है, अर्थात कीमत के अलावा सभी कारक स्थिर रहे। यदि कीमत के अलावा अन्य कारक में परिवर्तन होता है, तब मांग में परिवर्तन, मांग के नियम अनुसार नहीं होगा।

आगे, मांग का नियम 'अन्य बातें' समान रहने की मान्यता पर आधारित है अर्थात अन्य कारक स्थिर है। ऐसी स्थिति जिसमें कीमत के साथ अन्य कारक भी परिवर्तित हो तो कीमत और मांग में परिवर्तन वैसा नहीं होगा, जैसा मांग का नियम कहता है।

मांग के नियम के प्रकार

मांग को तीन प्रकार से वर्गीकृत किया जाता है।

1. कीमत मांग
2. आय मांग
3. तिर्यक मांग

1. **कीमत मांगः** कीमत मांग पर आधारित है। क्योंकि यह उपभोक्ता द्वारा वस्तु की विभिन्न मात्रा दिये हुए समय पर दिये हुए कीमत की मान्यता पर आधारित है, जब अन्य बातें समान हो। साधारण शब्दों में कीमत मांग में हम सामान्यतः कीमत और मांग के बीच संबंध को अध्ययन करते हैं।

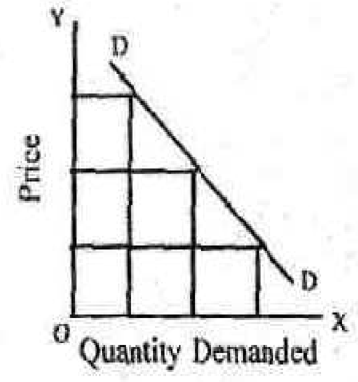

चित्र 4.6 कीमत और मांग के बीच सम्बध को दर्शाता है।

2. **आय मांगः** आय मांग और मांगी गई मात्रा से सम्बन्धित है। यह उपभोक्ता द्वारा विभिन्न आय पर वस्तु की मांगी गई मात्रा को प्रदर्शित करता है। सामान्यतः आय के बढ़ने के साथ वस्तु की मांगी गई मात्रा भी बढ़ती है और इसके विपरीत भी।

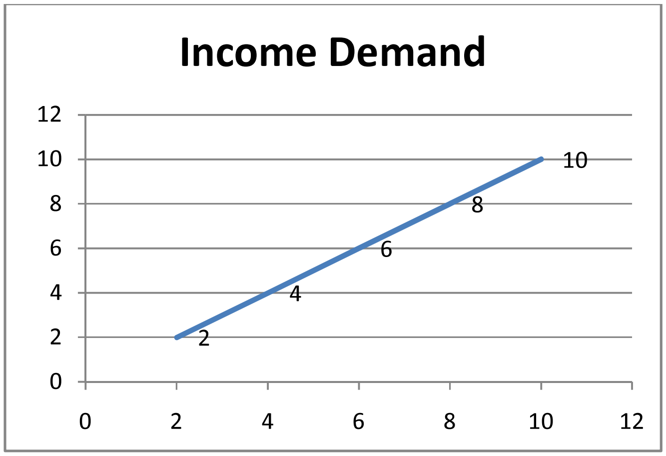

चित्र 4.7 आय और मांग के बीच के सम्बन्ध को प्रदर्शित करता हैं।

3. **तिर्यक/आड़ी मांगः** तिर्यक मांग की अवधारणा स्थानापन्न तथा पूरक वस्तु के परिप्रेक्ष्य में आता है। यह एक वस्तु की मांग तथा दूसरे वस्तु की कीमत से सम्बन्धित है। जब एक वस्तु की मांग दूसरे वस्तु की कीमत से सम्बंधित हो तो उसे तिर्यक मांग कहते हैं। स्थानापन्न वस्तुयें वे वस्तुये होती हैं जो एक दूसरे के बदले उपयोग की जा सकती है। उदाहरण के लिए चाय और कॉफी स्थानापन्न वस्तुओं के संदर्भ में मांग और कीमत के बीच धनात्मक सम्बंध होता है। अर्थात् जब एक वस्तु की कीमत बढ़ती है ता दूसरे की मांग बढ़ जाती है। और इसके विपरीत भी। वहीं दूसरी ओर पूरक वस्तुओ का उपयोग ईच्छा पूर्ति के लिए एक साथ होता है। अन्य शब्दों में पूरक वस्तुयें वे है जो एक साथ मिलकर एक वस्तु की तरह उपयोग की जाती है। अकेले वे अधूरे रहते हैं। पूरक वस्तु के उदाहरण

कलम और स्याही है। इसका आशय जब एक वस्तु की कीमत बढ़ती है तो दूसरे की मांग कम हो जाती है।

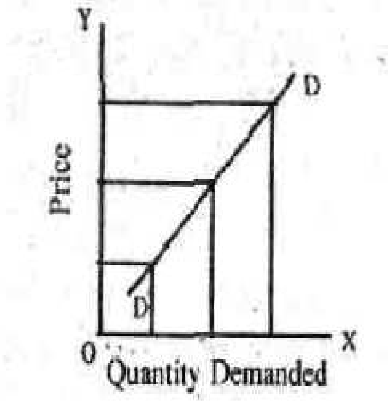

चित्र 4.8

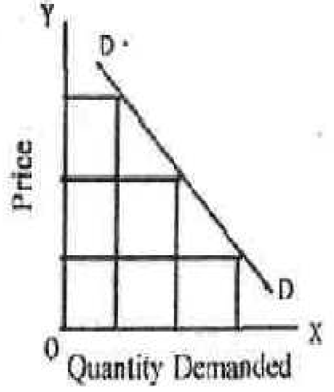

चित्र 4.9

चित्र 4.8 दो स्थानापन्न वस्तुओं की मांग और कीमत के बीच के सम्बन्ध को प्रदर्शित कर रहा है। वहीं चित्र 4.9 पूरक वस्तुओं के मांग और कीमत के बीच के सम्बन्ध को प्रदर्शित कर रहा है। चित्र 4.8 में X–वस्तु की मात्रा X–अक्ष पद और इसके स्थानापन्न Y वस्तु की कीमत को Y–अक्ष पर दिखाया गया है। मांग वक्र धनात्मक ढ़ाल का है, अर्थात् स्थानापन्न वस्तु की कीमत में वृद्धि वस्तु की मांग में वृद्धि करेग। इसके विपरीत चित्र 4.9 में पूरक वस्तुओं के कीमत और मांग के बीच सम्बन्ध को दिखाया गया है।

मांग के नियम की महत्ता

मांग का नियम व्यापारिक इकाई को भविष्य की योजना बनाने में महत्वपूर्ण भूमिका अदा करता है। साथ हीं यह निर्णय लेने में मदद करता है। मांग के नियम की व्यवहारिक तथा सैद्धान्तिक महत्व को निम्नांकित तरीके से व्याख्या की गई हैः

1. **सरकार के नीति निर्माण तथा अन्य महत्वपूर्ण मुद्दों पर सहायता करता हैः** मांग का नियम सरकार को महत्वपूर्ण मुद्दों को हल करने में मदद करता है। उदाहरण के लिए वितमंत्री इस नियम की सहायता से अपने कर सुधार और अन्य नीतियों के बारे में जान सकते हैं। बिक्री कर लगाते समय, सरकार उस वस्तु की मांग की लोच ध्यान में रखती है। सरकार उन्हीं वस्तुओं पर कर लगा सकती है, जिनकी मांग बेलोच है।
2. **किसानों के लिए उपयोगीः** यह नियम किसानों के लिए लाभदायक है। क्योंकि मांग के नियम की सहायता से किसान यह जान सकता है कि अच्छी और खराब फसल उसकी आर्थिक स्थिति को कैसे प्रभावित करती है। उदाहरण के लिए यदि फसल अच्छी होती है, लेकिन उसके सापेक्ष वस्तु की मांग में वृद्धि नहीं होती है तो वस्तु की कीमत निश्चित रूप से कम हो जायेगी। यह समाज के लिए फायदेमंद है पर किसान के लिए नहीं।

3. **एकाधिकार में कीमत का निर्धारणः** मांग का नियम एकाधिकारी को वस्तु के कीमत निर्धारण में सहायता प्रदान करता है। मांग के नियम का उपयोग कर वह वस्तु की कीमत को योजना के क्षेत्र में निर्धारित करता है जो उसे लाभ अधिकतम करने में मदद करता है।
4. **योजना के क्षेत्र में:** मांग सरणी वस्तु तथा उद्योगों की योजना से महत्वपूर्ण योगदान रखते हैं। इस स्थिति में यह जानना आवश्यक है कि दिया हुआ कीमत परिवर्तन देश में या विदेश में वस्तु की मांग पर प्रभाव डलता है। यह किसी वस्तु के मांग सारणी के अध्ययन से जाना जा सकता है।

मांग के नियम से जूड़े अन्य पद

संयुक्त मांग

यह पद पूरक वस्तुओं की स्थिति में या बहुत सारी वस्तु संयुक्त उद्‌देश्य के लिए मांगी जाती है या किसी विशेष मांग को पूरा करने के लिए किया जाता है। उदाहरण के लिए दूध, चीनी और चाय संयुक्त रूप से मांगी जाती है चाय बनाने के लिए। उसी तरह लिखने के लिए कागज, कलम और स्याही की मांग की जाती है। यातायात के लिए कार और पेट्रोल की मांग की जाती है, समूह में इन वस्तुओं की मांग को संयुक्त मांग कहते हैं। किसी संगठन में उत्पादन के लिए भूमि, श्रम, पूंजी, मैटिरियल एवं मशीनरी की मांग भी संयुक्त मांग है।

बहुपयोगी मांग

इस पद का प्रयोग वैसी वस्तु के लिए होता है, जिसका बहु उपयोग है; ऐसी वस्तु जो कई तरह के उपयाग में लाया जा सकता है को बहुपयोगी मांग कहते हैं। उदाहरण के लिए 'दूध जो चाय तथा कॉफी बनाने में तथा चीज और दही इत्यादि बनाने में उपयोग किये जाते हैं। बिजली का उपयोग रोशनी, गर्म करने, इंजन चालाने तथा पंखे चलाने में उपयोग होता है। वस्तु की मांग जब वैकल्पिक उपयोग के लिए होती है, बहुपयोगी कहते हैं।

सीधा और व्युत्पन्न मांग

यदि वस्तु की मांग सीधा उपभोग के लिए किया जाता है सीधा मांग कहलाता है, जैसे खाना, कपड़ा इत्यादि। सीधा मांग स्वप्रेरित मांग भी कहलाता है। यहां मांग किसी मुख्य वस्तु से नहीं जुड़ा रहता है, पर जब किसी वस्तु की मांग किसी अन्य वस्तु और सेवा की मांग का परिणाम हो तो उसे व्युत्पन्न मांग कहते हैं। उदाहरण के लिए सीमेंट की मांग भवन निर्माण के लिए व्युत्पन्न मांग है टायर की मांग कार और स्कूटर के लिए व्युत्पन्न मांग है। इसी तरह श्रम की माग व्युत्पन्न मांग हैं, क्योंकि इसकी मांग इसके द्वारा उत्पादित वस्तु की मांग के कारण होता है।

4.5 पूर्ति की अवधारणा

पूर्ति वस्तु की वह मात्रा है, जो उत्पादक दिये हुए बाजार में बेचना चाहता है, दिये हुए समय में विभिन्न कीमतों पर जब अन्य बातें समान हो।

पूर्ति का नियम

पूर्ति का नियम, यह कहता है कि अन्य बातें समान रहने पर ऊंची कीमत पर अधिक वस्ती की पूर्ति होती है और कम कीमत पर कम वस्तु की पूर्ति होती है।

इसके आधार पर यह कहा जा सकता है कि वस्तु की पूर्ति और कीमत के बीच सीधा सम्बन्ध होता है। अर्थात् वस्तु की कीमत बढ़ने पर इसकी पूर्ति भी बढ़ती है। औस इसके विपरीत भी जब अन्य बातें समान हो।

पूर्ति सारणी

पूर्ति सारणी वस्तु की मात्रा की विभिन्न कीमतों पर उत्पादक द्वारा दिये हुए समय पर पूर्ति की गई मात्रा है।

पूर्ति वक्र

पूर्ति वक्र पूर्ति के नियम का बिन्दुरेखीय या चित्रमय प्रदर्शन है। जैसा की वस्तु की कीमत और पूर्ति की मात्रा के बीच धनात्मक सम्बन्ध होता है। अतः पूर्ति वक्र धनात्मक ढ़ाल का उपर की ओर बढ़ता हुआ होता है। पूर्ति वक्र को चित्र 4.8 में दिखाया गया है। चित्र 4.10 में कीमत को Y–अक्ष पर ता वस्तु की मात्रा को X–अक्ष पर दर्शाया गया है। पूर्ति वक्र को S से दर्शाया गया है जो उपर की ओर उठता हुआ धनात्मक ढ़ाल का है। प्रत्येक कीमत वृद्धि पर पूर्ति की मात्रा में वृद्धि हो रहीं है। P_1 कीमत पर पूर्ति की मात्रा Q_1 है। जब कीमत बढ़कर P_2 हो जाता है तो पूर्ति की मात्रा Q_2 हो जाती है। और यदि कीमत और बढ़कर P_3 हो जाए तो पूर्ति में वृद्धि Q_2 से Q_3 हो जायेगा।

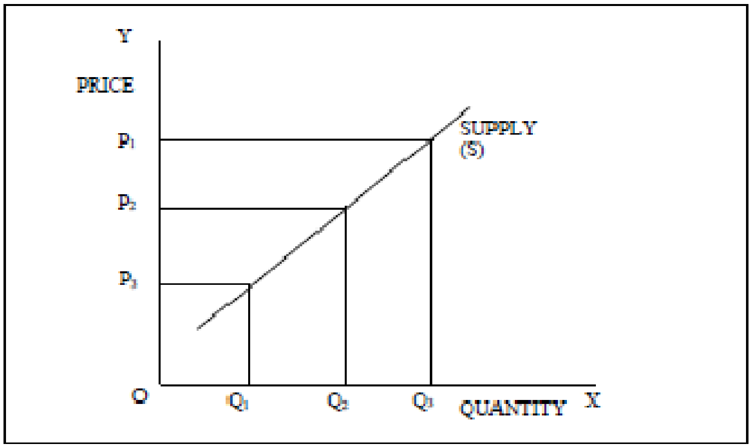

चित्र 4.10

पूर्ति को प्रभावित करने वाले कारक

वे कारक जो वस्तु की पूर्ति को प्रभावित करने है कि व्याख्या निम्नांकित है:

1. **जनसंख्या का आकारः** जनसंख्या का आकार जितना बड़ा होगा, पूर्ति की मात्रा उतना हीं अधिक होगी और इसके विपरीत भी।
2. **आय का स्तरः** आय का स्तर क्रेता की क्रय क्षमता को सुनिश्चित करता है, जब क्रेता की क्रय शक्ति अधिक होगी, अधिक वस्तुओं की मांग करेगा, परिणाम स्वरूप वस्तु की पूर्ति बढ़ जायेगी। सामान्य शब्दों में वस्तु की पूर्ति और कीमत के बीच सीधा सम्बन्ध होता है।
3. **सम्बन्धित वस्तुओं की कीमतः** सम्बन्धित वस्तुओं की कीमत भी उत्पाद की पूर्ति को प्रभावित करते हैं, सम्बन्धित वस्तु एक स्थानापन्न वस्तु या पूरक वस्तु हो सकता है जब स्थानापन्न वस्तु की कीमत बढ़ती है तो वस्तु की मांग बढ़ जायेगी और उसकी पूर्ति भी बढ़ेगी और इसका उल्टा भी सत्य होगा।

4. **सरकारी नीतिः** सरकारी नीति भी उत्पाद की पूर्ति को प्रभावित करता है। ऊंचे मांग जन्य मंहगाई की स्थिति में सरकार उत्पाद की पूर्ति को बढ़ाता है। महंगाई को कम करने के लिए।
5. **तकनीकि की स्थितिः** तकनीकि स्थिति वस्तु की गुणवत्ता को बढ़ाने में मदद करता है। साथ हीं लागत कम करता है। तकनीकि विकास का मान तकनीकि के स्तर से सीधा सम्बन्ध रखता है। बेहतर तकनीकि पूर्ति मात्रा को बढ़ायेगा और इसके विपरीत भी सत्य है।
6. **उत्पादन साधन की लागत में परिवर्तनः** उत्पादन साधनों की लागत भी उतपद की पूर्ति को प्रभावित करते हैं यह परिवर्तन उत्पादक को उतपादन रेखा में परिवर्तन के लिए मजबूर कर सकते हैं और विभिन्न उत्पादों के उत्पाद मिश्रण में परिवर्तन कर सकता है, सभी तरक से बाजार में उत्पाद की पूर्ति परिवर्तित होगी।

बाजार संस्थिति

मांग की कीमत से विपरीत सम्बन्ध और पूर्ति को कीमत से सीधा सम्बन्ध होता है। बाजार की संस्थिति मांग और पूर्ति वक्र के कटान बिन्दू पर होता है। कटान बिन्दु वह बिन्दु है जो संस्थिति कीमत P और संस्थिति मात्रा Q को दर्शाता है, जैसा कि चित्र 4.11 में दिखाया गया है। संस्थिति कीमत पर विक्रेता अपनी वस्तु को बेच कर तथा क्रेता खरीद कर संतुष्ट रहेगा। अतः E बिन्दू पर OQ मात्रा और OP कीमत स्तर पर क्रेता और विक्रेता दोनों संस्थिति में होगें।

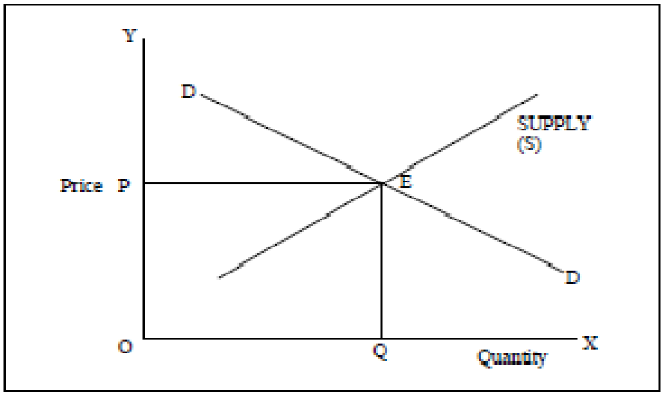

चित्र 4.11

4.6 सारांश

मांग का नियम अर्थशास्त्र का सबसे लोकप्रिय और आधारभूत नियम है। यह बताता है कि कीमत और मांग के बीच विपरीत सम्बन्ध होता है। अर्थात् किसी वस्तु की मांग उसकी कीमत घटने पर बढ़ती है, तथा इसके विपरीत भी। पर इसके विपरीत सम्बन्ध को स्थापित करने के लिए मांग का नियम अन्य करकों जैसे सम्बन्धित वस्तुओं की कीमत, उपभोक्ता की आय तथा रूचि स्थिर रहते है। मांग के नियम के कुछ अपवाद भी है। आगे यदि मांग में परिवर्तन केवल कीमत में परिवर्तन के कारण होता है तो वह परिवर्तन मांग वक्र पर विभिन्न बिन्दुओं में परिवर्तन के माध्यम से परिवर्तित होता है। जब मांग में परिवर्तन कीमत के अलावा

अन्य कारकों के कारण होता है, वह मांग वक्र में परिवर्तन या वर्वतन के माध्यम से दर्शाया जाता है। यह इकाई मांग के नियम की महत्ता समाज के विभिन्न वर्गों जैसे किसान, एकाधिकारी सरकार इत्यादि के लिए इसकी उपयोगिता को प्रदर्शित करता है।

4.7 शब्दावली

मांगः ''किसी वस्तु की किसी विशिष्ट समय में प्राप्त करने की चाह तथा क्रमशः उपलब्ध क्रय शक्ति''।

मांग का नियमः इस नियम के अनुसार अन्य बातें समान रहने पर कीमत और मांग के बीच विपरीत संबंध होता है।

पूर्तिः वस्तु की वह मात्रा है, जो उत्पादक दिये हुए बाजार में बेचना चाहता है, दिये हुए समय में विभिन्न कीमतों पर जब अन्य बातें समान हो।

4.8 बोध प्रश्न

(A) रिक्त स्थानों को भरें

1. चाह का अर्थ वस्तु को खरीदने की ————————————।
2. ———————— में परिवर्तन के कारण मांग में परिवर्तन उसी वक्र पर होता है।
3. सभी व्यक्तियों की उत्पाद मांग का कुल योग जाना जाता है ———————।
4. मांग वक्र की ढ़ाल —————————— ।

(B) सत्य या असत्य

1. आय में वृद्धि के कारण सभी तरह की वस्तु की मांग में वृद्धि हाती है।
2. एक ही कीमत पर अधिक मांग, मांग में वृद्धि के रूप में जाना जाता है।
3. मांग का नियम वस्तु की मांग और पूर्ति के सम्बन्ध को प्रदर्शित करता है।
4. पूरक वस्तुएं एक दूसरे के प्रतिद्वंदी होते हैं।
5. व्युत्पन्न मांग स्वायत मांग से भी जाना जाता है।
6. गिफेन वस्तुएं निकृिष्ट वस्तुएं हैं।
7. अन्य बातें समान है का मतलब सभी कारक गतिज हैं।
8. पूर्ति वक्र धनात्मक ढ़ाल का है।
9. बाजार संस्थिति वह बिन्दु है, जहां मांग और पूर्ति एक दूसरे को काटते हैं।

4.9 बोध प्रश्नों के उत्तर

(A)

1. ईच्छा, 2. कीमत, 3. बाजार मांग, 4. दाहिने की ओर गिरता हुआ।

(B)

1. असत्य, 2. सत्य, 3. असत्य, 4. असत्य, 5. असत्य, 6. सत्य, 7. असत्य, 8 सत्य, 9. सत्य।

4.10 स्वपरख प्रश्न

(A) लघु उत्तरीय प्रश्न

1. मांग से आप क्या समझते हैं?
2. किस परिस्थिति में मांग वक्र बायें से दायें उठता हुआ होता है?
3. मांग के विभिन्न प्रकारों को चर्चा करें।

(B) दीर्घ उतरीय प्रश्न

1. मांग में वृद्धि और मांग में विस्तार में अतंर बताइए।
2. मांग के विभिन्न निर्धारक ततें की व्याख्या करें।
3. पूर्ति के नियम की व्याख्या करें तथा इसके निर्धारक तत्व को बतायें।

4.11 सन्दर्भ पुस्तकें

1. Alfed W. Stonier and Douglas C. Hague, A Text Book of Economic Theory, Longman, 1990.
2. Samuelson, P.A. and W.D. Wordhans, Economics – McGraw Hill, 1985.
3. Green, H., Consumer Theory, Penguin, 1972.
4. Wold, H., Demand Analysis, New York, John Wiley & Sons, (1953).
5. Schultz, H., Theory and Measurement of Demand, Chicago, University of Chicago Press, 1964.
6. Gould, J.P. and C.E. Ferguson, Microeconomic Theory, 8th ed., Homewood III, Richard D. Irwin, (1980).
7. Dr. D.M. Mithani, Managerial Economics – Theory and Applications : Himalaya Publishing House.
8. Mehta, P.L., Managerial Economics – Analysis, Problem and Cases, Sultan Chand & Sons, New Delhi.
9. H. L. Ahuja, Business Economics Micro – S. Chand & Co. Ltd., New Delhi, 1999.
10. S.K., Mishra and V.K. Puri, Advanced Microeconomic Theory, Himalaya Publishing House, Mumbai, 2001.

*****

इकाई 5 मांग एवं पूर्ति के लोच

इकाई की रूपरेखा

5.1 प्रस्तावना
5.2 मांग की कीमत लोच
5.2.1 मांग की कीमत लोच की कोटि
5.3 मांग की आय लोच
5.4 तिर्यक मांग की लोच
5.5 मांग की कीमत लोच का माप
5.6 मांग की कीमत लोच के निर्धारक तत्व
5.7 मांग की लोच का महत्व
5.8 पूर्ति की लोच
5.9 पूर्ति की कीमत लोच के निर्धारक तत्व
5.10 सारांश
5.11 शब्दावाली
5.12 बोध प्रश्न
5.13 बोध प्रश्नों के उत्तर
5.14 स्वपरख प्रश्न
5.15 सन्दर्भ पुस्तकें

उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप इस योग्य हो सकेंगे कि –

- मांग की लोच के अर्थ को समझ सकें।
- मांग की लोच को परिमाणित कर सकें।
- मांग और पूर्ति के निर्धारक तत्वों की पहचान कर सकें।

5.1 प्रस्तावना

किसी भी व्यापारिक संगठन को चलाने के लिए केवल मांग में परिवर्तन की सूचना होना पर्याप्त नहीं है क्योंकि यह उत्पादन और बिक्री की योजना में परिवर्तन के लिए अपर्याप्त है। इसे कीमत, उपभोक्ता की आय, रूचि और प्रत्याशा के परिवर्तन के प्रभाव के परिणाम की जानकारी आवश्यक है। इन प्रभावों के समझ के पश्चात हीं कोई फर्म अपने बिक्री और बिक्री आय के परिमाण को पूर्वानुमान लगा सकता हैं। पूर्ति की अवधारणा के विभिन्न आयामों की समझ के बगैर मांग का विश्लेषण अधूरा रह जाता है।

5.2 मांग की कीमत लोच

मांग का नियम सामान्यतः कीमत में परिवर्तन के कारण मांग की दिशा में परिवर्तन का संकेत करता है। यह कीमत में कमी के कारण मांग की मात्रा में परिवर्तन को बताने में असफल रहता है। अर्थशास्त्रियों ने मांग की कीमत लोच की अवधारणा का विकास किया जो कीमत में परिवर्तन के कारण मांग में परिवर्तन की कितनी मात्रा है।

श्रीमति जॉन रबिन्सन क शब्दों में ''किसी कीमत पर मांग की लोच कीमत में छोटे परिवर्तन के कारण मांग में अनुपातिक परिवर्तन है।''
अतः कीमत मांग की लोच वस्तु की कीमत में परिवर्तन के कारण मांगी गई मात्रा में प्रतिशत परिवर्तन का मापन है। यह इस प्रकार भी लिखा जा सकता है।

$$E_d = \frac{\text{Percentage change in quantity demanded}}{\text{Percentage change in price}}$$

$$E_d = \frac{\text{मांगी गई मात्रा में प्रतिशत परिवर्तन}}{\text{कीमत में प्रतिशत परिवर्तन}}$$

5.2.1 मांग की कीमत लोच की कोटि

विभिन्न वस्तुओं की मांग की कीमत लोच में परिवर्तन के साथ बदलता है। मांग की कीमत लोच की कोटि अन्नत से शून्य के बीच परिवर्तित होता है। निम्नांकित गद्याशों के माध्यम से आप मांग की कीमत लोच का परीक्षण कर सकते है।

(a) **पूर्णतः मांग की कीमत लोच अर्थाता $E_d = \infty$:** पूर्णतः मांग की कीमत लोच वह है जिसके अन्तर्गत कीमत में छोटा परिवर्तन मांग की मात्रा में अन्नत परिवर्तन करे। इस स्थिति में उपभोक्ता दिये हुए कीमत पर किसी मात्रा में वस्तु का कय कर सकता है। यह चित्र 5.1 में प्रदर्शित है।

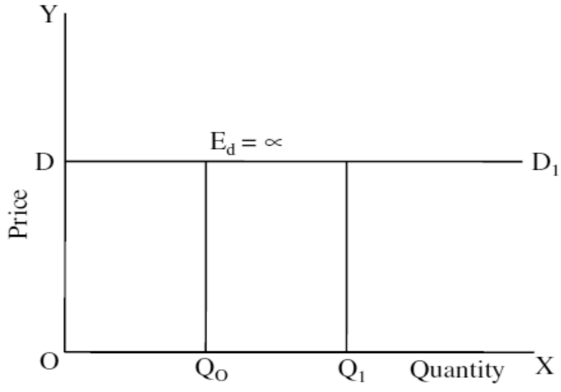

चित्र 5.1

इस चित्र में DD_1 मांग वक्र है, जो X–अक्ष के समानान्तर है। यह बताता है कि दिये हुए कीमत पर अन्नत मात्रा में वस्तु प्राप्त की जा सकती है। एक उपभोक्ता OQ_0 या OQ_1 मात्रा में दिये हुए कीमत पर वस्तु प्राप्त कर सकते हैं। यदि कीमत में छोटा परिवर्तन की जाय जो मांग की मात्रा शून्य हो सकता है। इस स्थिति में मांग की लोच अनंत होता है।

(b) **पूर्णतः बेलोच मांग अर्थात $E_d = 0$:** पूर्णतः बेलोच मांग वह है जिसमें कीमत के परिवर्तन का मांगी गई मात्रा पर कोई प्रभाव नहीं होता है। कीमत में कितना भी परिवर्तन हो मांगी गई मात्रा अपरिवर्तित रहती है। इसकी व्याख्या चित्र 5.2 मे किया गया है। चित्र में मांग DD_1वक्र है जो Y–अक्ष के समानान्तर है। यह दिखाता है कि जब वस्तु की कीमत OP_0 है; तब मांगी गई मात्रा OQ है। जब वस्तु की कीमत OP_0 से बढ़कर OP_1

हो जाता है, तभी मांगी गई मात्रा में कोई परिवर्तन नहीं होता है। अर्थात OQ हीं रहता है। इस स्थिति में मांग की लोच का मान शून्य होगा।

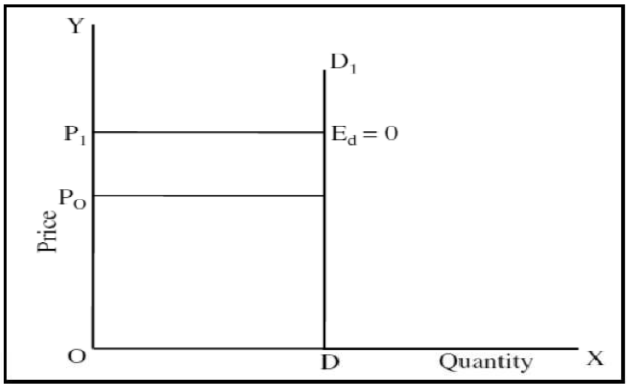

चित्र 5.2

(c) **मांग की इकाई लोच अर्थात्** $E_d = 1$: मांग की इकाई लोच तब होगा, जब वस्तु की मांगी गई मात्रा में परिवर्तन कीमत में परिवर्तन के समानुपातिक होगा, अन्य शब्दों में वस्तु की कीमत और मांगी गई मात्रा में समानुपातिक परिवर्तन होता है।

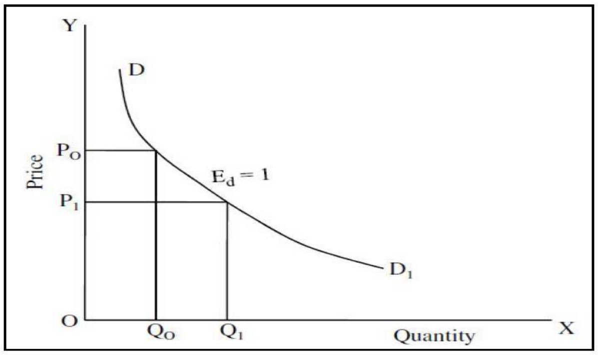

चित्र 5.3

इसे चित्र 5.3 के माध्यम से समझा जा सकता है। चित्र 5.3 में जब कीमत OP_0 है तब मांगी गई मात्रा OQ_0 है। जब वस्तु की कीमत गीरकर OP_1 हो जाता है, तो मांगी गई मात्रा बढ़कर OQ_0 से OQ_1 हो जाता है। इस स्थिति में कीमत में परिवर्तन मांग की मात्रा में परिवर्तन के बराबर है। अन्य शब्दों में कीमत और मांगी गई मात्रा में समानुपाती है जिसकी व्याख्या चित्र 5.3 में किया गया है। इस स्थिति में कीमत में परिवर्तन, मांग की मात्रा में परिवर्तन के बराबर है। मांग लोच का मूल्य 1 के बराबर है।

(d) **सापेक्षिक लोचदार मांग अर्थात्** $E_d > 1$: सापेक्षिक मांग की लोच वह जिसमें वस्तु की मांगी गई मात्रा में परिवर्तन वस्तु की कीमत में परिवर्तन से अधिक हो। अन्य शब्दों में कीमत में एक छोटा परिवर्तन मांग की मात्रा में बहुत बहुत अधिक परिवर्तन करता है। इस घटना को चित्र 5.4 में दिखाया गया है।

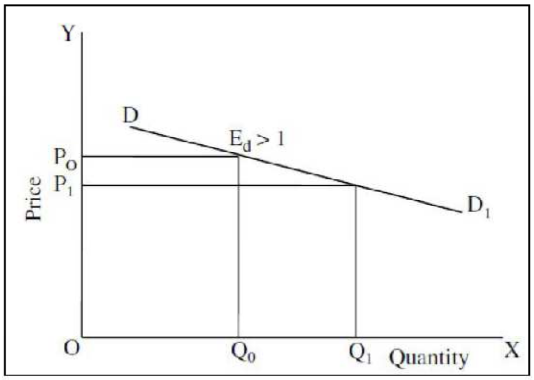

चित्र 5.4

चित्र 5.4 में DD_1 मांग वक्र है, जब वस्तु की कीमत OP_0 है, तो मांगी गई मात्रा OQ_0 है, जब वस्तु की कीमत OP_0 से घटकर OP_1 हो जाता है, तब मांगी गई मात्रा OQ_0 से बढ़कर OQ_1 हो जाती है। इस चित्र में मांगी गई मात्रा में परिवर्तन कीमत में परिवर्तन से अधिक है। मांग की लोच का मान इस स्थिति में इकाई से अधिक होगा।

(e) **सापेक्षिक बेलोचदार मांग अर्थात्** $E_d < 1$: जब वस्तु की मांगी गई मात्रा में परिवर्तन कीमत में परिवर्तन से कम हो, तो वह सापेक्षिक बेलोच मांग कही जायेगी। अन्य शब्दों में मांगी गई मात्रा में परिवर्तन कीमत में परिवर्तन से कम है। इसे चित्र 5.5 की सहायता से समझा जा सकता है। चित्र 5.5 में OP_0 कीमत पर मांगी गई मात्रा OQ_0 है। और जब वस्तु की कीमत OP_0 से बढ़कर OP_1 हो जाता है, तब मांगी गई मात्रा OQ_0 से घटकर OQ_1 हो जाती है। चित्र 5.5 यह प्रदर्शित करता है कि वस्तु की मात्रा में परिवर्तन Q_0Q_1, कीमत में परिवर्तन P_0P_1, से कम है। अतः मांग की लोच इकाई से कम है।

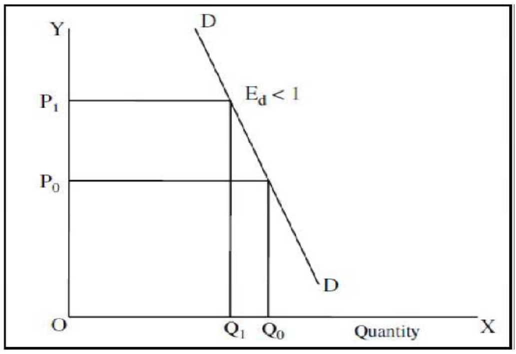

चित्र 5.5

5.3 मांग की आय लोच

मांग की आय लोच उपभोक्ता की आय में परिवर्तन के कारण वस्तु की मांगी गई मात्रा में परिवर्तन से सम्बन्धित है। अतः यह आय में समानुपातिक परिवर्तन के कारण वस्तु की मांगी गई मात्रा में परिवर्तन को दर्शाता है।

$$E_y - \frac{\text{Proportionate change in demanded}}{\text{Proportionate change in income}}$$

$$E_d = \frac{\text{मांग में समानुपातिक परिवर्तन}}{\text{-----------------------------------}}$$

आय में समानुपातिक परिवर्तन

मांग की आय लोच के पांच कोटि या मान होते हैं।

(i) **शून्य आय की लोच अर्थात् $E_d = 0$:** इसका अर्थ है कि आय में परिवर्तन के कारण वस्तु की मागीं गई मात्रा में कोई परिवर्तन नहीं होता है। इसकी व्याख्या चित्र 5.6 की सहायता से की जा सकती है।

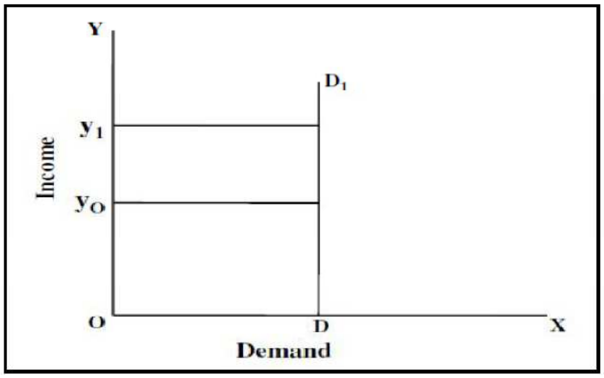

चित्र 5.6

चित्र 5.6 शून्य आय की लोच को प्रदर्शित करता है। X–अक्ष पर वस्तु की मांगी गई मात्रा तथा Y–अक्ष पर कीमत को लिया गया है। DD_1 मांग वक्र है, जो Y–अक्ष के समानान्तर है। यह दिखाता है कि जब उपभोक्ता की आय OA_0 से बढ़कर OA_1 हो जाता है, वस्तु की मांगी गई मात्रा स्थिर रहती है अर्थात् OM। इस स्थिति में शून्य आय की मांग लोच, $E_d= 0$ है।

(ii) **ऋणात्मक आय की लोचः** इसका आशय उपभोक्ता आय में वृद्धि होने पर कम मात्रा में वस्तु खरीदता है। निकृष्ट वस्तुओं की आय मांग की लोच ऋणात्मक होती है क्योंकि उपभोक्ता आय बढ़ने के साथ इनका उपभोग कम करता है। ताकि उसका जीवन स्तर बढ़े। निम्नांकित चित्र में व्याख्या की गई।

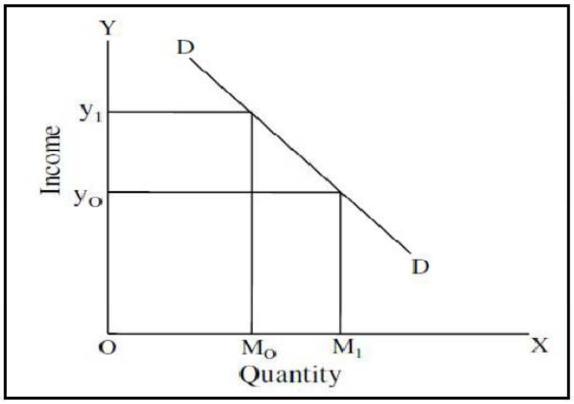

चित्र 5.7

चित्र 5.7 में ऋणात्मक आय लोच को दिखाया गया है। यह साफ तौर में दिखा रहा है कि वस्तु की मात्रा में परिवर्तन (M_0M_1) आय में परिवर्तन Y_0Y_1 से कम हैं। अर्थात् वस्तु की सापेक्षिक मांग की मात्रा में परिवर्तन सापेक्षिक आय में परिवर्तन से कम है।

(iii) **इकाई आय लोचः** इसका आशय वस्तु की मात्रा में समानुपातिक परिवर्तन आय में सापेक्षिक परिवर्तन के बराबर है। इसे चित्र 5.8 की सहायता से समझाया जा सकता है। चित्र 5.8 दिखाता है कि मात्रा में परिवर्तन (M_0M_1) और आय में परिवर्तन (Y_0Y_1) लगभग बराबर है। आय मांग की लोच इस स्थिति में इकाई है।

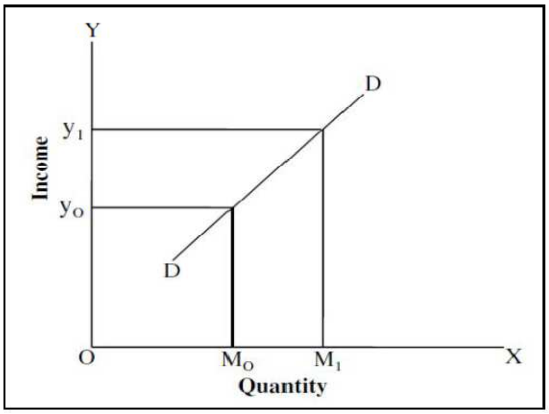

चित्र 5.8

(iv) **उच्च आय की लोचः** इसका आशय मांगी गई मात्रा में वृद्धि से अधिक है। उच्च आय लोच वाल वस्तुयें सामान्यतः विलासिता की वस्तुएं होती हैं। आय मांग की लोच इस स्थिति में इकाई से अधिक होता है।

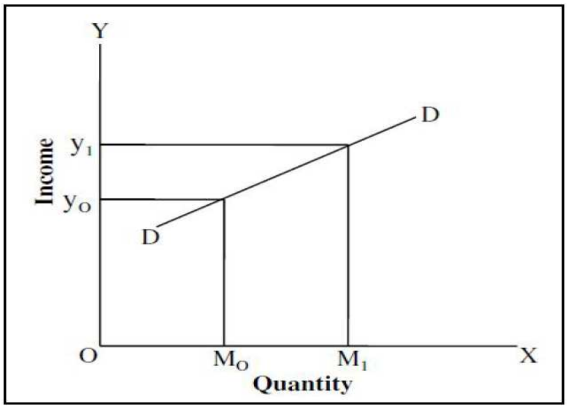

चित्र 5.9

चित्र 5.9 में मांग वक्र DD_1 है, जो धनात्मक ढ़ाल की है। मांग वक्र प्रदर्शित करता है कि मांगी गई मात्रा में परिवर्तन (M_0M_1) उपभोक्ता की आय में परिवर्तन (Y_0Y_1) आय मांग की लोच इसे स्थिति में इकाई से अधिक है।

(v) **निम्न/कम आय लोचः** इसका आशय वस्तु की मांगी गई मात्रा में वृद्धि, आय में वृद्धि से कम है, अर्थात् उपभोक्ता आय में वृद्धि के साथ कम वस्तु की मात्रा की मांग करता है। चित्र 5.10 कम आय लोच को प्रदर्शित करता है कि वस्तु की मात्रा में परिवर्तन (M_0M_1), उपभोक्ता की आय में परिवर्तन (Y_0Y_1) से कम है। अर्थात् मांग की मात्रा में सापेक्षिक परिवर्तन आय की मात्रा में सापेक्षिक परिवर्तन आय की मात्रा में सापेक्षिक परिवर्तन से कम है।

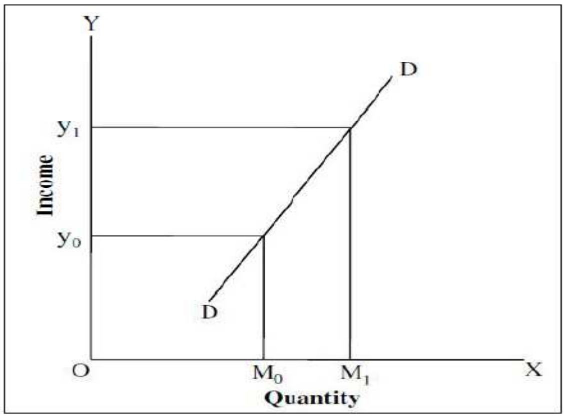

चित्र 5.10

5.4 तिर्यक मांग की लोच

तिर्यक मांग की लोच का सम्बन्ध किसी वस्तु X के मांग में परिवर्तन इससे सम्बन्धित Y वस्तु के कीमत में परिवर्तन के कारण होता है। सम्बन्धित वस्तुयें दो प्रकार की होती है, 1. स्थानापन्न वस्तुयें एवं 2. पूरक वस्तुएं; जैसे चाय और कॉफी दो स्थानापन्न वस्तुओं के संदर्भ में एक वस्तु की कीमत पर निर्भर करता है। उदाहरण के लिए यदि कॉफी की कीमत बढ़ता है तो चाय की कीमत में भी वृद्धि होती है। वहीं दूसरी ओर वे वस्तु जिनका उपयोग संयुक्त रूप से किसी ईच्छा की पूर्ति के लिए होता है, पूरक वस्तुएं कहलाती है। जैसे कार और डीजल, कलम और स्याही, जूता और मोजा इत्यादि। ऐसी वस्तुयें एक दूसरे की पूरक होती है, न की प्रतिद्वंवदी। यदि किसी वस्तु की कीमत बढ़ती है जैसे डीजल की कीमत बढ़ती है तो कार की मांग में कमी होगी। दोनों स्थानापन्न एवं पूरक वस्तुओं की तिर्यक मांग की व्याख्या निम्नांकित है तिर्यक मांग की लोच को निम्नांकित सूत्र से दिखाया गया है।

1. धनात्मक तिर्यक मांग की लोच

यह ऐसी स्थिति को प्रदर्शित करता है जिसमें एक वस्तु की कीमत में वृद्धि दूसरे वस्तु की मांग में वृद्धि करता है। इसे चित्र 5.11 की सहायता से प्रदर्शित किया जा सकता है।

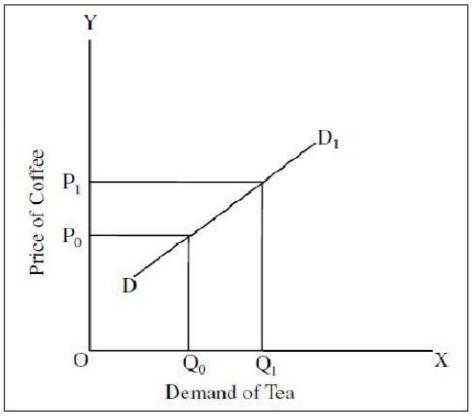

चित्र 5.11

चित्र 5.11 में DD_1 मांग वक्र धनात्मक वस्तुओं के लिए धनात्मक है। अर्थात् जब कॉफी की कीमत OP_0 से बढ़कर OP_1हो तो चाय की मांगी गई मात्रा OQ_0से बढ़कर OQ_1 हो जायेगा।

2. ऋणात्मक तिर्यक मांग की लोच

पूरक वस्तुओं के संदर्भ में तिर्यक मां की लोच ऋणात्मक होता है। अर्थात एक वस्तु की मीमत में वृद्धि दूसरे वस्तु की मांग में कमी लायेगी।

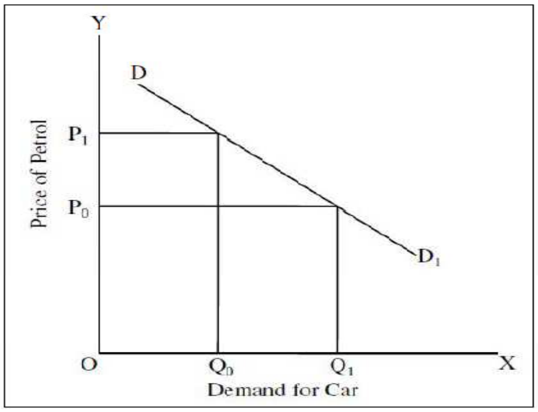

चित्र 5.12

चित्र 5.12 में जब वस्तु Y पेट्रोल की कीमत OP_0 है तो मांगी गई मात्रा OQ_0 , है। जब पेट्रोल की कीमत बढ़ेगी तो कार और स्कूटर की मांगी गई मात्रा कम होगी। अतः पूरक वस्तुओं की तिर्यक मांग लोच ऋणात्मक होगी।

5.5 मांग की कीमत लोच का माप

निम्नांकित विधि द्वारा कीमत मांग की लोच को मापा जा सकता है।

1. कुल व्यय विधि

इस विधि के अनुसार मांग की लोच का मापन वस्तु के कीमत में परिवर्तन के कारण व्यय की दिशा की सहायता से की जाती है। नये कुल उत्पाद को पूराने कुल व्यय से तुलना कर मांग की लोच को निम्नांकित तरीके से प्राप्त किया जाता है।

1.1 **इकाई कीमत मांग की लोच ($E_p = 1$)** : जब कुल व्यय कीमत के सपामेक्ष स्थिर रहे तो कीमत मांग की लोच एक के बराबर होती है अर्थात् इकाई के बराबर होता है।

सारणी 'अ'

कीमत (प्रति किलोग्राम में)	मांग (इकाई में)	कुल व्यय
10	8	80
16	5	80

उपर्युक्त उदाहरण से स्पष्ट है कि कीमत में परिवर्तन के परिणाम स्वरूप कुल व्यय में कोई परिवर्तन नहीं हो रहा है। अतः कीमत मांग की लोच इकाई के बराबर है।

1.2 **उच्च कीमत मांग की लोच ($E_p > 1$)**: जब कुल व्यय में परिवर्तन कीमत परिवर्तन के विपरीत दिशा में हो तो मांग की लोच इकाई से अधिक

होगी। अन्य शब्दों में E_p उच्च कीमत मांग की लोच के बराबर होगें। अतः जब कीमत घटती है तो कुल व्यय बढ़ता है औ इसके विपरीत भी। कीमत मांग की लोच उंची होगी अर्थात $E_p>1$ है।

सारणी 'ब'

कीमत (प्रति किलोग्राम) में	मांग (किलो ग्राम इकाई में)	कुल व्यय (रूपयें में)
10	10	100
15	5	90

उपर्युक्त उदाहरण से स्पष्ट है कि कीमत में वृद्धि कुल व्यय में कमी लायेगी अतः मांग उच्च लोच की होगी।

1.3 **कीमत मांग की लोच इकाई से कम होगीः** जब कुल व्यय में परिवर्तन कीमत परिवर्तन की दिशा में हो तो मांग की लोच एक से कम होगी। अन्य शब्दों में मांग की लोच एक से कम होगी, जब कीमत में वृद्धि/कमी कुल व्यय में वृद्धि/कमी से संबंधित हो।

सारणी 'स'

कीमत (प्रति किलोग्राम) में	मांग (किलो ग्राम इकाई में)	कुल व्यय (रूपयें में)
10	10	100
7	12	84

उपर्युक्त उदाहरण से स्पष्ट है कि कीमत में कमी कुल व्यय में कमी लायेगा। अतः कुल व्यय में परिवर्तन और कीमत एक हीं दिशा में परिवर्तन होगी और $E_p<1$।

व्यय विधि का चित्रमय प्रदर्शन

कुल व्यय को X–अक्ष पर तथा कीमत Y–अक्ष पर दिखाया गया है। ABCD मांग वक्र हे। मांग वक्र का AB रेखाखण्ड यह दिखाता है कि मांग की लोच एक से अधिक है, BC भाग दिखाता है कि मांग की लोच इकाई के बराबर है तथा CD भाग एक से कम मांग की लोच को प्रदर्शित करता है।

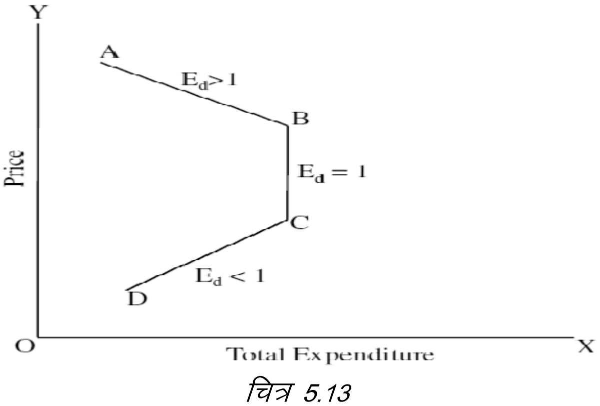

चित्र 5.13

चित्र का AB भाग यह प्रदर्शित कर रहा है कि कीमत में कमी के साथ कुल व्यय में वृद्धि होगी, BC भाग यह दिखा रहा है कि कीमत में परिवर्तन के साथ कुल

व्यय में कोई परिवर्तन नहीं होगा। CD भाग यह दिखा रहा है कि कीमत में कमी के कारण वस्तु पर कुल व्यय कम होगी।

2. बिन्दु विधि

इस विधि द्वारा मांग की लोच का मापन किसी सीधी रेखा वाले मांग वक्र के विभिन्न विन्दुओं पर होता है। इस विधि का प्रयोग मांग की लोच का मापन बार–बार करने के लिए करते हैं। इस विधि में एक सीधी रेखा वाला मांग वक्र लेते हैं जो X और Y दोनों अक्षों को स्पर्श करता है।

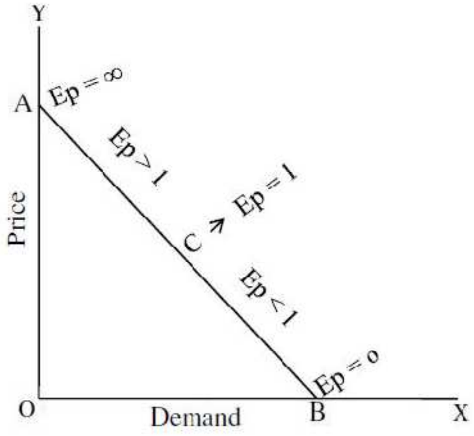

चित्र 5.14

चित्र 5.14 में AB मांग वक्र है जो X और Y अक्ष को छू रहा है। मांग वक्र के विभिन्न बिन्दूओं पर मांग की लोच को निम्नांकित सूत्र के माध्यम से प्राप्त कर सकते हैं।

$$E_d = \frac{\text{मांग वक्र के नीचे का भाग}}{\text{मांग वक्र के उपर का भाग}}$$

अतः C बिन्दू पर E_d, एक के बराबर है, क्योंकि BC = AC, A और C के बीच अन्य किसी बिन्दू पर कीमत मांग की लो इकाई से अधिक है। A बिन्दू पर E_d , अन्नतः के बराबर है। बिन्दू B पर शून्य के बराबर तथा B और C के बीच किसी बिन्दु पर मांग की लोच एक से कम है।

3. औसत आय और सीमान्त आय विधि

कीमत माग की लोच औसत आय तथा सीमान्त आय से निकट सम्बन्ध रखता है। E_d को निम्नांकित सूत्र से मापा जाता है।

$$E_d = \frac{\text{औसत आय}}{\text{औसत आय – सीमान्त आय}}$$

$$= \frac{AR}{AR - MR}$$

(i) जब AR = MR हो तब E_d अन्नत होगा।

(ii) यदि सीमान्त आय शून्य हो तब E_d के बराबर होगा।

(iii) यदि AR>MR हो, लेकिन MR =0 हो, तब E_d इकाई से अधिक होगा।

(iv) जब सीमान्त आय ऋणात्मक हो तब E_d इकाई से कम होगें।

5.6 मांग की लोच के निर्धारक तत्व

मांग की लोच कई कारको से प्रभावित होता है इनमें से कुछ की चर्चा नीचे की जा रही है।

(i) **स्थानापन्न वस्तुओं की उपलब्धताः** स्थानापन्न वस्तुओं की मांग की लोच सामान्यतः लोचदार होती है। स्थानापन्न वस्तु की कीमत में परिवर्तन होने पर ग्राहक दूसरे प्रतिद्वंदी वस्तुओं का उपभोग करने लगते है। दूसरी तरफ जिस वस्तु का कोई निकट स्थानापन्न वस्तु नहीं होता हैं, उसकी कीमत अधिक होती है। कारण लोगों के पास कोई दूसरा विकल्प नहीं होता हे। अतः स्थानापन्न व वस्तुओं की मांग लोचदार होती है।

(ii) **आय का समानुपातिक व्ययः** किसी वस्तु के उपर आय का खर्च किया गया भाग भी वस्तु की मांग की लोच को निर्धारित करता है। यदि आय का छोटा भाग खर्च किया जाता है तो मांग बेलोचदार होगी। वहीं दूसरी ओर उसी वस्तु की मांग लोचदार होगी। यदि आय का अधिक भाग व्यय किया जाता है। उदाहरण के लिए नमक पर आय का अत्यंत छोटा भाग खर्च किया जाता है, अतः नमक की मांग बेलोच होगी।

(iii) **समय अन्तरालः** समय अन्तराल जिसमें उपभोग की जा रही है, भी मांग की लोच को प्रभावित करता है। छोटे समय अन्तराल में मांग की लोच सामान्यतः बेलोचदार होती है। क्योंकि छोटे समय अन्तराल में उपभोक्ता के लिए अपने आप को बदलना कठिन होता है। जबकि दूसरी तरफ दीर्घकाल में वस्तु की मांग लोचदार होती है। क्योंकि उपभोक्ता दीर्घकाल में अपने आप को समायोजित करने की कोशिश करता है। साथ हीं दीर्घकाल में उपभोक्ता अपनी आदतों को भी बदलने की कोशिश करता है।

(iv) **मांग का स्थगनः** यदि वस्तु की मांग को आगे बढ़ाया जा सकता है, जो उस वस्तु की मांग लोचदार होगी वही दूसरी तरफ यदि मांग को स्थगित किया जा सकता है तो उस वस्तु की मांग बेलोदार होगी। क्योंकि इनकी मांग को स्थगित किया जा सकता है, जबकि आवश्यक वस्तुओं की मांग बेलोचदार होती है, कारण इन वस्तुओं की मांग को विलम्बित नहीं किया जा सकता है। यहां तक की इनकी कीमत में तेजी से वृद्धि होती है।

5.7 मांग के लोच का महत्व

मांग की लोच व्यापारियो, नीति निर्धारकों, और सामान्य लोगों के लिए अत्यन्त महत्वपूर्ण है। कीमत, उत्पाद और व्यय से सम्बन्धित भी महत्वपूर्ण निर्णय का निर्धारण मांग की लोच द्वारा होता है। अतः विवेकपूर्ण निर्णय लेते समय मांग की लोच महत्वपूर्ण है।

(a) **व्यापारियों के लिए महत्वः** व्यापारी मांग की लोच को अपने उत्पाद की कीमत निर्धारण करने के लिए करते हैं। व्यापारी उन उत्पादों की कीमत अधिक रखता है जिसमी मांग बेलोच होता है, कारण उपभोक्ता कीमत

उंची होने भी उन वस्तुओं को खरीदता है। दूसरी तरफ, लोचदार मांग वाली वस्तु की कीमत कम निर्धारित करेगा, क्योंकि लोचदार मांग वाली वतु से अधिक आय की प्रगति तब होगी जब उसे कम कीमत पर बेचा जाय।

(b) **उत्पादन साधन की कीमतेंः** उत्पादन साधनों की कीमत भ्भी उसके मांग की लोचशीलता के आधार पर निर्धारित होता है। वैसे साधन जिनकी मांग बेलोच होगी, उसकी कीमत लोचदार मांग वाले उत्पादन साधन की तुलना में अधिक होगी। उदाहरण के लिए अधिक कुशल व्यक्ति को अधिक कीमत देनी पड़ती है, क्योंकि उसकी मांग बेलोचदार होगी। वहीं अकुशल कामगार की अधिक उपलब्धता के कारण बाजार में उसकी कीमत कम होगी।

(c) **अंर्तराष्ट्रीय व्यापार :** अंर्तराष्ट्रीय व्यापार से उस देश को फायदा होगा, जिसके निर्यात की गई वस्तु की मांग अंर्तराष्ट्रीय बाजार में बेलोच होगा।

(d) **वस्तुओं पर करः** मांग की लोच वितमंत्री को विभिन्न वस्तुओं पर कर लगाने में भी मांग दर्शन करता है। बेलोच मांग वाली वस्तुओं पर अधिक कर लगाया जाता है और लोचदार मांग वाली वस्तुओं पर कम कर लगाया जाता है। कारण वैसे वस्तु जिनकी मांग की लोच कम होगी, कर लगाने पर भी उसकी मांग में बहुत कमी नहीं आयेगी। जबकि अधिक लोचदार मां वाली वस्तु पर उच्च कर लगाने पर, वस्तु की मांग में अत्याधिक कमी आयेगी, जिससे आय भी कम हो जायेगी। अतः वित मंत्री को मांग की लोच को ध्यान में रख कर ही वस्तु पर कर लगाते हैं।

(e) **संयुक्त वस्तु की स्थिति मेंः** संयुक्त वस्तु वे वस्तु हैं जिनका उत्पादन एक हीं उत्पादन प्रक्रिया में होता है। उदाहरण के लिए चावल और भूसी, मांस और चमड़े इत्यादि, इन वस्तुओं का उत्पादन एक साथ होता है। इनकी कीमतों का निर्धारण मांग की लोच के आधार पर होता है। चावल और भूसी की स्थिति में, चावल का मांग बेलोचदार होता है, अतः इसकी कीमत अधिक होगी, वहीं भूसी की मांग लोचदार होती है अतः उसकी कीमत कम होगी।

5.8 पूर्ति की लोच

पूर्ति की लोच से तात्पर्य है कीमत में प्रतिशत परिवर्तन तथा वस्तु की पूर्ति में प्रतिशत परिवर्तन का अनुपात। अतः पूर्ति की लोच कीमत में सापेक्षिक परिवर्तन के कारण पूर्ति की मात्रा में सापेक्षिक परिवर्तन है।

पूर्ति की लोच को ज्ञात करने का सूत्र निम्नांकित हैः

$$E_s = \frac{\text{X वस्तु की पूर्ति की मात्रा में समानुपातिक परिवर्तन}}{\text{X वस्तु की कीमत में समानुपातिक परिवर्तन}}$$

पूर्ति की कीमत लोच का कोटि/मान

पूर्ति की कीमत लोच की पांच कोटियां/मान होते हैं जिसकी चर्चा निम्नांकित है।

(i) **पूर्णतः लोचदार पूर्तिः** पूर्णतः लोचदार पूर्ति का अर्थ है दिये हुए कीमत पर अन्नत मात्रा में वस्तु उपलब्ध है। कीमत में अल्प परिवर्तन वस्तु की पूर्ति में अत्याधिक परिवर्तन लाता है। यदि कीमत में अल्प कमी आती है, तो

पूर्ति की मात्रा शून्य हो जाता है। पूर्ति वक्र इस स्थिति में X–अक्ष के समानान्तर होती है। इसे चित्र 5.15 से समझा जा सकता है। चित्र 5.15 में पूर्ति वक्र SS_1 X–अक्ष के समानान्तर है। यह दर्शाता है कि जब कीमत OS है तो विक्रेता OM या OM_1 मात्रा में वस्तु खरीद सकता है। पूर्ति की लोच का मान इस स्थिति में अनंत होगा ($E_s = \infty$)।

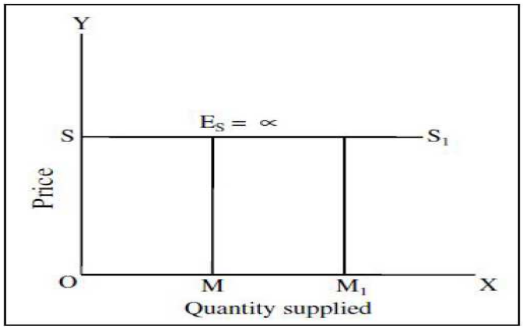

चित्र 5.15

(ii) **पूर्णतः बेलोचदार पूर्तिः** इसका अर्थ है कीमत में परिवर्तन के बावजूद पूर्ति की मात्रा स्थिर है। अन्य शब्दों में कीमत में परिवर्तन वस्तु की पूर्ति को प्रभावित नहीं करते हैं। इस स्थिति में पूर्ति की लोच शून्य होगा। चित्र 5.16 में SS_1 पूर्ति वक्र है जो Y–अक्ष के समानान्तर है। कीमत OP या OP_1 हो पूर्ति की मात्रा OS ही रहेगी।

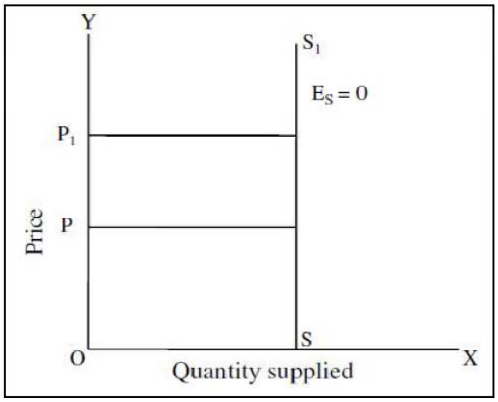

चित्र 5.16

(iii) **इकाई पूर्ति की लोचः** इसका आशय पूर्ति की मात्रा में समानुपातिक परिवर्तन कीमत में समानुपातिक परिवर्तन के बराबर होगा। इस स्थिति में पूर्ति की लोच का मान 1 होगा। चित्र 5.17 में SS_1 धनात्मक ढ़ाल वाली पूर्ति वक्र है जो बायें से दायें उपर की ओर जा रही हैं यह दिखा रहा है कि कीमत तथा पूर्ति की मात्रा में परिवर्तन एक ही अनुपात में है।

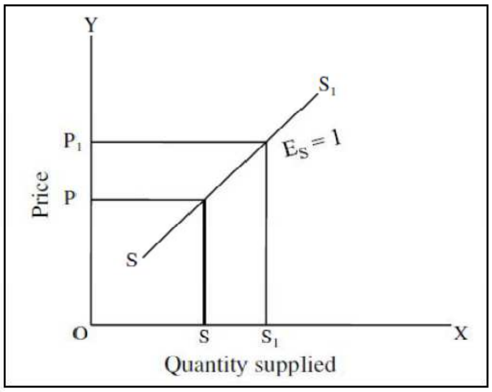

चित्र 5.17

(iv) सापेक्षिक पूर्ति लोचः सापेक्षिक पूर्ति लोच का आशय है पूर्ति में समानुपातिक परिवर्तन कीमत में समानुपातिक परिवर्तन से अधिक है। अर्थात कीमत में छोटा परिवर्तन पूर्ति की मात्रा में अधिक परिवर्तन करता है। इसे चित्र 5.18 में दर्शाया गया है। इस चित्र में SS_1 सापेक्षिक लोच दार पूर्ति वक्र है। यह दिखाता है क जब कीमत में वृद्धि होती है, तो बिक्री के लिए उपलब्ध मात्रा में सापेक्षिक अधिक वृद्धि होती है। इस चित्र में पूर्ति की मात्रा (S_0S_1) कीमत में परिवर्तन (P_0P_1) से अधिक है। इस स्थिति में पूर्ति लोच का मान इकाई से अधिक है।

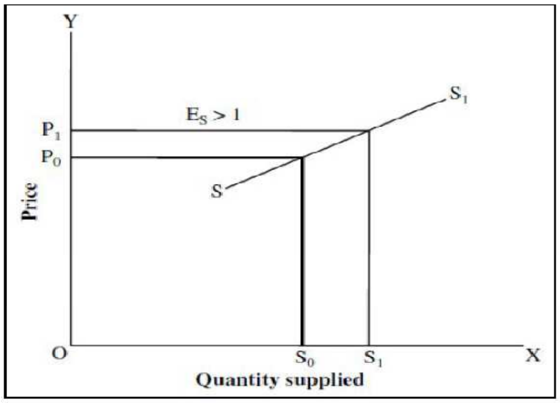

चित्र 5.18

(v) सापेक्षिक बेलोच पूर्तिः इसका आशय है पूर्ति में समानुपातिक परविर्तन कीमत में समानुपातिक परिवर्तन से कम है। अर्थात कीमत में वृद्धि से पूर्ति में कम वृद्धि होती है। इसे चित्र 5.19 की सहायता से दर्शाया जा सकता है। चित्र से यह स्पष्ट हे कि पूर्ति की मात्रा में परिवर्तन S_0S_1, कीमत में परिवर्तन P_0P_1 से कम है। इस स्थिति में पूर्ति की लोच का मान इकाई से कम है।

5.9 पूर्ति की कीमत लोच के निर्धारक तत्व

पूर्ति लोच कई सारे कारकों पर निर्भर करती है। कुछ महत्वपूर्ण कारक निम्नलिखित हैंः

(a) समय तत्वः पूर्ति लोच के निर्धारक कारकों में समय एक महत्वपूर्ण कारक है। यदि समय अल्प है। तो उंची कीमत पर भी बाजार में वस्तु की पूर्ति की मात्रा स्थिर रहती है। अतः पूर्ति की लोच अल्पकाल में कम होती है।

इस स्थिति में पूर्ति वक्र सापेक्षिक रूप से बेलोचदर होती है। उदाहरण के लिए दूध, सब्जी इत्यादि में वस्तु की पूर्ति में तत्काल वृद्धि नहीं की जा कती है। वस्तु की पूर्ति समय बढ़ने के साथ लोचदार हो जाती है। क्योंकि दीर्घकाल में पूर्ति को समायोजित किया जा सकता है।

(b) **आगतों की उपलब्धताः** पूर्ति की लोच आगत की उपलब्धता पर भी निर्भर करता है। यदि उत्पादक को आगत समय पर उपलब्ध हो तब वस्तु की पूर्ति लोचदार होगी।

(c) **संग्रह क्षमताः** पूर्ति की लोच से गहन क्षमता से भी प्रभावित होता है। यदि उत्पादक के पास बेहतर संग्रहण क्षमता उपलब्ध है तो पूर्ति लोचदार होगी, अन्यथा बेलोचदार होगी।

5.10 सारांश

पांच प्रकार के मांग की लोच हैं। अधिक और कम लोचदार मांग और पूर्ति, व्यापारिक निर्णय लेने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। कुल व्यय विधि मांग की लोच के मापन को वस्तु पर कुल व्यय के आधार पर दर्शाता है। व्यापारी को कम लोचदार मांग वाली वस्तु के लिए अधिक कीमत तथा अधिक लोचदार मांग वाली वस्तु के लिए कम कीमत निर्धारित करना चाहिए। मांग की लोच व्यापारी को वस्तु की पूर्ति को प्रभावित करने वाले विभिन्न कारकों को समझने में मदद करता है।

5.11 शब्दावली

मांग की कीमत लोचः से आशय कीमत में परिवर्तन के कारण मांग में होने वाले परिवर्तन की मात्रा से हैं ।

मांग की आय लोचः यह उपभोक्ता की आय में परिवर्तन के कारण वस्तु की मांगी गई मात्रा में परिवर्तन से सम्बन्धित है।

तिर्यक मांग की लोचः से आशय किसी वस्तु X के मांग में परिवर्तन इससे सम्बन्धित Y वस्तु के कीमत में परिवर्तन के कारण होता है।

5.12 बोध प्रश्न

(A) रिक्त स्थानों को भरें:

1. मांग की कीमत लोच इकाई होगी, जब मांग में परिवर्तन कीमत में परिवर्तन ——— होगी।
2. स्थानापन्न वस्तुओं के संदर्भ में तिर्यक मांग की लोच ———— है।
3. स्थानापन्न तथा पूरक वस्तुओं के तिर्यक मांग की लोच ———— और अनंत के बीच परिवर्तित होती है।
4. व्यापारी बेलोच मांग वाली वस्तुओं की कीमत ———— निर्धारक करता है।
5. पूर्ति के नियम के अनुसार, कीमत और वस्तु की पूर्ति की मात्रा के बीच ———— सम्बन्ध होता है।
6. मौसमी वस्तुओं के संदर्भ में पुराने स्टॉक को ———— पर बेच कर खाली किया जाता है।

(B) सत्य या असत्य

1. समय अन्तराल में समय किसी वस्तु की मांग की लोच किसी बिन्दु की तुलना में अधिक होगी।
2. उंच्चे मांग लोच वाली वस्तु की कीमत उंची होगी।
3. यदि मांग बेलोच है और कीमत में वृद्धि हो रही है, तो कुल आय बढ़ेगा।
4. अधिक मांग की लोच वाली वस्तु पर अधिक कर लगाना सरकार द्वारा बुद्धिमतापूर्ण निर्णय है।
5. वस्तु की पूर्ति को बढ़ाने के लिए आधारभूत आगत की कीमत कम होनी चाहिए।
6. यदि वस्तु की पूर्ति में समानुपातिक परिवर्तन, कीमत में समानुपातिक परिवर्तन से कम है, तो इसे लोचदार पूर्ति कहेगें।

(C) बहुविकल्पीय चयन/वस्तुनिष्ठ प्रष्न

1. मांग की लोच का इकाई से अधिक होन का आशय है, वस्तु है———
   (a) विलासिता (b) आवश्यक
   (c) a और b दोंनों (d) न a और न b
2. सम्पन्नता की स्थिति में माग की लोच का मूल्य हैः
   (a) एक के बराबर (b) एक से अधिक
   (c) एक से कम (d) उपर्युक्त में से काई नहीं
3. मांग की लोच का मूल्य क्या होा तब कीमत में परिवर्तन, से कुल व्यय स्थिर रहे।
   (a) एक के बराबर (b) एक से अधिक
   (c) एक से कम (d) उपर्युक्त में से काई नहीं।
4. जब मांग की लोच का मान इकाई से कम है तो वस्तु होगी।
   (a) जीवन के लिए आवश्यक (b) विलासिता
   (c) a और b दोंनों (d) उपर्युक्त में से काई नहीं।
5. पूर्णतः बेलोचदार मांग वक्र का आकार होता है।
   (a) X—अक्ष के समानान्तर (b) Y—अक्ष के समानान्तर
   (c) न a और न b (d) ऋणात्मक ढ़ाल
6. पूर्णतः लोचदार मांग वक्र होगा।
   (a) X—अक्ष के समानान्तर (b) Y—अक्ष के समानान्तर
   (c) न a और न b (d) धनात्मक ढ़ाल

5.13 बोध प्रश्नों के उत्तर

(A) 1. पूर्णतः समानुपाती, 2. धनात्मक, 3. शून्य, 4. उच्च, 5. धनात्मक, 6. कम कीमत

(B) 1. सत्य, 2. असत्य, 3. सत्य, 4. असत्य, 5. सत्य, 6. असत्य

(C) 1. (a), 2. (a), 3. (a) 4. (b) 5. (b) 6. (a)

5.14 स्वपरख प्रश्न

(A) लघु उत्तरीय प्रष्न

1. मांग की लोच से आप क्या समझते है?
2. मांग की आय लोच से आप क्या समझते हैं?
3. तिर्यक मांग लोच की अवधारणा को उदाहरण के साथ समझायें।

4. बेलोचदार मांग को परिभाषित करें।
5. इकाई मांग की लोच से आप क्या समझते हैं?
6. पूर्ति को परिभाषित करें।
7. इकाई मांग की लोच से आप क्या समझते हैं?

(B) दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

1. मांग की लोच को प्रभावित करने वाले कारकों को समझायें।
2. मांग की लोच के मापन की बिन्दु विधि की व्याख्या करें।
3. मांग की लोच के मापन की कुल व्यय विधि को समझायें।
4. पूर्ति के नियम को समझायें।

5.15 सन्दर्भ पुस्तकें

1. Alfed W. Stonier and Douglas C. Hague, A Text Book of Economic Theory, Longman, 1990.
2. Green, H., Consumer Theory, Penguin, 1972.
3. Wold, H., Demand Analysis, New York, John Wiley & Sons, (1953).
4. Schultz, H., Theory and Measurement of Demand, Chicago, University of Chicago Press, 1964.
5. Gould, J.P. and C.E. Ferguson, Microeconomic Theory, 8th ed., Homewood III, Richard D. Irwin, (1980).
6. Dr. D.M. Mithani, Managerial Economics – Theory and Applications: Himalaya Publishing House.
7. Mehta, P.L., Managerial Economics – Analysis, Problem and Cases, Sultan Chand & Sons, New Delhi.
8. H.L. Ahuja, Business Economics Micro- S. Chand & Co. Ltd, New Delhi, 1999.
9. S.K., Mishra and V.K. Puri, Advanced Microeconomic Theory, Himalaya Publishing House, Mumbai, 2001.

*****

इकाई 6 उदासीनता वक्र विश्लेषण

इकाई की रूपरेखा

6.1 प्रस्तावना
6.2 उदासीनता वक्र विश्लेषण
6.3 प्रतिस्थापन की सीमान्त दर की अवधारणा
6.4 उदासीनता वक्र की विशेषताएं
6.4.1 उदासीनता वक्र की ढाल ऋणात्मक होती है
6.4.2 दो उदासीनता वक्र एक दूसरे को नहीं काटते
6.4.3 उच्च उदासीनता वक्र से संतुष्टि के उच्च स्तर का प्रतिनिधित्व करता है
6.4.4 उदासीनता वक्र न तो X–अक्ष को न हीं Y–अक्ष को काटता है
6.4.5 उदासीनता वक्र एक एक दूसरे के सामानन्तर नहीं होते है
6.4.6 उदासीनता वक्र अपने धूरी से उत्तल होता है
6.5 बजट रेखा
6.5.1 कीमत में परिवर्तन
6.5.2 आय में परिवर्तन
6.6 आय प्रभाव
6.7 उपभोक्ता की संस्थिति
6.8 कीमत प्रभाव, आय प्रभाव एवं प्रतिस्थापना प्रभाव में अंतः संबंध
6.9 उदासीनता वक्र की मदद से मांग वक्र का निर्धारण
6.10 व्यापार में उदासीनता वक्र का उपयोग
6.11 सारांश
6.12 शब्दावाली
6.13 बोध प्रश्न
6.14 बोध प्रश्नों के उत्तर
6.15 स्वपरख प्रश्न
6.16 सन्दर्भ पुस्तकें

उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप इस योग्य हो सकेंगे कि –

- उपभोक्ता व्यवहार जब दो वस्तुयें उपभोक्ता के लिए पेश की जा रहीं हो, को समझ सकें।
- शर्तें जिसके अन्तर्गत उपभोक्ता अधिकतम संतुष्टि पाने की कोशिश करता है, को समझ सकें।
- मांग वक्र निर्धारन की विधि एवं आय प्रभाव और प्रतिस्थापन प्रभाव को अलग करने के तरीकों का वर्णन कर सकें।

6.1 प्रस्तावना

पारंपरिक उपयोगिता विश्लेषण उपयोगिता के संख्यावाचक मापन पर आधारित है। उपयोगिता कार्डिनल या गणनासांख्यिकीय मापों के द्वारा मापा जा सकता है। इसका आशय है कि उपयोगिता 1, 2, 3 एवं किसी अन्य संख्या में

गिनी जा सकती है। परन्तु बाद के अर्थशास्त्रियों ने अपने अध्ययन में पाया कि उपयोगिता असल जिंदगी में संख्यात्मक मापों से नही मापी जा सकती है। उन्होंने इसका एक दूसरा विकल्प विकसित किया, वह था उदासिनता वक्र विश्लेषण। अर्थात् नया उपयोगिता विश्लेषण्ण 'उदासीनता वक्र' की मद्द से किया गया जो कि क्रमनात्मक या क्रमवाचक मापों से मापा गया है। इसका आशय है उपयोगिता का अध्ययन तुलनात्मक किया जाता है।

'उदासीनता वक्र विश्लेषण' के सिद्धान्त में एजवर्थ और फिशर का महत्वपूर्ण योगदान है। उनके अनुसार, उपयोगिता का भौतिक माप संभव नहीं है। एक उपभोक्ता उपयोगिता का निर्धारण केवल उसके 'रैंक' (क्रम) से कर सकता है। क्रमवाचक माप विभिन्न वस्तुओं के लिए उपभोक्ताओं के द्वारा दिये गये प्राथमिकता या वरीयता को दर्शाता है।

उदासीनता वक्र उपभोक्ता के दो वस्तुओं के विभिन्न संयोजनों से मिल बराबर अपनी पसंद के प्रति उदासीन होता है। दूसरे शब्दों, में उपभोक्ता वस्तुओं के सभी संयोजनों से समान संतुष्टि प्राप्त करता है।

उदासीनता वक्र विश्लेषण की मान्यतायें

उदासीनता वक्र विश्लेषण निम्नलिखित मान्यताओं पर आधारित हैः

1. **विवकेशीलः** उपभोक्ता विवेकपूर्ण होता है। (दिये हुए निश्चित आय और वस्तु के बाजार कीमत पर) उपभोक्ता अधिकतम उपयोगिता या संतुष्टि प्राप्त करना चाहता है। उपभोक्ता को बाजार सूचनाओं के बारे में पूर्ण जानकारी होती है।
2. **क्रमवाचकः** यह माना जाता है कि उपभोक्ता अपनी प्राथमिकताओं को विभिन्न संयोजनों से मिले संतुष्टि के अनुसार क्रमबद्ध कर सकता है।
3. **प्रतिस्थापन का ह्रासमान सीमान्त दरः** जिस दर पर एक वस्तु की निश्चित मात्रा दूसरे वस्तु से प्रतिस्थापित की जाती है। प्रतिस्थापन की सीमान्त दर कहलाती है। ऐसा माना जाता है कि प्रतिस्थापन की सीमन्त दर की ढ़ाल ऊउपर से नीचे की ओर गिरती हुई होती है।
4. **सुसंगति/स्थिरता/सामंजस्य/संगतता/सतताः** यह माना जाता है कि उपभोक्ता के पंसंद में सत्ता पायी जाती है। यदि किसी एक समय में उपभोक्ता संयोग B की जगह संयोग A का चुनाव करता है तो वह दूसरे समय में B का चुनाव नही करेगा।
5. **संक्रमकताः** ऐसा माना जाता है कि उपभोक्ता की पसंद चुनाव संक्रमकता के द्वारा निर्धारित किया जाता है। मान लीजिये तीन वस्तुयें है A, B और C, यदि A को वरीयता देता है B पर, और B को वरीयता देता है C पर, तब ऐसे में A को C पर जरूर वरीतया देगा। ठीक इसी तरह, यदि A, B से तटस्थ है, और B, C से तो A, C से भी तटस्थ होगा। हम इसे ऐसे भी प्रदर्शित कर सकते हैं।

   $A > B \quad B > C \quad A > C$

6.2 उदासीनता वक्र विश्लेषण

तटस्थता वक्र या उदासीनता वक्र उपभोक्ता के दो वस्तुओं के विभिन्न संयोजनों से मिले बराबर संतुष्टि को दर्शाता है। दूसरे शब्दों में, उपभोक्ता उनके

प्रति उदासीन हो जाता है। आगे दिये गये सारणी के द्वारा विभिन्न संयोजनों को दिखाया गया है जो कि एक उदासीन वक्र पर आधारित है, को दर्शाया गया है।

संयोजन	वस्तु - X	वस्तु -Y
A	1	10
B	2	7
C	3	5
D	4	4

उपर दर्शाया गयी सारणी यह दर्शाने की कोशिश कर रही है कि उपभोक्ता A, B, C या D सारे संयोजनों को समान वरीयता/ प्राथमिकता देता है। उपभोक्ता दो वस्तुओं के विभिन्न संयोजनों से समान संतुष्टि प्राप्त करता है। उदाहरण के लिए, संयोजन A में उपभोक्ता वस्तु X की 1 इकाई प्राप्त करता है और वस्तु Y की 10 इकाई और संयोजन D में 4 इकाई वस्तु X और 4 इकाई वस्तु Y के हैं। यह दर्शाता है कि उपभोक्ता विभिन्न संयोजनों से संतुष्टि प्राप्त करता है। ऊपर वर्णित सारणी यह भी दर्शाने की कोशिश करती है, कि यदि उपभोक्ता वस्तु X की अतिरिक्त इकाई प्राप्त करना चाहता है तो उसे वस्तु Y की कुछ इकाईयाँ छोड़नी पड़ेगी या त्याग करनी पड़ेगी। यदि उपभोक्ता को बराबर संतुष्टि प्राप्त करनी है तो।

उदासीनता वक्र

उदासीनता वक्र, उदासीनता अनुसूची से प्राप्त आंकड़ों के उदासीनता वक्र की ढाल ऋणात्मक होती है। यह दर्शाता है कि उपभोक्ता को वस्तु X की और इकाई प्राप्त करनी है तो उसे वस्तु Y की कुछ इकाई को छोड़नी होगी। समान संतुष्टि प्राप्त करने के लिए, चित्र 6.1 में, संयोजन A, B, C या D जो कि एक उदासीनता वक्र के द्वारा दर्शाये गये हैं। प्रत्येक संयोजन समान संतुष्टि प्रदान करता है।

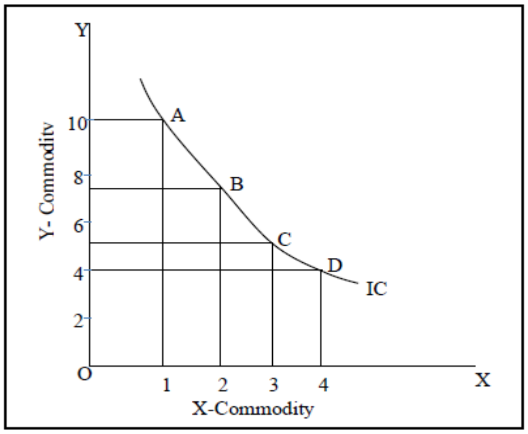

चित्र 6.1

6.3 प्रतीस्थापन की सीमान्त दर की अवधारणा

उदासीनता वक्र का विश्लेषण गिरती हुई होती है, जो प्रतिस्थापन की सीमान्त दर के नियम पर आधारित है। अर्थात् एक उपभोक्ता वस्तु Y की कितनी मात्रा छोड़ने को तैयार है, वस्तु X की एक अतिरिक्त इकाई प्राप्त करने के लिए , ताकि वह पहले के बराबर की संतुष्टि प्राप्त कर सके।

घटती हुयी प्रतिस्थापन की सीमान्त दर की व्याख्या (MRS)

इस नियम के अनसार यदि उपभोक्ता को वस्तु X की अतिरिक्त इकाई प्राप्त करनी है तो वस्तु Y की या किसी दूरे वस्तु की और कम से कम की इकाई छोड़नी होगी।

दूसरे शब्दो में, वस्तु X की MRS वस्तु Y के लिए हमेशा गिरती हुई या ह्रासमान होगी। इस नियम के सारणी और ग्राम के द्वारा समझा जा सकता है:

संयोजन	वस्तु - X	वस्तु -Y	MRS
A	1	15	-
B	2	11	1:4
C	3	8	1:3
D	4	6	1:2
E	5	5	1:1

सारणी में वस्तु X और Y के विभन्न संयोजनों को दर्शाया गया है।

ऊपर दिया हुआ सारणी यह दशाने की कोशिश करता है कि यदि उपभोक्ता वस्तु X की 1 अतिरिक्त इकाई पाना चाहता है तो उसे वस्तु Y की 4 इकाई छोड़नी पड़ेगी। ठीक उसी वस्तु, यदि उपभोक्ता वस्तु X की 3 इकाई चाहता है तो उसे वस्तु Y की 3 इकाई त्यागने के लिए तैयार रहना होगा। आगे, यदि उपभोक्ता 4 इकाई प्राप्त करना चाहता है तब वस्तु X की वस्तु Y के लिये ह्रासमान होगा। प्रतिस्थापन सीमान्त दर चित्र 6.1 की मदद से व्यक्त किया जा सकता है।

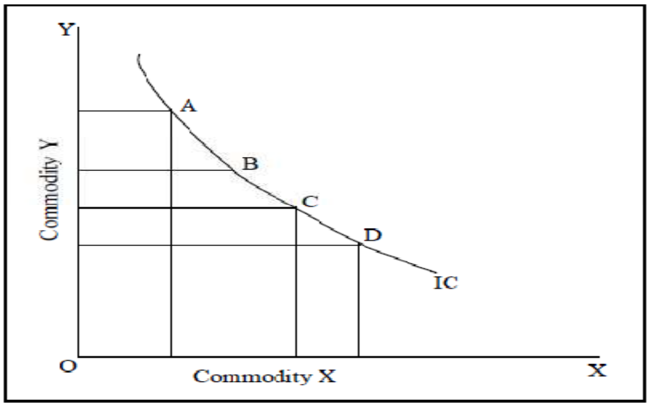

चित्र 6.2

ऊपर दिये गये चित्र में ह्रासमान प्रतिस्थापन की सीमान्त दर को दिखाया गया है। इसका आशय है कि जब एक उपभोक्ता बिन्दु A से B की ओर जाता है और C से D की ओर जाता है तो प्रतिस्थापन की सीमान्त दर वस्तु X का वस्तु Y के लिए घटता हुआ होगा। जैसे ही हम एक उपभोक्ता के रूप में संयोजन A में लाया हुआ बदलाव वस्तु Y के त्याग पर निर्भर करेगा। इसका आशय है $\Delta Y = Y$।

हम प्रतिस्थापन की सीमान्त दर की अवधारणा को निम्नलिखित समीकरणों के द्वारा भी समझ सकते हैं।

माना कि तटस्थता वक्र एक समीकरण के रूप में व्यक्त किया गया है,

$U = f(x, y) = s$

अब, यदि उपभोक्ता Y के स्थान पर X को प्रतिस्थापित करे तो, ऐसे में उसे Y से प्राप्त उपयोगिता या संतुष्टि कम होगी। उपयोगिता में आयी कमी को /हानि को ऐसे व्यक्त किया जा सकता हैः

$$\Delta Y.MU_{y.}$$

दूसरी तरफ, वस्तु की गुणवता में लगातार बढ़ोतरी के कारण (जैसा कि ऊपर बताया गया है समान स्तर की संतुष्टि के बारे में) उपयोगिता की अतिरिक्त मात्रा को इस तरह भी व्यक्त किया जा सकता हैः

$$\Delta X.\ MU_x$$

चूंकि, (संतुष्टि का स्तर) समीकरण में स्थिर है, इसलिए,

$$-Y.MU_y = \Delta X.MU_x$$

$$\text{or} \quad \frac{-\Delta Y}{\Delta X} = \frac{MU_x}{MU_y}$$

अब समीकरण जो $\left(\frac{\Delta Y}{\Delta X}\right)$ जो तटस्तथता वक्र ढ़ाल को ऋणात्मक दर्शाता है, प्रतिस्थापन की सीमान्त दर कहतलाता है, वस्तु X का वस्तु Y के लिए।

ह्रास्मान प्रतिस्थापन के सीमान्त दर के कारण

ह्रासमान MRS वस्तु X की गुणवत्त में प्रत्येक समान बढ़ोतरी। इसके मुख्य कारण के बारे में नीचे चर्चा की गयी हैः

1. यदि उपभोक्ता को समान संतुष्टि स्तर को बनाये रखना है ताकि उदासीनता वक्र को भी समान बनाये रखना है तो उसे वस्तु Y की स्तर को गिराना होगा वस्तु X की स्तर को बढ़ाना है।
2. ह्रासमान सीमान्त उपयोगिता के अनुसार, उपयोगिता में बढ़ोतरी तब होगी जब वस्तु X की उपयोगिता में अतिरिक्त बढ़ोतरी वस्तु की क्षतिपूर्ति वस्तु Y की उपयोगिता की स्तर में कमी लाकर की जायेगी। अब, उपभोक्ता के लिए वस्तु Y के लिए सीमान्त उपयोगिता बढ़ता जायेगा इसका आशय है वह वस्तु (Y)की कुछ मात्रा त्याग करने के लिए तैयार होगा उसकी कुछ गुणवता में कमी लाकर। इस तरह, उपभोक्ता उपयोगिता से प्राप्त लाभ (वस्तु X में वृद्धि के कारण) और उपयोगिता से मिले हानि वस्तु Y में कमी लाने से, को बराबर करता है।

6.4 उदासीनता वक्र की विशेषताएं

डदासीनता वक्र विशेषताएं निम्नलिखित मान्यताओं पर आधारित हैः

(क) **गैर–तृप्तिः** ऐसा माना जाता है कि उपभोक्ता हमेशा वस्तु के अधिक मात्रा या बड़े भाग को दूसरे वस्तु के छोटे मात्रा या छोटा भाग से ज्यादा वरीयता देगा। दूसरे वस्तु की दी हुई मात्रा उसके पास स्थिर या ज्यों का त्यों रहेगा। इसका आशय है कि उपभोक्ता अभी तक उपभोग (किसी भी वस्तु के) के तृप्ति विन्दु या संस्थिति विन्दु तक नहीं पहुँचा है।

(ख) **संक्रमताः** यह बताता है कि उपभोक्ता की पसंद में संगतता पायी जाती है। माना कि किन्ही दो वस्तुओं के तीन संयोजन A, B और C है, और उपभोक्ता A, और B के बीच तटस्थ है, B और C के बीच तटस्थ है, तो ऐसे में A और C के बीच जरूर तटस्थता पायी जायेगी। अतः यदि उपभोक्ता A को वरीतया देता है B की जगह, B को C की जगह ऐसे में C वरीयता देगा A को।

(ग) **ह्रासमान प्रतिस्थापन की सीमान्त दरः** उपभोक्ता को वस्तु Y की अधिक से अधिक इकाई का त्याग करना पड़ता है वस्तु X की एक अतिरिक्त इकाई पाने के लिए। ताकि उपभोक्ता वस्तु Y की कम से कम इकाई का त्याग वस्तु X की प्रत्येक अतिरिक्त इकाई के लिए।

6.4.1 उदासीनता वक्र की ढाल ऋणात्मक होती है।

उदासीनता वक्र की ढाल हमेशा बायें से दायें की ओर ऋणात्मक ढ़ाल होती है। यह एक अनुमान पर आधारित है, यदि उपभोक्ता वस्तु X की अतिरिक्त इकाई पाना चाहता है तो उसे वस्तु Y की कुछ इकाई छोड़नी हीं होगी। जेसा कि चित्र 6.3 में दखिाया गया है।

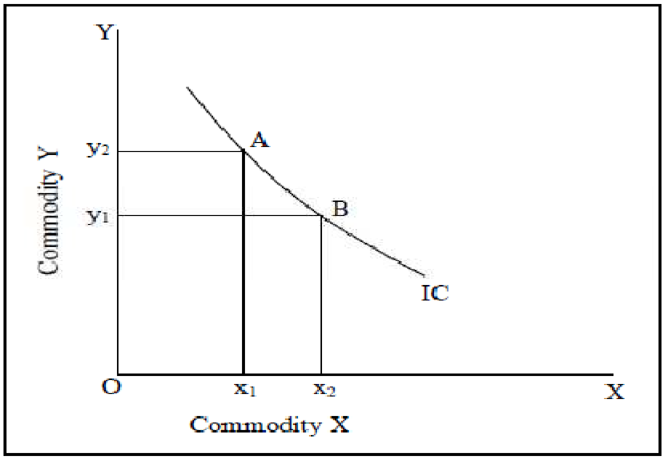

चित्र 6.3

तटस्थता वक्र कभी भी Y–अक्ष के सामानान्तर नहीं हो सकती है जैसा कि चित्र 6.4 में दिखाया गया है। आशय है, उपभोक्ता के पास वस्तु Y की मात्रा है जबकि वस्तु X की मात्रा स्थिर है। यह तटस्थता वक्र सबसे आधारभूत मान्यता के बिल्कुल विपरीत है। इसका आशय है यदि उपभोक्ता वस्तु की अधिक इकाई की चाह रखता है तो उपभोक्ता को दूसरे वस्तु की कुछ इकाई छोड़नी होगी।

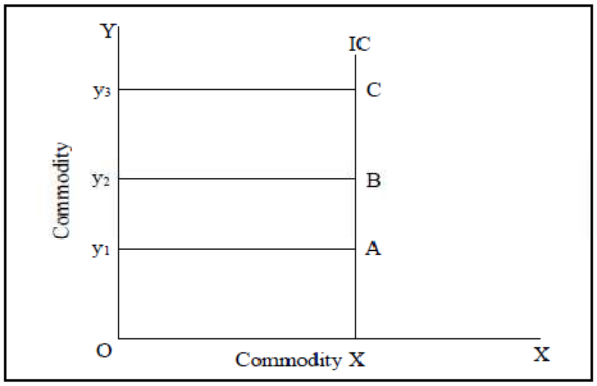

चित्र 6.4

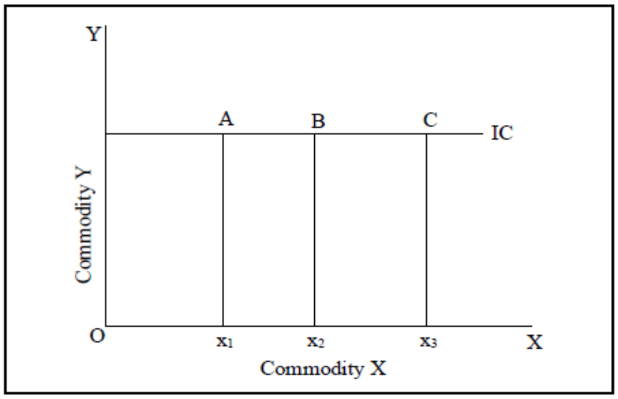

चित्र 6.5

उसी तरह तटस्थता वक्र X–आय के सामान्तर कभी नहीं हो सकता है। इसका तात्पर्य है कि उपभोक्ता वस्तु X की अधिक इकाई चाहता है जबकि वस्तु Y की मात्रा स्थिर है। जैसा कि चित्र 6.5 में दर्शाया गया है।

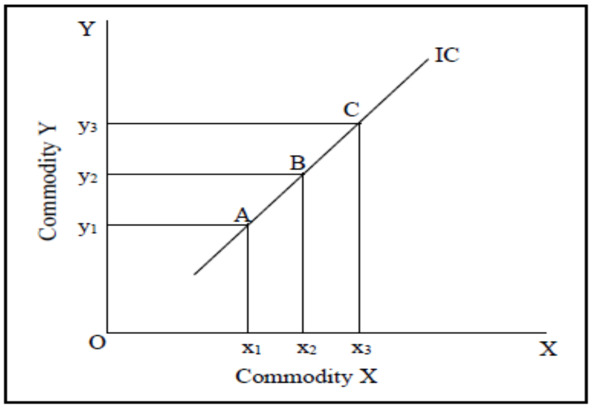

चित्र 6.6

उदासीनता वक्र की ढ़ाल कभी धनात्मक नहीं हो सकती है। यह दर्शाता है कि उपभोक्ता दोनों ही वस्तु की अधिक इकाई चाहता है। जोकि उदासीनता वक्र के विश्लेषण में संभव नहीं है। यह चित्र 6.6 में दिखाया गया है।

इस चित्र में उपभोक्ता वस्तु X और Y दोनों हीं अधिक इकाई प्राप्त कर रहा हैं जब उपभोक्ता विन्दु A से B और विन्दु B से C की ओर आगे जाता है।

6.4.2 दो उदासीनता वक्र एक दूसरे को नहीं काटती है।

दो उदासीनता वक्र एक दूसरे को नहीं काट सकती है, यह दो वस्तु के समान मात्रा को दर्शाता है ऊपर की उदासीनता वक्र और नीचली उदासीनता वक्र दोनों पर हीं। यह भी उदासीनत वक्र की मान्यता के विपरीत है। चित्र 6.7, में संयोजन B और C पर दिखाये गये उदासीन समान स्तर की संतुष्टि प्रदान करता है।

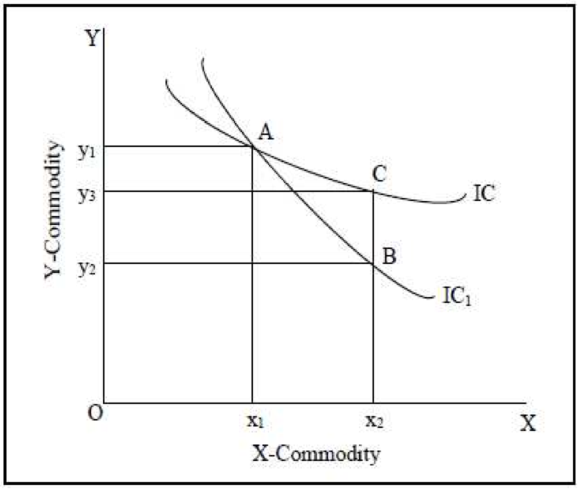

चित्र 6.7

6.4.3 उच्च उदासीनता वक्र उच्च स्तर के संतुष्टि का प्रतिनिधित्व करता है।

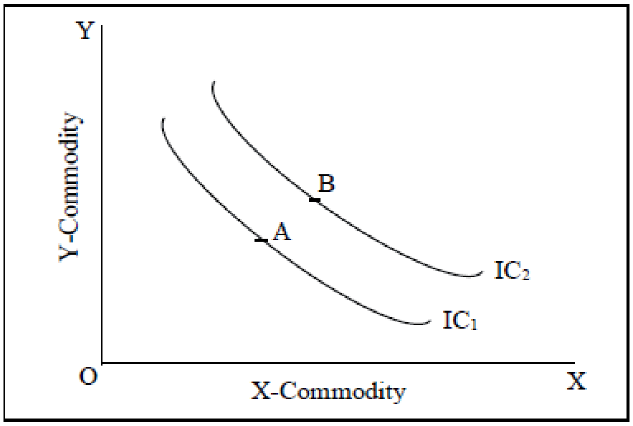

चित्र 6.8

इसका आशय है कि उपभोक्ता अधिक संतुष्टि प्राप्त करता है जब वह निम्न उदासीनता वक्र से उच्च उदासीनता वक्र पर चला जाता है। चित्र 6.8 में, उपभोक्ता उदासीनता वक्र IC_2 पर अधिक संतुष्टि अर्जित कर रहा है उदासीनता वक्र IC_1 की तुलना में।

6.4.4 उदासीनता वक्र न तो X–अक्ष को, न हीं Y–अक्ष को स्पर्श करता है।

इसका अर्थ है, उपभोक्ता के पास केवल एक वस्तु है X या Y, जो कि उदासीनीता वक्र के विश्लेषण के लिए संभव नहीं है।

चित्र 6.9 (क) प्रदर्शित कर रहा है कि उपभोक्ता के पास केवल एक वस्तु है X जो कि विन्दु A पर दर्शाया गया है।

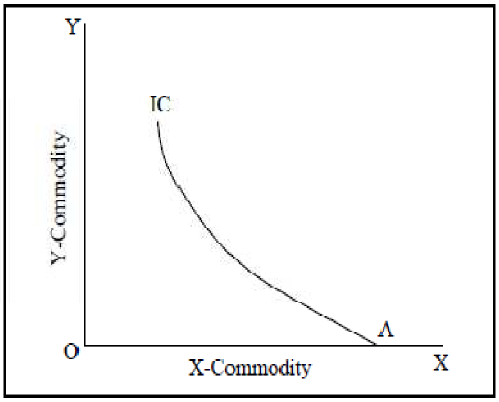

चित्र 6.9 (क)

चित्र 6.9 (ख) यह दर्शाने की कोशिश करता है कि उपभोक्ता के पास केवल एक वस्तु है Y जो कि बिन्दु B पर दिखाया गया है।

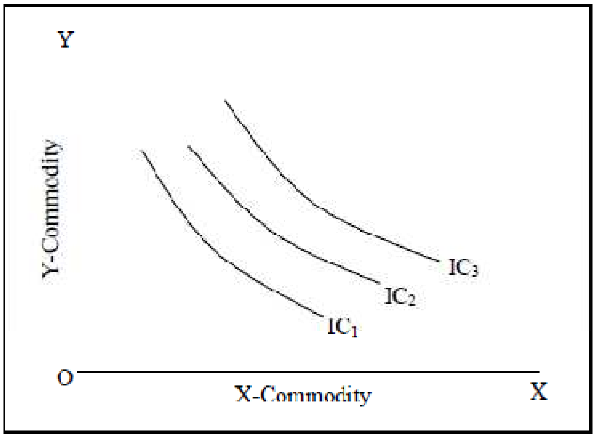

चित्र 6.9 (ख)

6.4.5 उदासीनता वक्र का एक–दूसरे के सामानान्तर नहीं होते है

उदासीनता वक्र कभी भी एक–दूसरे के सामानान्तर हो, ऐसा जरूरी नहीं है। भिन्न–भिन्न उदासीनता वक्र के भिन्न–भिन्न प्रतिस्थापन के सीमान्त दर हो सकते हैं। वे सामानान्तर तो हो सकते हैं परंतु एक–दूसरे को काट नहीं है। इसे चित्र 6.10 के द्वारा दिखाया गया हैः

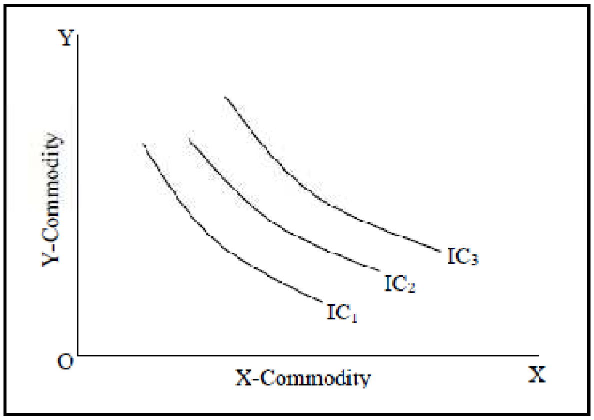

चित्र 6.10

6.4.6 उदासीनता वक्र अपनी अक्ष से उत्तल होता है।

उदासीनता वक्र अपनी अक्ष से उत्तल होता है। उदासीनता वक्र का ये गुण ह्रासमान प्रतिस्थापन के सीमान्त दर पर आधारित है। इसका अर्थ है कि प्रतिस्थापन के सीमान्त दर पर आधारित है। इसका अर्थ है प्रतिस्थापन का सीमान्त दर वस्तु X का वस्तु Y लिए घटते हुए दर से होगा। जैसे हीं उपभोक्ता वस्तु X की अधिक इकाई की माँग करता है। इसे चित्र 6.11 के द्वारा समझाया गया है।

यह चित्र बताता है कि यदि उपभोक्ता को वस्तु–Y अधिक इकाई चाहिए तो उसे की कुछ न कुछ इकाई छोड़नी होगी।

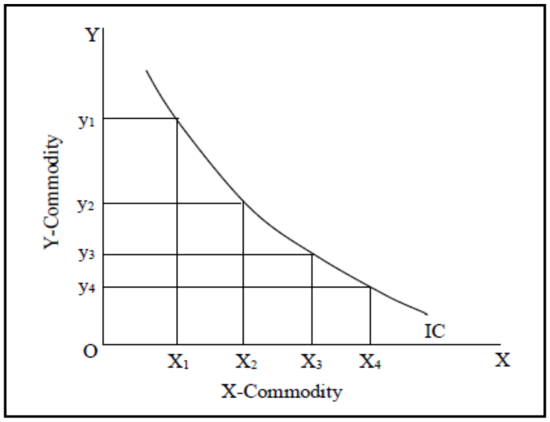

चित्र 6.11

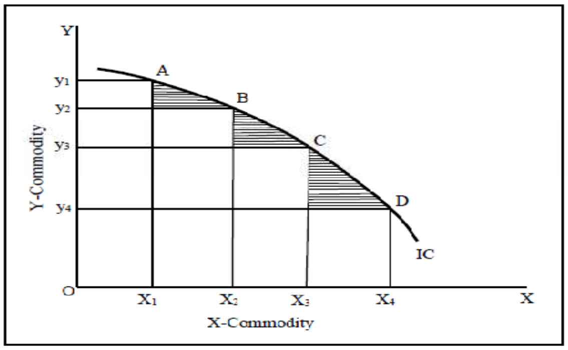

चित्र 6.12

उदासीनता वक्र कभी भी अपने अक्ष से अवतल नहीं हो सकता, इसका अर्थ है वस्तु X की प्रतिस्थापन सीमान्त दर वस्तु Y के लिए बढ़ती हुई होगी। जोकि उदासीनता वक्र के विश्लेषण में संभव नहीं है। इसका तात्पर्य है कि यदि उपभोक्ता वस्तु X की अतिरिक्त इकाई चाहता है तो उपभोक्ता को वस्तु Y की अधिक से अधिक इकाई छोड़नी होगी। इसे ऊपर चित्र 6.12 के द्वारा समझाया गया है, जिसे छायांकित भाग के द्वारा प्रदर्शित किया गया है।

उदासीनता वक्र केवल प्रतिस्थापित वस्तु के लिए सरल रेखा के रूप में खींची जा सकती है। ऐसी दशा में, वस्तु X की प्रतिस्थापन सीमान्त दर वस्तु Y के लिये स्थिर होगी। इसका तात्पर्य है कि यदि उपभोक्ता वस्तु X की अधिक इकाई चाहिए, तो उसे वस्तु Y की एक इकाई हीं छोड़नी होगी। इसे चित्र 6.13 में दिखाया गया है।

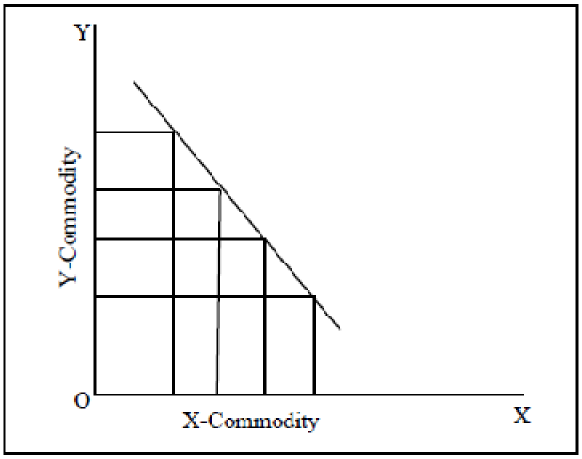

चित्र 6.13

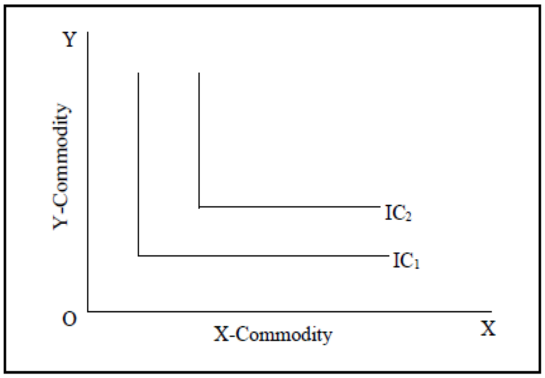

चित्र 6.14

जब वस्तु एक–दूसरे के सम्पूरक हो तो ऐसी दशा में उदासीनता वक्र समकोणीय होगी। सम्पूरक वस्तुयें वे वस्तुयें हैं जो एक–दूसरे के साथ हीं उपभोग में प्रयोग की जाती है। उदाहरण के लिए, पेन और पेपर, चाय एवं चीनी, मोटर साईकिल एवं पेट्रोल इत्यादि। ऐसी दशा में उदासीनता वक्र समकोणीय होगी। इसे चित्र 6. 14 में दर्शाया गया है।

6.5 बजट रेखा

बजट रेखा दो वस्तुओं के विभिन्न संयोजनों को दर्शाता है जो कि उपभोक्ता के दिये हुए आय में खरीदा जा सके। माना कि उपभोक्ता को वस्तु X और वस्तु Y की विभिन्न संयोजनों को खरीदना है, जबकि वो बाजार में पाता है कि,

P_x = 5 प्रति इकाई

P_y = 1 प्रति इकाई

माना कि धन/रुपये (अर्थात् 100) के द्वारा दर्शाया गया है। 'M' ऐसे में बज़ट रेखा निम्न तरीके से प्रदर्शित किया जा सकता है:

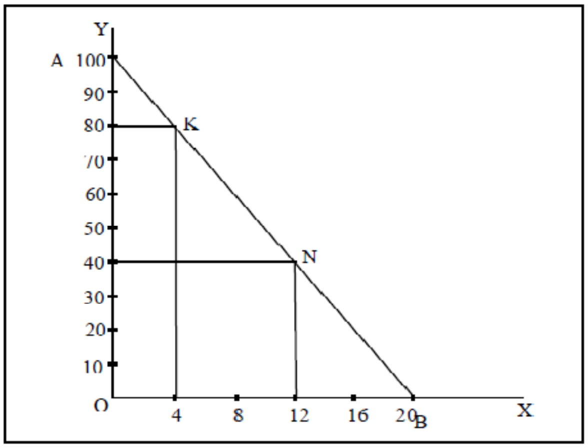

चित्र 6.15

बजट रेखा कीमत रेखा के रूप में भी व्यक्त किया जा सकता है, इन समीकरणों के द्वारा:

$$M = q_x P_x + q_y . P_y$$

जहां,

M – उपभोक्ता की मौद्रि आय है जो कि दिया हुआ/होता है।

q_x – वस्तु X की मात्रा है।

q_y – वस्तु Y की मात्रा है।

P_x – वस्तु X की कीमत है।

P_y – वस्तु Y की कीमत है।

अब, चूंकि,

$$M = q_x . P_x + q_y . x\ P_y$$

$$- q_y . P_y = - M + q_x . P_x$$

$$- q_y = \frac{-1}{P_y} M + q_x . \frac{P_x}{P_y}$$

$$q_y = \frac{1}{P_y} M - q_x \frac{P_x}{P_y}$$

अब, यदि उपभोक्ता अपनी सारी आय (M) केवल वस्तु Y पर खर्च करता है, जो ऐसे में $q_x = 0$ और तब हमारे पास एक सीधी रेखा होगी।

$$q_y = \frac{1}{P_y} . M - o\left(\frac{P_x}{P_y}\right)$$

$$q_y = \frac{M}{P_y}$$

ज्बकि यदि $q_y = 0$, है अर्थात् एक भी रुपये Y वस्तु पर खर्च नही किये जा रहे हैं। हम कोई दूसरा बिन्दु ढूढ़ेंगें।

$$q_k = \frac{M}{P_x}$$

ज्ब दोनों बिन्दु एक–दूसरे से मिलते हैं, तो हम बज़ट रेखा या कीमत रेखा प्राप्त करेंगें। वक्र या रेखा की ढ़ाल दोनों वस्तुओं X और Y की कीमत की अनुपात को दर्शाता है। पहले दिये गये चित्र के माध्यम से बज़ट रेखा की ढ़ाल को ज्यामीतिय विधि से व्यक्त किया जा सकता हैः

$$\frac{OA}{OB} = \frac{\frac{M}{P_y}}{\frac{M}{P_x}}$$

$$= \frac{M}{P_y} \times \frac{P_x}{M},$$

चूंकि, M दोनों ही समीकरणों में है इसलिए इसका अनुपात निम्नलिखित होगाः

$$= \frac{P_x}{P_y}$$

6.5.1 कीमत में परिवर्तन

यदि उपभोक्ता की आय स्थिर है तो, ऐसे में कीमत में परिवर्तन के साथ बज़ट रेखा अपने असली बज़ट रेखा से बायीं या दायीं ओर अपनी जगह परिवर्तित कर लेती है। यदि वस्तु X की कीमत गिरती है, तो ऐसे में बज़ट रेखा अपने असली बज़ट रेखा से दायीं ओर चली जायेगी, जैसा कि चित्र 6.16 में दर्शाया गया है। निम्नलिखित चित्रों में AB असली बज़ट रेखा है। यदि वस्तु X की कीमत गिरती है, जो ऐसे में बज़ट रेखा AB से AB_1 पर चली जायेगी।

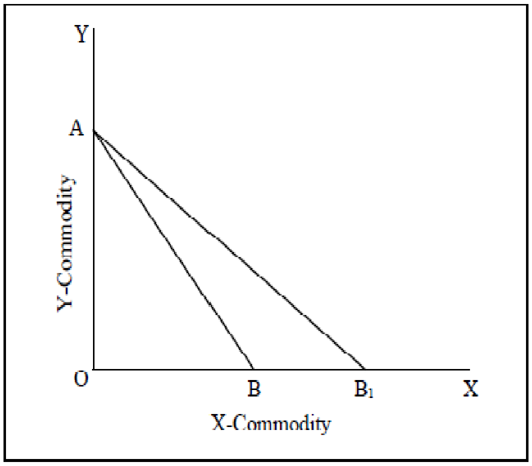

चित्र 6.16

दूसरी तरफ, यदि वस्तु Y के सीमत में परिवर्तन होता है, तो ऐसे में बज़ट रेखा अपने असली बज़ट रेखा से बायीं ओर चली जायेगी। जैसा कि चित्र में दिखाया गया है, AB जो वास्तविक बज़ट रेखा है, यदि वस्तु Y की कीमत बढ़ती हैतो ऐसे में बज़ट रेखा अपने असली बजट रेखा AB से BA_1 पर चली जायेगी। इसे चित्र 6.17 में प्रदर्शित किया गया है।

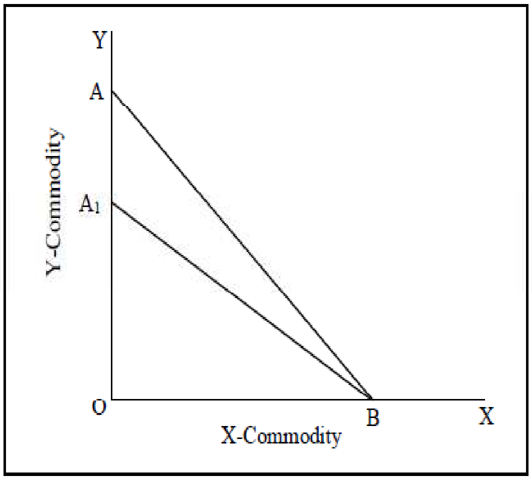

चित्र 6.17

6.5.2 आय में परिवर्तन

एक ऐसी अवस्था जिसमें उपभोक्ता की आय में तो परिवर्तन होता है और वस्तु की कीमत स्थिर रहती है। माना कि उपभोक्ता की आय बढ़ती है कीमत रेखा अपने असील बज़ट रेखा से दायीं ओर चली जाती है जैसा कि चित्र 6.18 में दिखाया गया है, जहां AB जो बज़ट रेखा हैं। आय बढ़ने के साथ बज़ट रेखा से दायीं ओर चली जायेगी। जैसा कि चित्र में रेखा A_1B_1 को दिखाया गया है। इसका तात्पर्य है कि उपभोक्ता दोनों हीं वस्तुओं की अधिक इकाई खरीद पायेगा।

दूसरी तरफ, उपभोक्ता की आय में कमी आने पर, बज़ट रेखा अपने असली बज़ट रेखा से बायीं तरफ चली जायेगी। जैसा कि चित्र 6.19, में दर्शाया गया है जिसमें AB जो असली बज़ट रेखा है, जोकि आय घटने के साथ बज़ट

रेखा AB से A_2B_2 पर पहुंच जायेगी। इसका तात्पर्य है उपभोक्ता दोनों हीं वस्तुओं की कम इकाई क्रय करेगा।

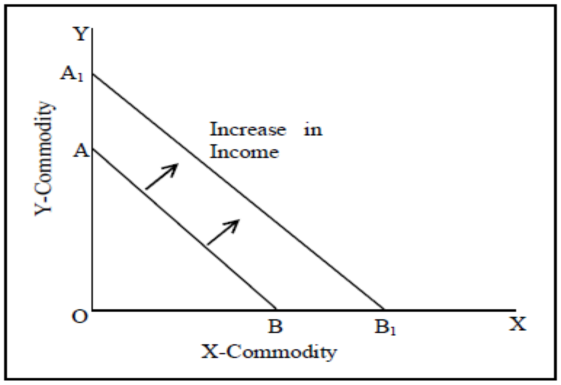

चित्र 6.18

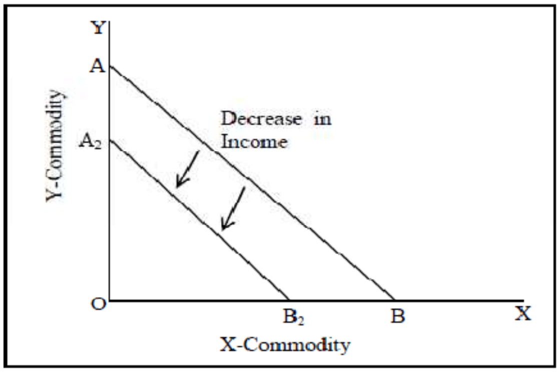

चित्र 6.19

6.6 आय प्रभाव

आय प्रभाव, वस्तु की मांगी हुई मात्रा पर हुआ वह प्रभाव है, जो कि उपभोक्ता की आय में होने वाले परिवर्तन के कारण होता है, जबकि दूसरे वस्तुओं की कीमत में कोई परिवर्तन नहीं होता है। दूसरे शब्दों में, आय प्रभाव, उपभोका की मौद्रिक आय में परिवर्तन के कारण उपभोक्ता संस्थिति पर हुआ प्रभाव है। निम्नलिखित अनुच्छेद में हम आय में परिवर्तन के कारण उपभोक्ता संस्थिति पर हुए प्रभाव को पढ़ेगें।

माना कि दो वस्तुओं की कीमत स्थिर हैं, वरीयता के पैमाने भी दिये हुए हैं, उपभोक्ता की आय परिवर्तित होती है। आय प्रभाव को चित्र 6.20 के माध्यम से समझाया जा सकता है।

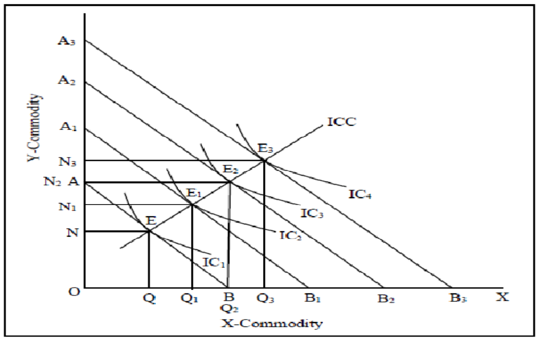

चित्र 6.20

चित्र बताता है कि शुरूआत में उपभोक्ता कीमत रेखा AB पर विन्दु A पर संस्थिति में हैं और वह वस्तु Y का OQ मात्रा तथा वस्तु Y का ON मात्रा खरीदता है। अब माना कि उपभोक्ता की आय बढ़ जाती है। इसके परिणाम स्वरूप, कीमत रेखा नये कीमत रेखा A_1B_1 पर चली जाती है जिसका संस्थिति बिन्दु E_1 हैं और जो उच्च उदासीनत वक्र IC_1 को E_1 बिन्दु पर स्पर्श करता है जहां वह वस्तु X की OQ_2, मात्रा और वस्तु Y की ON_1 मात्रा क्रय करता है। यहां पर उपभोक्ता ज्यादा अच्छी स्थिति में हैं। क्योंकि उच्च उदासीनता वक्र उच्च स्तरीय या ज्यादा संतुष्टि प्रदान करता है। अतः उपभोक्ता अपनी आय बढ़ने के साथ ज्यादा संतुष्टि अर्जित करेगा। और इसी तरह जितनी आय उपभोक्ता की बढ़ती जायेगी उसके साथ उसकी संतुष्टि का स्तर भी बढ़ता जायेगा। इसी तरह, हम कई संस्थिति बिन्दु पाते हैं जैसे E, E_1, E_2, E_3, इत्यादि। जब हम इन बिन्दुओं को साथ मिलाते हैं तो एक वक्र प्राप्त होता है उसे हम 'आय उपभोग वक्र' कहते हैं, अर्थात् ICC। अतः, आय उपभोग वक्र, उपभोग के विभिन्न आय स्तर पर मिले संस्थिति बिन्दुओं का समूह/सामाहार है, जबकि कीमत दोनों वस्तुओं का दिया हुआ है और स्थिर है।

बेहतर एवं घटिया वस्तुओं के संदर्भ में आय प्रभाव

साधारणतः बेहतर या उच्च स्तरीय वस्तु या साधारण वस्तुओं के संदर्भ में, जब आय बढ़ती है, तो इन वस्तुओं की भी मांग बढ़ जाती है और आय घटने के साथ मांग भी घट जाती है। लेकिन, घटिया या निम्न स्तरीय वस्तुओं के संदर्भ में ऐसा नहीं होता, ठीक बेहतर वस्तुओं के विपरीत घटिया वस्तुओं की मांग आय बढ़ने के साथ घटने लगती है और आय घटने के साथ बढ़ने लगती है। अतः दोनों तरह की दशाओं को हम X और Y वस्तु के रूप में चर्चा कर सकते हैं।

वस्त–X एक घटिया वस्तु है और Y–वस्तु एक बेहतर वस्तु है

इसे आप आगे के चित्र में देख सकते हैं, जिसमें X–वस्तु को OX अक्ष पर और Y–वस्तु को OY अक्ष पर दिखाया गया है। चूँकि, X एक घटिया वस्तु है और Y एक बेहतर या बढ़िया वस्तु है। उपभोक्ता जो है वह आय बढ़ने पर वस्तु Y को ज्यादा तथा वस्तु X को कम खरीदेगा। ठीक इसके विपरीत, जब आय घट जायेगी तो X वस्तु को ज्यादा वरीयता देगा और Y को कम। अतः X वस्तु के संदर्भ में उदासीन मैप की ढ़ाल पीछे मूड़ता हुआ यानि Y वस्तु की ओर जाता हुआ यानि बायीं ओर जाता हुआ होगा।

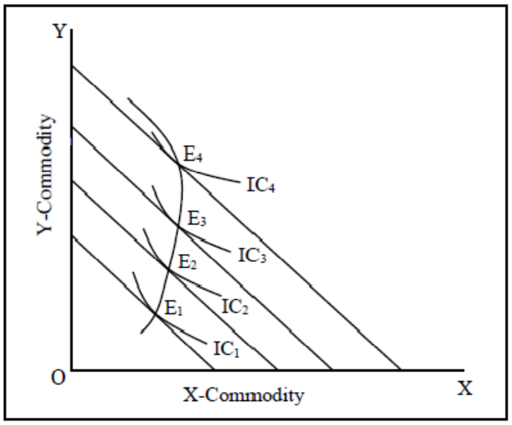

चित्र 6.21

वस्तु–Y एक घटिया वस्तु है, और वस्तु–X एक बेहतर वस्तु है।

इसे चित्र 6.22, में दिखाया गया है। जब Y एक घटिया वस्तु है और X एक बेहतर वस्तु है तो ऐसी स्थिति में, हम पाते हैं कि आय–उपभोग वक्र (ICC) X–अक्ष की ओर पीछे मूड़ता हुआ होगा। और वक्र कर ढ़ाल विन्दु E_2 से दायीं ओर झुकी होगी, यानि X–अक्ष की ओर। इससे पता चलता है कि Y एक घटिया वस्तु है जिसके वजह से आय प्रभाव नाकारात्मक है।

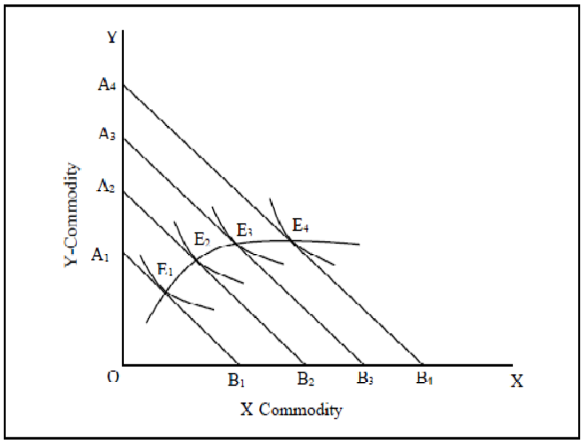

चित्र 6.22

प्रतिस्थापन प्रभाव

निम्नलिखित चित्रों के माध्यम से प्रतिस्थापन प्रभाव को समझाया जा सकता है। PL_1 वक्र के द्वारा उपभोक्ता की मौद्रिक आय और वस्तु X और वस्त Y की अनुपात दर्शाया गया है। उपभोक्ता संतुलन में X–वस्तु की OR मात्रा क्रय करता है। मान लिजिये की X–वस्तु की कीमत कम हो गई और नई बजट रेखा PL है। X–वस्तु की कीमत कम होने से उपभोक्ता की वास्तविक आय में वृद्धि हो गई। प्रतिस्थापन प्रभाव की पहचान के लिए उपभोक्ता की आय को इस प्रकार कम करत है कि वह पुनः अपने पहले के संतुष्टि या संस्थिति स्तर पर आ जाय। इसके लिए हमें दो कारकों को लेना होगा । पहला अधिमान वक्र पहले वाला ही रहना चाहिए अर्थात् संतुलन का बिन्दु पहले के उदासीनता वक्र के हीं किसी बिन्दु पर होना चाहिए। लेकिन कीमत नई कीमत रेखा PL द्वारा प्रदर्शित होना चाहिए।

इसके लिए रेखा के समानान्तर बायीं ओर P_1L_1 एक रेखा खींची जाती है जो IC_1 अनधिमान वक्र को स्पर्श करता हुआ जाता है। उपभोक्ता के संतुलन विन्दु का E से E_1 पर परिवर्तन या RN मात्रा में X वस्तु की वृद्धि को प्रतिस्थापन प्रभाव कहा जाता है।

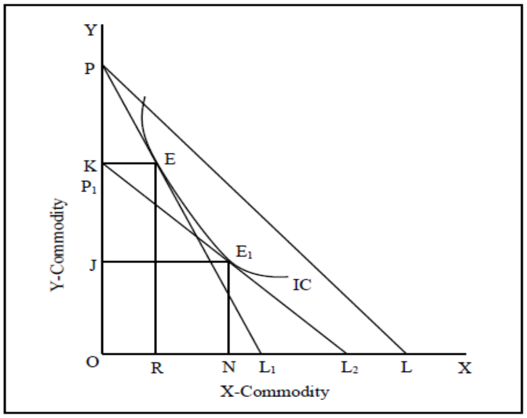

चित्र 6.23

6.7 उपभोक्ता की संस्थिति/संतुलन

उपभोक्ता की संस्थिति से तात्पर्य है, वह अवस्था जिसमें उपभोक्ता दिये हुये आय में दो वस्तुओं के विभिन्न संयोजनों का क्रय करता है जो कि उसे अधिकतम संतुष्टि प्रदान करता है और उपभोक्ता इसमें कोई बदलाव नहीं चाहता है। अतः यह एक ऐसी अवस्था है जिसमें उपभोक्ता न तो और अधिक वस्तुयें खरीदना चाहता है और ना हीं वह कम करना चाहता है जो मात्रा वह वस्तु की उपभोग कर चुका है, उपभोक्ता की संस्थिति कहलता है।

मान्यताएं

अनधिमान वक्र विश्लेषण के द्वारा उपभोक्ता की संतुलन की निम्नलिखित मान्यताएं हैं:

1. उपभोक्ता की आय दी हुई है।
2. वस्तुओं और सेवाओं की कीमत स्थिर है।
3. उपभोक्ता बुद्धिमान है, वह अपनी दिये हुए मौद्रिक आय में अधिकतम संतुष्टि प्राप्त करना चाहता है।
4. उपभोक्ता उदासीनता मैप (नक्सा) के बारे में जानता है।
5. सभी वस्तुएं सजातीय और भाज्य है।
6. संक्रामिकता या पारगमन की स्थिति संतुष्ट है। अगर संयोजन $A > B$ और $B > C$ तो $A > C$ ।
7. नॉन–सैटिआी या गैर तृप्ति या गैर सम्मत की स्थिमि धारण रखती है। उपभोक्ता एक वस्तु या अन्रू को या दोनों का पसंद करता है।

उपभोक्ता के संतुलन की शर्तें

उपभोक्ता के संतुलन की निम्नलिखित शर्तें है।

1. कीमत रेखा उदासीनता वक्र से अवश्य हीं स्पर्श होना चाहिए अर्थात् $MRS_{xy} = P_x/P_y$ ।

चित्र 6.24 में, वस्तु X, OX अक्ष पर दिखाया गया है और, X–अक्ष पर, AB बज़ट रेखा है। चित्र में उदासीनता वक्र समूह IC_1, IC_2, IC_3 उदासीनता वक्र का समूह है। क्योंकि सबसे उच्च उदासीनता वक्र IC_2, कीमत रेखा AB को बिन्दु E पर स्पर्श करता है। जो कि उपभोक्ता को अधिक संतुष्टि प्रदान कर रहा है। बिन्दु C और D पर उपभोक्ता संतुलन में नहीं है क्योंकि ये दोनों बिन्दु उपभोक्ता को अधिकतम संतुष्टि प्रदान नहीं कर रहें है। उपभोक्ता इससे उच्चे बिन्दु E पर जा सकता है। इसी तरह, उपभोक्ता उदासीनता वक्र IC_3, पर भी असंतुलन में हैं क्योंकि उसके पास उतने पैसे नहीं कि उदासीनता वक्र IC_3 तक पहुंच सके।

उदासीनता वक्र और कीमत रेखा के स्पर्श करना जरुरी है लेकिन उपभोक्ता का संतुलन पाने के लिए केवल यही प्रयाप्त नहीं है। दूसरी शर्त भी पूरी होनी चाहिए।

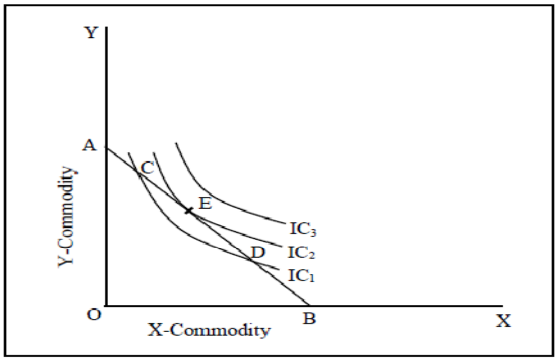

चित्र 6.24

2. संतुलन बिन्दु पर उदासीनता वक्र को उत्तल होना अनिवार्य है। दूसरे शब्दों में; 'प्रतिस्थापन की सीमान दर वस्तु X का वस्तु Y के लिए' को संतुलन बिन्दु पर अवश्य गिरती हुई होना चाहिए। जैस कि पहले हमने देखा था चित्र में कि उदासीनता वक्र अपने अक्ष से उत्तल होता है। इसलिए, बिन्दु E पर, संतुलन की सारी शर्ते पूरी होती है। उदासीनता वक्र कीमत रेखा को स्पर्श करती है, वह अपने से भी उत्तल है। इसलिए बिन्दु E उपभोक्ता के लिए स्थायिक संतुलन बिन्दु है।

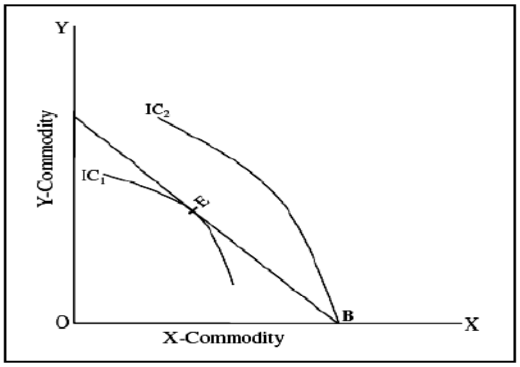

चित्र 6.25

यदि उदासीनता वक्र संतुलन बिन्दु पर अपने अक्ष से उत्तल के बजाय अवतल हो तो, जैसा कि चित्र 6.25 में दिखाया गया है, कि बिन्दु E पर, कीमत रेखा उदासीनता वक्र को स्पर्श करती है जो कि अपने धूरी

पर अवत्तल है। इसलिए यह अधिकतम उपभोग नहीं दिखाता है क्योंकि कीमत रेखा AB के साथ उपभोक्ता अधिक से अधिक उंचाई वाले उदासीनता वक्र पर जाता है जो, यहां एक ध्यान देने वाली बात है कि उदासीनता वक्र के बिन्दु B पर उपभोक्ता केवल X वस्तु खरीद पाता है Y नहीं। इसलिए, यदि उदासीनता वक्र अपनी धूरी से उत्तल के स्थान पर अवत्तल है तो उसे अधिकतम संतुष्टि प्राप्त नहीं होगी।

6.8 कीमत प्रभाव, आय प्रभाव तथा प्रतिस्थापन प्रभाव के बीच अंर्तसम्बध

वीमत के परिवर्तित होने से जो प्रभाव पड़ता है, कीमत प्रभाव कहलता है, लेकिन कीमत प्रभाव कोई एकल घटना नहीं है। यह आय प्रभाव और प्रतिस्थापन प्रभाव का समग्र रुप है, जो चित्र 6.26 में दर्शाया गया है।

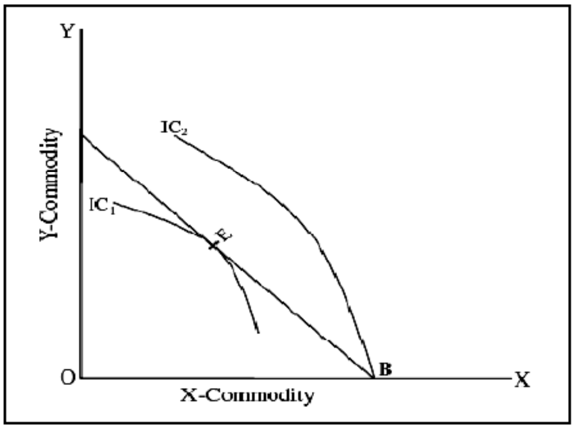

चित्र 6.26

जब वस्तु की कीमत गिरती है, जो वास्तविक आय उपभोक्ता बढ़ती है इसका आशय है उपभोक्ता अपनी दी गई आय के साथ ज्यादा इकाईयां खरीद सकती है। इसे आय प्रभाव कहते हैं। उसी तरह, जब वस्तु की कीमत गिरती है तो उपभोक्ता उस सस्ती वस्तु को उसके तुलना में उससे महँगी वस्तु के लिए सस्ती वस्तु को प्रतिस्थापित कर देता है, इस प्रभाव को प्रतिस्थापन प्रभाव कहते हैं। अतः कीमत प्रभाव जो है वो प्रतिस्थापन प्रभाव और आय प्रभाव का समग्र रूप है। इसे चित्र 6.26 के माध्यम से व्यक्त किया जा सकता है।

मान लिजिए LM बजट रेखा है, जो दो वस्तुओं के विभिन्न संयोंगों को प्रदर्शित करता है, जिसे उपभोक्ता अपने दिये हुए आय से क्रय करता है। IC_1 उदासीनता वक्र है, जो LM बजट रेखा को E बिन्दु पर स्पर्श करता है। उपभोक्ता X वस्तु की OA मात्रा क्रय करता है। अब मान लिजिये की X वस्तु की कीमत कम हो जती है। दिये हुये आय पर LM बज़ट रेखा परिवर्तित होकर LM_1 हो जाता है। अब उदासीनता वक्र IC_2 नयी बजट रेखा LM_1 पर E_1 बिन्दु पर स्पर्श करती है, और उपभोक्ता अब X वस्तु की OB मात्रा क्रय करता है। OA तथा OB के बीच के अंतर 'AB' को कीमत प्रभाव कहते हैं। यह आय प्रभाव और प्रतिस्थापन प्रभाव का भाग है। वास्तव में, उपभोक्ता की आय में वृद्धि X

वस्तु की कीमत में कमी के कारण है। वस्तु Y की तुलना में वस्तु X सस्ता हो जाता है। उपभोक्ता वस्तु Y के स्थान पर वस्तु X को प्रतिस्थापित करता है। मौद्रिक आय में परिवर्तन के पश्चात् Y वस्तु की कितनी मात्रा X वस्तु के लिए परिवर्तित की गई है। आय प्रभाव तथा प्रतिस्थापन प्रभाव को जानने के लिए, उपभोक्ता के आय को इस प्रकार कम किया जाता है कि उपभोक्ता IC_1 उदासीनता वक्र पर आ जाये। LM_1 बजट रेखा के समानान्तर बांयी ओर L_2M_2 बजट रेखा इस प्रकार खींचा जाता है कि वह IC_1 उदासीनता वक्र को E_2 विन्दु पर स्पर्श करे। इस नये E_2 संतुलन बिन्दु पर पर उपभोक्ता OC मात्रा में X वस्तु का क्रय करेगा। अतः AC प्रतिस्थापन प्रभाव है। अतः X वस्तु की कीमत में कमी होने पर AC मात्रा में वस्तु प्रतिस्थापित की जा रही है। CB आय प्रभाव है। अतः

कीमत प्रभाव = प्रतिस्थापन प्रभाव + आय प्रभाव

$AB = AC + CB$

कीमत प्रभाव = EE^1

प्रतिस्थापन प्रभाव = E^2E^2

आय प्रभाव = E^1E^2

अतः EE^1, E^2E^2 और E^1E^2 का योग है।

6.9 उदासीनता वक्र की मदद से माँग वक्र का निर्धारण

मांग वक्र कीमत और वस्तु की मांगी गई मात्रा के बीच के सम्बन्ध को बताता है। दूसरे शब्दों में, मांग वक्र वस्तु के विभिन्न मात्रा को दर्शाता है जो कि किसी निश्चित समय अवधि में अलग–अलग कीमत पर उपभोक्ता द्वारा खरीदा जाता है, जबकि बाकि चीजें या बातें पहले की तरह समान होती है। मांग वक्र उदासीनता वक्र की सहायता से भी निर्धारित किया जा सकता है।

मांग वक्र कीमत–उपभोग से भी समझाया जा सकता है। यदि उपभोक्ता की आय दी हुई हो, ऐसे में वस्तु की मांग कितना प्रभावित होगी कीमत के परिवर्तित होन या घटने–बढने के कारण, इस परिवर्तन को जो वक्र दर्शाता है उसे कीमत–उपभोग वक्र कहते हैं। यह दर्शाता है कि दोनों कीमत–उपभोग वक्र (PCC) और मांग वक्र दोनों हीं उपभोक्ता द्वारा मांगे गये वस्तु की विभिन्न मात्रा अलग–अलग कीमत स्तर को दर्शाता है।

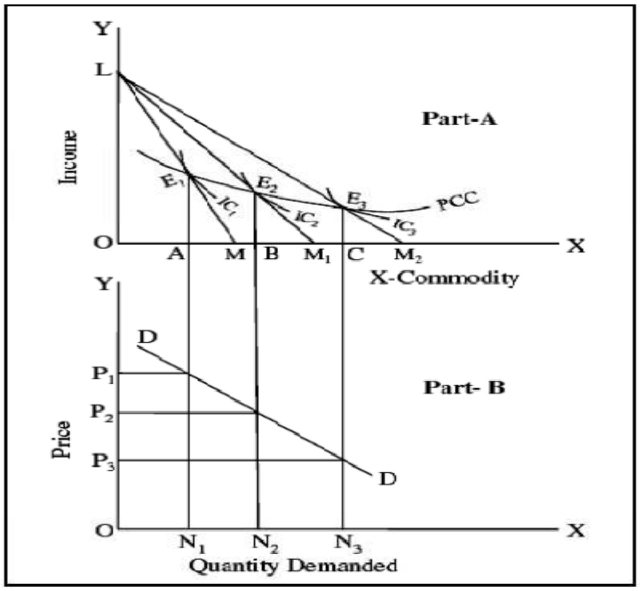

चित्र 6.27

6.10 व्यापार में उदासीनता वक्र का उपयोग

उदासीनता वक्र विश्लेषण का इस्तेमाल व्यापार के विभिन्न आयामों में होता है। वह हैं:

1. **उपभोगः** उपभोग के क्षेत्र में उदासीनता वक्र बहुत हीं ज्यादा उपयोगी है। उपभोक्ता अपने सीमीति आय का वस्तुओं के विभिन्न संयोजनों को अलग–अलग कीमतों पर इस तरह खर्च करना चाहता है कि उसे अधिकतम संतुष्टि प्राप्त हो। उपभोक्ता अधिकतम संतुष्टि तब प्राप्त करता है जब बज़ट रेखा उदासीनता वक्र को स्पर्श करता है।
2. **उपभोक्ता अधिशेषः** उदासीनता वक्र विश्लेषण की सहायता से उपभोक्ता अधिशेष को आसानी से प्राप्त किया जा सकता है। यह बताता है कि उपभोक्ता जो कीमत अदा करना चाहता है और जो कीमत बाजार में चल रही है दोनों में अंतर होता है। माना कि कोई एक उपभोक्ता किसी वस्तु के लिए 10 रुपये ही खर्च करने को तैयार है जबकि बाजार में वो मात्र 8 रुपये में ही उपलब्ध है, ऐसे में जो 2 रुपये का अन्तर आया, उसे हीं उपभोक्ता अधिकशेष कहते हैं। यह उदासीनता वक्र विश्लेषण के द्वारा और भी आसानी से प्राप्त किया जा सकता है।
3. **उत्पादनः** उत्पादक के संतुलन को उदासीनता वक्र की सहायता से ज्यादा अच्छे से व्यक्त किया जा सकता है। सम–उत्पाद वक्र उदासीनता वक्र के बिल्कुल समान होता है। आइसो–कॉस्ट वक्र बजट रेखा की तरह ही होता है। साधारण शब्दों में, सम उत्पाद वक्र दो आगतों के विभिन्न संयोजनों को बताता है, जिस पर उपभोक्ता अपने दिये हुए आय से खरीद सकता है। उपभोक्ता संतुलन में होगा जब सम–कीमत वक्र, सम उत्पादक वक्र को स्पर्श करेगा। यह बिन्दु उत्पादन के लिए (संतुलन बिन्दु) सबसे अच्छा संयोजन होगा।

4. **मांग के नियम की व्याख्याः** उदासीनता वक्र विश्लेषण बताता हे कि कीमत प्रभाव, प्रतिस्थापन प्रभाव व आय प्रभाव एक–दूसरे से आपस में जुड़े हुये हैं। ये तीनों मिलकर हीं मांग के नियम का पूर्ण परीक्षण करते हैं।

6.11 सांराश

उदासीनता वक्र दो विभिन्न वस्तुओं के भिन्न–भिन्न संयोजनों की व्याख्या करता है जो उपभोक्ता को समान संतुष्टि प्रदान करता है। उदासीनता वक्र अपने अक्ष से उत्तल होता है। यह उत्तल होता है क्योंकि यह ह्रासमान प्रतिस्थापन सीमान्त दर पर आधारित है। ह्रासमान प्रतिस्थापन सीमान्त दर, वह दर है जिस पर उपभोक्ता एक वस्तु को प्रतिस्थापित करता है, दूसरे वस्तु से। बज़ट रेखा दो वस्तुओं के विभिन्न संयोजनों को दर्शाता है जो कि दिये हुए आय में और दिये हुये कीमत पर खरीदा जा सके। उपभोक्ता उच्च उदासीनता वक्र पर अधिकतम संतुष्टि प्राप्त करता है। वास्तविक जीवन में भी उदासीनता वक्र बहुत हीं महत्वपूर्ण है। इसका उपयोग उपभोग में, उत्पादन के लिए, और उपभोक्ता कल्याण को बढ़ाने में किया जाता है।

6.12 शब्दावाली

उदासीनता वक्रः उपभोक्ता वस्तुओं के सभी संयोजनों से समान संतुष्टि प्राप्त करता है।

घटती हुयी प्रतिस्थापन की सीमान्त दर की व्याख्या (MRS):इस नियम के अनसार यदि उपभोक्ता को वस्तु X की अतिरिक्त इकाई प्राप्त करनी है तो वस्तु Y की या किसी दूरे वस्तु की और कम से कम की इकाई छोड़नी होगी।

6.13 बोध प्रश्न

(A) रिक्त स्थानों को भरेंः

1. उदासीनता वक्र की ढ़ाल ———————————— होती हें
2. उदासीनता वक्र कभी भी ———————————— के समानानतर नहीं हो सकता हें ।
3. उदासीनता वक्र —————————— नहीं हो सकता है।
4. आय में वृद्धि के साथ घटिया वस्तु की मांग —————————— है।
5. उदासीनता वक्र —————————— का अनुकरण करता है।
6. जब किसी वस्तु की कीमत बढ़ती है तो, उपभोक्ता की आय ———————— है।

(B) सही या गलत

1. उदासीनता वक्र मूल बिन्दु से उत्तल होता हें
2. उदासीनता वक्र दर्शाता हे कि उपभोक्ता X वस्तु की अतिरिकत इकाई के लिए Y वस्तु की कम इकाई का त्याग के लिए तेयार रहता है।
3. उपभोक्ता कीमत रेखा से बाहर जा सकता है।
4. उपभोक्ता संतुलन में होता है जहां उदासीनता वक्र बज़ट रेखा को काटता है।
5. प्रतीस्थापन प्रभाव कीमत प्रभाव का एक अंग है।
6. मांग वक्र कीमत उपभोग रेखा के द्वारा चित्रित किया जा सकता है।

(C) बहुविकल्पीय चयन/वस्तुनिष्ठ प्रश्न

1. दिये हुए बज़ट रेखा पर, यदि उपभोक्ता की आय बढ़ती है, जबकि X और Y वस्तु की कीमत स्थिर रहती है। तब,
   (क) बजट रेखा मूल बजट रेखा से दाहिनी ओर परिवर्तित होगी।
   (ख) बजट रेखा मूल बजट रेखा से बायीं ओर परिवर्तित होगी।
   (ग) बजट रेखा X–अक्ष के समानान्तर होगी।
   (घ) बजट रेखा Y–अक्ष के समानान्तर होगी।
2. कीमत प्रभाव संयोजन है।
   (क) आय प्रभाव और प्रतिस्थापन प्रभाव
   (ख) आय प्रभाव और प्रतिस्थापन प्रभाव में अन्तर।
   (ग) a और b दोनों।
   (घ) इनमें से कोई नहीं।
3. उदासीनता वक्र के अंतर्गत उपभोक्ता संस्थिति के लिए उदासीनता वक्र मूल बिन्दु से ......
   (क) मूल बिन्दु से नतोदर (ख) मूल बिन्दु से उन्नतोदर
   (ग) X–अक्ष के समानान्तर (घ) Y–अक्ष के समानान्तर
4. यदि उदासीन वक्र मूल बिन्दु के उन्नतोदर है तो सीमान्त प्रतिस्थापन की दर –– चाहिए
   (क) घटनी (ख) बढ़नी (ग) स्थिर (घ) इनमें से कोई नहीं।

6.14 बोध प्रश्नों के उत्तर

(A) 1. ऋणात्मक, 2. किसी भी अक्ष, 3. नत्तोदर, 4. गिरती हुये, 5. क्रमागत।

(B) 1. सत्य, 2. सत्य, 3. असत्य, 4. असत्य, 5. सत्य, 6. सत्य।

(C) 1. (a), 2. (a), 3. (b), 4. (a).

6.15 स्वपरख प्रश्न

(A) लघु उत्तरीतय प्रश्न

1. उदासीनता वक्र क्या है?
2. बज़ट रेखा को परिभाषित करें ।
3. आय प्रभाव से क्या समझते हैं?
4. सीमान्त प्रतिस्थापन की दर की अवधारणा को समझाये।
5. उदासीनता वक्र की मान्यतायें क्या है?
6. उपभोक्ता संस्थिति की स्थिति की व्याख्या करें।

(B) दीर्घ उत्तरीय प्रकार के प्रश्न

1. उदासीनता वक्र की विशेषतायें क्या है?
2. उदासीनता वक्र की सहायता से उपभोक्ता संतुलन की व्याख्या करें।
3. कीमत प्रभाव, आय प्रभाव और प्रतिस्थापन प्रभाव का संयोग है दिखायें।
4. कीमत उपभोग वक्र की सहायता से आप मांग वक्र का निर्धारण कैसे करते हैं?

6.16 सन्दर्भ पुस्तकें

1. Alfed W. Stonier and Douglas C. Hague, A Text Book of Economic Theory, Longman, 1990.
2. Dr. D.M. Mithani, Managerial Economics – Theory and Applications: Himalaya Publishing House.
3. Mehta, P.L., Managerial Economics – Analysis, Problem and Cases, Sultan Chand & Sons, New Delhi.
4. H.L. Ahuja, Business Economics Micro – S. Chand & Co. Ltd., New Delhi, 1999.
5. S.K., Mishra and V.K. Puri, Advanced Microeconomic Theory, Himalaya Publishing House, Mumbai, 2001.

*****

इकाई 7 अधिमान प्रकटीकरण सिद्धान्त और हिक्सियन पूर्वालोकन

इकाई की रूपरेखा

7.1 प्रस्तावना
7.2 प्रकट अधिमान का चयन
7.3 मांग का नियम
7.4 व्यक्त अधिमान से 'मांग वक्र' का निर्धारण
7.5 मांग के नियम **के निर्धारण में** हिक्सियन दृष्टिकोण
7.6 व्यक्त प्रकटीकरण सिद्धान्त की श्रेष्ठता
7.7 व्यक्त प्रकटीकरण सिद्धान्त की सीमायें
7.8 सारांश
7.9 शब्दावाली
7.10 बोध प्रश्न
7.11 बोध प्रश्नों के उत्तर
7.12 स्वपरख प्रश्न
7.13 सन्दर्भ पुस्तकें

उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप इस योग्य हो सकेंगे कि –

- उपभोक्ता के व्यवहार को जो मजबूत क्रमबद्धता की परिकल्पना कर सकें।
- व्यक्त अधिमान से मांग वक्र को निकाल सकें।
- व्यक्त अधिमान सिद्धान्त की श्रेष्ठता की पहचान कर सकें।
- मांग के नियम को निकालने के हिक्सियन दृष्टिकोण को समझ सकें।
- व्यक्ति प्रकटीकरण सिद्धान्त की सीमाओं को समझ सकें।

7.1 प्रस्तावना

व्यक्ति अधिमान सिद्धान्त पॉल. ए. सैमुएलसन ने 1938 में विकसित किया है। सैमूएलसन ने सीमान्त उपयोगिता सिद्धान्त और अनधिमान वक्र सिद्धान्त जिसका प्रतिपादन हिक्स ने किया। उसकी कमजोर क्रमबद्धता पर होने की आलोचना की तथा अपने सिद्धान्त को मजबूत क्रमबद्धता के आधार पर विकसित किया। यह सिद्धान्त मांग के नियम को सीधा और सरल तरीके से व्यक्त करता है। यह कीमत प्रभाव, आय प्रभाव तथा प्रतिस्थापन प्रभाव को अनधिमान वक्र सिद्धान्त से अलग तरीके से अलग करता है। व्यक्त अधिमान प्रकटीकरण सिद्धान्त उपभोक्ता व्यवहार का मार्शल और हिक्स–एलेन द्वारा विकसित मनोवैज्ञानिक व्याख्या की जगह वैज्ञानिक (व्यवहारिक अर्थ) व्याख्या प्रस्तुत करता है।

7.2 प्रकट अधिमान का चयन

प्रो. सैमुएलसन का मांग सिद्धान्त व्यक्त अधिमान की मान्यता या परिकल्पना पर आधारित है जो यह कहता है कि चुनाव अधिमान को प्रकट करता है। इस सत्य को ध्यान में रखते हुये उपभोक्ता दो वस्तुओं के संयोग की खरीदारी करता है। क्योंकि वह इस संयोग को दूसरे से अधिक पसंद करता है या यह दूसरे से सस्ता

है। मान लिजिए कोई उपभोक्ता संयोग 'A' को B, C, D के उपर पसंद करता है। इसका अर्थ है वह अपने अधिमान को A के लिए प्रकट करता है। वह ऐसा दो कारणों से कर सकता है। पहला संयोग A, संयोग B, C, D से सस्ता हो। दसूरा, A सबसे पसन्द की हो और संयोग को अन्य संयोगों से अधिक पसंद करता है। ऐसी स्थिति में यह कहा जा सकता है कि संयोग A संयोग B, C, D की तुलना में व्यक्त अधिमान है। या संयोग B, C, D संयोग की में निकृष्ट व्यक्त करता है। इसकी व्याख्या चित्र 7.1 में की गई है, जिसमें दो वस्तु X, Y की कीमत दी हुई है, PO उपभोक्ता की कीमत–आय रेखा है।

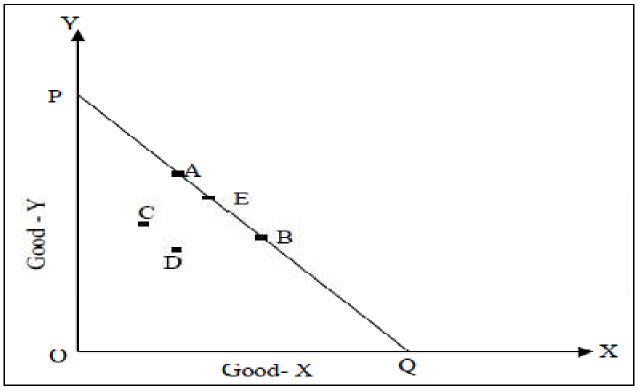

चित्र 7.1

त्रिभूज OPQ का क्षेत्र उपभोक्ता का चूनाव क्षेत्र को प्रदर्शित करता है जो वस्तु X और Y का दिये हुये PQ कीमत आय रेखा पर विभिन्न संयोग है। अन्य शब्दों में, PQ उपभोक्ता रेखा पर A और B या C, D रेखा के नीचे किसी भी संयोग का चुनाव कर सकता है। यह वह A का चूनाव करता है, जो यह B से अधिक पसंन्दगी को व्यक्त करता है। PQ कीमत–आय रेखा से नीचे वाले संयोग, संयोग A से निकृष्ट व्यक्त किया जाता है, जबकि संयोग E, उपभोक्ता की पसन्द का हो, पर यह उपभोक्ता के क्रयशक्ति के बाहर है, PQ रेखा से उपर दिखाया गया है। अतः A अन्य संयोगों से अधिक पसंद वाला व्यक्त किया जाता है।

प्रो. सैमूएलशन के अनुसार जब कोई उपभोक्ता प्रेक्षित बाजार व्यवहार के आधार पर अपना अधिमान किसी निश्चित संयोग के लिए प्रकट करता है, तो वह यह मजबूत क्रमबद्धता के आधार पर त्रिभुज OPQ में किसी एक स्थिति को अन्य से बेहतर व्यक्त करता है। अतः कोई उपभोक्ता किसी संयोग के लिए अपनी निशिचित OPQ त्रिभूज क्षेत्र में प्रकट करता है, तो वह अन्य सभी संयोगों जैसे B, C, D को अस्वीकार करता है। अतः A का चयन मजबूत क्रमबद्धता है।

7.3 मांग का नियम

प्रो. सैमूएलशन मांग के नियम को अपने व्यक्त अधिमान के आधार पर बिना अनधिमान वक्र के उपयोग और इसकी मान्यता के स्थापित करते हैं।

सिद्धान्त की मान्यताएं

यह निम्नलिखित मान्यताओं पर आधारित हैः

1. **विवेकशीलताः** इस मान्यता पर आधारित है कि उपभोक्ता विवेकशील है। वह हमेशा कम मात्रा से अधिक मात्रा में वस्तु को पसन्द करता है। उपयोगिता विश्लेषण और अनधिमान वक्र विश्लेषण की तरह यह इस मान्यता को नही स्वीकार करता की उपभोक्ता अपनी संतुष्टि को अधिकतम करना चाहता है।
2. **सबल क्रमबद्धताः** सबल क्रमबद्धता का आशय है, उपभोक्ता के पसन्दगी पैमाने पर विभिन्न संयोगों का निश्चित क्रम हो। उपभोक्ता अपने चयन के माध्यम से सभी उपलब्ध संयोगों में से अपने निश्चित पसन्दगी को व्यक्त करता है। अतः सबल क्रमबद्धता के अन्तर्गत वैकल्पिक संयोगों के मध्य तटस्थता के सम्बन्ध नही होते हैं।
3. **निरन्तरताः** उपभोक्ता अपने चयन में सत्त् हैं। यदि वह एक बार A को B के चयन किया है, तो दुसरे परिस्थिति में B को A के उपर चयन नही कर सकता है। अन्य शब्दों में, यदि A को B के उपर पसंद की जाती है तो, B को A के उपर पसंद नहीं किया जा सकती है। यदि A को B के उपर पसंद की जाती है और B को C के उपर पसंद की जाती है तो A को C के उपर पंसद की जायेगी। (या यदि $A > B$ एवं $B > C$ है, तब $A > C$ है) सक्रमकता का उल्लघंन विवेकपूर्ण न होने का संकेत है।
4. **धनात्मक आय की लोच की मान्यताः** इस उपागम की अन्य मान्यता यह है कि किसी वस्तु समूह में एक बजट (प्रतिबंध) रेखा होती है, जो उपभोक्ता को क्रय करने के लिए प्रेरित करता है। इसका अर्थ है उपभोक्ता के पास धनात्मक आय की लोच है।

आधारभूत मांग सिद्धान्त

मार्शल के मांग के नियम के अनुसार वस्तु की कीमत और मांग की मात्रा के बीच विपरीत सम्बन्ध होता है। सैमूएलशन यह मानते है कि जब आय मांग की लोच धनात्मक हो तब कीमत मांग की लोच ऋणात्मक होगा। इसकी व्याख्या वस्तु की कीमत बढ़ने और घटने के संदर्भ में की जा सकती है। इसे वे उपभोग का अधारभूत सि़द्धान्त कहते हैं। निम्नांकित व्योरा इस सिद्धान्त की ब्याख्या करता है।

कीमत में वृद्धि

सर्वप्रथम यह मान लेते हैं कि उपभोक्ता अपने सम्पूर्ण आय को दो वस्तुओं X और Y पर खर्च करता है। LM उसकी वास्तविक कीमत आय रेखा है जहा उपभोक्ता चित्र 7.2 में संयोग C का चूनाव करता है। त्रिभुज OLM, X, Y के उपलब्ध संयोग का चयन क्षेत्र है। जो कीमत–आय रेखा LM द्वारा दिया गया है। उपभोक्ता, त्रिभूज OLM के अन्दर और उसके उपर उपलब्ध संयोगों में केवल का चुनाव करने से यह स्पष्ट है कि वह अन्य सभी संयोगों में C को पसन्द करता है।

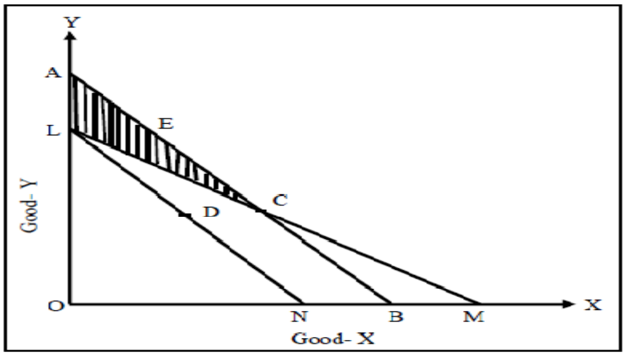

चित्र 7.2

अब, यह मान लेते हैं कि X की कीमत बढ़ता है और Y की कीमत स्थिर रहता है, तब कीमत रेखा LN होगी। अब वह नई संयोग का चुनाव बिन्दु D के रुप में करता है, जो यह प्रदर्शित करता है कि उपभोक्ता अब कम मात्रा में X वस्तु का क्रय करेगा, क्योंकि उसकी कीमत में वृद्धि हुई है।

X की कीमत बढ़ने के कारण उपभोक्ता के वास्तविक आय में कमी की क्षतिपूर्ति के लिए AL मात्रा में Y–वस्तु दिया जाता है। परिणाम स्वरुप नई कीमत–आय रेखा AB के रुप में प्राप्त होता है, जो LN रेखा के समानान्तर है और C बिन्दु से होकर गजरता है। प्रो. सैमूएलसन इसे अधि क्षतिपूर्ति सिद्धान्त कहते हैं। अब त्रिभूज OAB उसका चयन क्षेत्र है। क्योंकि मूल कीमत आय रेखा LM पर C बिन्दु से नीचे, अर्थात CB रेखा खण्ड, रेखा पर, उपभोक्ता वस्तु X की अधिक मात्रा नहीं खरीद सकता है। अतः उपभोक्ता वस्तु C से नीचे के सारे संयोजनों को स्वीकार कर लेगा तथा या तो संयोजन C और या तो दूसरे संयोजनों का चुनाव करेगा। जैसे कि E, जो कि AC कीमत रेखा की तरह ALC क्षेत्र (छायांकित क्षेत्र है) में हैं। यदि वह संयोजन C को चुनता है, तो वह वस्तु X और Y की समान मात्रा खरीदेगा जो कि वह X वस्तु की कीमत में वृद्धि से पहले खरीद रहा था। दूसरी तरफ, यदि वह संयोजन E का चुनाव करता है, तो वह पहले से वस्तु Y की ज्यादा मात्रा और वस्तु X की कम मात्रा खरीदेगा। जबकि, मांग की आय लोच वस्तु X के लिए साकारात्मक है। चूंकि वस्तु X की कीमत बढ़ने की वजह से उसकी मांग घट गई है (जबकि उपभोक्ता D बिन्दु पर हैं), इससे यह सिद्ध होता है कि जब आय की लोच साकारात्मक हो तब कीमत की लोच नाकारात्मक होती है।

कीमत घटने की दशा में

माना कि LM असली आय–कीमत अवस्था को प्रदर्शित करता है जहां उपभोक्ता और दूसरे संयोजनों की जगह E को वरीयता देता है। त्रिभूज OLM पर, जो कि चित्र 7.3 में दिखाया गया है। वस्तु X की कीमत गिरने के साथ, Y की कीमत स्थिर रहता है तो ऐसे में नया आय–कीमत रेखा LN है। उपभोक्ता इस रेखा पर अपनी वरीयता को व्यक्त करता है, संयोजन C जो कि दर्शाता है, उपभोक्ता पहले से वस्तु X की अधिक मात्रा खरीदेगा। बिन्दु E से C के बीच

का बदलाव कीमत प्रभाव है, जो कि वस्तु X की कीमत के गिरने के परिणामस्वरूप, आया है, जिसकी बजह से वस्तु X की मांग बढ़ जाती है।

माना कि उपभोक्ता की वास्तविक आय में वृद्धि होती है, वस्तु X की कीमत में गिरावट के परिणामस्वरुप है जबकि वस्तु Y की AL मात्रा खरीदा गया है। अब, AB नई कीमत–आय रेखा है जो कि रेखा LN बिन्दु E स होकर गुजरती है, के सामानान्तर है। नया त्रिभुज OAB उसकी पसंद का क्षेत्र बन जाता है। चूंकि उपभोक्ता अपनी वरीयता को रेखा LM पर बिन्दु E, पर व्यक्त कर रहा था, सारी बिन्दुएं AB रेखा के AE खण्ड में बिन्दु E स उपर पड़ती हैं, अपनी पसन्द के साथ असंगत होगें। यह इसलिए है क्योंकि कीमत गिरने पर खण्ड AE में वस्तु X की कम मात्रा होगी। लेकिन यह संभव नहीं है। उपभोक्ता, इसलिए, बिन्दु E से उपर के सारे संयोजनों को अस्वीकार कर देगा। वह या जो संयोजन E को और या तो किसी दूसरे संयोजन का चुनाव करेगा, जैसे, D को, जो कि रेखा AB के EB खंड पर छायांकित क्षेत्र MEB में है। यदि वो बिन्दु E का चुनाव करता है, तो वह वस्तु X और Y की समान मात्रा खरीदेगा। जिसे वह X की कीमत गिरने से पहले खरीद रहा था। और यदि वह संयोजन D को चुनता है, तो वह X की मात्रा पहले से ज्यादा खरीदेगा और Y की पहले से कम। E से D के विचनन प्रतिस्थापन प्रभाव है, जो कि वस्तु X की कीमत में गिरावट के कारण होता है। उपभोक्ता के द्वारा लिया गया मुद्रा AL के रुप में वापस कर दिया जाता है। उपभोक्ता अपने पुराने संयोजन बिन्दु C जो कि कीमत–आय रेखा LN पर विद्यमान है, वहां वह कीमत गिरने के वजह से वस्तु X की अधिक मात्रा खरीदेगा। D से C के बीच का परिवर्तन आय प्रभाव है। अत– मांग प्रमेय फिर से सिद्ध हो जाता है कि कीमत लोच मांग की नाकारात्मक होगी तो ऐसे में आय लोच मांग की हमेशा साकारात्मक ही होगी।

जैसा कि लिखा हुआ है कि प्रतिस्थापन प्रभाव की व्याख्या जो कि सैम्यूलसन के द्वारा की गई है उदासीनता वक्र विश्लेषण से भिन्न है। उदासीनता वक्र विश्लेषण में, उपभोक्ता एक हीं उदासीनता वक्र पर एक संयोजन से दूसरे संयोजन पर चला जाता है। और उसकी वास्तविक आय हमेशा स्थिर रहती है। लेकिन, व्यक्त अधिमान सिद्धान्त में, उदासीनता वक्र नहीं होते हैं और प्रतिस्थापन प्रभाव वह बदलाव या परिवर्तन है जिसमें सापेक्ष कीमत में बदलाव के कारण कीमत–आय रेखा का निर्माण होता है।

7.4 व्यक्त अधिमान से मांग वक्र का निर्धारण

हम व्यक्त अधिमान सिद्धान्त की मदद से मांग वक्र का व्युत्पन्न कर सकते हैं। इस चित्र 7.4 के भाग A में समझाया गया हे। रेखा LM वास्तविक कीमत–आप रेखा है जिस पर उपभोक्ता बिन्दु S पर अपनी वरीयताओं को प्रकट करता है और वस्तु X की OA मात्रा खरीदता है। मान लिया जाता है कि वस्तु X की कीमत गिर जाती है, परिणामस्वरूप, उसकी नई कीमत–आय रेखा LN है। इस रेख पर, उपभोक्ता उस बिन्दु पर अपनी वरीयताओं को व्यक्त करता है जहां वह वस्तु X की पहले से ज्यादा मात्रा OB खरीदता है। S से R पर आने

से जो परिवर्तन आया है कीमत प्रभाव है जो कि वस्तु X की कीमत में गिरावट के कारण वस्तु के मांग में वृद्धि (पहले OA मात्रा अब OB मात्रा) होती है। अब उपभोक्ता की आय में जो वृद्धि होती है उसे वो वापस ले जाता है इसके परिणामस्वरुप, वस्तु X की कीमत में आयी कमी CL के बराबर है।

अतः CD जो है, वो नई कीमत–आय रेखा है। LN रेखा के समानान्तर है और बिन्दु S से होकर गुजरती है। नया त्रिभुज OCD नया पसन्दीदा क्षेत्र है। चूंकि, उपभोक्ता अपनी वरीयताओं को वास्तविक आय–कीमत रेखा LM पर बिन्दु S पर प्रकट कर रहा था, इसलिए बिन्दु S के ऊपर की सारी बिन्दुयें CD रेखा के SC खण्ड में अपने–अपने पसन्द के साथ असंगत है। ऐसा इसलिए है क्योंकि वस्तु X की कीमत गिरने पर उसकी मात्रा में नहीं को सकती है।

इसलिए वह बिन्दु S ऊपर के सारे संयोजनों को अस्वीकार कर देगा, और या तो संयोजन R और या तो किसी दूसरे संयोजन छायांकित त्रिभुज MSD में से चुनेगा। मुद्रा की CL मात्रा जो कि उपभोक्ता से लिया गया था उसे लौटा दिया जाता है, वह पुनः R बिन्दु, कीमत–आय रेखा LN पर जहां वह पहले से ज्यादा मात्रा OB (वस्तु X का) क्रय करता है। S से R के बीच बदलाव को मांग वक्र, (चित्र 7.4 के भाग B) के द्वारा दिखलाया गया है।

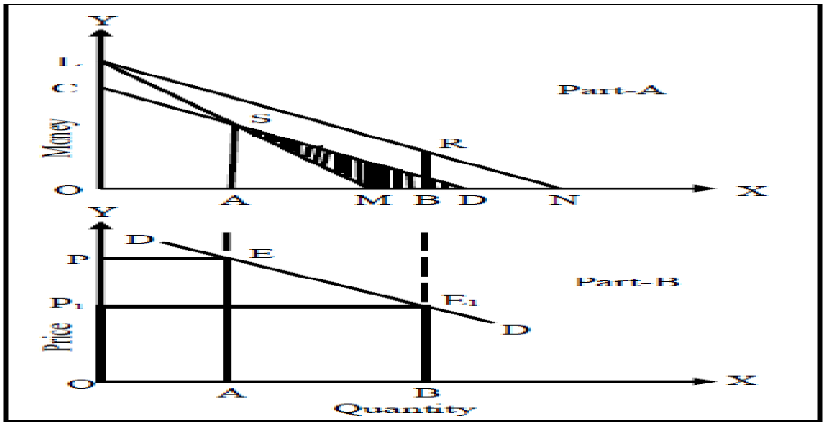

चित्र 7.4

मुद्रा भाग–A के उर्ध्वाधर अक्ष पर लिया गया है, वस्तु X की कीमत को, सम्पूर्ण मौद्रिक आय को वस्तु की खरीदी गई मात्रा से भाग देकर प्राप्त किया जा सकता है। जब वस्तु X की कीमत OL/OM (OP) हो तो, और मांगी गई मात्रा OA हो तो जब कीमत गिरती है तो वह OL/ON (=OP_1) और मांग गई मात्रा बढ़ कर OB हो जाती है। भाग– (B) में उर्ध्वाधर अक्ष पर हम कीमत और क्षैतिज अक्ष पर वस्तु X की इकाई का मापते हं। और E तथा E_1 कीमत–मात्रा संयोजन को दर्शाता है। जब हम इन बिन्दुओं को एक सीधी रेखा से मिलाया जाता है। तब हम मांग वक्र DD_1 प्राप्त करते है। यह वक्र दर्शाता है कि जैस हीं कीमत

OP से OP_1 घटकर हो जाती है, उपभोक्ता वस्तु X की AB मात्रा अधिक खरीदता है।

7.5 मांग के नयम के निर्धारण में हिक्सियन दृष्टिकोण

हिक्स मांग के नियम को कमजोर या दुर्बल क्रमबद्धता की अवधारणा तथा प्रत्यक्ष संगतता परीक्षा के आधार पर निर्धारित करत हैं और इसके लिए वह कीमत में परिवर्तन प्रभाव को दो खण्डों– आय प्रभाव तथा प्रतिस्थापन प्रभाव द्वारा दर्शाते हैं। प्रतिस्थापन प्रभाव संगति के सिद्धान्त के द्वारा निर्धारित किया जाता है जबकि आय प्रभाव वास्तविक जीवन के परीक्षण एवं अनुभवों के आधार पर निर्धारित किया जाता है। अब, आय प्रभाव जैसा कि आनुभविक प्रमाणों के द्वारा पता लगाया जाता है। कार्य जो बचे रह गये हैं, प्रभाव को तोड़ रहे हैं, हिक्स के अनुसार उसे हो तरीकों से किया जा सकता हैः

1. क्षतिपूर्ति विधि के द्वारा, 2. लागत अन्तर विधि के द्वारा।

कीमत प्रभाव को प्रतिस्थापन प्रभाव और आय प्रभाव में विभक्त करना

हम अब इसे वस्तु की कीमत गिरने के संदर्भ में चर्चा करेंगें। चित्र 7.5 में जहां, उपभोक्ता के द्वारा दिये हुये बज़ट रेखा LM द्वारा आय–कीमत स्थिति का सामना किया जाता है। आय–कीमत स्थिति या अवस्था जो बज़ट रेखा LM के द्वारा प्रस्तुत किया गया है, के साथ, माना कि उपभोक्ता संयोजन A का चुनाव करता है और OD मात्रा वस्तु X की क्रय करता है और जिसके परिणाम स्वरुप, बज़ट रेखा LN पर प्रतिस्थापित हो जाता है। अब, उपभोक्ता की आय इतनी कम हो जाती है कि नई बज़ट रेखा PQ संयोजन A से होकर गुजरती है। इसका मतलब है कि, आय लागत अंतर के बराबर घटी है जिसकी वजह से वास्तविक आय से हुये लाभ जो कि वस्तु X की कीमत घटने के कारण मिली थी वो खारिज हो जाती है। जैसा कि उपर दिखाया गया है कि नये बज़ट रेखा PQ के साथ, उपभोक्ता जो कि स्वभाव से संगत है, वह या तो वास्तविक संयोजन A या किसी और संयोजन जो कि PQ बजट रेखा के AE खण्ड में पड़ता है या फिर छायांकित क्षेत्र AMQ में। यदि वह फिर से, संयोजन A को चुनता है ता सलस्टकी प्रतिस्थापन प्रभाव शून्य होगा। जबकि, माना कि उपभोक्ता वास्तव में संयोजन B को चुनती है। नये बज़ट रेखा PQ के AQ खण्ड में, ऐसे में हम देखते है कि अब, संयोजन B के चयन करने से प्रतिस्थापन प्रभाव होगा, जिसके वजह से, उपभोक्ता DE मात्रा वस्तु X की अधिक खरीदेगा। प्रतिस्थापन प्रभाव नाकारात्मक है इसका मतलब है वस्तु X की कीमत में सापेक्ष गिरावट के कारण वस्तु X की मांगी गई मात्रा बढ़ी है, अर्थात् वस्तु की मांगी गई मात्रा में बदलाव

हमेशा वस्तु के कीमत में बदलाव के विपरीत दिशा में होती है। इस बात पर ध्यान

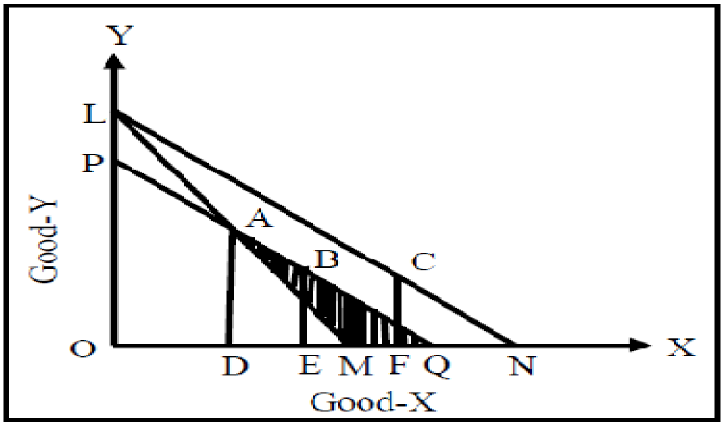

चित्र : 7.5

देना चाहिए कि संयोजन B का का चयन AQ खंड पर रेखा PQ पर संयोजन A की जगह संगत नहीं है क्योंकि संयोजन AQ खण्ड पर और छायांकित क्षेत्र AMQ में पहले नहीं था जब संयोजन A को कीमत–आय अवस्था LM में चयन किया गया था। अतः, उपभोक्ता की आय नये बजट रेखा PQ के साथ बाद में समन्वय कर लेता है वास्तविक आय से प्राप्त लाभ के साथ खारिज हो जाता है। लाभ जो कि वस्तु X की कीमत घटने के कारण हुआ था, उपभोक्ता या तो A का चुनाव करेगी (जब प्रतिस्थापन प्रभाव शून्य है) और या तो एक संयोजन जैसे B को AQ खण्ड पर जब प्रतिस्थापन प्रभाव वस्तु X की DE मांगी गई मात्रा बढ़ाने में मदद करता है। यह आमतौर पर स्लसट्की परिमेय के नाम से जाना जाता है। जो कि बताता है कि प्रतिस्थापन प्रभाव वस्तु की मांगी गई मात्रा बढ़ाने में मदद करता है जब आय प्रभाव को अनदेखा कर दिया जाता है। वस्तु की कीमत गिरी हुई होती है। और इसलिए मार्शलियन मांग के नियम बताती है कि वस्तु कीम मांगी गई मात्रा और कीमत में विपरीत संबंध होता है, इसका अर्थ है कि, प्रतिस्थापन प्रभाव के कारण केवल मांग वक्र की ढ़ाल हीं नीचे की ओर होती है।

अब, यदि उपभोक्ता PQ बज़ट रेखा के AQ रेखा खण्ड में संयोजन B का चुनाव करती है तो इसका आशय है कि वह DE मात्रा अधिक प्रतिस्थापन प्रभाव के कारण खरीदता है। अतः उपभोक्ता B को A से ज्यादा वरीयता देगा। दूसरे शब्दों में, यदि वह A के बदले B का चुनाव करता है तो यह इसके लिये ज्यादा फायदे मंद होगा। संयोजन B संयोजन A के अपेक्षा उपभोक्ता के लिए ज्यादा फायदेमन्द होगा।

अब, यदि उसके पास से अर्जित की गई आय उसे बहाल कर दी जाती है ताकि वह बज़ट रेखा LN का सामना कर सके। यदि आय प्रभाव साकारात्मक हो तो, वह संयोजन C का चुनाव करेगा। बजट रेखा LN पर बिन्दु B के दायीं ओर जो कि दर्शाता है कि आय प्रभाव के कारण वह वस्तु X का EF मात्रा ज्यादा खरीदेगा। अतः वस्तु X की मांगी गई मात्रा DE बढ़ती प्रतिस्थापन प्रभाव के

कारण या EF आय प्रभाव के कारण। इससे यह सिद्ध होता है कि मांग के नियम के अनुसार कीमत और वस्तु की मांगी गई मात्रा के बीच विपरीत संबंध है।

बज़ट रेखा PQ पर यदि उपभोक्ता संयोजन A को चुनता है और उसकी प्रतिस्थापन प्रभाव शून्य है तो कुल मात्रा में वृद्धि DE है, जिसके परिणाम स्वरुप कीमत वस्तु X की कीमत कम होगी जो साकारात्मक आय प्रभाव के कारण है। जबकि, प्रतिस्थापन प्रभाव उपभोक्ता की पसंद को दर्शाता है जैसे संयोजन B संयोजन A के दायीं ओर है। रेखा खण्ड AQ पर और इस तरह इस वस्तु की मांग को बढ़ायेगा। साकारात्मक आय प्रभाव के द्वारा प्रतिस्थापन प्रभाव फिर से प्रबल हो जायेगा। और इसके परिणाम स्वरुप हम मांग वक्र की ढ़ाल नीचे की ओर गिरता पाते हैं।

एक बात पर ध्यान देना आवश्यक है कि व्यक्त अधिमान प्रकटीकरण सिद्धान्त में यह संभव नहीं है कि क्रमशः प्रतिस्थापन प्रभाव और आय प्रभाव के परिणाम स्वरुप बिन्दु B और C का बिल्कुल ही स्थान प्राप्त हो जाय। जैसा कि उपर में बताया गया है, कि व्यक्त अधिमान प्रकटीकरण सिद्धान्त जिस अनुमान पर आधारित है वह है सारी बिन्दुयें जो बज़ट रेखा के उपर है या नीचे सब बिल्कुल क्रमबद्ध होते हैं तथा उपभोक्ता के उदासीनता के संबद्ध वस्तुओं क कुछ संयोजनों के बीच इस तरह अस्वीकार कर दिये जाते है। प्रकट वरीयता सिद्धान्त में, उपभोक्ता की पसंद उसकी वरीयता को प्रकट करता है चुने हुये स्थान के लिये। यह उपभोक्ता के संयोजनों के बीच के उदासीनता को नहीं प्रकट कर सकता है। इसलिए, प्रकट वरीयता सिद्धान्त में, हम तर्कीय क्रमबद्धता के द्वारा प्रतिस्थापन प्रभाव का दिशा निर्देशित तो कर सकते हैं लेकिन हम बिल्कुल सही मात्रा आय प्रभाव कीमत परिवर्तन को माप सकते हैं। इसके अलावा प्रतिस्थापन प्रभाव लागत अंतर विधि के द्वारा आय में परिवर्तन के द्वारा प्राप्त किया जाता है। हिक्सियन विचारधारा में पूर्ण प्रतिस्थापन प्रभाव नहीं पाया जाता है जिसमें उपभोक्ता की संतुष्टि स्थिर रहती है। प्रतिस्थापन प्रभाव में, जोकि प्रकट वरीयता सिद्धान्त के द्वारा प्राप्त किया जाता है, कीमत अंतर के स्लस्टकीयन नीति द्वारा तो उपभोक्ता बज़ट रेखा PQ पर बिन्दु A से B पर चली जाती है। उसका A की जगह B का चुनाव बज़ट रेखा PQ पर प्रतिस्थापन प्रभाव के कारण करता है, यह दर्शाता है कि उपभोक्ता A के जगह B को वरीयता दे रहा है। इसका आशय है, कि वह स्थिति B पर स्थित A के अपेक्षा ज्यादा अच्छे स्थिति में है। इसलिए, कुछ अर्थशास्त्रियों का कहना है कि प्रकट वरीयता सिद्धान्त में जो प्रतिस्थापन प्रभाव पाया जाता है वह पूर्ण नहीं होता है तथा इसमें कुछ अंश आय प्रभाव का भी पाया जाता है।

जबकि, दो तरह के प्रतिस्थापन प्रभाव पाया जाता है, (हिक्सियन और प्रकट वरीयता सिद्धान्त में पाया जाता है) बस वास्तविक आय क धारणा से अलग होते हैं। उदासीनता वक्र विश्लेषण में वास्तविक आय शब्द का इस्तेमाल उपभोक्ता द्वारा प्राप्त किये गये संतुष्टि के स्तर के रुप में किया जाता है, जबकि प्रकट वरीयता सिद्धान्त में वास्तविक आय का उपयोग क्रय शक्ति के रुप में किया जाता है। अतः हिक्सियन प्रतिस्थापन प्रभाव का आशय वस्तु की मांगी गई मात्रा में परिवर्तन से है जब वस्तु की सापेक्ष कीमत में कोई परिवर्तन होता है, वहीं संतुष्टि

का स्तर हमेशा समान बनी रहती है। दूसरी तरफ, प्रकट वरीयता सिद्धान्त में प्रतिस्थापन प्रभाव उपभोक्ता के द्वारा वस्तु की मांगी गई मात्रा के सापेक्ष कीमत में परिवर्तन है जबकि उपभोक्ता की क्रय क्षमता हमेशा समान रहती है। चित्र 7.5 में, जब हम बज़ट रेखा PQ प्राप्त हैं, लागत अन्तर के कारण आय में कमी के कारण इसी वजह से यह वास्तविक संयोजन A से गुजरता है, इसका आशय है, क्रय क्षमता में लाभ या वास्तविक आय में लाभ वस्तु X की कीमत में कमी के मौद्रिक आय में कमी से रद्द होने के कारण होता है।

7.6 प्रकट/व्यक्त अधिमान सिद्धान्त की श्रेष्ठता

प्रकट वरीयता सिद्धान्त हिक्सियन क्रमवाचक उपयोगिता प्रस्ताव उपभोक्ता व्यवहार का निम्नलिखित तर्कों के आधार पर श्रेष्ठ माना जा सकता हैः

1. प्रकट अधिमान सिद्धान्त उपभोक्ता के व्यवहार के बारे में किसी भी सूचना को इक्ट्ठा नहीं करता है। बल्कि, यह मनोवैज्ञानिक अंतनिरीक्षणात्मक एक व्यवहारिक विश्लेषण पेश करता है जो कि बाजार में उपभोक्ता के प्रेक्षित व्यवहार पर अधारित होता है। यह प्रस्ताव सैम्यूल्सन क अनुसार, मनोवैज्ञानिक विश्लेषण के 'आखिरी अवशेषों' की मांग क सिद्धान्त को नष्ट करने में मदद करता है। इस प्रकार प्रकट वरीयता परिकल्पना पहले के प्रमेय से अधिक लोचदार, वस्तुनिष्ठ और वैज्ञानिक है।
2. यह उपयोगिता और उदासीनता वक्र दृष्टिकोण की 'निरंतरता' धारणा को नजरंदाज करता है। उदासीनता वक्र एक निरंतर बढने वाला वक्र है जिस पर उपभोक्ता की दो वस्तुओं के कोई भी संयोजन हो सकते है। सैम्यूलसन निरंतरता में विश्वास नहीं करते, क्योंकि उपभोक्ता के केवल एक संयोजन हो सकता है। सैम्यूलसन को अनुसरण करते हुए हिक्स ने संशोधित मांग सिद्धान्त मं निरंतरता की अवधारणा को छोड़ दिया। और इसे प्रबल तथा दुर्बल क्रमबद्धता से स्थानान्तरित कर दिये।
3. हिक्सियन मांग विश्लेषण जिस धारणा पर आधारित है वह है उपभोक्ता बुद्धिमान होता है, वह अपने दिये हुये आय में अपनी संतुष्टि की अधिकतम करना चाहता है। सैम्यूलसन का सिद्धान्त ज्यादा श्रेष्ठ है क्योंकि यह पूरी तरह धारणा से असहमत है कि उपभोक्ता हमेशा अधिकतम संतुष्टि प्राप्त करती है, और इस अवधारणा में ह्रासमान सीमान्त उपयोगिता जैसे नियम जोकि संदेह जनक अवधारणा है, चाहे वह मार्शलीयन विश्लेषण हो या हिक्सियन प्रस्ताव हो 'ह्रासमान प्रतिस्थापन के सीमान्त दर का नियम किसी का कोई उपयोग नहीं है।
4. सैम्यूलसन मांग प्रमेय के पहले पड़ाव में 'अतिदेय प्रभाव' जैसे कि सलस्ट्की की प्रतिस्थापन प्रभाव, ज्यादा वास्तविक नजर आता हैं। उपभोक्ता व्यवहार के व्याख्या में हिक्सियन प्रतिस्थापन प्रभाव की तुलना में। इस प्रमेय में उपभोक्ता वस्तु X की कीमत बढ़ने पर उच्च कीमत आय अवस्था में जा सकता है और इसके विपरीत भी। यह हिक्सियन क्षतिपूर्ति विविधता में एक सुधार है। हिक्स फिर से सैमूल्सन के विचार को अपनाता है, क्षतिपूर्ति विविधता को छोड़ देता है और अतिदेय प्रभाव कहलता है जैसा कि उनके संशोधित मांग सिद्धान्त में 'लागत अन्तर' है।

उसी तरह, दूसरे पड़ाव पर सैम्यूलसियन प्रमेय हिक्सियन 'आय प्रभाव' को बहुत हीं सरल तरीके से समझाया है। हिक्स स्वयं स्वीकारते है कि सॅम्यूलसन का सिद्धान्त उनके सिद्धान्त से श्रेष्ठ है। वह शब्दों में लिखते हैं कि उदासीनता तकनीक के लिए एक स्पष्ट विकल्प के रुप में इसकी प्रस्तुति मांग के सिद्धान्त के लिए सम्यूलसन के नवीनतम एवं महत्वपूर्ण योगदान है।

5. यह सिद्धान्त निरंतर पसंद के आधार पर देखे जाने योग्य ब्यवहार के संदर्भ में कल्याणाकारी अर्थशास्त्र के लिए आधार प्रदान करता है।

7.7 प्रकट/ व्यक्त अधिमान सिद्धान्त की सीमायें

सैम्यूलसन के व्यवहारिक क्रमवाचक सिद्धान्त के कुछ कमियां भी है जो नीचे के अनुच्छेद में व्याख्यान किया गया है।

1. **उदासीनता को अनदेखा करता हैः** यह 'उदासीनता' को उपभोक्ता व्यवहार में पूर्णतः अनदेखा करता है। यह सत्य है कि उपभोक्ता अपनी अधिमान को एकल–मूल्य मांग फलन में या बज़ट रेखा LM पर किसी बिन्दु R को चयन करने पर प्रकट नहीं करता है।

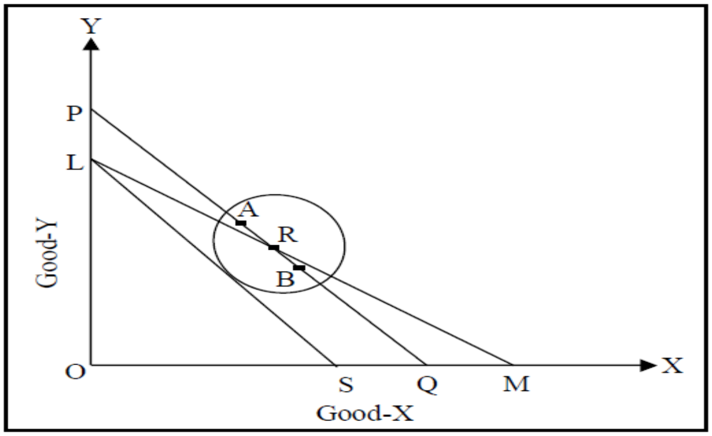

चित्र :7.6

पर यह संभव है कि A और दो बिन्दु R के दोनों ओर चित्र 7.6 के अनुसार हो जिसके प्रति उपभोक्ता उदासीन हो। आर्मस्ट्रांग की यह आलोचना यदि स्वीकार कर ली जाय तो सैम्यूलसन का आधारभूत सिद्धान्त धारासायी हो जायेगा। मान लिजिये X वस्तु की कीमत में वृद्धि होती है। जिसके परिणामस्वरूप LS नहीं नहीं बजट रेखा हो जाती है। अब उपभोक्ता को कुछ मुद्रा इसे लिए दे दिया जाये कि वह PQ बज़ट रेखा R के संयोग का ही उपभोग करें। इस नये कीमत आय स्थिति में, मान लिजिये की वह बिन्दु B, R के नीचे जिसके प्रति वह उदासीन है। यह आर्मस्ट्रांग की इस मान्यता पर आधारित है कि उपभोक्ता अपने चूने हुए संयोग बिन्दु के आस–पास के बिन्दुओं के प्रति उदासीन रहता है। पर PQ रेखा पर बिन्दु का चयन का अर्थ है, उपभोक्ता X वस्तु की मांग में कमी के बजाय वृद्धि हो रही है।

2. **प्रतिबंधन, सार्वभौमिक नहीं:** सैम्यूएलसन का सिद्धान्त प्रतिबंधित है, सार्वभौमिक नहीं है। यह इस मान्यता पर आधारित है कि आय में वृद्धि ऋणात्मक कीमत लोच को प्रदर्शित करता है। क्योंकि कीमत प्रभाव, आय और प्रतिस्थापन प्रभाव, दोनों का योग है। प्रदर्शन के स्तर पर, प्रतिस्थापन प्रभाव तथा कीमत प्रभाव को अलग करना संभव नहीं है। यदि आय प्रभाव धनात्मक नहीं है, तो कीमत मांग की लोच अनिरर्धाय होगी। पर यदि आय मांग की लोच धनात्मक है, तो कीमत में परिवर्तन के कारण, प्रतिस्थापन प्रभाव को नहीं बताया जा सकता है। अतः सैम्यूलसन के सिद्धान्त में प्रतिस्थापन प्रभाव को आय प्रभाव से अलग नहीं किया जा सकता है।
3. **गिफेन विरोधाभास की अवहेलना करता है:** सैम्यूसन का व्यक्त अधिमान सिद्धान्त गिफन विरोधाभास को अपनी परिकल्पना से अलग रखता है, क्योंकि यह केवल धनात्मक आय की लोच को स्वीकार करता है। जबकि, गिफेन की स्थिति ऋणात्मक आय की लोच से सम्बधित है। मार्शल के मांग के नियम की तरह ही, सैम्यूएलसन का सिद्धान्त गिफेन वस्तु के ऋणात्मक आय प्रभाव, कमजोर प्रतिस्थापन प्रभाव और ऋणात्मक आय प्रभाव तथा सशक्त प्रतिस्थापन प्रभाव के बीच अंतर स्पष्ट करने में असफल रहते हैं। अतः सैम्यूएलशन का आधारभूत सिद्धान्त हिक्स–ऐलन के कीमत प्रभाव जो आय प्रभाव, प्रतिस्थापन प्रभाव और गिफेन विरोधाभास की व्याख्या करता है।
4. **उपभोक्ता केवल एक संयोग का चुनाव नहीं करताः** उपभोक्ता दिये हुये कीमत आय स्थिति में केवल एक हीं संयोग का चुनाव करता है, यही सही नहीं है। इसका अर्थ हे उपभोक्ता समस्त वस्तुओं के संयोग में, कुछ का चुनाव सभी में से करता है। पर यह अपवाद हीं है कि उपभोक्ता सभी संयोग में से चुनाव करें।
5. **चूनाव पसंदगी को नहीं प्रदर्शित करता है:** यह मान्यता है कि उपभोक्ता का चुनाव उसकी पसंदगी को प्रदर्शित करता है कि भी आलोचना की जाती है। रूचि हमेशा उपभोक्ता की पसंदगी को प्रदर्शित नही करता है। क्योंकि अधिमान के लिए उपभोक्ता का व्यवहार विवेकपूर्ण होना चाहिए। जबकि उपभोक्ता हमेशा विवेकपूर्ण व्यवहार नहीं करता है। किसी विशेष वस्तु का उपभोक्ता द्वारा चुनाव उसके पसंदगी को प्रदर्शित नहीं करता है। अतः सिद्धान्त बाजार में उपभोक्ता के व्यवहार पर आधारित नहीं, बल्कि अन्य सिद्धान्तों की तरह ही एक एकादमिक प्रक्रिया है।
6. **एक व्यक्तिगत उपभोक्ता के लिए उपयोगी:** व्यस्त अधिमान सिद्धान्त, केवल व्यक्तिगत उपभोक्ता के लिए उपयोगी है। ऋणात्मक ढ़ाल वाली मांग वक्र प्रत्येक उपभोक्ता के लिए खींचा जा सकता है, यदि अन्य बातें समान रहें। पर इस तकनीकि के आधार पर बाजार मांग सारणी को नहीं खींचा जा सकता है। जब बाजार में X –वस्तु की कीमत कम होती है, अन्य वस्तुओं की कीमत भी प्रभावित होती है, जो समाज में वास्तविक आय के बंटवारे को भी प्रभावित करता है। जब की प्रत्येक उपभोक्ता का मांग वक्र X–वस्तु के लिए ऋणात्मक ढ़ाल का होता है। पर वास्तकिव आय का पूर्नावांटन कई वस्तु के मांग वक्र को बाजार में धनात्मक ढ़ाल

का हो जाता है। हिक्स–एलन का उपागम, व्यक्ति अधिमान सिद्धान्त से श्रेष्ठ है क्योंकि यह व्यक्तिक और बाजार मांग वक्र को कीमत–उपभोग वक्र की सहायता से प्राप्त करता है।

7. **खेल सिद्धान्त के लिए अनुपयोगीः** तापस मजूमदार के अनुसार व्यक्त अधिमान प्रत्यागम वैसी स्थितियों में कारगर नहीं है, जहां उपभोक्ता खेल सिद्धान्त की रणनीति पर चूनाव करता है।
8. **अनिश्चितता के व्यवहार को नकारता हैः** व्यक्त अधिमान सिद्धान्त व्यवहार के उस स्थिति का विश्लेषण करने में असफलन रहता है, जहां उसके चुनाव में जोखिम और अनिश्चितता हो। यद तीन स्थितियों A, B, C में उपभोक्ता A की जगह B और B की जगह C को वरीयता देता है, तो इसमें A का चूनाव निश्चित है, लेकिन B और C को चूने जाने की संभावना 50–50 है। इस स्थिति में उपभोक्ता द्वारा C की जगह A का चूनाव को प्रचलित बाजार की स्थिति पर नहीं कहा जा सकता है।

7.8 सारांश

यह इकाई उपभोक्ता का वास्तविक बाजार व्यवहार की चर्चा करता है। व्यक्त अधिमान सिद्धान्त सबल क्रमबद्धता पर आधारित है। इसमें उपभोक्ता के किसी मनोवैज्ञानिक सुचना को शामिल करने की आवश्यकता नहीं है। यह बाजार में उपभोक्ता द्वारा प्रदर्शित व्यवहार के आधार पर व्यवहारिक विश्लेषण करता है। यह उपयोगिता तथा अनधिमान वक्र उपागम के सत्ता की मान्यता को नहीं लेता है। अनधिमान वक्र एक सत्त वक्र है, जिस पर उपभोक्ता दो वस्तुओं के किसी भी संयोग को प्राप्त कर सकता है। सैम्यूलसन के अनुसार कोई सत्ता नहीं होता है, क्योंकि कोई भी उपभोक्ता एक बार में केवल एक ही संयोग का चूनाव कर सकता है। सैम्यूलशन का सिद्धान्त हिक्सियन आय प्रभाव को बहुत हीं सरल तरीके से व्याख्या करता है। यह सिद्धान्त कल्याण अर्थशास्त्र क लिए सत्त चयन के माध्यम से आधार प्रदान करता है। पर सच्चाई है कि एकल–मूल्य मांग फलन में अनधिमान व्यवहार को बाजार में दृश्य व्यवहार में बदल जाने के कारण व्यक्त अधिमान सिद्धान्त और वास्तविक बनाता है। अतः सैम्यूएलशन का क्रमवाचक उपयोगिता का व्यवहारिक विश्लेषण हिक्स–ऐलेन के क्रमवाचक उपयोगिता से अलग है।

7.9 शब्दावली

प्रकट अधिमान सिद्धान्तः उपभोक्ता के व्यवहार के बारे में किसी भी सूचना को इक्ट्ठा नहीं करता है। बल्कि, यह मनोवैज्ञानिक अंतनिरीक्षणात्मक एक व्यवहारिक विश्लेषण पेश करता है जो कि बाजार में उपभोक्ता के प्रेक्षित व्यवहार पर अधारित होता है।

7.10 बोध प्रश्न

(A) रिक्त स्थानों को भरें

1. उपभोक्ता अपने अधिमान को किसी संयोग के लिए प्रकट करता है जो अन्य से .... हो सकता है।
2. अधिमान प्रकटीकरण की मान्यता को नही ढोता है।

3. जब आय मांग की लोच .... है।
4. व्यक्त अधिमान सिद्धान्त द्वारा प्रतिस्थापन प्रभाव का .... आकार का मापन नहीं किया जा सकता है।
5. व्यक्त अधिमान सिद्धान्त में वास्तविक आय उपभोक्ता के .... को प्रदर्शित करता है।
6. .... की तुलना में व्यक्त अधिमान सिद्धान्त परिकल्पना ज्यादा वास्तविक प्रतीत होती है।

(B) सत्य या असत्य

1. एक उपभोक्ता अपनी पंसदगी को सबल कमबद्धता के आधार पर प्रकट करता है।
2. व्यक्त अधिमान सिद्धान्त में प्रतिस्थापन प्रभाव कीमत से, कीमत आय रेखा पर परिवर्तन है।
3. आय प्रभाव का निर्धारण कुछ मान्यताओं के आधार पर होता है।
4. हिक्सियन प्रतिस्थापन प्रभाव मांगी गई वस्तु की मात्रा में सापेक्षिक परिवर्तन है।
5. उपभोक्ता अपने संतुष्टि को अधिकतम करने के लिए हमेशा विवेकपूर्ण तरीके से व्यवहार करता है, यह मान्यता हिक्सियन मांग विश्लेषण का भाग है।
6. यदि आय प्रभाव धनात्मक है तो कीमत मांग की लोच अनिर्धारय होगी।

7.11 बोध प्रश्नों के उत्तर

(A) 1. सस्ता, 2. अधिकतम संतुष्टि, 3. ऋणात्मक, 4. सही, 5. कयशक्ति, 6. पहले के मांग सिद्धान्त।

(B) 1. सत्य, 2. असत्य, 3. असत्य, 4. सत्य, 5. सत्य, 6. असत्य।

7.12 स्वपरख प्रश्न

(A) लघु उत्तरीय प्रकार के प्रश्न

1. व्यक्त अधिमान सिद्धान्त की मान्यतायें क्या है?
2. व्यक्त अधिमान सिद्धान्त की कमियां क्या है?
3. व्यक्त अधिमान सिद्धान्त की श्रेष्ठता को समझायें।

(B) दीर्घ उत्तरीय प्रकार के प्रश्न

1. सैम्यूलशन के व्यक्त अधिमान सिद्धान्त का परीक्षण करें।
2. मांग सिद्धान्त की व्याख्या व्यक्त अधिमान परिकल्पना के आधार पर करें।

7.13 सन्दर्भ पुस्तकें

1. Jhingan, M. L. Advanced Economic Theory, Vrinda Publications (P) Ltd., New Delhi.
2. Dr. D.M. Mithani, Managerial Economics- Theory and Applications : Himalaya Publishing House.
3. Mehta, P. L., Managerial Economics – Analysis, Problem and Cases, Sultan Chand & Sons, New Delhi.
4. H. L. Ahuja, Business Economics Micro- S. Chand & Co. Ltd., New Delhi, 1999.
5. S. K., Mishra and V. K. Puri, Advanced Microeconomic heory, Himalaya Publishing House, Mumbai, 2001.

*****

इकाई 8 मांग आंकलन एवं मांग पूर्वानुमान

इकाई की रूपरेखा

8.1 प्रस्तावना
8.2 मांग का निर्धारण
8.3 मांग आंकलन की विधि
8.4 मांग पूर्वानुमान की अवधारणाएं
8.5 मांग पूर्वानुमान की विधियां
8.6 सारांश
8.7 शब्दावली
8.8 बोध प्रश्न
8.9 बोध प्रश्नों के उत्तर
8.10 स्वपरख प्रश्न
8.11 सन्दर्भ पुस्तकें

उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप इस योग्य हो सकेंगे कि –

- मांग आंकलन और पूर्वानुमान की अवधारणा को समझ सकें।
- मांग पूर्वानुमान की विधियों की व्याख्या कर सकें।

8.1 प्रस्तावना

वर्तमान व्यापारिक बड़ी अनिश्चितताओं से भरा है, जो व्यापारिक निर्णयों को ज्यादा जटिल बना देता है। किसी भी व्यापारिक प्रतिष्ठान की सफलता ज्यादातर उसके बिक्री में विस्तार, अधिकतम लाभ और न्यूनतम लागत पर निर्भर करता है। प्रबंधकों को इन चरों का सही पूर्वानुमान के लिए नवीनतम तकनीक से सुसज्जीत होना चाए। यह इकाई मांग आंकलन एवं पूर्वानुमान के विभिन्न विधियों और तकनीकि तथा उसकी विशेषताओं की व्याख्या करेगा।

8.2 मांग आंकलन

मांग की दिशा और मात्रा में परिवर्तन से सूचना को प्राप्त करने के लिए व्यापारिक प्रबंधकों को मांग के निर्धारण के आनुभविक रुप पर केन्द्रित होने की आवश्यकता है, जिससे वे वातावरण के विभिन्न चरों पर उचित नियंत्रण रख सकें।

8.3 मांग आंकलन की विधि

मांग आंकलन के लिए निम्नांकित विधियों का उपयोग करते हैं:

- बाजार प्रायोगिक विधि
- उपभोक्ता के प्रवृति का सर्वेक्षण

बाजार प्रायोगिक विधि

बाजार प्रायोगिक विधि में मांग का अनुमान बाजार में उपभोक्ता के व्यवहार के आधार पर किया जाता है। बाजार प्रायोगिक विधि दो प्रकार के होते हैं:

1. वास्तविक बाजार विधि, एवं
2. बाजार अनुकरण विधि।

वास्तविक बाजार विधि

इस विधि में सर्वप्रथम विभिन्न स्थानों पर उपभोक्ता या ग्राहकों के आय, उम्र, शिक्षा का स्तर इत्यादि के आधार पर बिक्री केन्द्र खोला जाता है, उसके बाद उपभोक्ताओं की प्रतिक्रिया के विभिन्न परिवर्तनशील चरों जैसे कीमत, विज्ञापन, उत्पाद की गुणवत्ता आदि के आधार पर देखा जाता है।

सीमायें

1. यह विधि बाजार का लगभग सही चित्रण करता है पर इसकी कुछ महत्वपूर्ण कमियां हैं।
2. यह एक खर्चिला विधि है, सामान्यतः जब छोटे पैमाने पर लिया जाता है।
3. यह अल्प–काल के लिए उपयोगी है।
4. कुछ ऐसे चर होते हैं, जिसको नियंत्रित नहीं किया जा सकता है। अतः इन चरों के प्रभाव को कम करना मुश्किल है।

बाजार अनुकरण विधि

यह विधि ग्राहक नैदानिक विधि या प्रयोगशाला प्रयोग विधि भी कहा जाता है। इस विधि में प्रत्येक ग्राहक को कुछ मुद्रा दी जाती है और दो जुड़े बाजार में खरीदारी के लिए कहा जाता है, इसके बाद कीमत और वस्तु की गुणवता मं पैंकेजिंग, विज्ञापन आदि में परिवर्तन कर, उपभोक्ता व्यवहार को अध्ययन करने का प्रयास किया जाता है।

सीमायें

इस विधि की निम्नांकित सीमायें हैंः

1. **उपभोक्ता व्यवहार का विरूपणः** उपभोक्ता व्यवहार मं प्रयोग का एक भाग है; अतः उसके क्रय व्यवहार में विकृति की समस्या होने की संभावना रहती है।
2. **महंगाः** इस प्रकार का प्रयोग महंगा होता है, और सीमित संसाधन वाले फर्म इसके प्रकार के प्रयोग के लिए नहीं जाते है। इन सूचनाओं के आधार पर निर्णय लेना भी कठिन होता है।

बाजार प्रयोग की विधियों में, वास्तविक प्रयोग विधि ज्यादा विश्वसनीय दिखता है, क्योंकि उपभोक्ता अनुकरण विधि को बहुत गम्भीरता से नहीं लेता है। वास्तविक प्रयोग विधि अनुकरण विधि की तुलना में महंगा होता है कौन सी विधि का चुनाव कोई फर्म करेगा, इस बात पर निर्भर करता है कि फर्म किसी विधि में तुलनात्मक अधिक लाभ देखता है।

उपभोक्ता की प्रवृति का सर्वेक्षण

इस विधि में उपभोक्ता के भविष्य की खरीद योजनाओं की जानकारी प्राप्त करने के लिए व्यक्तिगत रूप से सम्पर्क किया जात है। उपभोक्ता की प्रवृति का सर्वेक्षण करने के लिए निम्नांकित विधियों का प्रयोग किया जाता है।

1. जनगणना सर्वेक्षण विधि
2. प्रतिदर्श/ नमूना सर्वेक्षण विधि
3. विपणन जांच

1. जनगणना सर्वेक्षण विधि

इस विधि को सम्पूर्ण गणना विधि भी कहते हैं। इस विधि में प्रत्येक उपभोक्ता, साक्षात्कार लेने वालों के द्वारा सम्पर्क किये जाते है, वे मौखिक तौर पर या प्रश्नावली के साथ सम्पर्क किये जाते हैं। सभी ग्राहकों से प्राप्त संभावित मांग को जोड़ दिया जाता है। इस विधि की विशेषता यह है, कि इसमें प्राथमिक सूचना उपलब्ध होती है, जिसमें किसी प्रकार के झुकाव से स्वतंत्र होता है।

सीमायें

इस विधि की निम्नांकित कमियां है:

1. **महंगा:** पूरे बाजार में फैले बहुत सारे उपभोक्ता से संर्म्पक करना खर्चीला कार्य हैं।
2. **गुणवत्ता:** उपभोक्ता व्यक्तिगत गुणवता के कारण उपभोक्ता अपनी क्रय योजना को नहीं बता सकता है। इन सूचनाओं के आधार पर निष्कर्ष प्राप्त करना कठिन है।
3. **अनिश्चित:** उपभोक्ता अपने भविष्य की क्रय योजना को इसलिए भी बताने से मना कर सकता है, क्योंकि बाजार की परिस्थितियां अप्रत्याशित रूप से परिवर्तित होती है।

2. प्रतिदर्श/नमूना सर्वेक्षण विधि

इस विधि में पूरी जनसंख्या में से केवल कुछ ग्राहकों का चयन करते हैं। साक्षात्कार विधि से या मौखिक प्रश्नावली के माध्यम से करते हैं। इस विधि के अन्तर्गत प्रतिदर्श/नमूना अनुमानित मांग को पूरी जनसंख्या पर प्रतिदर्श/नमूना परिणाम को जनसंख्या के गुणक अनुपात के माध्यम से करते हैं। उदाहरण के लिए, यदि सौ समान व्यक्ति में से एक व्यक्ति के लिए अनुमान लगया जाय तो, सौ से गुणा करने पर सौ के लिए बाजार मांग ज्ञात किया जा सकता है।

निदर्शन सर्वेक्षण विधि कम खर्चीली, आसान और जनगणना विधि से सीधी है। लेकिन इस विधि से प्राप्त परिणाम नमूना में जनसंख्या के प्रतिनित्व पर निर्भर करता है। यदि पूरे जनसंख्या से प्रतिदर्श को इस प्रकार चयन किया जाता है, जो पूरे जनसंख्या जैसे, शिक्षा, आय, लिंग इत्यादि, की विशेषता को सम्मिलित करता है, तो जनसंख्या विधि और प्रतिदर्श सर्वेक्षण विधि से प्राप्त परिणाम में ज्यादा अंतर नहीं होता है।

3. विपणन जांच

यह विधि सर्वेक्षण तकनीकि का एक कारक है। यह नये वस्तुओं की मांग का अनुमान लगाने तथा पुराने वस्तु की नये भौगोलिक क्षेत्र में मांग की गणना के लिए किया जाता है। इस विधि में एक जांच क्षेत्र का चयन किया जाता है, जो पूरी तरह से बाजार का प्रतिनिधित्व करता है। इस क्षेत्र में वस्तु को उसी तरह उतारा जाता है जैसे वास्तविक बाजार में। यदि वस्तु जांच क्षेत्र में सफल होता है, तो उसके आधार पर पूरे बाजार की मांग का निर्धारण किया जाता है।

सीमायें

यद्यपि यह विधि विश्वसनीय है, लेकिन निम्नांकित सीमाओं के कारण उपयोग में नहीं लाया जाता है।

(i) **अधिक खर्चीला:** यह मांग गणना करने की सबसे खर्चीला विधि है, क्योंकि इसमें वस्तु के सार्थक मात्रा आवश्यक होती है, जबकि जांच क्षेत्र में केवल एक छोटे अनुपात को खर्च किया जाता है। इसमें विपणन की आवश्यकता

पूर्ण रुप में होती है, जैसा की उत्पादन पूर्णतः बाजार में बिक्री के लिए आया है। यह दोनों कारक इस प्रयोग को अत्याधिक खर्चीला बना देते हैं।

(ii) **दीर्घ काल में उपयोगः** यह प्रयोग केवल दीर्घकाल में जारी रहने पर हीं विश्वसनीय होता है। उपभोक्ता द्वारा क्रय को बार–बार दोहराये जाना हीं भविष्य की बिक्री का विश्वसनीय सूचकांक होता है।

(iii) **निम्न प्रतिनिधित्वः** प्रतिनिधि जांच क्षेत्र को पाना हमेशा संभव नहीं होता है।

(iv) **प्रतिद्वन्दी का प्रवेशः** कम्पनी ने अपनी वस्तु के बाजार की जांच कर ली है, ऐसे में उसका प्रतिद्वन्दी उस वस्तु की नकल कर बाजार में बेच सकता है, और मांग के अनूमान लगाने के अपने खर्च को बचाया जा सकता है।

8.4 मांग पूर्वानुमान की अवधारणाएं

पूर्वानुमान सामान्यतः दो क्षेत्र से सम्बन्धित होता है, पहला प्रकार, तीव्रता और भविष्य की घटनाओं की विभिन्नता से सम्बन्धी होता है जैसे, संकुचन या विस्तार; दूसरा जो भविष्य की कुछ विशिष्ट चरों जैसा, नया बाजार, मांग, लागत, कीमत, बिक्री और लाभ इत्यादि, जो प्रक्षेपण के रुप में जाना जाता है।

उचित रणनीतिक योजना पूर्वानुमान के ठोस आधार पर आधारित होता है। आंकड़ों के आगे का अनुमान करने क लिए फर्म को गतिज परिस्थितियों में कार्य करना होता है। जहां, क्रेता की रुचि और पसंद समय के साथ परिवर्तित होता है। नये वस्तुओं का बाजार में प्रवेश हो सकता है, नये तकनीकि का विकास होता है, और अन्य भी। गतिज व्यापारिक स्थिति में मांग का पूर्वानुमान कठिन होता है। यह और भी अधिक कठिन हो जाता है, जब कोई नयी वस्तु बाजार में आती है, जिसके बारे में उपभोक्ता की पसन्द की कोई सूचना उपलब्ध नहीं होती है। इस भाग में, हमलोग मांग पूर्वानुमान के उद्देश्य, विधि और अच्छे पूर्वानुमान विधि के कारक का अध्ययन करेगें।

(a) मांग के पूर्वानुमान का अर्थ

किसी वस्तु का मांग पूर्वानुमान वह तकनीक है, जिससे नजदीक तथा दूर भविष्य में मांग का मापन करते हैं। मांग पूर्वानुमान एक उत्पाद इकाई या बिक्री इकाई के इन्वेटरी नीति, उत्पाद नीति, विपणन नीति, बिक्री रणनीति इत्यादि बनाने निर्माण का महत्वपूर्ण आधार है। फर्म के व्यक्तिगत आवश्यकता की पूर्ति के लिए भी मांग पूर्वानुमान का उपयोग किया जाता है।

पूर्वानुमान को दो तरीकों से वर्गीकृत किया जा सकता हैः

1. **निष्क्रिय पूर्वानुमानः** यहां भविष्य का पूर्वानुमान इस मान्यता पर आधारित होता है कि फर्म के क्रियाशीलन में कोई परिवर्तन नहीं होता है, और
2. **सकीय पूर्वानुमानः** यहां भविष्य का पूर्वानुमान इस मान्यता पर आधारित होता है कि फर्म के क्रियाशीलन में परिवर्तन होता है।

उदाहरण के लिए, यदि मारुती अपने बिक्री को भविष्य में बढ़ाने के लिए कोई कार्यवाई जैसे, विज्ञापन, गुणवत्ता नियंत्रण, इत्यादि, नहीं करता है, इसके विपणन विभाग द्वारा बिक्री का पूर्वानुमान निष्क्रीय पूर्वानुमान कहा जायेगा।

(b) मांग पूर्वानुमान का उद्देश्य

सामान्यतः दो प्रकार का पूर्वानुमान होता है। लघुकाल का पूर्वानुमान और दीर्घकाल का पूर्वानुमान। मांग पूर्वानुमान का उद्देश्य उसके प्रकार के अनुसार अलग–2 होता है।

1. लघु – काल पूर्वानुमान एवं 2. दीर्घ काल पूर्वानुमान।

1. **लघु–काल पूर्वानुमान के उद्देश्यः** किसी फर्म के लिए लघु–काल का परिभाषित करना कठिन है, क्योंकि समय–अन्तराल वस्तु विभिन्न प्रकृति के लिए भिन्न हो सकता है। किसी उच्च तकनीकि स्वचालित प्लांट के लिए तीन माह का समय लघु–काल माना जा सकता है, वही अन्य प्लांट के लिए यह समय छःमाह से एक वर्ष का हो सकता है। मांग पूर्वानुमान के लिए समय–अन्तराल को व्यवस्थित इस आधार पर किया जा सकता है कि मांग में उच्चावचन कैसा है।

फर्म द्वारा निम्नांकित उद्देश्य के लिए लघु–काल पूर्वानुमान लगाया जाता हैः

(i) **उत्पादन नीतिः** अधि–उत्पादन और अल्प–काल पूर्वानुमान की समस्या को दूर करने के लिए।

(ii) **इन्वेट्री प्रबंधन के लिएः** यह उचित समय पर कच्चे–माल को खरीदता है, जब कीमत में कम में और अधि–स्टॉकिंग को दूर करता है।

(iii) **बिक्री लक्ष्यः** फर्म बिक्री लक्ष्य को स्थापित करने के लिए।

(iv) **उपयुक्त बिक्री रणनीतिः** बिक्री रणनीति मांग में परिवर्तित फर्मों के बीच प्रतिद्वन्दिता के अनुसार बनाया जाता है।

(v) **लघु–काल के लिए वित्तीय आवश्यकताः** वित्तीय आवश्यकता ज्यादातर बिक्री स्तर और उत्पादन कियाशीलन पर निर्भर करता है। अतः बिक्री और उत्पादन स्तर के पूर्वानुमान से वित्तीय आवश्यकता को अपयुक्त तरीके से मापा जा सकता है।

2. **दीर्घकाल पूर्वानुमान के उद्देश्य**

मांग पूर्वानुमान की अवधारणा लघु–काल से अधिक दीर्घ–काल के लिए प्रासांगिक है। नजदीक भविष्य की तुलना में दूरस्त भविष्य का पूर्वानुमान लगाना अधिक कठिन है। दूर भविष्य में उच्चावचन अधिक मात्रा में हो सकता है। लेकिन यह पुनः दीर्घ–काल की सटीक परिभाषा देना कठिन है। तेजी से बढ़ती अर्थव्यवस्था में यह समय अन्तराल 5 से 10 वर्ष तक जा सकता है। समय अन्तराल वस्तु की प्रकृति पर निर्भर करता है, जिसका पूर्वानुमान लगाना होता है।

दीर्घकालीन मांग पूर्वानुमान के उद्देश्य निम्नलिखित हैः

(i) **नई प्रयोजन के लिएः** इसका उपयोग उपस्थित इकाई के विस्तार आधुनिकीकरण, विभेदीकरण तकनीकि संवर्धन के लिए किया जाता है। ऐसा जो नये वस्तु की मांग का पूर्वानुमान अपने प्रतिद्वन्दी फर्म के अपेक्षा बेहतर स्थिति में होगा।

(ii) **दीर्घ–कालीन वित्तीय आवश्यकताः** वित्तीय संसाधन की व्यवस्था करने मं समय लगता है। विशेषतः तब जब वित की आवश्यकता विस्तार, आधुनिकरण और विभेदीकरण के लिए अधिक मात्रा में हो। पूर्वानुमान संगठन को वित्तीय आवश्यकता पूरा करने में सहायता प्रदान करता है।

(iii) **उपयुक्त मानव शक्ति के लिएः** दीर्घ काल में उत्पादन की तकनीकि में परिवर्तन हो सकता है। नई कार्य जिम्मेदारी के लिए दक्ष और कुशल श्रमिक आर व्यापार की आव”यकता होती है। मांग का पूर्वानुमान फर्म को विशिष्ट श्रम शक्ति और कर्मचारियों को व्यवस्थित करने में मदद करता है।

(iv) **उपभोग के परिवर्तनीय प्रतिमान का विश्लेषणः** मांग के पूर्वानुमान लगाने वाले फर्म द्वारा औद्योगिकीकरण, शहरीकरण, शिक्षा, शेष विश्व से संपर्क की स्थिति का फर्म द्वारा मांग पूर्वानुमान का आसानी से अध्ययन किया जा सकता है और यह समुदाय की बदलती आवश्यकता के अनुसार रणनीति तैयार करने में मदद करता है।

(c) मांग पूर्वानुमान में सम्मिलित कदम

मांग पूर्वानुमान, दक्ष, सही और अर्थपूर्ण होना चाहिए और एक व्यवस्थित योजना के तहत बढ़ना चाहिए। मांग पूर्वानुमान में शामिल कदम निम्नांकित हैः

1. **उद्देश्य का चयनः** उद्देश्य की स्पष्टता मांग पूर्वानुमान की प्रक्रिया को आसान बना देती है। मांग पूर्वानुमान हेतु फर्म का उद्देश्य स्पष्ट होना चाहिए। फर्म मांग पूर्वानुमान का प्रयोग उत्पाद में बढ़ोतरी के निर्धारण के लिए, कीमत के स्थिरीकरण, बिक्री संवर्धन के लिए धन आवंटन, पूंजी के श्रोतों में बढ़ोतरी के तरीकों, उत्पाद–मिश्रण मं सूची नियंत्रण परिवर्तन, प्रौद्योगिकी के उन्नयन आदि में करती है। पूर्वानुमान के लिए दृष्टिकोण तदनुसार अलग होगा।
2. **वस्तुओं का चयनः** वस्तुओं का वर्गीकरण मांग पूर्वानुमान के लिए दृष्टिकोण के चुनाव की सुविधा प्रदान करता है। मोटे तौर पर, दो वस्तुओं के दो गुणा वर्गीकरण का अनुमान लगाया जा सकता है, अर्थात् (i) उपभोक्ता वस्तुओं और पूंजीगत सामान, (ii) मौजूदा सामान और नये माल। मांग पूर्वानुमान की विधि वस्तुओं के प्रकृति के अनुसार अलग–2 होगी।
3. **मांग का निर्धारणः** उत्पाद के प्रकृति पर निर्भरता और विभिन्न निर्धारकों के पूर्वानुमान की प्रकृति अनुमान लगायेगी भिन्न मांग फलन मे महत्व के भिन्न स्तर को, साथ में, यह सामाजिक–मनोवैज्ञानिक मानकों को निर्धारण के लिए जरूरी है, खासकर मांग। सामाजिक और मनौवैज्ञानिक कारक भी मांग पूर्वानुमान को प्रभावित करते हैं।
4. **विधि का चुनावः** मांग पूर्वानुमान के लिए विभिन्न प्रकार के तरीके उपयोग में लाये जाते हैं। विधि का दायरा संसाधनों, क्षेत्र फैलाव और समय की उपलब्धता पर निर्भर करता है। अल्पकाल और दीर्घकाल पूर्वानुमान के लिए विभिन्न प्रकार के तकनीकों का उपयोग किया जाता है।
5. **परीक्षण सटीकता/सटीकता की जांचः** मांग पूर्वानुमान की जांच इसलिए की जाती है ताकि उसमें कोई त्रुटि न मिले। इससे व्यापार में प्रभावी ढंग से निर्णय लेने में मदद मिलती है।
6. **परिणामों की ब्याख्याः** पूर्वानुमान से प्राप्त परिणाम से निष्कर्ष निकालने के पूर्व विश्लेषण आवश्यक है। पूर्वानुमान कई मान्यताओं पर आधारित होता

है। यदि इन मान्यताओं में परिवर्तन होता है, तो इसका अंतर्वेधन अलग तरीके से होता है।

(d) पूर्वानुमान का स्तर

मांग का पूर्वानुमान विभिन्न स्तरो पर किया जाता है, जैसे, 1. समष्टि आर्थिक स्तर, 2. औद्योगिक स्तर, 3. फर्म स्तर एवं 4. उत्पाद रेखा स्तर।

1. **समष्टि आर्थिक स्तरः** यह सम्पूर्ण अर्थव्यवस्था के लिए होता है। समष्टि आर्थिक संकेतक जैसे राष्ट्रीय आय, समग्र व्यय, औद्योगिक उत्पादन, थोक मूल्य सूचकांक इत्यादि व्यापारिक क्रिया के स्तर के मापन में सहायता करता है। व्यापारिक फर्म का पूर्वानुमान इन समष्टि आार्थिक संकेतकों पर आधारित होता है। यह संगठनों को राष्ट्रीय और अन्र्तराष्ट्रीय स्तर पर नीति निर्माण में मदद करता है।
2. **औद्योगिक स्तरः** उद्योग के स्तर पर कार्यशील फर्म, मांग का पूर्वानुमान उद्योग स्तर पर करते हैं। व्यापारिक संघटनो द्वारा किसी उद्योग विशेष के रूझान से सम्बन्धित आंकड़ों को बताया जाता है। उदाहरण के लिए, इलेक्ट्रोनिक वस्तुओं का उत्पादन करने वाले फर्म इस बात में रूचि रखते है कि भविष्य में इलेक्ट्रोनिक उद्योग किस तरह काम करेगा। फर्म उपलब्ध आंकड़ों के आधार पर उत्पाद, बिक्री, क्षमता विस्तार इत्यादि से सम्बन्धित योजना बनाती है।
3. **फर्म स्तरः** फर्म स्वतंत्र रुप से अपने उत्पाद के लिए मांग का पूर्वानुमान लगाती है। जैसे :– टाटा ऑयल मील्स लि., अपने उत्पाद का पूर्वानुमान लगाती है, ताकि अपने प्रतिद्वन्दीयों के बीच अपनी स्थिति को जांच सके।
4. **उत्पाद रेखा स्तरः** विभेदी वस्तुओं का उत्पादन करने वाले फर्म, मांग का पूर्वानुमान उत्पाद रेखा के स्तर पर करती है, ताकि वे यह निर्णय ले सकें कि और से उत्पाद के उत्पादन पर अधिक कोष का आंवटन किया जा सके, ताकि फर्म का लाभ अधिकतम हो।

8.5 मांग पूर्वानुमान की विधियां

बदलते परिस्थितियों में मांग का आंकलन एक कठिन कार्य है। संसार में उपभोक्ता व्यवहार सबसे अधिक अपूर्वानुमेय है, क्योंकि वह कई कारकों द्वारा प्रभावित एवं उत्साहित होता है। जबकि अर्थशास्त्री वह सांख्यिकीयज्ञ समय के साथ मांग पूर्वानुमान के कई विधियों का विकास किया है। इस प्रकार के प्रत्येक विधि के कुछ न कुछ गुण व दोष है। सही विधि का चयन मांग पूर्वानुमान को सटीक और विश्वसनी बनाते हैं। मांग पूर्वानुमान में सांख्यिकीय कुशलता और विवेकपूर्ण निर्णय का न्यायपूर्ण मिश्रण है।

सांख्यिकीय और गणितीय तकनीकि के प्रयोग से, आंकड़ों को संकलन, वर्गीकरण, सारणीयन, विश्लेषण और निर्वचन किया जा सकता है। सांख्यिकी अपने आप नहीं कार्य करता है, बल्कि इसक अर्थपूर्ण अविर्भाव के लिए कुशल एवं प्रतिभावन विश्लेषक की आवश्यकता होती है। अच्छे पूर्वानुमान के लिए ठोस निर्णय प्राथमिक आवश्यकता होती है। निर्णय तथ्यों पर आधारित होना चाहिए तथा अन्वेषक का व्यक्तिगत झुकाव तथ्यों पर हावी नहीं होना चाहिए। अतः एक प्रभावी

मांग पूर्वानुमान को गणितीय तकनीकि और कठोर निर्णय के बीच संतुलन स्थापित करना चाहिए।

नीचे दिये गये अनुच्छेदों में मांग पूर्वानुमान की ब्याख्या की गई है:

(A) मतगणना विधि

मतगणना विधि में क्रेता के मत, बिक्री ताकतों और विशेषज्ञां से उभरते बाजार मांग की प्रवृति को निर्धारित कर सकते हैं। मतों को निम्नांकित तरीके से मांगा जा सकता है:

(1) **उपभोक्ता सर्वेक्षण विधिः** इस विधि में फर्मों के प्रतिनिधि उपभोक्ता के पास जाकर वस्तु विशेष के बारे में उनके मत को जानने का प्रयास करते हैं, एवं भविष्य में विशेषतः एक वर्ष में प्रचलित कीमत पर वस्तु को खरीदन की ईच्छा भी जानते हैं। फर्म पूर्ण प्रदर्शन या प्रतिदर्श सर्वेक्षण के लिए जा सकता है।

(a) पूर्ण प्रदर्शन विधिः पूर्ण प्रदर्शन सर्वेक्षण में पूर्वानुमान समय अन्तराल या उपभोक्ताओं द्वारा स्वयं बताया जाता है, में सभ उपभोक्ताओं का संभावित मांग को जोड़कर पूर्वानुमान काल के मांग का पूर्वानुमा लगाया जाता है। इस विधि का फायदा यह है कि इसमें बिना किसी झुकाव के प्राथमिक सूचना उपलब्ध हो जाती है। पर इसके हिस्से में कुछ कमियों भी है। पहला, प्रत्येक उपभोक्ता जो पूरे बाजार में फैले हुए हैं, एक खर्चीला कार्य है। दूसरा, उपभोक्ता अपने क्रय की सूचना देने में, नीजि और वाणिज्यिक कारणों से संकोच करता है। तीसरा, परिस्थितियों में अप्रत्याशित परिवर्तन के कारण भी उपभोक्ता उपयुक्त सूचना दने में असमर्थ होता है।

(b) प्रतिदर्श सर्वेक्षण विधिः प्रतिदर्श सर्वेक्षण विधि के अंतर्गत, प्रत्येक चयनित इकाई द्वारा प्रदर्शित संभावित मांग का योग कर पूर्वानुमानित समय–काय में कुछ मांग की गणना करते हैं। इसके बाद बाजार के कुल मांग की गणना के लिए आगे बढ़ता है। अर्थात् कुल प्रतिदर्श मांग को कुल इकाई संख्या और प्रतिदर्श इकाई के अनुपात से गुणा करते हैं। यदि प्रतिदर्श का चयन जनसंख्या के उचित प्रतिनिधि के रुप में हुआ हो, तो प्रतिदर्श विधि से प्राप्त परिणाम और पूर्ण प्रदर्शन विधि से प्राप्त परिणाम में कोई परिवर्तन नहीं होता है। जबकि, प्रतिदर्श सर्वेक्षण विधि, पुर्णप्रदर्शन विधि से आसान और कम खर्चीला होता है।

(c) **अंतिम उपयोग (या आगत–निर्गत) सर्वेक्षणः** इस विधि में चयनित वस्तु के बिक्री का प्रदर्शन, उद्योगों द्वारा इस वस्तु की माध्यमिक वस्तु कें मांग के रुप में किये गये मांग सर्वेक्षण के आधार पर करते हैं। दूसरे शब्दों में; किसी वस्तु की अन्तिम मांग, उस वस्तु की मध्यवर्ती वस्तु के रुप में मांग योग हीं है। पर दो प्रकार के तथ्यों को बताना आवश्यक हैं। पहला, किसी मध्यवर्ती वस्तु के कई अन्तिम उपयोग हो सकते हैं। (जैस, स्टील का उपयोग विभिन्न प्रकार के कृषि और औद्योगिक मशीनों के निर्माण के लिए हो सकता है, इसका उपयोग विनिर्माण तथा यातायात इत्यादि में भी हो सकता है।) दूसरा, मध्यवर्ती वस्तु की मांग घरेलू और अर्न्तराष्ट्रीय दोनों स्तर पर हो सकता है; अतः मध्यवर्ती वस्तु का अन्तिम मांग का अनुमान, वस्तु का उपयोग कर रहे घरेलू और अर्न्तराष्ट्रीय उद्योगों के मांग के आधार पर कर सकते हैं। एक बार हमें वस्तु के अन्तिम उपभोग, निर्यात तथा निबल आयात की जानकारी मिल जाती है। हम वस्तु के मांग का निर्धारण इसके

मध्यवर्ती वस्तु के रुप में अन्तिम वस्तु के निर्माण के लिए, किये मांग के आधार पर आगत–निर्गत विश्लेषण के माध्यम से कर सकते हैं। आगत–निर्गत सारणी जो उस समय–अन्तराल के आगत–निर्गत गुणांकों के साथ होता है, प्रत्येक देश में सरकार या शोध संस्थानों के पास उपलब्ध रहता है।

मध्यवर्ती वस्तुओं के अलावा किसी भी वस्तु के मांग पूर्वानुमान के लिए अंतिम उपयोग सर्वेक्षण विधि न तो इच्छित है, ना उपयोगी। इसके अलावा, मध्यवर्ती वस्तुओं की संख्या में वृद्धि के साथ, इस विधि का प्रयोग और कठिन हो जाता है। यह विधि उन उद्योगों के लिए काफी उपयोगी है, जो उत्पादनक वस्तुओं का निर्माण करती है। उदाहरण के लिए, अल्मूनियम। इस विधि का विस्तार पूर्ण चर्चा इस पुस्तक के आगे के अध्याय 'आगत–निर्गत विश्लेषण' में की गई है।

(2) **सामूहिक मत विधिः** यह बिक्री शक्ति मत विधि भी कहलाती है। इस विधि में उपभोक्ता की जगह, उन 'सेल्समैन' का मत लिया जाता है, जो क्रेताओं के सम्पर्क में रहते हैं। यह माना जाता है कि 'सेल्स मैन' उपभोक्ता के सबसे करीबी होता है, जिसके पास उनकी पसंद और न पसंद उपभोग पद्धति, फर्म के वस्तु के प्रति प्रतिक्रिया का सबसे सटीक जानकारी होता है। फर्म, सेल्स मैन से जानकारी एकत्र करते हैं, और उसके आधार पर मांग का पूर्वानुमान लगाते हैं। कभी–कभी फर्म किसी एक सेल्स मैन से प्राप्त सूचना को सही नहीं मानता है, और वह मांग के पूर्वानुमान में सेल्स मैन के वैचारिक स्तर को ध्यान में रखता है। फर्म कीमत के परिवर्तन को, पैकेजिंग और डिजाईन में बदलाव को, आय के वितरण में परिवर्तन को, रोजगार इत्यादि को ध्यान में रखता है। इस विधि की सबसे बड़ी अच्छाई सेल्स मैन के सामूहिक बुद्धिमता को है।

इसके अलावा इस विधि में जटिल सांख्यिकीय तकनीक की आवश्यकता नहीं होती है। पूर्वानुमान ज्यादा सटीक हो सकता है, क्योंकि यह सीधा सर्म्पक और सेल्स मैन के प्रथम सूचना के आधार पर होता है। यह विधि नये वस्तुओं के मांग पूर्वानुमान के लिए विशषतः उपयोगी होता है।

इस विधि की कुछ कमियां हैः

पहला, पूर्वानुमान का परिणाम पूर्णतः सेल्स मैन के मत पर निर्भर करता है। इसमें सेल्स मैन अपने व्यक्तिगत पूर्वाग्रह का उपयोग कर सकता है। परिणाम स्वरुप, पूरा जांच बेकार हो जाता है।

दूसरा, यह विधि अल्प–काल में मांग पूर्वानुमान के लिए उपयोगी है। जबकि ज्यादातर फर्म पास भविष्य की योजना होती है जो अनिश्चित है अतः इस विधि से पूर्वानुमान उद्देश्य की पूर्ति नहीं कर पायेगा।

तीसरा, सेल्स मैन के पास दृष्टि का अभाव होता है, जिसके कारण वे कई ऐसे कारकों से अनभिज्ञ होते हैं, जो मांग को प्रभावित करते हैं।

(3) **विशेषज्ञ मत विधिः** क्रेताओं की मत गणना पर निर्भर होने की जगह फर्म मांग पूर्वानुमान के विशेषज्ञों का मत ले सकती है। इसका मूख्य फायदा यह है कि इस विधि का प्रायोगिक लाभ यह है कि इसमें हमें केवल पूर्वानुमानित चरों के भविष्य के मान प्राप्त करने की आवश्यकता होती है। जबकि की प्रतीपगमत समीकरण में वाह्य और आंतरिक दोनों चरों के अनुमान लगाने की आवश्यकता होती है। पर यह प्रतीपगमन विधि के अन्य कमियों से प्रभावित होता है। इस विधि के लोकप्रिय न होने का कारण इसकी जटिलता है।

(4) **डेल्फी विधिः** मांग पूर्वानुमान की डेल्फी विधि, सरल विशेषज्ञ मत विधि का विस्तार है। इस विधि का उपयोग विभिन्न विशेषज्ञों की राय के सार के आधार पर भविष्य के मांग का पूर्वानुमान लगाते हैं। प्रक्रिया सरल है, डेल्फी विधि में, विशेषज्ञों के दूसरे विशेषज्ञों द्वारा अनुमानित मांग को उनकी मान्यताओं के आधार पर बताया जाता है। विशेषज्ञ की राय का सार हीं अंतिम मांग अनुमान होता है। संयुक्त राज्य अमेरिका में किया गया यह तथ्यात्मक अध्ययन यह बताता है कि विशेषज्ञों का अव्यवस्थित मत, पूर्वानुमान के तकनीक के रुप में विस्तृत उपयोग में है। उदाहरण के लिए, युग्मपत् समीकरण प्रारुप और सांख्यिकीय विधि का प्रयोग हमेशा नहीं होता है। पर विभिन्न विशेषज्ञों का मत उच्च तकनीकि के आधार पर प्राप्त परिणाम होता है, अतः डेल्फी विधि का प्रयोग परिणामों के पूर्न जांच के लिए होता है।

(5) **सांख्यिकीय विधिः** उपर के भागों में हम लोगों ने मांग के आंकलन के सर्वेक्षण और प्रायोगिक विधि द्वारा किसी वस्तु की मांग का विश्लेषण उपभोक्ता द्वारा दी गई सूचना और उपभोक्ता व्यवहार का अध्ययन के माध्यम से किया है। इस भाग में हम सांख्यिकीय विधि जो ऐतिहासिक (समय–सारणी) और तिर्यक खण्ड वाले आंकड़े के आधार पर दीर्घकालीन मांग का आंकलन करते हैं। मांग पूर्वानुमान के सांख्यिकीय विधि को निम्नांकित कारणों से श्रेष्ठ समझा जाता है।

(i) सांख्यिकीय विधि में विषयगत तत्वों का प्रभाव कम होता है।

(ii) पूर्वानुमान की वैज्ञानिक विधि है, क्योंकि यह स्वतंत्र और आश्रित चरों के सैद्धान्तिक सम्बन्धों पर आधारित है।

(iii) आंकलन सापेक्षिक रुप से अधिक विश्वसनीय और दूसरा खर्चीला होने के कारण छोटे स्केल पर प्रयोग को पूरा कर विश्वसनीयता के साथ समान्यीकरण किया जाता है। तीसरा, प्रायोगिक विधि अल्प–काल और नियंत्रित स्थिति पर आधारित है, जो अनियंत्रित बाजार में मौजूद नहीं रहता है। अतः इसका परिणाम दीर्घ–कालीन बाजार परिस्थितियों पर लागू नहीं होता है।

(iv) आंकलन छोटे लागत को शामिल करता है। मांग के प्रक्षेपण के लिए दो तरह के सांख्यिकीय विधि का उपयोग करते हैं।

1. रूझान प्रक्षेपण विधि और
2. बैरोमेट्रिक विधि

इस सांख्यिकी विधि को निम्नांकित तरीके से व्याख्या की जाती हैः

1. **रूझान प्रक्षेपण विधिः** रूझान प्रक्षेपण विधि व्यापार पूर्वानुमान की परम्परावादी विधि है। यह विधि समय के साथ चरों के परिवर्तन से सम्बन्धित है। इस विधि के उपयोग के लिए विश्वसनीय समय श्रेणी आंकड़े की आवश्यकता होती है। रुझान प्रक्षेपण विधि इस मान्यता के साथ उपयोग किया जाता है कि पहले की प्रवृति के लिए जिम्मेदारी चरों (जैसे बिक्री और मांग) की भूमिका भविष्य में भी होगी जैसा कि वे भूत में चरों के परिमाण और दिशा निर्धारण के लिए करते थे। बहुत सारी परिस्थितियों में यह मान्यता न्याय संगत है। पर इस विधि में कारक और प्रभाव पर विशेष ध्यान नहीं दिया जाता है, प्रवृति रूझान के आधार पर किये गये आंकलन को मशीनी और अनुभवहीन माना जाता है। जबकि, इस विधि को अपनाने में कोई विशेष परेशानी नहीं है। यह कई कारकों में से कुछ को

अपनाता है, जो यह बताती है कि भविष्य की परिस्थितियां कैसी होगी। इसके द्वारा आंकलित भविष्य का पूर्वानुमान भूत काल के उपलब्ध आंकड़ों की विश्वसनीयता पर निर्भर करेंगी और उस निर्णय पर जो अंतिम विश्लेषण के लिए लिया जायेगा।

किसी वस्तु के मांग के प्रक्षेपण के लिए रूझान विधि में बिक्री पर समय–सारणी आंकड़ों का प्रयोग करते हैं। लम्बें समय से कार्यरत फर्म अपने सेल्स विभाग से लेखांकन और पूस्तिका से सेल्स मैन के समय–सारणी आंकड़ों का उपयोग कर सकते हैं। नये पर उसी उद्योग में क्रियाशील दूसरे फर्मों से आंकड़े प्राप्त कर सकते हैं।

(अ) रेखाचित्र विधि

(ब) न्यूनतम वर्ग विधि

(अ) रेखाचित्र विधिः इस विधि के अन्तर्गत, वार्षिक बिक्री आंकड़े को ग्राफ पेपर पर दर्शाया जाता है।

सारणी 8.1 और चित्र 8.1 में दर्शाये आंकड़ों के आधार पर सरल उदाहरण के माध्यम से समझाया गया है। विभिन्न वर्षों के बिक्री मूल्य को ग्राफ पर दिखाया गया है और एक हस्तमूक्त वक्र विभिन्न बिन्दुओंको छूता हुआ दिखाया गया है। इस हस्त मूक्त वक्र की दिशा रूझान को प्रदर्शित करता है। MN रेखा हस्त मूक्त रेखा है जो वास्तविक बिक्री बिन्दुओं को स्पर्श करता हुआ जाता है।

सारणी 8.1

वर्ष	बिक्री (करोड़ रू. में)
2006	41
2007	51
2008	45
2009	60
2010	54
2011	62

जबकि यह विधि बहुत ही सरल और सस्ता है, पर इसके द्वारा किये गये पूर्वानुमान बहुत विश्वसनीय नहीं होते हैं। इसका कारण है, रूझान रेखा का विस्तार विश्लेषण के व्यक्तिनिष्ठता और व्यक्तिगत झूकाव से प्रेरित होता है।

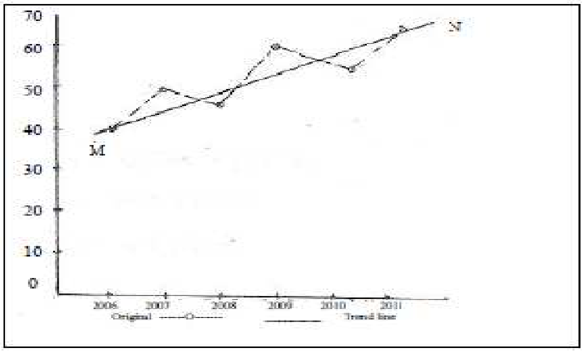

चित्र 8.1

(ब) न्यूनतम वर्ग विधिः यह एक विशिष्ट प्रकार की वक्र के समीकरण को खोजने कि लिए उपयोग की जाने वाली एक सांख्यिकीय तकनीक है, जो दो चर से संबंधित आंकड़ों का एक सबसे अच्छा समुच्च है। सबसे अच्छी फिटिंग वक्र की अवधारणा इस सिद्धान्त पर आधारित है जो कि वास्तविक और अनुमानित मूल्यों के विचलन के वर्गों को योग Y है, कम से कम होना चाहिए। गणितीय शब्दों में, $(y-y_c)^2$ न्यूनतम होगा। यह तब होगा जब गणना की गई मूल्यों से y के वास्तविक मूल्यों के विचलन का योग शून्य है। इसका मतलब है; $(y-y_c) = 0$, $(y-y_c)^2$ के प्राचल पर आधारित है जो न्यूनतम है, इसलिए यह न्यूनतम वर्ग की विधि कहलाता है। और इस विधि के द्वारा जो रेखा की जाती है, उस रेखा को हम सर्वश्रेष्ठ फिट की रेखा कहते है।

सीधी रेखा प्रवृति की गणना निम्न समीकरण द्वारा की जाती है:

$$y = a + bx \qquad \text{------------(1)}$$

जहां, y, a और b के अनुमानित मूल्य को दर्शाता है, जो कि हमेशा स्थिर रहता है। जहां, a मूल बिन्दु रेखा को काटता है। इसका आशय है, जब X = 0; और b रेखा की ढाल का प्रतिनिधित्व करता है जो कि X में प्रति इकाई परिवर्तन की वजह से Y के बदलाव दर को दिखाता है। दो हीं चरों को मान निम्न दो समीकरणों की मदद निकाला जाता है:

$$\Sigma y = Na + b\Sigma x \qquad \text{...(ii)}$$

$$\Sigma xy = a\,\Sigma x + b\,\Sigma x2 \qquad \text{...(iii)}$$

जहां, 'N' वर्षों की संख्या को दर्शाता है, जिसके आंकड़े दिये हुये है। यदि X का मान, इसका मतलब है समय अंतराल वर्ष/महीने/दिन के इकाई में समान है। a और b का मान निकालना आसान हो जायेगा, यदि समय का मध्य बिन्दु को अक्ष बिन्दु बना दिया जाय तो (X = 0) इस अवस्था में, समीकरण (ii) और (iii) इस तरह से व्यक्त किये जायेगें:

$$\Sigma y = Na = \quad a = \frac{\Sigma y}{N} = \text{Mean } y \qquad \text{...(iv)}$$

$$\Sigma xy = b\,\Sigma x^2 = b\,\frac{\Sigma xy}{\Sigma x^2} \qquad \text{...(v)}$$

उदाहरणः न्यूनतम वर्ग पद्धति के द्वारा सीधी रेखा प्रवृति का निर्माण करें तथा 2013 की प्रवृति को अनुमानित करें।

वर्ष	2008	2009	2010	2011	2012
मांग (लाख रु. में)	70	75	90	98	107

हलः रूझान मूल्य की गणना

Year (X)	Demand (y) Rs. In lakh	X = X - 2010	X2	Xy	Trend value = (y = 88 + 9.7x) (Rs. In lakh)
2008	70	-2	4	-140	68.6
2009	75	-1	1	-75	78.3
2010	90	0	0	0	88.0
2011	98	+1	1	+98	97.7
2012	107	+2	4	+214	107.4
N = 5	Σy = 440	Σx = 0	Σx2= 10	Σxy = + 97	

$$y = a + bx \qquad ...(i)$$

$$\Sigma y = Na \quad a = \frac{\Sigma y}{N} = \bar{y} \qquad ...(ii)$$

$$\Sigma xy = b\Sigma x^2$$

$$b = \frac{\Sigma xy}{\Sigma x^2} \qquad ...(iii)$$

समीकरण (ii) और (iii) में मान रखने पर हमलोग a और b का निम्नांकित मान रखते हैं,

$$a = \frac{440}{5} = 88; \quad \text{and} \quad b\frac{97}{10} = 9.7$$

a और b का मान समीकरण (i) में रखने पर, हम निम्नांकित समीकरण प्राप्त कर सकते हैं।

$$y = 88 + 9.7x$$

विभिन्न वर्षों के रूझान मूल्य निम्नांकित हैः

जब,

x = -2 for 2008, y = 88 + (9.7x – 2) = 88- 19.4 = 68.6

x = - 1 for 2009, y = 88 + (9.7x – 1) = 88 – 9.7 = 78.3

x = 0 for 2010, y = 88 + (9.7x 0) = 88 0 = 88.0

x = +1 for 2011, y = 88 + (9.7 x 1) = 88 + 9.7 = 97.7

x = +2 for 2012, y = 88 + (9.7 x 2) = 88 + 19.4 = 107.4

2013 के लिए रूझान मूल्य का आंकलन निम्नांकित प्रकार से हो सकता हैः

$$y = 88 + 8.7\,(2013 - 2010)$$

$$= 88 + 9.7 \times 3$$

= 88 + 29.1 , लाख रूपये में।

अतः यह स्पष्ट है कि यह पद्धति सभी दी गई अवधि के रूझान के प्रवृति के मूल्यों की गणना के लिए उपर्युक्त है और परिणाम व्यक्तिपरक से मूक्त है। प्रवृति मूल्यों के बाधार पर, भविष्य के लिए भविष्यवाणी की जा सकती है। तथापि, यह विधि भविष्य के परिणामों को पूर्वानुमानित करने के लिए मौसमी प्रभावों, चक्रीय एवं अनियमित उतार–चढ़ाव सभी को अनदेखा करती है।

2. **बैरोमैट्रिक विधिः** पूर्वानुमान की बैरोमैट्रिक पद्धति में मौसम पूर्वानुमान के लिए मौसम वैज्ञानिकों द्वारा प्रयोग मं लायी जानेवाली पद्धति का अनुशरण करके किया जाता है। मौसम वैज्ञानिक बैरोमीटर में पारा के परिवर्तन के आधार पर मौसम अवस्था का भविष्यवाणी करन के लिए बैरोमीटर का उपयोग करते हैं। इस विधि के निम्न तर्कों के बाद कई अर्थशास्त्री व्यापारिक गतिविधियों में प्रवृतियों का पूर्वानुमान करने के लिए बैरोमीटर के रुप में आर्थिक संकेतक का उपयोग करते हैं। यह पद्धति सबसे बहले सन् 1920 में हार्वड आर्थिक सेवा द्वारा विकसित और प्रयोग में लाया गया था। हांलाकि इसे छोड दिया गया था क्योंकि यह 1930 के दशक के महामन्दी की भविष्यवाणी करने में असफल रहा था। यद्यपि, बैरोमैट्रिक तकनीक अमेरिका के आर्थिक अनुसंधान के राष्ट्रीय ब्यूरो द्वारा 1980 के उतरार्ध में पुर्नजीवित, परिष्कृत और विकसित की गई थी। इसके बाद से इसका उपयोग अक्सर अमेरिका में व्यापार चक्रों के पूर्वानुमान के लिए किया जाता रहा है। इसके शुरूआत में ध्यान दिया जा सकता है कि बैरोमैट्रिक तकनीक का विकास समग्र आर्थिक गतिविधियों में सामान्य प्रवृतियों के पूर्वानुमान करने के लिए किया गया था। इस विधि का उपयोग उत्पाद के लिए मांग संभावनाओं का पूर्वानुमान करने के लिए किया जा सकता है, न कि वास्तविक मात्रा की मांग के लिए। उदाहरण के लिए, दिल्ली विकास प्राधिकरण द्वारा समूह आवास समाज या एक प्रमुख सूचक के लिए जमीन आवंटन सामग्री–संचार, इस्पात, ईंट आदि बनाने के लिए उच्च मांग संभावनाओं को इंगित करता है।

बैरोमेट्रिक तकनीक का बुनियादी दृष्टिकोण प्रासंगिक आर्थिक संकेतकों का सूचकांक बनाना और आर्थिक संकेतकों के सूचकांक में विचलन के आधार पर भविष्य के प्रवृतियां का पूर्वानुमान लगाना है। इस पद्धति में, उपयोग किये गये संकेतकों को इस प्रकार वर्गीकृत किया गया है।

(a) प्रमुख संकेतक,
(b) संयोगक संकेतक, और
(c) पीछे रहने के संकेतक।

आवरण संकेतक प्रमुख श्रृंखला में संकेतक होते हैं, जो कुछ दूसरे श्रृंखलाओं के उपर या नीचे की ओर बढ़ते हैं।

प्रमुख संकेतक के कुछ उदाहरण इस प्रकार हैः

1. निवल व्यापार निवेश सूचकांक;
2. टिकाउ वस्तुओं के लिए नये आदेश;
3. सूची के मूल्यों में परिवर्तन;
4. द्रव्यों क कीमत की सूचकांक/दृश्य कीमत सूचकांक
5. कर के उपरान्त निगम लाभ।

दूसरी तरफ, संयोगक संकेतक, जो सामान्य आर्थिक गतिविधियों के स्तर के साथ समानता से ऊउपर या नीचे चलते हैं। संयोगक श्रृंखला के कुछ उदाहरण इस प्रकार हैः

1. गैर–कृषि क्षेत्र में कामगारों की संख्या;
2. बेरोजगारी दर;
3. स्थिर मूल्यों पर सकल राष्ट्रीय उत्पाद;
4. विनिर्माण व्यापार और खुदरा क्षेत्र द्वारा दर्ज की गई बिक्री।

पीछे रहने/आवरण श्रृंखला, में वैसे संकेतक होते हैं तो परिवर्तन को कुछ समय अन्तराल के पश्चात पालन करते हैं। एन.बी.ई.आर. द्वारा क्रमशः आवरण श्रृंखला के रूप में पहचान किये जाने वाले कुछ सूचकांक निम्न हैं:

(i) विनिर्मित उत्पादन की प्रति इकाई श्रम लागत;

(ii) बकाया ऋण;

(iii) अल्पकालिन ऋणों के लिए ऋण दर।

निम्न कसौटियों के आधार पर विविध संकेतकों का चुनाव किया जाता है:

(a) संकेतक का आर्थिक महत्वः अधिक महत्व की वजह से संकेतक के अधिक अंक होंगे।

(b) समय श्रृंखला संकेतक की सांख्यिकी पर्याप्तताः पर्यापतता सांख्यिकी के साथ एक संकेतक को अधिक अंक प्रदान किया जाता है।

(c) आर्थिक गतिविधियों में समग्र परिवर्तन के साथ अनुरूपता,

(d) समग्र आर्थिक गतिविधियों में मोड़ पर श्रृंखला की निरंतरता,

(e) श्रृंखला की तत्काल उपलब्धता और

(f) श्रृंखलता की सरलता ।

8.6 सारांश

पूर्वानुमान व्यापार के सभी क्षेत्रों में विभिन्न तरीकों में जरूरी है। व्यापार में पूर्वानुमान की जरूरत नये व्यापार को स्थापित करने और स्थापित व्यापार या पूराने व्यापार को नवीनीकृत करने के लिए है। छोटे अवधि और दीर्घ अवधि दोनों हीं के लिए आवश्यक है और यह व्यष्टि और समष्टि दोनों हीं स्तरों पर किया जाता है। मांग पूर्वानुमान के लिए इस्तेमाल की जाने वाली दो तरह की तकनीक है, जिनकी मांग, मांगों से संबंधित विभिन्न मुद्दों पर विशेषज्ञों, बिक्री बल और किसी क्षेत्र के आबादी के विचारों को समझाया गया है। दूसरे शब्दों में, सांख्यिकी पद्धति विभिन्न वस्तुओं के मांग पूर्वानुमान के लिए समय श्रृंखला आंकड़ों का इस्तेमाल करता हैं। सांख्यिकी पद्धति तथ्य आधारित सूचना के मामले में ज्यादा उपयोगी है। मांग पूर्वानुमान के लिए मॉडल विकसित करने में अर्थमिति विधि का उपयोग किया जाता है। न्यूनतम वर्ग पद्धति आश्रित और स्वंतत्र चर के बीच का कारण और प्रभाव संबंध विकसित करने की कोशिश करता है। अर्थव्यवस्था के सामान्य प्रवृतियों को जानने के लिए बैरोमेट्रिक तकनीक का उपयोग किया जाता है। बैरोमेट्रिक तकनीक अर्थव्यवस्था के भविष्य के प्रवृतियों का पूर्वानुमान करने के लिए प्रासंगिक आर्थिक सूचकों का विकास करता है।

8.7 शब्दावली

जनगणना सर्वेक्षण विधिः इस विधि में प्रत्येक उपभोक्ता, साक्षात्कार लेने वालों के द्वारा सम्पर्क किये जाते है, वे मौखिक तौर पर या प्रश्नावली के साथ सम्पर्क किये जाते हैं।

मांग पूर्वानुमानः वह तकनीक है, जिससे नजदीक तथा दूर भविष्य में मांग का मापन करते हैं।

8.8 बोध प्रश्न

(C) रिक्त स्थानों को भरें

7. जांच विपणन .... काल में उपयोगी है।

8. .... के लिए मांग का पूर्वानुमान आसान है।
9. औद्योगिक दिशा के आंकड़े सामान्यतः .... द्वारा पूर्ति किया जाता है।
10. एक फर्म के मांग का पूर्वानुमान .... से सूचना के आधार पर होता है।
11. मांग पूर्वानुमान की वह विधि जिसमें एक विशेषज्ञ, किसी दूसरे विशेषज्ञ के आधार पर करते हैं, ... कहलाता है।
12. बेरोजगारी की दर .... श्रेणी का उदाहरण है।

(D) सत्य या असत्य

1. मांग निर्धारण का वास्तविक बाजार विधि बड़े स्तर में करने पर महंगा है।
2. उचित वित्तीय जरूरत के लिए, बिक्र और उत्पादन स्तर का पूर्वानुमान महत्वपूर्ण है।
3. दीर्घकाल में फर्म द्वारा अर्जित लाभ समाप्ति आर्थिक संकेतक है।
4. मध्यवर्ती वस्तु की मांग, अन्तिम मांग, स्थिर उत्पाद की मांग है।
5. रेखाचित्रीय विधि में बिक्री का मान सादे कागज पर दर्शाया जाता है।
6. मांग पूर्वानुमान न्यूनतम् वर्ग विधि पर आधारित है जो व्यक्तिनिष्टता से स्वतंत्र है।

8.9 बोध प्रश्नों के उत्तर

(C) 1. दीर्घ, 2. अल्प–काल, 3. व्यापार संघटन, 4. सेल्समैन, 5. डेल्फी विधि, 6. संयोग।

(D) 1. असत्य, 2. सत्य, 3. असत्य, 4. सत्य, 5. असत्य, 6. सत्य।

8.10 स्वपरख प्रश्न

(C) लघु उत्तरीय प्रश्न

4. मांग निर्धारण के विभिन्न विधियों की व्याख्या करें।
5. मांग पूर्वानुमान को परिभाषित करें और इसके उद्देश्यों की चर्चा करें।
6. मांग पूर्वानुमान के विभिन्न स्तरों की व्याख्या करें।

(D) दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

1. मांग पूर्वानुमान के विभिन्न जनमत विधियों की व्याख्या करें।
2. मांग पूर्वानुमान के चित्रमय विधि की व्याख्या करें।
3. मांग पूर्वानुमान के बैरोमेट्रिक विधि की व्याख्या करें।

8.11 सन्दर्भ पुस्तकें

1. Hanke, J. E. and A. R. Reltesch, Business Forcasting, Bostaon, Aleyn and Bascon, (1981).
2. Mehta, P. L., Managerial Economics – Analysis, Prolem and Cases, Sultan Chand & Sons, New Delhi.
3. R. L. VArsheya and K. L. Maheshwari, Managerial Economics, Sultan Chand & Sons, New Delhi, 1970.

*****

इकाई 9 उत्पादन के सिद्धान्त

इकाई की रूपरेखा

9.1 प्रस्तावना
9.2 उत्पादन की अवधारणा
9.3 उत्पादन फलन
9.4 उत्पादन फलन के प्रकार
9.5 परिवर्तनशील अनुपात का नियम
9.6 पैमाने की मितव्ययिताएं
9.7 दो परिवर्तनशीन आगतों का उत्पादन फलन
9.8 पैमाने का प्रतिफल
9.9 साधनों का अनुकूलतम संयोग
9.10 सारांश
9.11 शब्दावली
9.12 बोध प्रश्न
9.13 बोध प्रश्नों के उत्तर
9.14 स्वपरख प्रश्न
9.15 संदर्भ पुस्तकें

उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप इस योग्य हो सकेंगे कि –

- उत्पादन की अवधारणा को समझ सकें।
- परिवर्तशील अनुपात के नियम का ज्ञान हो सकें।
- पैमाने के मित्तव्ययिता को समझ सकें।
- दो परिवर्तनशील आगत के साथ उत्पादन फलन की अवधारणा का ज्ञान हो सकें।
- पैमाने के प्रतिफल की अवधारणा को समझ सकें।

9.1 प्रस्तावना

वस्तु के उत्पादन के लिए उपयोग किये गये साधन को पारम्परिक रुप से उत्पादन के साधन कहते है। अब वे आगत के रुप में जाने जाते हैं, जो भूमि, श्रम, पूँजी, संगठन और साहसी को सम्मिलित करते है। इन आगतों से निर्मित वस्तु को निर्गत या उत्पाद कहते हैं। उत्पादन सिद्धान्त विभिन्न आंगतों के संयोग, दिये हुये तकनीक स्तर पर लक्षित मात्रा में वस्तु के उत्पादन से सम्बन्धित है। यह इकाई उत्पादन के पारम्परिक तथा आधूनिक सिद्धान्त के विभिन्न आयामों की व्याख्या करता है।

9.2 उत्पादन की अवधारणा

सामान्य भाषा में उत्पादन से आशय उत्पादित वस्तु तथा उत्पादन के साधनों के बीच फलनात्मक सम्बन्ध से है। इस प्रकार उत्पादन का अर्थ आगतों को निर्गत में बदलना है। दूसरे शब्दों में, उत्पादन का अर्थ वस्तुओं तथा सेवाओं का प्रबन्ध है। उत्पादन क्रिया उस फर्म के द्वारा की जाती है जो एक व्यवसायिक इकाई है तथा आगतों को निर्गत में बदलती है। उत्पादन एक प्रवाह है चर या

अवधारणा है और इसे समयावधि में उत्पादन में वृद्धि के द्वारा मापा जाता है। एक फर्म विभिन्न आगतों के ऐसे संयोग का चुनाव करती है जिसमें कि उत्पादन का दिया हुआ स्तर, उत्पादन के न्यूनतम साधनों से प्राप्त कर सके अथवा दिये गये साधनों की मात्रा से अधिकतम उत्पादन प्राप्त हो सके। प्रबन्धक से यह आशा की जाती है कि उसे उत्पादन प्रक्रिया की समझ के साथ यह भी ज्ञान होगा कि अल्प काल तथा दीर्घ काल में लागतें तथा उत्पादन कैसे एक–दूसरे को प्रभावित करते हैं तथा कैसे उत्पादन के साधन, विशेष रुप से श्रम एवं पूंजी समय के पैमाने के साथ बदलते हैं।

9.3 उत्पादन फलन

प्रो. कोट्स्यानी के शब्दों में, ''उत्पादन फलन विशुद्ध रुप से एक तकनीकि सम्बन्ध है जो आगतों और निर्गतों को जोड़ता है।''

उत्पादन फलन को प्रो. एल. आर. केलिन ने और स्पष्ट रुप से परिभाषित किया है वे कहते हैं, ''उत्पादन फलन आगतों और निर्गतों के बीच एक तकनीकि या प्रविधिक सम्बन्ध है। जब तक तकनीकि के प्राकृतिक नियम अपरिवर्तित रहते हैं, उत्पादन फलन भी अपरिवर्तित रहता है।''

गणितीय रुप से आगतों और निर्गतों के बीच सम्बन्ध को निम्न प्रकार से व्यक्त किया जा सकता हैः

$$Q = f(L, C, N)$$

जहां, Q = उत्पादन की मात्रा

L = श्रम

C = पूंजी

N = भूमि

इस प्रकार, उत्पादन की मात्रा (Q), फर्म के लिए उपलब्ध विभिन्न आगतों (C, L, N), की मात्राओं पर निर्भर करती है। सरल रूप में यदि उत्पादन के दो हीं साधन हो; श्रम (L), और पूंजी (K), और एक उत्पादन हो तो उत्पादन फलन इस प्रकार होगाः

$$Q = f(L, C)$$

इस प्रकार उत्पादन फलन प्रति समय अवधि में, तकनीकि ज्ञान के दिये गये स्तर पर, आगतों की भौतिक मात्राओं से प्राप्त उत्पादन के बीच सम्बन्ध व्यक्त करता है।

9.4 उत्पादन फलन के प्रकार

अर्थिक विश्लेषण में दो प्रकार के उत्पादन फलनों का प्रयोग किया जाता हैः

1. अल्पकालीन उत्पादन फलन
2. दीर्घकालीन उत्पादन फलन

नीचे दिये गये पैराग्राफ में दोनो प्रकार के उत्पादन फलनों का विवेचन किया गया हैः

1. **अल्पकालीन उत्पादन फलनः** अल्पकाल वह समय अवधि है जिसमें उत्पादन के कुछ साधनों को परिवर्तित नहीं किया जा सकता है। दूसरे शब्दों में, कुछ साधन स्थिर हैं तो कुछ परिवर्तनीय। अल्पकाल में मशीनों

का परिवर्तन या फैक्ट्री भवन में विस्तान सम्भव नहीं है। इसलिए अल्पकाल में केवल परिवर्तनशील साधन जैसे श्रम, कच्चे माल आदि हीं परिवर्तित किये जा सकते हैं। दूसरे शब्दों में अल्पकाल में उत्पादन दी हुई तकनीकि से किया जायेगा अर्थात् मशीनों में कोई परिवर्तन सम्भव नहीं होगा।

2. **दीर्घकालीन उत्पादन फलनः** दीर्घ काल वह समय अवधि है जिसमें उत्पादन के सभी साधनों में परिवर्तन किया जा सकता है। दूसरे शब्दों में, कोई भी साधन स्थिर नहीं होगा। नई मशीन लगाई जा सकती है, नई फैक्ट्री लगाई जा सकती है। इसका अर्थ है कि दीर्घकाल में प्रत्येक प्रकार का परिवर्तन सम्भव है। इस समय अवधि में तकनीकि में भी परिवर्तन किया जा सकता है। उत्पादन को बाजार की जरूरत के हिसाब से किया जा सकता है। स्थिर तथा परिवर्तनीय साधनों के बीच कोई भेद नहीं होगा तथा दीर्घकाल में सभी साधन परिवर्तनीय होंगे।

स्थिर तथा परिवर्तनशील आगतें

आगतों को दो रुपों में वर्गीकृत किया जा सकता है:

➢ **स्थिर आगतें:** स्थिर आगतें वे आगतें है जो परिवर्तित नहीं होती हैं। दूसरे शब्दों में ये आगतें स्थिर होती है जैसे, उपकरण, प्लान्ट तथा मशीनें आदि स्थिर आगतों के उदाहरण हैं।

➢ **परिवर्तनशील आगतें:** परिवर्तनशील आगतें वे आगतें हैं जिनकी पूर्ति अल्पकाल में परिवर्तित हो सकती है। दूसरे शब्दों में, अल्पकाल में कुछ साधनों के आपूर्ति बदली जा सकती हैं जसै, कच्चा माल, श्रम आदि अल्पकाल में परिवर्तनशील आंगतें हैं।

समय अवधि

उत्पादन के सिद्धान्त में, समय अवधि को दो वर्गों में वर्गीकृत किया जा सकता है; अल्पकाल और दीर्घकाल। इन दोनों समय अवधियों की व्याख्या निम्नलिखित है:

1. **अल्पकालः** अल्प काल वह समय अवधि है जिसमें उत्पादन के कुछ साधन परिवर्तित किये जा सकते हैं। कुछ स्थिर रहते हैं। उदाहरण के लिए भवन, प्लान्ट, मशीन आदि में अल्पकाल में विस्तार नहीं किया जा सकता है। यदि साहसी अल्पकाल में उत्पादन का स्तर बढ़ाना चाहता है तो वह बिल्डिंग, प्लान्ट तथा मशीनों की आपूर्ति नही बढ़ा सकता है। एक साहसी उत्पादन बढ़ाने के लिए अल्पकाल में अधिक कच्चे माल तथा अधिक श्रम का प्रयोग की कर सकता है। यदि प्लान्ट केवल एक पाली में काम कर रहा है तो प्लान्ट के कार्य की पालियों में वृद्धि करके भी उत्पादन बढ़ाया जा सकता है।

2. **दीर्घकालः** दीर्घ काल वह समय अवधि है जिसमें उत्पादन के सभी साधन जैसे, भूमि, श्रम, पूंजी, आदि में आवश्यकतानुसार परिवर्तन किया जा सकता है। दीर्घकाल में, यदि साहसी उत्पादन बढ़ाना चाहता है तो वह नई मशीन लगा सकता है, नई भवन बनवा सकता है और अधिक कुशल मजदूर लगा सकता है। दूसरे शब्दों में, दीर्घकाल में उत्पादन को बढ़ाने के लिए प्लान्ट की क्षमता में हीं वृद्धि की जा सकती है।

9.5 परिवर्तनशील अनुपात का नियम

आर्थिक सिद्धान्तों में परिवर्तनीय अनुपात के नियम का महत्वपूर्ण स्थान है। इसे आनुपातिकता के सिद्धान्त के नाम से भी जाना जाता है। यह आगतों और निर्गतों के बीच के सम्बन्ध की उस स्थिति की व्याख्या करता है जब केवल एक हीं साधन परिवर्तित हो रहा है, जब एक साधन की मात्रा बदलती है, जबकि दूसरे साधन की मात्रा स्थिर हो तो स्थिर साधन तथा परिवर्तनशील साधन के बीच का अनुपात बदल जाता है। जैसे–जैसे परिवर्तनीय साधन की मात्रा बढ़ती जाती है वैसे–2 रोजगार में स्थिर साधनों के अनुपात में परिवर्तनीय साधनों का भाग भी बढ़ता जाता है। परिवर्तनीय अनुपात के नियम को परम्परावादी अर्थशास्त्रियों द्वारा 'ह्रासमान प्रतिफल' का नया नाम दिया गया।

मान्यताएं

परिवर्तनशील अनुपात का नियम निम्नलिखित मान्यताओं पर आधारित हैः

(i) **स्थिर तकनीकिः** तकनीक दी हुई तथा स्थिर मान ली जाती है। यदि तकनीकि में सुधार हो तो उत्पादन फलन उपर की ओर विवर्तित होगा। दूसरे शब्दों में, तकनीकि की अवस्था में कोई परिवर्तन नहीं होना चाहिए।

(ii) **साधनों का अनुपात परिवर्तनीय हैः** यह नियम मानता है कि साधन अनुपात परिवर्तनीय है। यदि उत्पादन के साधनों को स्थिर अनुपात में हीं प्रयोग करना हो तो यह नियम लागू नहीं होगा।

(iii) **साधन समरूप हैंः** परिवर्तनशील साधनों की इकाईयां समरुप है। प्रत्येक इकाई दूसरी अन्य इकाईयों से गुणवत्ता तथा मात्रा में समान है।

(iv) **अल्पकालः** यह नियम अल्पकाल में लागू होता है जबकि सभी आगतों में परिवर्तन सम्भव नहीं हो। दूसरे शब्दों में, उत्पादन के कुछ साधन स्थिर होगें क्योंकि अल्पकाल में सभी साधनों को बदलना सम्भव नहीं होगा।

नियम की व्याख्या

इस नियम की व्याख्या के लिए यह मान लिया गया है कि कुछ साधन स्थिर है तथा कुछ परिवर्तनीय। मान लीजिये श्रम तथा भूमि उत्पादन के दो हीं साधन हैं। भूमि की मात्रा दी हुई है और उत्पादन बढ़ाने के लिए हम केवल अधिक श्रम का हीं प्रयोग कर सकते हैं। कुल उत्पाद, औसत उत्पाद तथा सीमान्त उत्पाद के व्यवहार को सारणी 9.1 में दिया गया है।

सारणी 9.1ः उत्पादन का व्यवहार

भूमि	श्रम	कुल उत्पाद	औसत उत्पाद	सीमान्त उत्पादन	उत्पादन की अवस्था
1	1	3	3	3	प्रथम अवस्था
1	2	8	4	5	
1	3	12	4	4	
1	4	14	3.5	2	द्वितीय अवस्था
1	5	14	2.8	0	
1	6	12	2	–2	तीसरी अवस्था

चित्र 9.1 में दिखाया गया है कि उत्पादन के दो साधनः भूमि और श्रम है। जब हम भूमि पर अधिक श्रम इकाईयों का प्रयोग करते हैं तो कुछ उत्पादन प्रारम्भ में बढ़ती दर से बढ़ता है, और अधिक श्रम लगाने से कुछ उत्पाद एक सीमा तक घटती दर से बढ़ता है। इस कारण कुल उत्पाद अन्त में अधिक श्रम लगाने से घटना शुरू कर देता है। पहली अवस्था में जब स्थिर साधन के साथ श्रम की इकाईयां बढ़ाई जाती हैं तो कुल उत्पादन बढ़ती दर से बढ़ता है। औसत उत्पादन भी पहले अधिक श्रम के साथ बढ़ता है। जब हम श्रम की अधिक इकाईयां लगाते हैं तो सीमान्त उत्पाद प्रारम्भ में बढ़ता है। पारम्भिक अवस्था में सीमान्त उत्पाद में वृद्धि की दर औसत उत्पाद में वृद्धि की दर से अधिक है। सीमान्त उत्पाद पहले बढ़ता है परन्तु जब श्रम की तीसरी इकाई प्रयोग में आती है तो यह घटने लगता है। प्रथम अवस्था वहां समाप्त होती है जब औसत उत्पाद सीमान्त उत्पाद के बराबर हो जाता है।

दूसरी अवस्था वहां प्रारम्भ होती है जब प्रथम अवस्था समाप्त होती है अर्थात् AP = MP। इस अवस्था में जब दिये गये भूमि के टूकड़े पर अधिक श्रम की इकाईयां प्रयोग में आती है तो कुल उत्पादन घटती दर से बढ़ता है। दूसरी अवस्था में औसत उत्पाद घटता है। इसी प्रकार सीमान्त उत्पाद भी घटता है परन्तु सीमान्त उत्पाद में घटने की दर, औसत उत्पाद से अधिक होती है। दूसरी अवस्था तब समाप्त होती है जब सीमान्त उत्पाद शून्य हो जाता है। और कुल उत्पाद अधिकतम होता है।

जब दूसरी अवस्था समाप्त हो जाती है तो तीसरी अवस्था प्रारम्भ होती है। इस अवस्था में औसत उत्पाद घटता है। कुल उत्पाद भी घटता है तथा सीमान्त उत्पाद ऋणात्मक हो जाता है। ऐसी दशा में अतिरिक्त श्रम के प्रयोग के कारण कुल उत्पादन और औसत उत्पादन कम होने लगता है। सीमान्त उत्पाद तो ऋणात्मक हो जाता है, परन्तु औसत उत्पाद कभी भी ऋणात्मक नहीं होगा। इस प्रक्रिया को निम्न चित्र 9.1 की सहायता से समझा जा सकता हैः

चित्र 9.1 का भाग A कुल उत्पाद के व्यवहार को प्रदर्शित करता है और भाग B औसत उत्पाद तथा सीमान्त उत्पाद व्यक्त करता है। चित्र के भाग A में कुल उत्पाद वक्र, भाग B से हीं व्युत्पन्न है। कुल उत्पाद क्र प्रारम्भ में बढ़ती दर से बढ़ता है, फिर स्थिर हो जाता है और उसके बाद घटना प्रारम्भ कर देता है। चित्र के भाग B में, औसत उत्पाद वक्र तथा सीमान्त उत्पाद वक्र खींचे गये हैं। औसत उत्पाद वक्र पहले बढ़ता है परन्तु जब अधिक श्रम को रोजगार लगाया जाता है तो यह घटने लगता है। सीमान्त उत्पाद वक्र पहले औसत उत्पाद से तेजी से बढ़ता है फिर घटना प्रारम्भ कर देता है। एक स्तर पर औसत उत्पाद, सीमान्त उत्पाद के बराबर है और उसके बाद श्रम का सीमान्त उत्पाद घटने लगता है तथा बाद में ऋणात्मक हो जाता है। जब कुल उत्पाद अधिकतम होता है तो सीमान्त उत्पाद शून्य होता है। जब कुल उत्पाद घटने लगता है तो सीमान्त उत्पाद ऋणात्मक हो जाता है। इस चित्र में, प्रथम अवस्था के अन्त में औसत उत्पाद बराबर है, सीमान्त उत्पाद के, दूसरी अवस्था के दौरान सीमान्त उत्पाद शून्य हो जाता है और तीसरी अवस्था में सीमान्त उत्पाद ऋणात्मक हो जाता है।

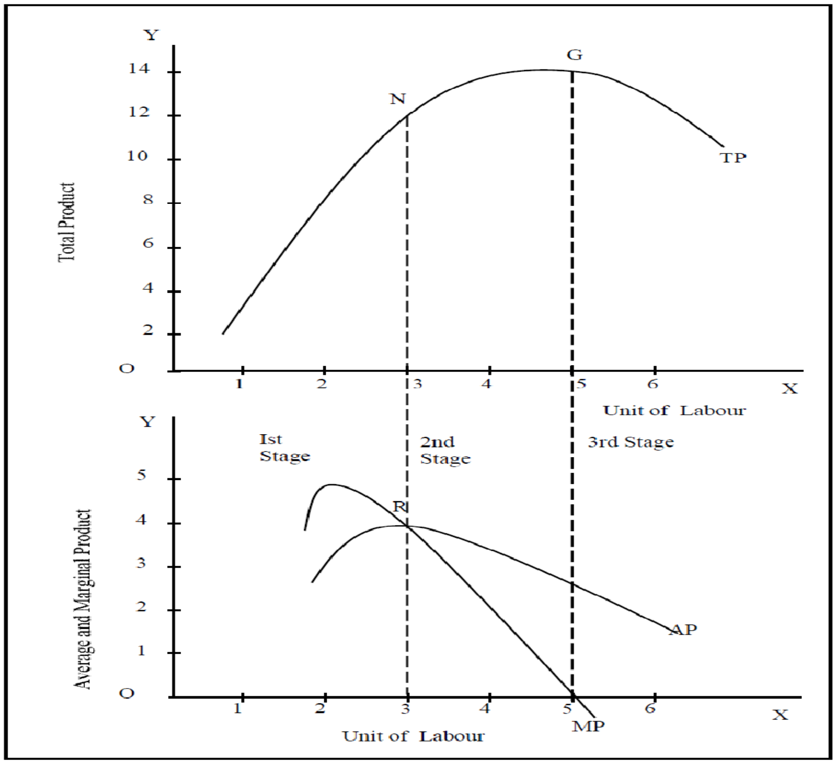

चित्र 9.1

परिवर्तनीय अनुपात के नियम की तीनों अवस्थाएं निम्नलिखित रुप में स्पष्ट की जा सकती है:

प्रथम अवस्थाः पहली अवस्था में कुल उत्पाद हुई दर से बढ़ती है तथा श्रम का औसत उत्पाद भी बढ़ती दर से बढ़ता है। सीमान्त उत्पाद, औसत उत्पाद की तुलना में तीव्र से बढ़ती है। प्रथम अवस्था में औसत उत्पाद अधिकतम बिन्दु तक पहुंच जाता है। जब सीमान्त उत्पाद घटती हुई औसत उत्पाद के बराबर हो जाती है यहीं प्रथम अवस्था समाप्त हो जाती है।

दूसरी अवस्थाः दूसरी अवस्था तब प्रारम्भ होती है जब औसत उत्पाद, सीमान्त उत्पाद होते हैं। दूसरी अवस्था में कुल उत्पाद घटती दर से बढ़ता है। दूसरे शब्दों में कुल उत्पाद दूसरी अवस्था के दौरान बढ़ता है, परन्तु घटती हुई दर से। इसी प्रकार श्रम के औसत उत्पाद और सीमान्त उत्पाद भी घटते रहते हैं। सीमान्त उत्पाद में ह्रास की दर औसत उत्पाद में ह्रास की दर से अधिक होती है। इसका अर्थ है कि परिवर्तनशील आगत को योगदान इस अवस्था में घटता जाता है। दूसरी अवस्था वहां समाप्त होती है जब कुल उत्पाद अधिकतम स्तर को पहुंच जाता है जो कि बिन्दु G से दिखाया गया है। इस बिन्दु पर सीमान्त उत्पाद शून्य हो जाता है। आर्थिक विश्लेषण में इस अवस्था को ऋणात्मक प्रतिफल की अवस्था कहा जाता है। इस अवस्था में यद्यपि औसत उत्पाद और सीमान्त उत्पाद दोनों घट रहे होते हैं, परन्तु औसत उत्पाद धनात्मक रहता है। दूसरी अवस्था वहां समाप्त होती है जब सीमान्त उत्पाद ऋणात्मक हो जाता है।

तीसरी अवस्थाः तीसरी अवस्था तब प्रारम्भ होती है जब सीमान्त उत्पाद ऋणात्मक हो जाता है। इसका अर्थ यह है कि इस अवस्था में परिवर्तनीय साधन कुल उत्पान

इस अवस्था में कुल उत्पादन के घटने के कारण घटता रहता है। इस अवस्था में श्रम के सीमान्त उत्पाद क ऋणात्मक होने के कारण इसे आर्थिक असंत्ता की अवस्था कहते हैं। इन तीनों अवस्थाओं का संक्षिप्त वर्णन सारणी 9.2 में दिया गया है:

सारणी 9.2 परिवर्तनीय अनुपात के नियम की अवस्थायें

कुल उत्पाद	औसत उत्पाद	सीमान्त उत्पाद
	प्रथम अवस्था	
कुल उत्पाद प्रारम्भ में बढ़ती दर से बढ़ता है फिर घटती दर से	औसत उत्पाद बढ़ती हुई दर से बढ़ता है तथा अधिकतम स्तर को पहुंच जाता है।	प्रारम्भ में बढ़ती हुई दर से बढ़ता है तथा अधिकतम स्तर को पहुंचकर घटने लगता है।
	द्वितीय अवस्था	
कुल उत्पाद घटती दर से बढ़ता है और अधिकतम हो जाता है।	औसत उत्पाद घटना शुरू कर देता है।	सीमान्त उत्पाद बढ़ती दर से घटता है तथा शून्य हो जाता है।
	तीसरी अवस्था	
कुल उत्पाद घटने लगता है।	औसत उत्पाद घटता है परन्तु कभी भी शून्य नहीं होता है।	सीमान्त उत्पाद ऋणात्मक हो जाता है।

अब यह प्रश्न उठता है कि उत्पादन की तकनीकि की सीमायें क्या है जिसमें कोई फर्म कार्य करेगी?

संक्षिप्त रुप में, इस नियम के अनुसार प्रारम्भ में कुल उत्पाद बढ़ता है। इसका अर्थ है कि प्रबन्धन के द्वारा विभिन्न साधन कुशलता पूर्वक प्रयोग किये जा रहे हैं। इसका अर्थ है कि आगतों की उत्पादकता बढ़ रही है। दूसरी अवस्था में, कुल उत्पद घटती हुई दर से बढ़ता है। औसत उत्पाद और सीमान्त उत्पाद दोनों घटना प्रारम्भ कर देते हैं। इसका अर्थ है कि परिवतनीय साधनों की कुशलता घट रही है।

तीसरी अवस्था में, कुल उत्पाद घटना शुरू कर देता है। औसत उत्पाद भी घटने लगता है तथा सीमान्त उत्पाद ऋणात्मक हो जाता है। इसका अर्थ है कि परिवर्तनीय साधनों की दक्षता–न्यूनतम हो जाती है। उपरोक्त सूचनाओं के विश्लेषण कैसे ज्ञात होता है कि प्रबन्धन को प्रथम व तीसरी अवस्था में कार्य नहीं करना चाहिए। कारण यह है कि प्रथम अवस्था में साधनों का कुशलतम उपयोग होता है और उनकी दक्षता के और बढ़ने की आशा होती है, जबकि तीसरी अवस्था में दक्षता न्यूनतम स्तर पर होती है। संगठन में नीति नियंताओं के लिए दूसरी अवस्था हीं व्यवहार्य है। दूसरे शब्दों में, दूसरी अवस्था में ही प्रबन्धक साधनों का कुशलतम उपयोग करना चाहेंगे औ यही उनके लिए आदर्श अवस्था है।

इस नियम के कियाशीलन के कारण

उपरोक्त नियम क क्रियाशीलन के निम्नलिखित कारण हैः

- ❖ **उत्पादन के साधनों की अविभाज्यताः** साधनों के बढ़ते हुए प्रतिफल का नियम एक कारण साधनों की अविभाज्यता है। इसका अर्थ है कि उत्पादन की एक भी इकाई के लिए प्लान्ट और मशीनरी का निश्चित आकार

आवश्यक होगा। कोई भी साधनों की एक निश्चित मात्रा से एक या दस इकाईयों का उत्पादन कर सकता है। इसका अर्थ है कि प्लान्ट में कुछ क्षमत हमेशा होती है। जब उत्पादन को एक निश्चित स्तर तक बढ़ाया जाता है, तो प्लान्ट की क्षमता का प्रयोग अनुकूलतम होता है। दूसरे शब्दों में प्रारम्भ में कम लागत पर हीं अधिक उत्पादन प्राप्त किया जा सकता है। जब प्रारम्भ में अधिक उत्पादन किया जाता है तो फर्म बढ़ते हुए प्रतिफल या घटती लागतों को प्राप्त करती है।

- **श्रम विभाजनः** जब उत्पादन की अधिक इकाईयां उत्पादित की जानी होती है तो कार्यों को विभिन्न वर्गों में विभाजित करना आसान हो जाता है। प्रत्येक कार्य को श्रमिकों को उनकी योग्यता और कुशलता के अनुसार आंवटित किया जाता है। इससे श्रमिकों की दक्षता बढ़ती है। इस प्रक्रिया में न्यूनतम लागत स अधिक उत्पादन प्राप्त किया जा सकता है और उत्पादन के साधन अपने कुशलतम प्रयोग में होते है।
- **पैमाने की मितव्ययिताएंः** पैमाने की मितव्ययिताएं किसी फर्म को तब प्राप्त होती है जबकि उत्पादन बढ़े पैमाने पर या बड़ी मात्रा में किया जाता है। पैमाने की मितव्ययिताएं उत्पादन की लागतों को घटा देतीं हैं। इस प्रक्रिया में प्रारम्भ में हम बढ़ते प्रतिफल को प्राप्त करते हैं तथा फिर अन्तिम अवस्थाओं तक घटते हुए प्रतिफल को।

9.6 पैमाने की मितव्ययिताएं

यह वस्तुओं तथा सेवाओं के अधिक उत्पादन से सम्बन्धित लाभों को व्यक्त करती हैं। उदाहरण के लिए जब थोक मात्रा में वस्तुओं का परिवहन किया जाता है तो परिवहन लागतें घटती है। मान लीजिय अब परिवहन के लिए दिल्ली से मुम्बई तक के लिए एक ट्रक किराये पर लेते हैं और ट्रक के लिए 20000 रूपये देना होगा। अब यदि ट्र की पूर्ण क्षमता या आधी क्षमता का प्रयोग किया जाये परन्तु लागत उतनी ही रहेंगी। इसी प्रकार यदि आप थोक में कच्चा माल खरीदते हैं तो माल की आपूर्ति करने वाली फर्म कीमतें कम कर सकती है।

पैमाने की मितव्ययिताएं दो प्रकार की होती हैं:

1. आन्तरिक मितव्ययिताएं
2. बाह्य मितव्ययिताएं

1. आन्तरिक मितव्ययिताएं

जब फर्म अपना उत्पादन बढ़ाती है तो इस प्रकार की मितव्ययिताएं प्राप्त होती हैं जैसे:

(a) **श्रम की मित्तव्ययिताएंः** जब थोक में उत्पादन होता है तो कार्यों को श्रमिकों के ज्ञान और कौशल के अनुसार बांटना सम्भव होता है, इससे श्रमिकों की कार्यकुशलता में वृद्धि के साथ हीं प्रति इकाई लागतें भी बढ़ती है।

(b) **वित्तीय मित्तव्ययिताएंः** जब फर्म बड़ी मात्रा में बाजार से पूंजी जुटाना चाहती है तो वह इसे कम ब्याज दर पर प्राप्त करती है। इसी प्रकार से वित्तीय संस्थान भी बड़ी फर्मों की अधिक जोखिम वहन क्षमता के कारण

अधिक ऋण प्रदान करने में संकोच नहीं करते हैं। बड़ी फर्में बाजार में अपनी प्रतिभूतियों के बिक्रय से सरलता से धन जमा कर सकती है।

(c) **प्रबन्धकीय मित्तव्ययिताएंः** बड़ी फर्में विभिन्न विभागों के लिए अलग–अलग विशेषज्ञों को नियुक्त कर सकती हैं। इससे विभिन्न स्तरों पर अच्छा प्रबन्धन प्राप्त होता है।

(d) **विपणन मित्तव्ययिताएंः** थोक उत्पादन होने पर फर्म के लिए विपणन भी सरल होता है जब फर्म कई समाचार पत्रों में विज्ञापन करती है तो विज्ञापन लागतें भी कम होने लगती है। फर्मों के द्वारा नियुक्ति विज्ञापन के विशेषज्ञ इस कार्य के लिए जागरूकता भी बढ़ती है।

2. बाह्य मित्तव्ययिताएं

ये मित्तव्ययिताएं फर्म को तब प्राप्त होती है जब उद्योग का समय के साथ विकास होता है। इस प्रकार के लाभ का उद्योग की सभी फर्मों के साथ उपभोग किया जाता है। किसी विशेष क्षेत्र में कपास उत्पादन के होने पर समय के साथ उस क्षेत्र में कपड़ा उद्योग विकसित होने लगता है। इससे किसानों को अपना उत्पादन बेंचने में सरलता होती है। साथ हीं लोगों को रोजगार भी मिलता है। कुछ विशेष प्रकार की बाह्य मित्तव्ययिताएं निम्नलिखित हैः

(a) **उप–उत्पाद के प्रयोग की मित्तव्ययिताएंः** जब कोई फर्म उत्पादन का पैमाना बढ़ाती है तो यह अपने उप–उत्पाद का भी प्रयोग करना शुरू कर देती है। इससे फर्म की आय में वृद्धि होती है। उदाहरण के लिए गन्ना मिलें शीरा से एल्कोहल का निर्माण भी करती है।

(b) **सहगामी क्रियाओं की मित्तव्ययिताएंः** जब कोई प्लान्ट के आकार को बढ़ाती है तो यह स्वयं के लिए विपणन केन्द्र स्थापित कर सकती है। उदाहरण के लिए कपड़ा फर्म स्वयं का फार्म रख सकती है जिससे उच्च गुणवत्ता की कपास उत्पादित की जा सके तथ उपभोक्ताओं को सीधे वस्त्रों की बिक्री हेतु स्वयं का शो–रूम खोज सकती है। इसी प्रकार डेयरी उद्योग दूध के समय से आपूर्ति के लिए स्वयं का डेयरी फार्म खोल सकती है। इस प्रक्रिया में फर्म की उत्पादन लागतें घटती है।

(c) **सूची की मित्तव्ययिताएंः** बड़ी फर्म थोक में कच्चा माल तथा अन्य आगतें क्रय करके भारी स्टॉक जमा कर सकती है। यह स्टॉक तब उपयोगी होगा जब कच्चा माल उत्पादन प्रक्रिया के दौरान उपलब्ध न हो। ऐसी किसी भी प्रकार की आपूर्ति में कमी के लिए फर्म को अतिरिक्त मूल्य नहीं देना होता है। इससे बिना किसी बाधा के उत्पादन होता रहता है तथा उत्पादन लागतें भी कम होती है।

(d) **स्थानीकरण की मित्तव्ययिताएंः** जब किसी विशेष क्षेत्र में बड़ी संख्या में प्लान्ट स्थापित होती है तो उन्हें परिवहन, तकनीकि विकास, श्रमिक प्रशिक्षण केन्द्र, कच्चे माल की आपूर्ति जैसी कई सुविधाओं का लाभ प्राप्त होता हैं। ये सभी सुविधाएं फर्म की उत्पादन लागत कम कर देती है।

(e) **सूचना की मित्तव्ययिताएंः** जैसे–जैसे उद्योग विकास करता है शोध तथा नवप्रर्वतन से सम्बन्धित सूचनायें फर्मों द्वारा साझा की जाती है। कई उद्योग मिलकर शोध करते हैं, जिससे लागतें कम होती हैं। ये सभी

सूचनाएं फर्मों को सरलता से उपलब्ध होती है। इस प्रक्रिया से उत्पादन लागतें गिरती हैं।

(f) **विघटन की मित्तव्ययिताएंः** जैसे–जैसे उद्योग का विकास होता है यह किसी विशेष वस्तु के उत्पादन में विशेषीकरण करता है। फर्म सीधे कच्चे माल की प्राप्ति के साथ हीं उपभोक्ता तक सीधे विपणन का भी प्रयास करती है उदाहरण के लिए एक कपड़ा कम्पनी उच्च गणवत्ता की कपास हेतु स्वयं के फार्म को खोल सकती है। इसी प्रकार डेयरी उद्योग स्वयं का डेसरी फार्म रख सकता है। फर्म कीमतें कम करने के लिए विपणन केन्द्रों की स्थापना कर सकती है।

पैमानें की अमित्तव्ययिताएं

जब उत्पादन का पैमाना एक निश्चित बिन्दु पर पहुँचता है तथा आवश्यक आगतें मंहगी हो जाती हैं। इससे उत्पादन की औसत लागतें बढ़ जाती है। निम्नलिखित पैराग्राफ में कुछ अमित्तव्ययिताओं की विवेचना की गई है जिनके कारण लागतें बढ़ती है।

(i) **साधनों की लागतों में वृद्धिः** जैसे–2 उद्योग विकसित होता है प्रशिक्षित तथा कुशल कामगारों की मांग बढ़ती है। दूसरे शब्दों में, श्रम विभाजन से अलग–अलग प्रकार के कामों के लिए श्रम के मांग में वृद्धि होती है। श्रमिक भी अधिक मजदूरी की मागं करते हैं। इससे श्रम की लागतों में वृद्धि के कारण उत्पादन लागतें बढ़ती हैं। इसी प्रकार कच्चा माल तथा अन्य आगतें आसानी से उपलब्ध नहीं होती हैं। इससे फर्म को आगतों के क्रय के लिए अधि मूल्य का भूगतान करना पड़ता है।

(ii) **निर्णय में कठिनाईयांः** जैसे–2 उत्पादन का पैमाना बढ़ता है उच्च स्तर के प्रबन्धन तथा निम्न स्तर के प्रबन्धकों के बीच अन्तराल बढ़ता है, अन्तराल के कारण निर्णय लेने में कठिनाईयां होती है। दैनिक कार्यों के मामलों में बिलम्ब होता है। इससे फर्मों को बड़ी हानि होती है। इसके अतिरिक्त विभिन्न स्तरों पर निरीक्षण की समस्या होती है। जिसकी उत्पादन लागतें बढ़ती हैं।

(iii) **वित्तीय समस्यायेंः** जब उद्योग विकसित होता है तो बड़ी फर्म के लिए अधिक पूंजी की आवश्यकता होती है परन्तु ये वित्तीय उपलब्धता सरल नहीं होती है। वित्तीय कमियों के कारण फर्म को व्यवसाय के प्रबन्धन में कठिनाई होती है। इससे फर्म के नवप्रवर्तन तथा विस्तार में बाधा होती है तथा फर्म की संवृद्धि कम हो जाती है।

(iv) **विपणन की अमितव्ययिताएंः** उच्च प्रतिस्पर्धी बाजार में फर्म को बने रहने के लिए अधिक विज्ञापन तथा बिक्रि उन्ययन क्रियाओं का सहारा लेना पड़ता है। यह स्थिति एकाधिकारिक फर्मों के समक्ष अधिकांश उत्पन्न होती है। जिससे अन्तिम रूप से उत्पादन लागतें बढ़ती है।

9.7 दो परिवर्तनशीन आगतों का उत्पादन फलन

कोई फर्म दो आगतों में परिवर्तन के माध्यम से भी उत्पादन बढ़ा सकती है जो कि दोनों साधन प्रतिस्थानापन्न हों; जैसें–श्रम और पूंजी। दिये गये उत्पादन को प्राप्त करने के लिए साधनों के विभिन्न संयोगों की कई संभावनायें होंगी। फर्म

के द्वारा कौन सा विशिष्ट संयोग चुना जायेगा यह साधनों के तकनीकि प्रतिस्थानापन्न के साथ हीं साधनों की कीमतों पर भी निर्भर करता है। उत्पादन के किसी स्तर को प्राप्त करने के लिए साधनों के विभिन्न संयोगों की संभावनाओं को सम उत्पाद वक्र के माध्यम से प्रदर्शित किया जा सकता है। (इसे उत्पादन तटस्थता वक्र, उत्पादन उदासीनता वक्र या उत्पाद अनधिमान वक्र के नाम से भी जाना जाता है।)

समउत्पाद वक्र

समउत्पाद वक्र उत्पादन फलन का रेखाचित्रीय रुप है। यह बताता है कि उत्पादन के उसी स्तर को आगतों के विभिन्न संयोगों से प्राप्त किया जा सकता है। उत्पादन के दिये गये स्तर के लिए श्रम तथा पूंजी के कई संयोगों की कल्पना करते हुए हम एक वक्र खींच सकते हैं जो इन संभावित संयोगों को दिखाता है। इसी वक्र को जोकि संभावित संयोगों का विन्दु पथ है, समउत्पाद वक्र कहा जाता है।

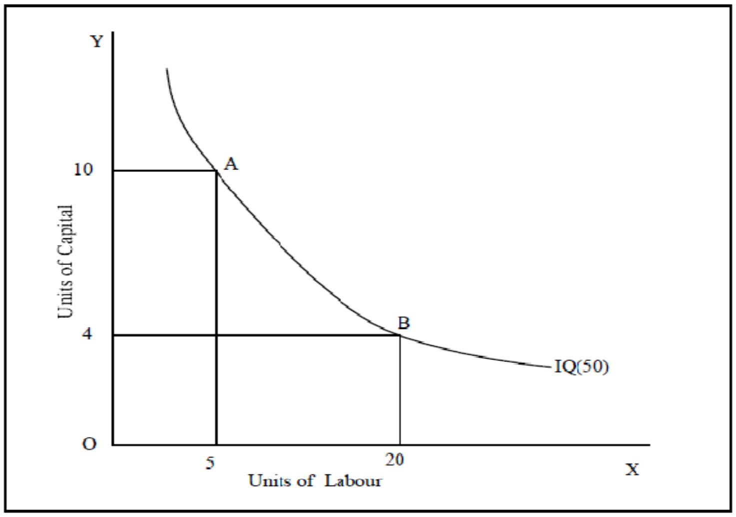

चित्र :9.2

किसी वस्तु की कोई मात्रा पूंजी और श्रम के कई संयोगों के प्रयोग करते हुए उत्पादित की जा सकती है। (यह मान कर कि श्रम और पूंजी परस्पर स्थानापन्न है।) समउत्पाद वक्र वह रेखा है जो उत्पादन के विभिन्न साधनों के संयोगों को जोड़ती है जिनके प्रयोग एक उत्पादन की किसी भौतिक मात्रा को प्राप्त किया जा सकता है।

मान लीजिये उपरोक्त समउत्पाद वक्र 50 किलो ग्राम उत्पादन को दर्शाता है यह मात्रा श्रम और पूंजी के भिन्न–भिन्न संयोगों से उत्पादित की जा सकती है। सभी भिन्न–भिन्न संयोग उसी मात्रा को उत्पादित करेंगे तथा वे एक हीं समउत्पाद वक्र पर स्थित होगें। उदाहरण के लिए चित्र 9.2 में बिन्दु A पर पूंजी की 10 इकाई तथा श्रम की 5 इकाईयों से वही उत्पादन प्राप्त होगा जो बिन्दु B पर पूंजी की 4 इकाईयों तथा श्रम की 20 इकाईयों से प्राप्त होगा। फर्म इन दोनों में सक किसी भी संयोग का चुनाव कर सकती है। इसके साथ हीं वह 50 किलोग्राम उत्पादन के लिए उसी समउत्पाद वक्र पर स्थित किसी अन्य संयोग का भी चुनााव कर सकती है।

बिन्दु A जो कि अधिक पूंजी तथा कम श्रम को व्यक्त करता है पूंजी गहन तकनीकि को दिखाता है। बिन्दु B जिस पर कम पूंजी तथा अधिक श्रम की आवश्यकता है श्रम गहन तकनीकि को व्यक्त करता है। किसी समउत्पाद वक्र के एक बिन्दु से दूसरे बिन्दु पर चलने पर उत्पादन का स्तर तो समान रहता है परन्तु श्रम और पूंजी का अनुपात लगातार बदलता रहता है।

समउत्पाद वक्र तथा अनधिमान वक्र के बीच अन्तर

अनधिमान वक्रों की भांति सम उत्पाद वक्र भी संयोगों को व्यक्त करता है लेकिन जहां अनधिमान वक्र दो वस्तुओं के संयोगों को व्यक्त करता है वहीं समउत्पादन वक्र उत्पादन के दो साधनोंः श्रम और पूंजी के संयोगों को प्रदर्शित करता है। यद्यपि उच्चतर अनधिमान वक्र निम्नतर अनधिमान वक्र की अपेक्षा उच्च संतुष्टि स्तर को व्यक्त करता है लेकिन इससे यह नहीं बताया जा सकता है कि एक की अपेक्षा दूसरे पर संन्तुष्टि कितनी अधिक है। दूसरी ओर, समउत्पाद वक्रों से प्राप्त भौतिक उत्पादन की आसानी से तुलना की जा सकती है। इसे निम्न चित्र से स्पष्ट किया जा सकता हैः

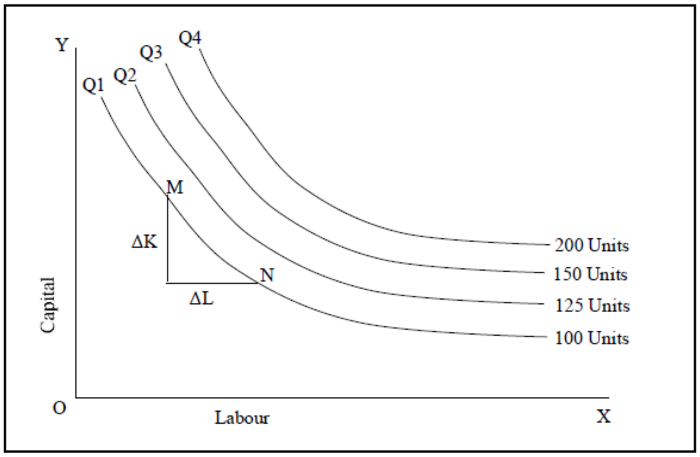

चित्र : 9.3

चित्र 9.3 में चार समउत्पाद वक्र है जो कि क्रमशः 100, 125, 150 और 200 इकाईयों के उत्पादन को दिखाते हैं। इस प्रकार जैसे–जैसे समउत्पाद वक्र उंचे होते जाते हैं उत्पादन की मात्राा भी बढ़ती जाती है। अनधिमान वक्र से दूसरी समान प्रतिस्थापन की घटती हुई दर की है। समउत्पाद वक्र के सन्दर्भ में इसे प्रतिस्थापन की सीमान्त दर के साथ पर तकनीकि प्रतिस्थापन की सीमान्त दर कहा जाता है। तकनीकि प्रतिस्थापन की सीमान्त दर वह दर है जिस पर उत्पादन के साधन उत्पादन स्तर को बिनाा परिवर्तित किये हीं प्रतिस्थापित किये जा सकते हैं। अधिक सुविधाजनक रुप से हम इसे पूंजी की उस मात्रा के रुप में व्यक्त कर सकते हैं जिसे श्रम की एक इकाई से प्रतिस्थापित किया जा सकता है जबकि उत्पादन का स्तर समान रहें। समउत्पाद वक्र के किसी बिन्दु पर ढ़ाल से ज्ञात की जा सकती है। उपरोक्त दिये गये समउत्पाद वक्र में बिन्दु M से N पर जाने से पूंजी की ΔK मात्रा को श्रम की ΔL से प्रतिस्थापित किया जाता है और उत्पादन में कोई कमी नहीं होती है। समउत्पाद वक्र Q_1 के बिन्दु M पर ढाल $\frac{\Delta K}{\Delta L}$ के बराबर होगा।

इस प्रकार पूंजी के लिए श्रम की तकनीकि प्रतिस्थापन की सीमान्त दर

(MRTSLK) = $\frac{\Delta K}{\Delta L}$

9.8 पैमाने का प्रतिफल

यदि सभी आगतें एक साथ बदली जाय (जो केवल दीर्घकाल में संभव है) और उत्पादन का पैमाना आनुपातिक रुप से बढ़ा दिया जाये तो उत्पादन के व्यवहार को समझने के लिए पैमाने के प्रतिफल की अवधारणा का प्रयोग किया जाता है। इस रुप में जब उत्पादन के सभी साधन एक दिशा में समान अनुपात में बढ़ाये जाते हैं तो इससे कुल उत्पाद में होने वाले परिवर्तन का अध्ययन किया जाता है।

पैमाने के प्रतिफल के नियम का सम्बन्ध दीर्घकाल से है क्योंकि केवल दीर्घकाल में हीं उत्पादन के सभी साधन परिवर्ततनीय होते हैं। दूसरे शब्दों में उत्पादन के सभी साधनों में परिवर्तन करना दीर्घकाल में हीं सम्भव है। इस प्रकार पैमाने के प्रतिफल से आशय भविष्य के उस समय से है जिसमें उत्पादन में परिवर्तन सभी साधनों में साथ–साथ समानुपातिक वृद्धि के द्वारा किया जाता है।

पैमाने के प्रतिफल को निम्न प्रकार से वर्गीकृत किया जा सकता है:

(a) पैमाने का वृद्धिमान प्रतिफल (IRS)

(b) पैमाने का स्थिर प्रतिफल (CRS)

(c) पैमाने का ह्रासमन प्रतिफल (DRS)

निम्नलिखित पैराग्राफों में सभी तीनों का विवेचन किया गया है:

पैमाने का वृद्धिमान प्रतिफल: जब उत्पादन में वृद्धि आगतों में होने वाली वृद्धि से अधिक होती है तो इसे पैमाने का वृद्धिमान प्रतिफल कहा जाता है। इसे चित्र 9.4 से स्पष्ट किया जात सकता है:

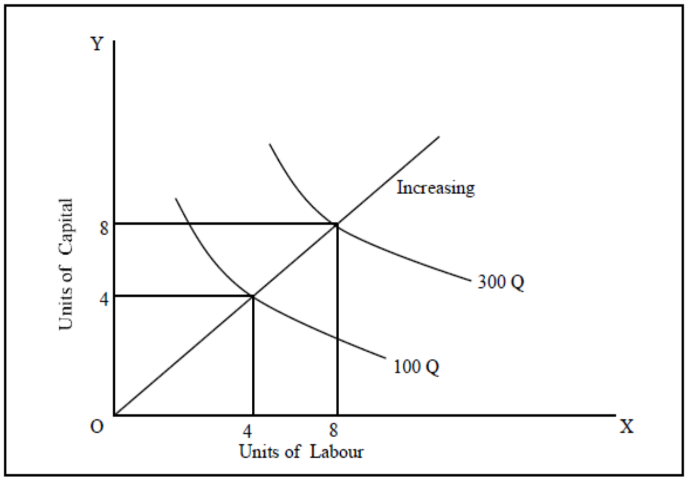

चित्र 9.4

चित्र 9.4 में दिखाया गया है कि जब श्रम और पूंजी की अधिक इकाईयों प्रयोग की जाती है तो उत्पादन में आगतों में की गई वृद्धि के अपेक्षा अधिक वृद्धि होती है। प्रारम्भ में 100 इकाईयों का उत्पादन किया जाता है लेकिन साधनों में वृद्धि के बाद 300 इकाईयों उत्पादित की जाती है।

पैमाने का स्थिर प्रतिफलः इसका तात्पर्य यह है कि निर्गत में वृद्धि आगतोां में हाने वाली वृद्धि के आनुपात में ही होती है। दूसरे शब्दों में यदि आगतें दुगुनी कर दी जाये ंतो निर्गत की मात्रा भी दुगुनी हो जायेगी। इसका अर्थ यह है कि पैमाने की मित्तव्ययिताएं तथा पैमाने की अमित्तव्ययिताएं एक–दूसरे का सन्तुलन कर देती है।

चित्र 9.5 में दिखाया गया है कि आगतों में आनुपाति परिवर्तन निर्गतों में समानुपातिक परिवर्तन लायेगा। इसका अर्थ है कि आगतों को दुगुना करने सक निर्गत भी दुगुना हो जायेगा। प्रारम्भ में 100 इकाईयां उत्पादित की जा रहीं है और साधनों में वृद्धि के साथ 200 इकाईयां उत्पादित होती है।

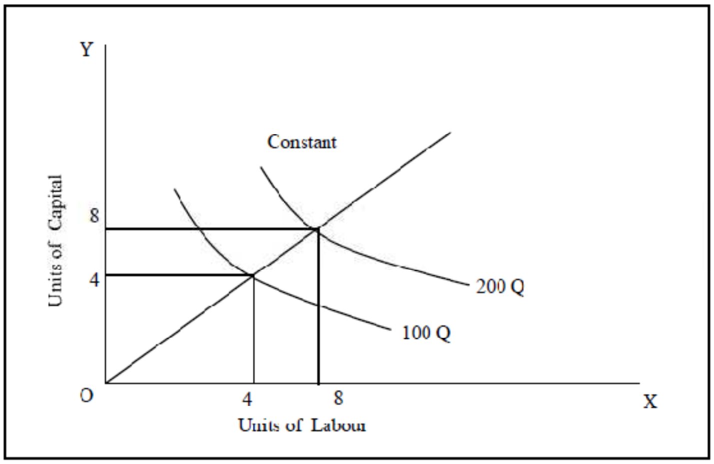

चित्र 9.5

पैमाने का ह्रासमान प्रतिफलः ह्रासमान प्रतिफल का आशय उस स्थिति से है जिसमें उत्पादन में वृद्धि आगतों में होने वाली वृद्धि से कम होता है। दूसरे शब्दों में, उदाहरण के लिए यदि आगतों में 50 प्रतिशत की वृद्धि हो और निर्गत में 25 प्रतिशत की ही वृद्धि हो।

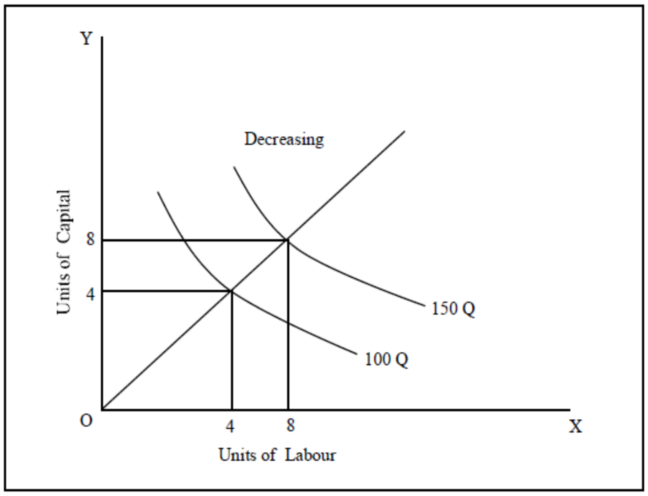

चित्र 9.6

चित्र 9.6 में दिखाया गया है कि आगतों में वृद्धि के साथ निर्गत में उसी अनुपात में वृद्धि नहीं होती है। मान लीजिए आगतें दुगुनी कर दी जायें तो निर्गत उसी अनुपात में नहीं बढ़ता। इस प्रकार यदि फर्म आगतों की दी गई मात्रा से 100

इकाईयां उत्पादित कर रही है तो यह आगतों की मात्रा दुगुनी करने से 200 इकाईयों की संख्या से कम हीं उत्पादन करेगी।

पैमाने के वृद्धिमान प्रतिफल के कारणः पैमाने के वृद्धिमान प्रतिफल तकनीकि तथा प्रबन्धकीय अविभाज्यताओं के कारण प्राप्त होता है। विकसित औद्योगिक तकनीकि की आधारभूत विशेषता थोक उत्पादन क्षमता है। वृहत उत्पादन तकनीकि तभी उपलब्ध होगी जब उत्पादन का स्तर बड़ा हो । वे छोटे स्तर पर उत्पादन करने की अपेक्षा अधिक कुशल होंगी। उदाहरण के लिए, पैमाने का वृद्धिमान प्रतिफल श्रमिकों द्वारा किसी विशेष कार्य को बार–बार करने से प्राप्त विशेषज्ञता के द्वार भी उत्पन्न हो सकता है बजाय इसके कि वे एक साथ विभिन्न कार्य करें। परिणाम स्वरूप श्रम की उत्पादकता बढ़ती है। इसके अतिरिक्त बड़े पैमाने पर कार्य करने से अधिक उपयुक्त मशीनरी का भी प्रयोग किया जा सकता है जो कि छोटे पैमाने पर उत्पादन में सम्भव नहीं था।

ह्रासमान प्रतिफल के कारणः ह्रासमान प्रतिफल का प्रमुख कारण प्रबन्धन की ह्रासमान प्रतिफल है। पबन्धन हीं फर्म के विभिन्न कार्यों के बीच संयोजन के लिए उत्तरदायी है। यहां तक कि शक्तियां व्यक्तिगत प्रबन्धकों जैसेः उत्पाद प्रबन्धक, बिक्री प्रबन्धक को देने के बाद भी अन्तिम निर्णय संचालक मण्डल के द्वारा हीं लिया जाता है। जैसे–जैसे उत्पादन बढ़ता है उच्च स्तर पर कार्यरत प्रबन्धक संयोजन तथा निर्णय में बिलम्ब करने लगते हैं क्योंकि उन पर कार्य का बोझ अधिक होता है। यद्यपि प्रबन्ध विज्ञान के विकास से बहुत सी प्रबन्धन तकनीकि का विकास हुआ है, फिर भी यह सामान्य रुप से पाया गया है कि जैसे–जैसे फर्म एक अनुकूलतम स्तर के बाद विस्तार करती प्रबन्धन की अमित्तव्ययिताएं उठने लगती हैं। ऐसा इसलिए होता है क्योंकि जैसे –जैसे कार्य का पैमाना बढ़ता है संवाद की कठिनाईयां व्यवसाय को कुशलता से चलाने में अधिक बाधा उत्पन्न करती है।

ह्रासमान प्रतिफल का दूसरा कारण प्राकृतिक संसाधनों की सीमितता हो सकती है। जैसेः मछुवारों के जहाज दुगुना करने से पकड़ी जाने वाली मछलियों की संख्या दुगुनी नहीं हो सकती है। इसी तरह से खनन या तेल उत्पादन के प्लान्ट दुगुना करने से उत्पादन दुगुना नहीं हो जाता है।

9.9 संसाधनों का अनुकूलतम संयोग

प्रत्येक फर्म किसी वस्तु के उत्पादन के लिए न्यूनतम सम्भव पर उत्पादन का विकल्प चुनती है। इसके लिए वह निम्नलिखित दो में से कोई एक कार्य–योजना चुन सकती है।

(i) दिये गये उत्पादन को न्यूनतम लागत पर उत्पादित करना

इस योजना के प्रयोग को आगे दिये गये चित्र के माध्यम से समझा जा सकता है। मान लीजिये फर्म समउत्पाद वक्र P_1 के द्वारा दिये गये उत्पादन स्तर का चुनाव करती है। अब यदि पूंजी और श्रम की कीमतें समलागत रेखाओं के K_1L_1, K_2L_2, K_3L_3 द्वारा दी गयी हो तो फर्म वांछित उत्पादन स्तर P_1 को न्यूनतम संभव सम लागत रेखा पर प्राप्त करने का प्रयास करेगी। चित्र में P_1 उत्पादन को कुशलतम रुप में K_2L_2 लागत से उत्पादन किया जा सकता है। इस स्तर से कम लागत सम्भव नहीं है। K_1L_1 तथा K_3L_3 के द्वारा व्यक्त साधनों का संयोग

अनुकूलतम नहीं है क्योंकि इनसे न्यूनतम लागत पर वांछित उत्पादन नहीं हो पाता है।

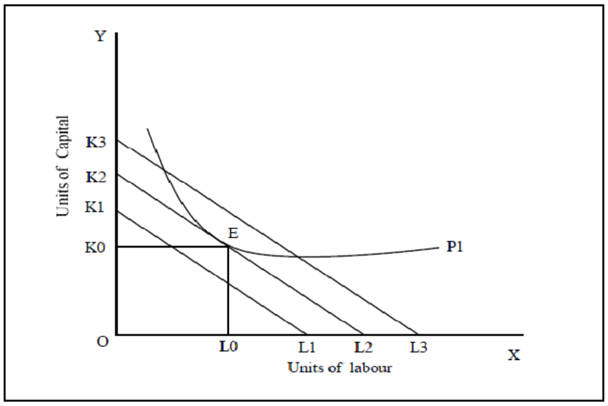

चित्र 9.7

चित्र में बिन्दु E फर्म के सन्तुलन का बिन्दु है जिस पर सम उत्पाद वक्र P_1 सम–उत्पाद रेखा की स्पर्श रेखा है। इस बिन्दु पर समउत्पाद वक्र की ढ़ाल (तकनीकि प्रतिस्थापन की सीमान्त दर MRTS) सम लागत रेखा की ढ़ाल (पूंजी तथा श्रम की कीमतों का अनुपात) के बराबर है। कीमत अनुपात वह दर व्यक्त करता है जिस पर आगत की एक इकाई का दूसरे से क्रय में प्रतिस्थापन किया जा सकता है जबकि तकनीकि प्रतिस्थापन की सीमान्त दर उस दर को व्यक्त करती है जिस पर ये आगतें उत्पादन में प्रतिस्थापित की जा सकती है। इस प्रकार उत्पादन के दिये गये स्तर पर लागत को न्यूनतम करने के लिए फर्म को दोनों साधनों को इस प्रकार से क्रय करना चाहिए कि उनके बीच तकनीकि प्रतिस्थापन की सीमान्त दर उनके सापेक्षिक कीमतों के बराबर हो ($MRTS = w/r$)। चूंकि $MRTS_{LK}$ दोनों साधनों की सीमान्त उत्पादकता के बीच अनुपात के बराबर होता है, इसलिए सन्तुलन उस बिन्दु पर होगा जहांः $MRTS = w/r = MP_L/MP_K$

(ii) दी गई लागत स्तर से अधिकतम उत्पादन की प्राप्तिः

फर्म के पास दूसरा रास्ता दिये गये खर्च से अधिकतम उत्पादन करने का होता है। इसका विश्लेषण निम्न चित्र की सहायता से किया जा सकता है।

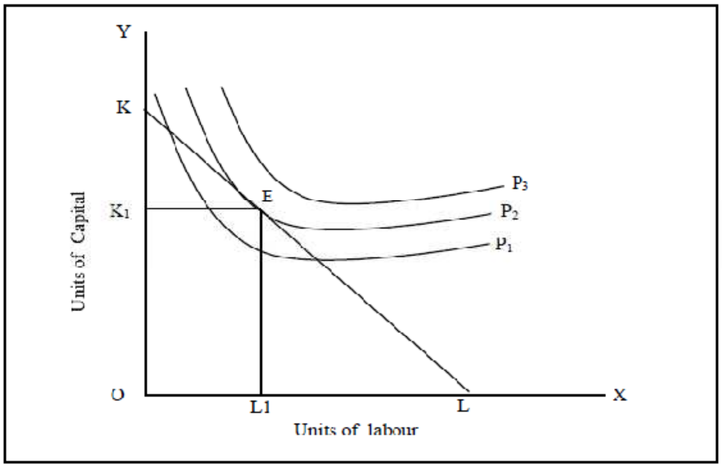

चित्र 9.8: दिये गये संसाधनों से उत्पाद की अधिकतमता

चित्र में KL फर्म की समलागत रेखा है। फर्म अपने अधिकतम उत्पादन के लक्ष्य को तब प्राप्त कर सकती है जब इसका समउत्पाद वक्र, समलागत रेखा की स्पर्श रेखा हो। P_3 उत्पादन फर्म के लिए असंभव होगा क्योंकि यह समउत्पाद वक्र समलागत रेखा से बाहर है। P_1 उत्पादन का चुनाव नही किया जायेगा क्योंकि दिये गये लागत स्तर से अपेक्षाकृत अधिक उत्पादन P_2 प्राप्त किया जा सकता है। इस प्रकार फर्म बिन्दु E पर सन्तुलन में है जहां यह पूंजी की OK_1 मात्रा तथा श्रम की OL_1 मात्रा का प्रयोग करती है। इस प्रकार फम दिये गये लागत पर अधिकतम उत्पाद के लिए तकनीकि प्रतिस्थापन की सीमान्त दर को आगतों की कीमतों के अनुपात के बराबर करती है। इसलिए सन्तुलन बिन्दु पर,

$MRTS = w/r$

आगतों एवं निर्गतों में वृद्धि के साथ फर्म का विस्तार पथ: यदि आगतों की कीमतों में कोई परिवर्तन न हो तो व्यय में वृद्धि से समलागत रेखा समानान्तर रुप में विवर्तित होगी। प्रत्येक मूल्य रेखा या समलागत रेखा एक नया स्पर्श बिन्दु के साथ हीं नया सन्तुलन बिन्दु प्रदान करेगी। इस प्रकार विस्तार पथ विभिन्न सन्तुलन बिन्दुओं का बिन्दुपथ है जो कि आगतों की कीमतें समान रहने पर उत्पादन पर व्यय में वृद्धि से प्राप्त होता है। चूंकि विस्तारपथ से न्यूनतम लागत संयोगों के विभिन्न बिन्दुओं को जोड़ने से प्राप्त होता है, इसलिए यह व्यय तथा उत्पादन में परिवर्तन के साथ साधनों में अनुपातिक परिवर्तन को व्यक्त करता है। आगे दिया गया त्रि. यह स्पष्ट करता है कि विभिन्न समानान्तर समलागत रेखाओं के साथ किस प्रकार से विस्तार पथ बनाया जा सकता है जबकि आगतों की कीमतें अपरिवर्तित रहें। चित्र में प्रत्येक समलागत रेखा पर एक स्पर्श रेखीय समउत्पाद वक्र है। यहां पर ये स्पर्श रेखीय बिन्दु E_1, E_2 और E_3 है जो अनुकूलतम लागत से अनुकूलतम उत्पादन को व्यक्त करते हैं।

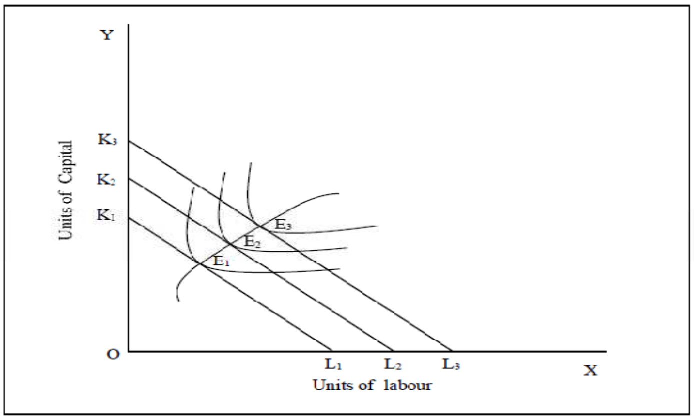

चित्र 9.9: विस्तार पथ वक्र

पूर्व के चित्र में दिया गया P , विसर पथ है जो E_1, E_2, E_3सन्तुलन बिन्दुओं को जोड़ने से प्राप्त होता है। कीमत रेखा या बजट रेखा K_1L_1, K_2L_2, K_3L_3 एक–दूसरे के समानान्तर है जो यह व्यक्त करता है कि प्रत्येक सन्तुलन बिन्दु पर तकनीकि प्रतिस्थापन की सीमान्त दर MRTS या MP_L/MP_K भी बराबर होगी।

अनुकूलतम उत्पाद संयोग

आज के सामान्य व्यवहार में फर्में एक से अधिक वस्तुओं का उत्पादन करती है। ऐसी स्थिति में मानलीजिय दो वस्तुओं का उत्पादन करने वाली फर्मों के सम्मूख प्रमुख समस्या यह होती है कि इन दोनों वस्तओं का किस अनुपात में उत्पादन किया जाये। इस समस्या का हल उसी प्रकार दिया जा सकता है जैसे हम विभिन्न आगतों को उनका अनुपात निर्धारण में करते हैं।

उत्पादन सम्भावना वक

मान लीजिए कोई फर्म X और Y दो वस्तुओं का उत्पादन करती है और फर्म के साधन अर्थात् मशीन और श्रम दिये गये हैं। इन आगतों के साथ फर्म X और Y को विभिन्न अनुपात में उत्पादित किया जाता है तो Y का कम उत्पादन किया जायेगा। इसके विपरीत Y का अधिक उत्पादन होने पर X का कम उत्पादन होगा। यह भी स्पष्ट है कि तकनीकि तथा आगतों के स्थिर रहने पर फर्म के लिए X तथा Y दोनों का अधिक मात्रा में उत्पादन करना संभव नहीं होगा। इसकी व्याख्या निम्नलिखित सारणी की सहायता से की जा सकती हैः

सारणी 9.3: फर्म की मासिक उत्पादन की संभावनएं

सम्भावना	X वस्तु की इकाईयां का उत्पादन	Y वस्तु की इकाईयों का उत्पादन
A	0	1200
B	4000	1160
C	1000	1000
D	1800	400
E	2000	0

सारणी 9.3 में दिये गये आंकड़ों के आधार पर हम चित्र 9.10 में फर्म की मासिक उत्पादन की सम्भावनाओं का वक्र खींच सकते हैं।

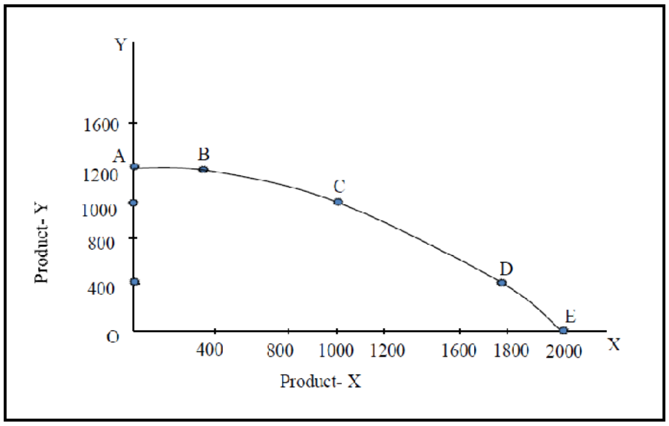

चित्र 9.10: फर्म का उत्पादन सम्भावना वक्र

चित्र 9.10 में AE फर्म का उत्पादन सम्भावना वक्र है जो साधनों के दिये होने पर X तथा Y वस्तुओं के एक महीने में सम्भावित उत्पादन स्तर को बताता है। हम देख सकते हैं कि प्रत्येक वस्तु के उत्पादन की कई सम्भावनाएं हैं। यह वक्र मूल बिन्दु की ओर नतोदर है जो यह व्यक्त करता है कि जैसे–जैसे वस्तु X की मात्रा बढ़ायी जायेगी Y वस्तु की क्रमशः अधिक उत्पादन इकाईयों का त्याग करना पड़ेगा। इसी प्रकार Y वस्तु के उत्पादन में वृद्धि के लिए X वस्तु का क्रम"ाः अधिक त्याग करना होगा। फर्म के संसाधन X और Y वस्तुओं का उत्पादन करने के लिए समान रुप से कुशल नहीं है। वक्र की नतोदरता ह्रासमान प्रतिफल को प्रदर्शित करती है। क्योंकि Y वस्तु की त्याग की गई इकाईयों के बदल X वस्तु की क्रमशः कम हीं मात्राएं प्राप्त की जा सकती हैं। इसी प्रकार बिन्दु B पर X वस्तु की प्रत्येक इकाईयों के त्याग के बदले वस्तु का कम हीं उत्पादन प्राप्त होगा।

सम–राजस्व रेखा

फर्म अपने उत्पादों की बिक्री से अपनी आय को अधिकतम करने का प्रयास करेगी। यह मानकर की फर्म के लिए X तथा Y दोनों वस्तुओं का मांग वक्र पूर्णतः लोचदार है हम यह भी कह सकते हैं कि वस्तुओं की कीमतें फर्म द्वारा बिक्री की मात्रा से प्रभावित नहीं होगी। चित्र 9.11 में सम–राजस्व रेखा प्रदर्शित हैं जो कि X तथा Y के बिक्रय से प्राप्त आय को प्रदर्शित करती है।

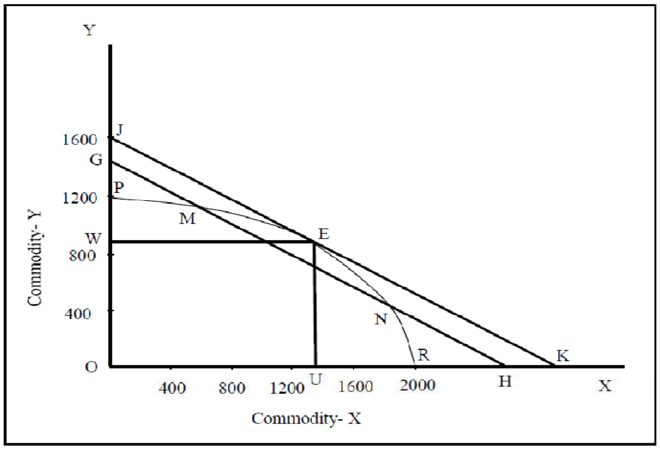

चित्र 9.11: अनुकूलतम उत्पाद का संयोग

चित्र में सम–राजस्व रेखा की ढ़ाल P_x/P_y है।

चूंकि ढ़ाल = OJ/OK = Y/K

क्योंकि, $YP_y = XP_x$

या, $Y/X = P_x/P_y$

यह रेखा मूल बिन्दु (O) से जितनी अधिक दूरी पर होगी सम–राजस्व रेखा उतनी हीं अधिक आय प्रदर्शित करेगी।

उत्पाद का अनुकूलतम संयोग

चित्र 9.11 में X तथा Y वस्तु का अनुकूलतम संयोग बिन्दु E पर है। जिस पर फर्म X की OU मात्रा तथा Y की OW मात्रा का उत्पादन करती है। यदि फर्म उत्पादन सम्भवना वक्र पर कहीं अन्यत्र उत्पादन करती है जैसे बिन्दु M या N पर तो यह निम्नतर सम आय रेखा पर होगी जैसा कि चित्र 9.11 में GH रेखा है। बिन्दु E पर JK रेखा उत्पादन सम्भावना वक्र पर स्पर्श रेखा है इसलिए सम–आय रेखा की ढ़ाल तथा उत्पादन सम्भावना वक्र का ढ़ाल बराबर है। इसका अर्थ है कि कीमतों का अनुपात रूपान्तरण की दर के बराबर है जिसे निम्न रुप से व्यक्त किया जा सकता है।

$P_x/P_y = MRS_{xy}$

9.10 सारांश

उत्पादन का अर्थ आगतों के निर्गत में परिवर्तन है। उत्पादन फलन आगतों और निर्गतों के बीच का सम्बन्ध व्यक्त करता है। अर्थशास्त्र में दो प्रकार के उत्पादन फलनों की व्याख्या की गई हैं; अल्पकालीन तथा दीर्घकालीन उत्पादन फलन। अल्पकालीन उत्पादन फलन परिवर्तन अनुपात के नियम की व्याख्या करता है जबकि दीर्घकालीन उत्पादन फलन पैमाने के प्रतिफल की व्याख्या करता है। परिवर्तनीय अनपात का नियम यह बताता है कि यदि एक साधन की मात्रा में वृद्धि की जाये जबकि अन्य आगतें स्थिर हो तो प्रारम्भ में कुल उत्पादन में वृद्धि होगी,

परन्तु एक सीमा के बाद परिवर्तनीय साधन की वृद्धि के फलस्वरुप कुल उत्पादन में वृद्धि क्रमशः कम होती जायेगी। इस नियम के अन्तर्गत पहली अवस्था में AP तथा MP दोनों बढ़ते हैं। यह अवस्था तब समाप्त होती है। जब AP = MP के हो। दूसरी अवस्था में AP तथा MP कम होते हैं। परन्तु MP में घटने की दर AP से अधिक होती है। दूसरी अवस्था वहां समाप्त होती है जहां MP शून्य हो जाता है। तीसरी अवस्था में सीमान्त उत्पाद ऋणात्मक हो जाता है। दूसरी अवस्था हीं उत्पादकों के लिए अधिक महत्वपूर्ण है। दीर्घकाल में पैमाने का प्रतिफल नियम कार्य करता है। दीर्घ काल में उत्पादन के सभी साधन परिवर्तनीय होते हैं। दीर्घकालीन उत्पादन के सभी साधन परिवर्तनीय होते हैं। दीर्घकालीन उत्पादन फलन में तीन प्रकार के प्रतिफल प्राप्त होते हैं, पैमाने का वृद्धिमान प्रतिफल, पैमाने का स्थिर प्रतिफल और पैमाने का ह्रासमान प्रतिफल। वृद्धिमान प्रतिफल पैमाने की मितव्ययिताएं तथा बेहतर प्रबन्धन के कारण प्राप्त होता है। दूसरी ओर पैमाने की अमितव्ययिताएं तथा प्रबन्धन की कठिनाईयां पैमाने के ह्रासमान प्रतिफल का कारण हैं।

9.11 शब्दावली

उत्पादनः उत्पादन से आशय उत्पादित वस्तु तथा उत्पादन के साधनों के बीच फलनात्मक सम्बन्ध से है।

उत्पादन फलनः आगतों और निर्गतों के बीच एक तकनीकि या प्रविधिक सम्बन्ध है।

बाह्य मित्तव्यियताएंः ये मित्तव्ययिताएं फर्म को तब प्राप्त होती है जब उद्योग का समय के साथ विकास होता है।

9.12 बोध प्रश्न

(A) रिक्त स्थानों को भरें।

1. ———————— व्यापार की एक इकाई है जो आगत को निर्गत में बदलती है।
2. उत्पादन फलन परिवर्तित होता हैं —————————— में परिवर्तन के कारण।
3. समय अन्तराल जिसमें कुछ उत्पादन के साधन स्थिर होते हैं जबकि अन्य परिवर्तनशील होते हैं, जाना जाता है, ——————— ।
4. समउत्पाद वक्र ———————— उत्पादन फलन को प्रदर्शित करते हैं।
5. उत्पादन साधन में परिवर्तन हो सकता है केवल ——————— में।
6. ———————— आगत और निर्गत एक हीं दिशा में परिवर्तित होते है।

(B) सत्य या असत्य

1. उत्पादन फलन पूंजी और श्रम के बीच सम्बन्ध को प्रदर्शित करता है।
2. परिवर्तनशील आगत वह आगत है जो उत्पादन की मात्रा के साथ परिवर्तित नहीं होती है।
3. परिवर्तनीय अनुपात का नियम यह मानता है कि प्रत्येक परिवर्तनशील साधन गुणवता और मात्रा में समान है।
4. किसी सम उत्पाद वक्र पर उत्पादन की अलग—अलग मात्रा प्रदर्शित होती है।

5. आधुनिक तकनीकि का बढ़ता प्रयोग वृद्धिमान प्रतिफल के नियम का कारण है।
6. घटते हुए पैमाने का प्रतिफल श्रम की अक्षमता का कारण है।

9.13 बोध प्रश्नों के उत्तर

(A) 1. फर्म, 2. तकनीकि, 3. लघु काल, 4. ज्यामीतिक, 5. दीर्घकाल, 6. स्थिर पैमाने का प्रतिफल।

(B) 1. असत्य, 2. असत्य, 3. सत्य, 4. असत्य, 5. सत्य, 6. असत्य।

9.14 स्वपरख प्रश्न

(A) लघु उतरीय प्रश्न

1. उत्पादन फलन क्या है?
2. परिवर्तनीय अनुपात का नियम और पैमाने के प्रतिफल के नियम के बीच अंतर बतायें।

(B) दीर्घ उतरीय प्रश्न

1. परिवर्तनीय अनुपात के नियम की व्याख्या करें।
2. पैमाने के प्रतिफल के नियम की व्याख्या करें।
3. पैमाने के मितव्ययिताएं एवं अमितव्ययिताएं की ब्याख्या करें।
4. उत्पादन संभावना वक्र की व्याख्या करें।

9.15 सन्दर्भ पुस्तकें

1. Alfed W. Stonier and Douglas C. Hague, A Text Book of Economic Theory, Longman, 1990.
2. Spencer, M.H. and L. Sieglemen, Managerial Economics Richard Irwin, 1964.
3. Samuelson, P.A. and W.D. Wordhans, Economics – McGraw Hill, 1985.
4. Cobb, C.W. and P.H. Douglas, A Theory of Production, American Economic Review, March (Sppl.), 1928.
5. Mehta, P.L., Managerial Economics – Analysis, Problem and Cases, Sultan Chand & Sons, New Delhi.
6. Mote, V.L.S., Paul, and G.S. Gupta, Managerial Economics, Tata McGraw Hill, 1977.

*****

इकाई 10 लागत का सिद्धान्त

इकाई की रूपरेखा

10.1 प्रस्तावना
10.2 लागत की विभिन्न अवधारणाएं
10.3 लागत के प्रकार
10.4 औसत लागत तथा सीमान्त लागत वक्र
10.5 औसत लागत और सीमान्त लागत के बीच सम्बन्ध
10.6 दीर्घकालीन लागत वक्र
10.7 लागत वक्रों के आधुनिक उपागम
10.8 सारांश
10.9 शब्दावली
10.10 बोध प्रश्न
10.11 बोध प्रश्नों के उत्तर
10.12 स्वपरख प्रश्न
10.13 संदर्भ पुस्तकें

उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप इस योग्य हो सकेंगे कि –

- लागत के अवधारणा को समझ सकें।
- विभिन्न आधारभूत लागत अवधारणाओं के बीच आधारभूत अंतर को समझ सकें।
- लागत व्यवहार का विश्लेषण कर सकें।

10.1 प्रस्तावना

सामान्य रुप में लागत का अर्थ मुद्रा की उस मात्रा से है जिसे उत्पादक वस्तु और सेवाओं के विभिन्न आगतों का क्रय करने के लिए करता है। लागत प्लांट की दक्षता को निर्धारण करने वाला एक प्रमुख कारक है। एक प्लांट को दक्षतापूर्ण कार्यशील कहा जायेगा, जब वह न्यूनतम लागत में अधिकतम उत्पादन करता हो। अतः प्रत्येक उत्पादक कम लागत में अधिकत उत्पादन करना चाहता है। लागत फर्म के लाभ को निर्धारित करने वाला भी मुख्य अव्यय है, क्योंकि प्रतियोगिता बढ़ने के कारण उपभोक्ता को अधिक मात्रा में वस्तुओं और सेवाओं की प्राप्ति कम लागत में होती है। यदि कोई फर्म ऐसी स्थिति में भी अधिक बेचना चाहती है, तो उसे विभिन्न कार्य प्रणाली से अपने उत्पादन लागत को कम करना होगा। इस इकाई में, लागत के विभिन्न अवधारणाओं की चर्चा, व्यापार के लिए उनके महत्व के साथ की गई है।

10.2 लागत के विभिन्न अवधारणायें

निम्नांकि अनुच्छेद आपके समक्ष लागत के विभिन्न अवधारणाओं को लायेगा।

(क) अवसर लागत

समाज के लिए उपलब्ध संसाधन सीमित है और उनका वैकल्पिक उपयोग भी है। जब हम इन संसाधनों का प्रयोग एक वस्तु के उत्पादन के लिए करते हैं,

तो इसका उपयोग अन्य किसी कार्य के लिए नहीं कर सकते हैं। उदाहरण के लिए शक्ति/बिजली का उपयोग कारखाना और घरेलू दोनों कार्य के लिए होता है। यदि हम बिजली का उपयोग कारखानों के लिए करने का निर्णय लेते है, तब घरेलू क्षेत्र को बिजली के उपयोग कारखानों के लिए उपयोग करने का निर्णय लेते हैं तब घरेलू क्षेत्र को बिजली के उपयोग को त्यागना पड़ता है। जो उपयोग नहीं होता है वह अवसर लागत है, जो उत्पादित किया जा सकता था। घरेलू क्षेत्र में बिजली का उपयोग नहीं किया गया। उपयोग, विनिर्माण क्षेत्र में किये गये उपयोग का अवसर लागत है। इसी तरह, उत्पादन साधन को कम से कम इतनी कीमत मिलनी चाहिए, जितना वह अपने, दूसरे सबसे अच्छे उपयोग के लिए पाता है। उदाहरण के लिए एक व्यापार का प्रबंधन लोगों के समूह द्वारा होता है। वह व्यक्ति जिसे प्रबन्धन का कार्य दिया गया है, को कम से कम दूसरे सबसे अच्छे उपभोग से प्राप्ति के बराबर हो। उदाहरण स्वरूप यदि व्यक्ति दूसरे सबसे बेहतर उपभोग में 10,000 रुपये पा सकता है, तो उसकी न्यूनतम वेतन इससे अधिक होनी चाहिए वह उस व्यक्ति का अवसर लागत है।

(ख) बाह्य लागत

बाह्य लागत का अर्थ उस भुगतान से है जिसे उत्पादन साधन के आपूर्तिकर्ता को वस्तुओं और सेवाओं के उत्पादन के लिए किया जाता है। उदाहरण के लिए, कच्चे माल के आपूर्तिकर्ता को भुगतान, और श्रमिकों को मजदूरी इत्यादि। इस श्रेणी में आता है। इस लागत को लेखांकन लागत भी कहते हैं।

(ग) आंतरिक लागत

आंतरिक लागत वह लागत है, जो संसाधनों के स्वरोजगार में होने के कारण होता है। जैसे यदि व्यक्ति अपने फर्म में प्रबंधक के रुप में कार्य करता है और बदले में कोई भुगतान नहीं लेता है, वह मुद्रा जो वह दूसरे जगह कार्य करने में प्राप्त करता है, उसे आंतरिक लागत कहते हैं। उसी तरह कोई उद्यमी अपनी भवन का उपयोग व्यापार के प्रबंधन के लिए करता है, जब उसके लिए उसे किसी प्रकार के लगान देने की आवश्यकता नहीं होती हैं। मुद्रा की वह मात्रा जो भवन के लगान के बराबर के बराबर हो उसे आंतरिक लागत कहते है।

(घ) वास्तविक लागत

सामान्य रुप में, लागत का आशय विभिन्न आगतों के क्रय पर किया गया खर्च है। इसे सरल रुप में मुद्रा लागत भी कहते हैं। पर वास्तविक लागत, मॉद्रिक लागत से विस्तृत पद है। वास्तविक लागत त्याग, या असुविधा को उत्पादन प्रक्रिया में शामिल करता है। इसे मौद्रिक रुप में नहीं मापा जा सकता है। आधुनिक क्षतिपूर्ति पैकेज को वास्तविक लागत के आधार पर तैया किया जाता है।

(च) मौद्रिक लागत

मौद्रिक लागत किसी वस्तु के उत्पादन में विभिन्न आगतों पर किया गया मौद्रिक खर्च है। यह वास्तव में, उत्पादन साधन के स्वामियों को किया गया मौद्रिक भुगतान है, जो उत्पाद लागत के रुप में भी जाना जाता है, क्योंकि यह फर्म के वास्तविक वित्तीय खर्च को व्यक्त करता है।

(छ) सामाजिक लागत

यह उस लागत को प्रदर्शित करता है, जिसे समाज को बढ़े–हुये प्रदूषण, मिट्टी, पानी और अन्य प्राकृतिक संसाधनों का अपवर्तन का वहन करना पड़ता है। यह प्रारंम्भिक तौर पर औद्योगिक कचरे इत्यादि के कारण होता है। सामाजिक लागत का वहन समाज को करना पड़ता है। उदाहरण के लिए यदि केमिकल बनाने वाली इकाई अपने कचरे को नदी में फेकती है, तो नदी के आस–पास रहने वाले लोगों को प्रदूषित पानी मिलेगा। यह वहां के आस–पास रहने वाले लोगों में पानी से उत्पन्न रोगों में वृद्धि करेगा। उसी तरह, जो किसान उस पानी का उपयोग सिंचाई के लिए करते हैं, उनकी फसल बर्बाद हो जायेगी। परिणामस्वरूप भूमि की उर्वराशक्ति घटेगी और लोगों के लिए उपलब्ध खाद्यान्नों में कमी होगी, जिसे सामाजिक लागत कहते हैं।

(ज) प्रतिस्थापन लागत

प्रतिस्थापन लागत वर्तमान में उपलब्ध परिसम्पतियां को प्रतिस्थापित करने की लागत है। अन्य शब्दों में, उत्पादन प्रक्रिया के दौरान, मशीन का जीवन काल घिसाव या टूट–फूट के कारण कम हो जाता है। उसी तरह तकनीकि में तीव्र वृद्धि उन्नयन के कारक उपस्थिति मशीन बेकार हो जाती है। अतः बाजार की प्रतियोगिता में बने रहने के लिए फर्म को अपने मशीनों में बदलाव करना पड़ता है। पुरानी मशीन की जगह नयी मशीन को बदलने में जो खर्च होता है, उसे प्रतिस्थापन लागत कहते हैं।

(झ) लेखांकन लागत और आर्थिक लागत

लेखांकन लागत सीधी मौद्रिक लागत है जो लेखांकन पूस्तिका में अंकित होती है। जैसे, मजदूरी पर लागत, वेतन, स्टेशनरी, कच्चे माल इत्यादि। वहीं दूसरी ओर आर्थिक लागत एक विस्तृत पद है जो आंतरिक और बाह्य दोनों लागतों को शामिल करता है।

(ट) डूबा हुई लागत और उत्पाद लागत

डूबा हुई लागत वह है जो वस्तु की मात्रा में परिवर्तन से परिवर्तित नहीं होता है तथा इसको वापस नहीं पाया जा सकता है। उदाहरण के लिए, अवसाद उत्पाद लागत का अर्थ वास्तविक खर्च से है, जो वस्तुओं और सेवाओं के उत्पादन और प्राप्ति के लिए किये जाते है। इसे वास्तविक लागत भी कहा जाता है और लेखांकन पूस्तिका पर अंकित किया जाता है।

(ठ) व्यापार लागत और पूर्ण लागत

जहां व्यापार लागत फर्म के सभी भुगतान, जो प्लांट और मशीनरी के ह्रास आदि को शामिल करता है। कुल लागत, अवसर लागत तथा सामान्य लाभ का योग है।

10.3 लागत के प्रकार

समय–अन्तराल के आधार पर लागत को दो भागों में बांटा जा सकता है। (अ) लघु या अल्पकाल में लागत एवं (ब) दीर्घ काल में लागत।

(अ) लघु–काल में लागतः लघु काल वह समय–अन्तराल या समय अवधि है जिसमें कुछ उत्पादन साधन स्थिर तथा कुछ परिवर्तनशील होते हैं। लघु–कल का लागत दो भागों में बांटा गया है।

1. स्थिर लागत, 2. परिवर्तनशील लागत

1. **स्थिर लागतः** लघु–काल में स्थिर साधनों पर किया गया व्यय स्थिर लागत कहलाता है। यह लागत उत्पादन की मात्रा में परिवर्तन के साथ परिवर्तित नहीं होता हे। कोई उत्पादन नहीं होने या उत्पादन का कोई भी स्तर होने पर भी स्थिर लागत में कोई परिवर्तन नही होता है। स्थिर लागत निम्नांकित व्यय को शामिल करता है।

(i) भूमि और भवन पर लागत,
(ii) स्थायी कर्मचारियों का वेतन,
(iii) लाइसेंस फीस
(iv) बीमा प्रिमियम एवं
(v) सामान्य लाभ।

स्थिर लागत को 'पूरक लागत' या 'अप्रत्यक्ष लागत' या ——— लागत भी कहते हैं। स्थिर लागत को नीचे दिये गये सारणी एवं चित्र की सहायता से व्याख्या की जा सकती है।

सारणी 10.1: स्थिर लागत

उत्पाद की मात्रा	स्थिर लागत (रुपये में)
0	10
1	10
2	10
3	10
4	10
5	10
6	10
7	10
8	10

सारणी 10.1 यह दिखाता है कि उत्पाद की मात्रा में परिवर्तन से स्थिर लागत में कोई परिवर्तन नहीं हो रहा है। जब उत्पाद की मात्रा शून्य है तब स्थिर लागत 10 है, और जब उत्पाद की मात्रा बढ़कर 2, 4, 6, अेर 8 इकाई है। तब भी स्थिर लागत 10 हीं हैं ग्राफ में कुल स्थिर लागत एक सरल रेखा है जो चित्र 10.1 में, X–अक्ष के समानान्तर दिखाया गया है। यह रेखा प्रदर्शित करता है कि स्थिर लागत विभिन्न उत्पादन स्तर पर स्थिर रहता है।

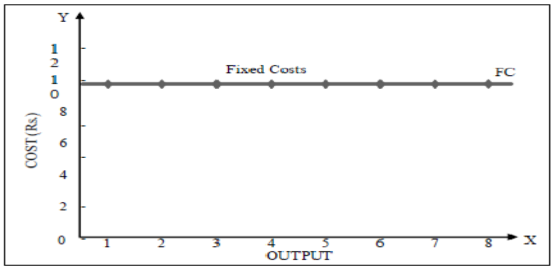

चित्र 10.1: स्थिर लागत

2. **परिवर्तनशील लागतः** परिवर्तनशील लागत वह लागत है जो उत्पाद के परिवर्तन के साथ परिवर्तित होता है। इसका अर्थ है उत्पादन में परिवर्तन होने पर

लागत में भी परिवर्तन होता है। यह प्रदर्शित करता है कि यदि जब उत्पादन शून्य हो तो परिवर्तनीय लागत शून्य होगी।

कुल परिवर्तनशील लागत में वृद्धि दर प्रतिफल के नियम से निर्धारित होता है।

प्रतिफल की तीन स्थितियां हैं। जैसे, वृद्धिमान प्रतिफल, स्थिर प्रतिफल और ह्रासमान प्रतिफल। किस उत्पादन इकाई में, प्रारम्भिक स्तर पर, जब उत्पादन का स्तर बढ़ता है, परिवर्तनशील साधन की प्रत्येक अतिरिक्त इकाई, समानुपातिक रुप से अधिक प्रतिफल प्रदान करती हैं। अनुकूलतम बिन्दु क्षमता पर अतिरिक्त प्रतिफल स्थिर रहती है। अन्ततः परिवर्तनशील साधन के प्रत्येक अतिरिक्त इकाई केवल समानुपातिक प्रतिफल की तुलना में कम उत्पादन करती हैं।

प्रतिफल के इन चरणों के मुताबिक, हम परिवर्तनशील लागत, के तीन चरणों के माध्यम से भी हम जान सकते हैं। शुरूआत में कुल परिवर्तनशील लागत गिरती दर से बढ़ती है, मध्यवर्ती चरण में, ये निरंतर दर पर बढ़ती है और अंत में बढ़ती हुई दर से बढ़ती है।

इन्हें 'मूल दाम' या 'प्रत्यक्ष लागत' या 'विशेष लागत' कहते हैं। परिवर्तनशील लागत या लागत में शामिल हैंः

(i) कच्चे माल पर खर्च,

(ii) ईंधन व उर्जा मुल्य,

(iii) आकस्मिक व अस्थायी श्रम के लिए मजदूरी,

(iv) परिवहन लागत इत्यादि।

ये सारी प्रत्यक्ष लागतें वास्तविक उत्पादन के साथ जुड़े हुये हैं। परिवर्तनशील कीमत आगे दिये गये सारणी की मदद से व्यक्त किया जा सकता है।

सारण 10.2ः परिवर्तनशील लागत

उत्पाद की मात्रा	परिवर्तनषील लागत (रुपये में)	परिवर्तनषील लागत में परिवर्तन (ΔVC)
0	0	0
1	10	10
2	18	8
3	24	6
4	28	4
5	32	4
6	38	6
7	46	8
8	62	16

सारणी 10.2 दर्शाता ह कि जिस तरह उत्पाद की मात्रा बढ़ रही है, परिवर्तनीय लागत भी उसी तरह बढ़ रही है। उत्पादन के शून्य स्तर परिवर्तनशील लागत भी शून्य होती है। परन्तु कुल परिवर्तनशील लागत की वृद्धि दर भिन्न–भिन्न उत्पाद स्तर पर अलग–अलग होती है। शुरूआत में, एक इकाई 10 रूपये में हैं उत्पादित की जाती है। अलगी इकाई 8 रुपये में केवल उत्पादित की जाती है। इस अवस्था

में, घटती हुई लागत के नियम लागू होता है। मध्यवर्ती चरण में, जब निरंतर प्रतिफल के नियम या निरंतर लागत के नियम लागू होता है। चौथी व पांचवी इकाई पर सेट होते है दोनों हीं एक लागत पर उत्पादित किये जाते हैं; वह 4 रुपये है।

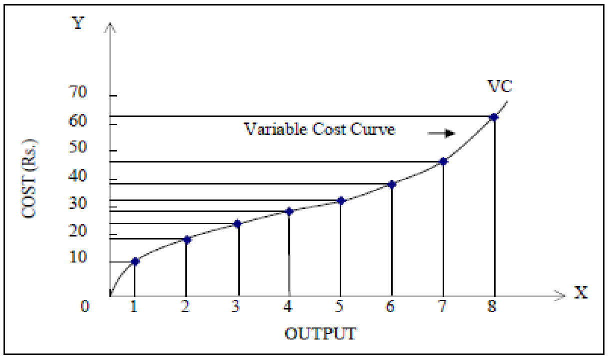

चित्र 10.2: परिवर्तनशील लागत

अन्तिम चरण में, घटते प्रतिफल के नियम या वृद्धिमान लागत के नियम अगले 6 ठवें, 7 वें, 8 वें इकाई पर लागू होते हैं जहां उत्पाद का उत्पादित करने में क्रमशः 6 रुपये, 8 रुपये एवं 16 रुपये लगते हैं।

दूसरे शब्दों में, कुल परिवर्तनीय लागत प्रतिफल के नियम के तीनों हीं चरणों में घटते हुए दर, स्थिर दर और बढ़ते हुये दर से बढ़ते हैं।

परिवर्तनशील लागत चित्र 10.2 में दर्शायी गई है। चित्र में परवर्तिनशील लागत वक्र कुल परिवर्तनशील लागत की उपर की ओर झुका दर्शाता है। परिवर्तनशील लागत वक्र बताता है कि उत्पाद के बढ़ने के साथ परिवर्तनशील लागत भी बढ़ते हैं। परिवर्तनशील लागत वक्र की ढ़ाल उपर की ओर झुका हुआ है क्रमशः घटते, बढ़ते और स्थिर या निरंतर दर से।

कुल लागत

किसी फर्म की कुल लागत विभिन्न उत्पाद स्तर पर कुल स्थिर लागत और कुल परिवर्तनशील लागत का योग है। सांकेतिक रुप से,

$$TC = TFC + TVC$$

अर्थमितीय तरीके से, कुल लागत कुल स्थिर लागत और कल परिवर्तनशील लागत का योग है, सारणी 10.3 उत्पादन के विभिन्न स्तरों पर परिगणित किया गया हैः

सारणी 10.3: कुल लागत विश्लेषण

उत्पादन	स्थिर लागत (रुपये में)	परिवर्तनशील लागत (रुपये में)	कुल लागत (रुपये में)
0	10	0	10
1	10	10	20
2	10	18	28
3	10	24	34
4	10	28	38
5	10	32	42
6	10	38	48
7	10	46	56

8	10	62	72

उपर दिये गये सारणी में कुल लागत स्थिर लागत तथा परिवर्तनीय लागत को जोड़कर परिगणित किया गया है। सारणी से स्पष्ट है कि उत्पादन की कुल लागत बढ़ती है उत्पादन स्तर बढ़ने के साथ। विभिन्न स्तरों पर उत्पादन के कुल लागत कुल परिवर्तनशील लागत का अनुमरण करती है, क्योंकि कुल कुल स्थिर लागत हमेशा स्थिर रहती है।

चित्र 10.3 के मदद से कुल लागत को रेखाचित्र के द्वारा भी दर्शाया जा सकता है। X–अक्ष पर उत्पादन की इकाईयों तथा Y–अक्ष पर लागत को प्रदर्शित किया गया है। FC स्थिर लागत रेखा स्थ्रि लागत व VC परिवर्तनशील लागत रेखा का प्रतिनिधित्व करती है और TC कुल लागत वक्र है। कुल लागत वक्र FC व VC वक्रों के समग्र रुप को प्रदर्शित करता है। TC वक्र, FC वक्र मूल या शुरूआती बिन्दु से शुरू होती है। बिन्दु O पर, उत्पाद शून्य है, लेकिन स्थिर लागत 10 रुपये है, अतः कुल लागत भी 10 रुपये है। कुल लागत और परिवर्तनशील लागत के बीच का अन्तर एक समान है। दूसरे शब्दों में, TC और VC वक्र हमेशा एक दूसरे के सामानान्तर रहत हैं। इसका प्रमाण है सारणी 10.3 तथा चित्र 10.3 TVC और TC दोनों हीं वृद्धिमान हैं।

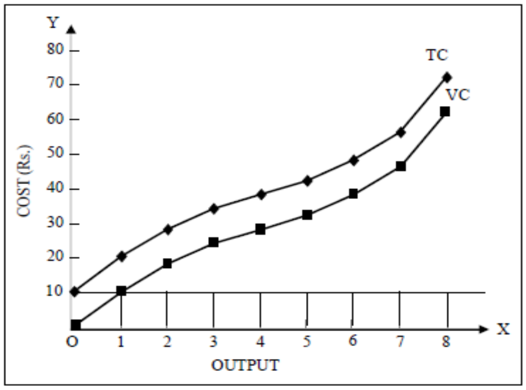

चित्र 10.3: कुल लागत

स्थिर लागतों और परिवर्तनशील लागत में असमानतायें

1. **उत्पादन के मात्रा से संबंधः** स्थिर लागत का उत्पादन की मात्रा से कोई लेना–देना नहीं है, उत्पादन कम या ज्यादा हो सकता है, स्थिर लागत हमेशा स्थिर रहती है। इसके विपरीत, परिवर्तनशील लागत उत्पादन स्तर में परिवर्तन के साथ वे भी प्रत्यक्ष रुप से बदलता है।
2. **शून्य होने परः** यदि उत्पादन शून्य भी है, स्थिर लागत हमेशा समान रहती है। लेकिन, उत्पादन रूका हुआ है ऐसी स्थिति में, परिवर्तनशील लगात गिरते हुये, शून्य की स्थिति को प्राप्त करती है।
3. **औसत स्थिर लगत एवं औसत परिवर्तनशील लागतः** औसत स्थिर लागतें नीचे गिरती हैं उत्पादन की मात्रा में वृद्धि के साथ, परन्तु औसत परिवर्तनशील लागत के गिरने का दर औसत स्थिर लागत से कम होती है। तथापि औसत स्थिर लागत उत्पाद की मात्रा में वृद्धि के साथ नीचे

गिरने लगता है। जबकि, एक बिन्दु बाद में, उत्पादन में बढ़ोतरी के साथ, औसत परिवर्तनशील लागत भी बढ़ना शुरू हो जाता है।

4. **साधनों के निर्धारकः** स्थिर लागतों में इमारतों और परिसर का किराया पूंजी पर ब्याज; स्थायी कर्मचारियों को मजदूरी भूगतान बीमा शुल्क इत्यादि शामिल हैं। परविर्तनशील लागत में कच्चे माल जैसे, कोयला, उर्जा और बिजली शुल्क, आकस्मिक और अस्थायी कर्मचारियों की मजदूरी आदि शामिल है।

10.4 औसत लागत और सीमान्त लागत वक्र

1. **औसत लागतः** उत्पादन का औसत लागत उत्पाद की प्रत्येक इकाई कुल लागत है। कल लागत को उत्पादित किये गये इकाईयों की संख्या से भाग देकर वस्तु की साधारण लागत प्राप्त किया जा सकता है। आप यूं समझिये कि औसत लागत कुल लागत को उत्पादन से भाग देकर प्राप्त किया जा सकता है।

$$AC = \frac{TC}{Q}$$

(यहां, AC औसत लागत; TC कुल लागत के लिए और Q वस्तु की मात्रा के लिये प्रयोग किया गया है।)

उत्पादन की औसत लागत, औसत स्थिर लागत और औसत परिवर्तनशील लागत के साथ जोड़कर भी प्राप्त किया जा सकता है या,

$$AC = AFC + AVC$$

(यहां, AFC औसत स्थिर लागत और AVC औसत परिवर्तनशील लागत के लिए उपयोग किया गया है।)

(क) औसत स्थिर लागत

औसत स्थिर लागत कुल स्थिर लागत को कुल उत्पाद से भाग देकर प्राप्त किया जाता है। औसत स्थिर लागत स्थिर साधन के उत्पादन के प्रति इकाई लागत को औसत स्थिर लागत कहते हैं। साकेतिक रुप में,

$$AFC = \frac{TFC}{TQ}$$

(यहां, TFC कुल स्थिर लागत के लिए TQ_2 और कुल उत्पादन के लिए उपयोग किया गया है।)

उत्पादन का स्तर जैसे हीं बढ़ता है, औसत स्थिर लागत गिरता है, चूंकि कुल स्थिर लागत उत्पादन के भिन्न–भिन्न स्तरों पर हमेशा एक समान रहता है। जैसा कि सारणी 10.4 में दिखाया गया है।

सारणी 10.4

उत्पादन	कुल स्थिर लागत (रुपये में)	औसत स्थिर लागत (रुपये में)
0	10	α
1	10	10.00
2	10	5.00
3	10	3.3

4	10	2.5
5	10	2.0
6	10	1.7
7	10	1.4
8	10	1.2

जैसा कि सारणी में स्पष्ट है कि उत्पादन बढ़ता है, और औसत स्थिर लागत गिरती है, क्योंकि एक निश्चित खर्च पर ज्यादा इकाई उत्पादित किये जा रहे हैं।

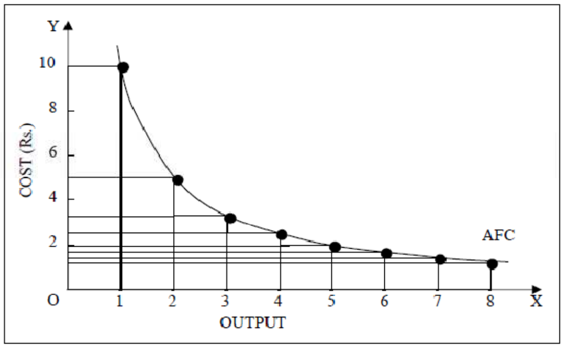

चित्र 10.4: औसत स्थिर लागत

जैसा कि चित्र 10.4 में दिखाया गया है औसत स्थिर लागत की ढ़ाल ऋणात्मक होगी। यह वक्र कभी भी X–अक्ष को स्पर्श नहीं करेगी, क्योंकि औसत स्थिर लागत कभी शून्य नहीं हो सकता है। जबकि, उत्पादन की मात्रा अधिक हो सकती है।

औसत स्थिर लागत वक्र एक आयताकार परबवलय होता है।, इसके अंतर्गत कुल क्षेत्रफल विभिन्न बिन्दुओं पर एक समान होगा। दिये हुये बिन्दु पर कुल क्षेत्रफल, विशेष उत्पादन के लिए कुल स्थिर लागत उत्पादन को दर्शायेगा। चित्र 10.5 में चार अलग–अलग स्तरों के उत्पादन को दर्शाया गया है। उदाहरण के लिए 1, 2, 3, और 4। प्रत्येक रेखा कुल स्थिर लागत छः वर्गों के बराबर है (अर्थात्; 60)।

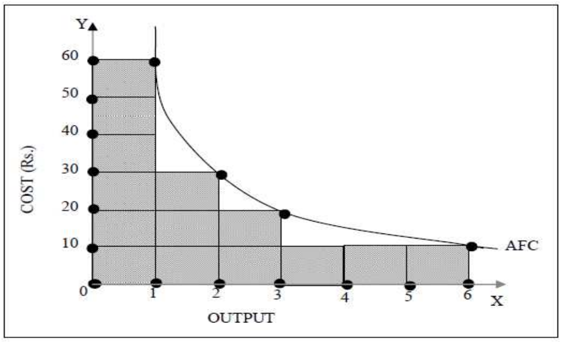

चित्र 10.5: औसत स्थिर लागत

(ख) औसत परिवर्तनशील लागत

औसत परिवर्तनशील लागत कुल परिवर्तनशील लागत को उत्पाद की कुल इकाई से भाग देकर प्राप्त किया जाता है। सांकेतिक रुप में,

$$AVC = \frac{TVC}{TQ}$$

(यहां, TVC कुल परिवर्तनशील लागत और TQ कुल उत्पादित की गई मात्रा को प्रदर्शित करता है।)

कुल परिवर्तनशील लागतें, जैसा कि हम सभी जानते है, परिवर्तनशील अनुपात के नियम के द्वारा निर्धारित की जाती है। इसके फलस्वरूप, औसत लागत भी एक हीं तरह के प्रकृति को दर्शाती है। औसत परिवर्तनशील लागत शुरूआत में गिरती है और सामान्य क्षमता के बिन्दु तक पहुंचने के बाद बढ़ता है। औसत परिवर्तनशील लागत सारणी 10.9 की मदद से समझाया जा सकता है।

सारणी 10.5: कुल लागत विश्लेषण

उत्पादन	कुल परिवर्तनशील लागत (रुपये में)	औसत परिवर्तनशील लागत (रुपये में)
0	0	0
1	10	10.00
2	18	9.00
3	24	8.00
4	28	7.00
5	32	6.4
6	38	6.3
7	46	6.6
8	62	7.8

सारणी 10.5 से यह स्पष्ट है कि शुरूआत में उत्पाद के 6 इकाई तक औसत परिवर्तनशील लागत गिर रहा है, लेकिन यह 7वें इकाई से वृद्धि करना शुरू कर देता है। ऐसा इसलिए होता है, क्योंकि उत्पादन के शुरूआती पड़ाव पर पैमाने के वृद्धिमान नियम लागू होता है, जो कि लागत को घटाता है। लेकिन एक बिन्दु के बाद, पैमाने के ह्रासमान नियम सक्रिय हो जाता है, जिसके परिणाम स्वरुप, औसत परिवर्तनशील लागत वृद्धि करने लगता है।

बिन्दुरेख के रुप में, औसत परिवर्तनशील लागत वक्र एक तश्तरी के आकार या अंग्रेजी के 'U' अक्षर के समान होता है। चित्र 10.6 में, इसका प्रमाण है, 6वें इकाई तक, औसत परिवर्तनशील लागत कम हो रहा है। इसका अर्थ है कि औसत परिवर्तनशील लगात ह्रासमान होता है जब उत्पाद बढ़ रहा होता है। 7वीं इकाई से आगे बढ़ने लगता है, जिसका अर्थ है कि औसत परिवर्तनशील लागत बढ़ रहा है। यह प्रवृति परिवर्तनशील समानुपात के नियम द्वारा निर्धारित किया जाता है।

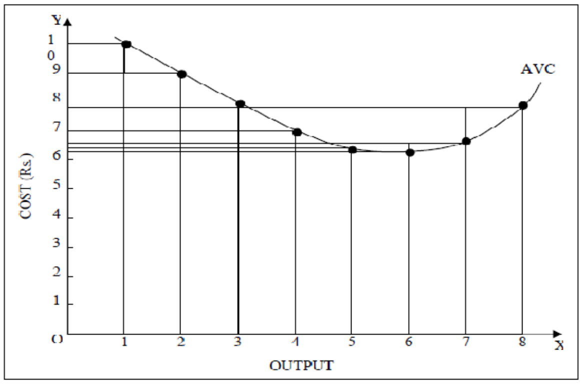

चित्र 10.6: औसत परिवर्तनशील लागत

औसत लागत, औसत स्थिर लागत एवं औसत परिवर्तनशील लागत के बीच में सबंध

औसत लागत (AC) औसत स्थिर लागत और औसत परिवर्तनशील लागत का समग्र रुप है। इस संबंध को सारणी 10.6 में दिया गया है। जैसा कि सारणी से सिद्ध होता है कि औसत लागत 7वें इकाई तक गिरता जा रहा है, क्योंकि AFC और AVC दोनों की गिर रहें हैं। यह 7वें इकाई पर न्यूनतम है। 7वें इकाई के बाद, यह वृद्धि करना शुरू कर देता है क्योंकि AVC भी वृद्धि कर रहा है।

सारणी 10.6: औसत लागत, औसत स्थिर लागत एवं औसत परिवर्तनशील लागत के बीच संबंध

उत्पादन	AFC (रुपये में)	AVC (रुपये में)	AC = AFC + AVC (रुपये में)
0	α	0	∞
1	10	10	20
2	5.0	9	14.0
3	3.3	8	11.3
4	2.5	7	9.5
5	2.0	6.4	8.4
6	1.7	6.3	8
7	1.4	6.6	8
8	1.2	7.8	9

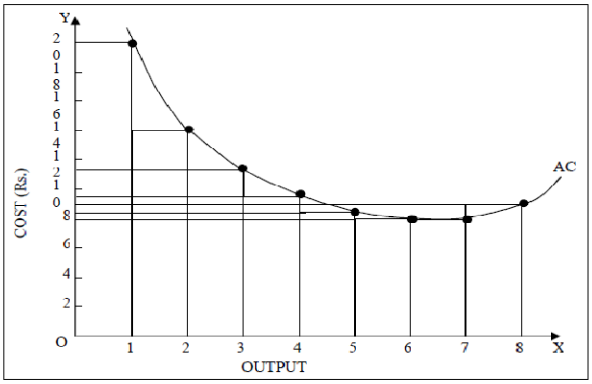

चित्र 10.7: औसत लागत

चित्र 10.7 औसत लागत को दर्शाता है। औसत लागत को दर्शाता है। उत्पाद की इकाईयों को X–अक्ष और लागत Y–अक्ष में दिखायग गया है। लागत AC औसत लागत वक्र है। यह अंग्रजी अक्षर 'U' के आकार का होता है। यह दर्शाता है कि प्रारम्भ में, जब उत्पाद बढ़ता है औसत लागत घटता हैं। एक न्यूनतमक बिन्दु के बाद, यह वृद्धि करता है, इसका कारण है उतपादन जब बढ़ता है प्रारम्भ में, वृद्धिमान पैमाने का और ह्रासमान पैमाने का नियम का प्रयोग किया जाता है। एक बिन्दु के बाद जब उत्पादन बढ़ जाता है, ह्रासमान पैमाने या बढ़ती लागत के नियम लागू होता है। इस तरह, वक्र ऊपर की ओर बढ़ना शुरू कर देता है।

औसत लागत वक्र की ब्याख्या करने में निम्नलिखित टिप्पणियों की आवश्यकता होती है':

(i) ज्यामितीय दृष्टिकोण से, औसत लागत वक्र, औसत स्थिर लागत वक्र और औसत परिवर्तनशील लागत वक्रों के जोड़ने से प्राप्त होता है, जैसा कि चित्र 10.8 में दिखाया गया है। प्रत्येक उत्पादन के स्तर पर, औसत लागत वक्र, औसत परिवर्तनशील लागत वक्र होता है, इसकी उच्चाई औसत स्थिर लागत वक्र से समान दूरी पर होती है।

(ii) औसत लागत वक्र औसत स्थिर लागत वक्र के नजदीक आने पर झुका होता है, परन्तु यह कभी भी बाद में एक–दूसरे को स्पर्श नहीं करते हैं।

(iii) औसत लागत वक्र की न्यूनतम बिन्दु अधिक उत्पादन के लिए OQ_1 पर पहुंचा है, औसत परिवर्तनशील लागत वक्र के न्यूनतम बिन्दु (OQ_2 उत्पादन स्तर पर) की तुलना में।

(iv) दूसरी महत्वपूर्ण टिप्पणी है अल्पकाल में औसत लागत वक्र के बारे में यह 'U' आकार का वक्र है।

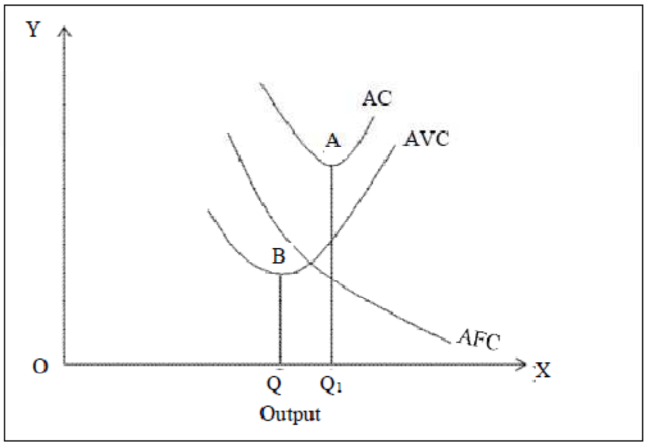

चित्र 10.8: AFC, AVC और AC वक्र के बीच संबन्ध

AC वक्र के 'U' आकार के बारे में ब्याख्या की गई है:

1. **औसत स्थिर लागत व औसत परिवर्तनशील लागत का व्यवहार** : औसत लागत वक्र, औसत स्थिर लागत एवं औसत परिवर्तनशील लागत का योग है। जैसे–जैसे उत्पादन बढ़ती है, औसत स्थिर लागत गिरने लगती है। उत्पादन के प्रारम्भिक दौर में, औसत परिवर्तनशील लागत भी ह्रासमान होती है। इस तरह, इन दो लागतों का समग्र है, अर्थात औसत लागत भी

ह्रास होती है जैसा कि चित्र 10.8 में प्रदर्शित किया गया है कि बिन्दु 'A' तक औसत लागत घट रही है। यह बिन्दु 'A' पर अपने न्यूनतम स्तर पर हैं। इस स्थिति में फर्म अपनी उत्पादन क्षमता का पूर्ण इस्तेमाल कर रहा है। फर्म यदि अपने साधारण क्षमता से अधिक उत्पादन करती है तो अधिकतम उत्पादन करता है, इसमें कोई संदेह नहीं कि फर्म का औसत स्थिर लागत गिरती रहेगी। परन्तु औसत परिवर्तनशील लागत वृद्धि करना शुरू कर देगी। औसत परिवर्तनशील लागत की बढ़ोतरी से औसत लागत भी बढ़ जायेगी। यह इसलिए ऐसा है, क्योंकि बिन्दु 'A' के बाद औसत परिवर्तनशील लागत में वृद्धि दर औसत स्थिर लागत की घटने की दर से बहुत ज्यादा है। इसके परिणामस्वरूप, इसकी संचयी प्रभाव औसत लागत वक्र, औसत स्थिर लागत और औसत परिवर्तनशील लागत का समग्र होता है, जो कि शुरूआत में घटता है, और अपने न्यूनतम बिन्दु पर पहुंचता है और वहां से वह बढ़ना (ऊपर की ओर) शुरू कर देता है।

2. **परिवर्तनशील अनुपात के नियमः** अल्पकाल औसत लागत वक्र के 'U' आकार को परिवर्तनशील अनुपात के नियम के संदर्भ में भी समझाया जा सकता है। यह नियम कहता है कि जब एक चर की मात्रा में परिवर्तन होता है जबकि दूसरे साधनों की मात्रा ज्यों की त्यों रहती है, तो कुल उत्पादन में बढ़ोतरी होती है, लेकिन कुछ समय बाद इसमें गिरावट आने लगती है। दूसरे शब्दों में, स्थिर साधन पर चर साधन की मात्रा (बढ़ती हुयी) लागू की जाती है, तो परिवर्तनशील अनुपात के नियम लागू होते हैं। जब कहते हैं कि चर साधन की संख्या जैसे मजदूर समान मात्रा में बढ़ती है, तो उत्पादन स्थिर अचर संसाधन जैसे मशीन, औंजार इत्यादि, जो कि अपने अधिकतम क्षमता तक इस्तेमाल किये जाते हैं, तक बढ़ती है। इस दौर में फर्म का औसत लगात गिरने लगता है जैसे हीं उत्पादन बढ़ता है, क्योंकि यह विभिन्न आंतरिक अर्थव्यवस्थाओं की वजह से बढ़ती प्रतिफल के अंतर्गत संचालित होती है। जब परिवर्तनशील संसाधना बढ़ती है, फर्म अपने मशीन की अधिकतम क्षमता पर काम रने के लिए सक्षम है। यह उत्पादन का पैदावार करती है और इसकी उत्पादन औसत लागत होगी। यदि फर्म अपने उत्पाद को बढ़ाना चाहता है इस न्यूनतम बिन्दु से आगे परिवर्तनशील साधनों की संख्या में वृद्धि करके यह उत्पादन में अलाभ और ह्रासमान प्रतिफल को दर्शायेगा। अतः परिवर्तनशील अनुपात के नियम के काम कने की वजह से अल्पकाल औसत लागत 'U' आकार का होता है।

3. **सीमान्त लागतः** सीमान्त लागत वस्तु की कुल लागत के साथ एक अतिरिक्त इकाई उत्पादन का योग है। इसका सूत्र निम्नलिखित हैः

   (जहां, MC = सीमान्त लागत; TC_n = कुल लागत, वस्तु की n इकाईयों के; TC_{n-2} = वस्तु के n-2 इकाईयों के कुल लागत; ΔTC = कुल लागत में परिवर्तन; ΔQ = उत्पादित वस्तु में परविर्तन।)

उदाहरणः माना कि वस्तु की 10 + 1 या 11 इकाई का उत्पादन करता है तो कुल लागत उत्पादन का 100 रूपये से ऊपर चला जाता है, अंत 11वें वस्तु की लागत अर्थात् सीमान्त लागत की गणना निम्न हो सकती हैः

MC = 110 – 100 =10 रूपये।

अतः सीमान्त लागत कुल लागत के साथ निबल योग है वस्तु की एक अतिरिक्त इकाई के उत्पादन से। सीमान्त लागत सारणी 10.7 में समझाया गया है।

सारणी 10.7: कुल लागत विश्लेषण

उत्पादन	कुल लागत (रुपये में)	सीमान्त लागत (रुपये में)
1	20	20
2	28	8
3	34	6
4	38	4
5	42	4
6	48	6
7	56	8
8	72	16

इस सारणी से यह स्पष्ट है कि सीमान्त लागत कुल लागत में एक उत्पाद के एक अधिक इकाई के बढ़ने से हुये परिवर्तन को मापकर प्राप्त किया जाता है। परिवर्तनशील लागत की तरह, सीमान्त लागत भी शुरूआत में ह्रास आता है उत्पादन के स्तर में वृद्धि के साथ। अंततः यह भी वृद्धि करने लगता है, जिसे ही उत्पाद में वृद्धि होती है यह चि. 10.9 में, रेखाचित्रित किया गया है, सीमान्त वक्र के द्वारा प्रस्तुत किया गया है। इस रेखाचित्र में, MC सीमान्त लगात को दर्शाता है। यह 'A' आकार का है इसका तात्पर्य है कि शुरूआत में यह घटत है और एक निश्चित बिन्दु के बाद, बढ़ना शुरू कर देता है।

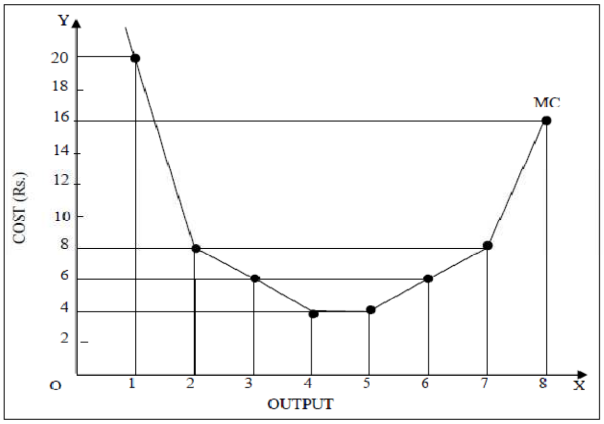

चित्र 10.9: सीमान्त लागत

10.5 औसत लागत और सीमान्त लागत के बीच संबन्ध

औसत लागत और सीमान्त लागत को नीचे दर्शाया जा सकता है:

1. **AC व MC दोनों ही TC के द्वारा निर्धारित की जाती है:** AC और MC दोनों TC के द्वारा गणना किये जाते हैं। औसत लागत, कुल लागत को उत्पाद की मात्रा से भाग देकर प्राप्त किया जाता है। अतः,

$$AC = \frac{TC}{Q}$$

इस तरह, MC भी कुल लागत (TC) से प्राप्त किये जाते हैं कुल लागत से वस्तु की एक अतिरिक्त इकाई की लागत का योग सीमान्त लागत कहलाता है।

$$MC = TC_n - TC_{n-1}$$

2. **जब AC गिरता है, तब MC भी गिरता हैः** जब औसत लागत गिरता है, तब सीमान्त लागत भी गिरता है, परन्तु सीमान्त लागत की गिरने की दर AC के गिरने की दर से ज्यादा होता है। दूसरे शब्दों में, जब AC गिर रहा होता है, MC वक्र इसके नीचे होता है।
3. **जब AC बढ़ता है, MC भी बढ़ता हैः** जब AC बढ़ता है, MC भी वृद्धि करता है। लेकिन सीमान्त लागत में वृद्धि दर औसत लागत में वृद्धि दर से ज्यादा होता है। जैसा कि चित्र 10.9 में दर्शाया गया है। जब औसत लागत वक्र वृद्धि कर रहा होता है, सीमान्त लागत वक्र इसके ऊपर होता है।
4. **सीमान्त लागत वक्र, औसत लागत वक्र की तुलना में ज्यादा नीचे से बढ़ना शुरू करता हैः** सारणी 10.7 में सीमान्त लागत 6वें इकाई के उत्पादन के साथ हीं बढना शुरू कर देता है, जैसा कि सारणी 10.7 से स्पष्ट है। औसत लागत केवल 7 इकाई के बाद से हीं बढ़ रहा है। यह भी चित्र 10.10 से स्पष्ट है कि सीमान्त लागत वक्र उत्पादन के OQ, स्तर से हीं बढ़ने लगता है; जबकि औसत लागत उत्पाद के OQ स्तर से बढ़ता है।
5. **सीमान्त लागत, औसत लागत को इसके न्यूनतम बिन्दु पर काटता हैः** अधिकतम उत्पादन स्तर पर, औसत लागत अपने न्यूनतम स्तर पर होता है और स्थिर होता है। इस बिन्दु पर, सीमान्त लागत, औसत लागत के बराबर होता है। सीमान्त लागत वक्र औसत लागत वक्र को इसके न्यूनतम बिन्दु पर काटता है। चित्र 10.10 में R वह बिन्दु है।

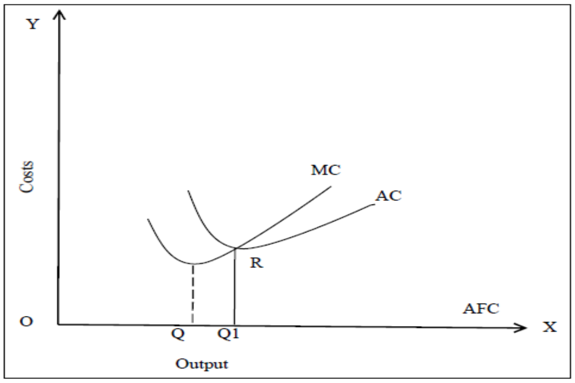

चित्र 10.10ः औसत लागत एवं सीमान्त लागत के बीच संबंध

6. **औसत लागत और सीमान्त लागत के बीच आपसी आकर्षणः** सीमान्त लगात व औसत लागत के बीच संबंध को चित्र 10.11 की मदद से आसानी से समझा जा सकता है, जो कि दर्शाता है, यदि M (सीमान्त लागत), A (औसत लागत) से अधिक है, यह M, A को ऊपर की ओर

खींचेगी, यदि M, A से कम हो, तो यह A को नीचे की ओर धक्का देगी और जब M = A, तो A स्थिर होता है।

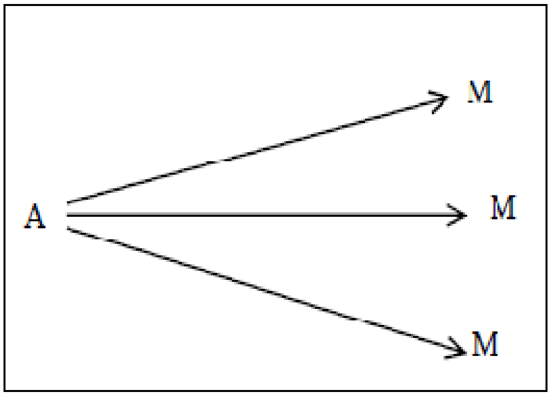

थ्चत्र 10.11: औसत लागत एवं सीमान्त लागत के बीच सम्बन्ध

इस संबंध के सत्य को एक साधारण से उदाहरण के मदद से समझा जा सकता है। एक क्रिकेटर की औसत बल्लेबाजी पर बिचार करें, यदि उसके अलगे पारी के स्कोर (अर्थात् उसकी सीमान्त स्कोर) उसके पहले के औसत स्कोर से कम है, तब पहले की तुलना में सम्पूर्ण औसत ह्रास करेगा इसका तात्पर्य है कि सीमान्त स्कोर औसत स्कार को नीचे की ओर खींचेगा। यदि उसका स्कोर पूराने औसत से ज्यादा है तो, ऐसे में उसका समस्त औसत स्कोर को वृद्धि करेगा। इसका तात्पर्य है, सीमान्त स्कोर औसत स्कोर को ऊपर की ओर खींचेगा।

विभिन्न अल्पकालिक लागत वक्रों के बीच अंतःसम्बन्ध

आप अल्पकालिक लागतों जैसे औसत स्थिर लागत, औसत परिवर्तनशील लागत और सीमान्त लागत को एक साथ एक आरेख की मदद से इनके बीच के सम्बन्ध समझ सकते हैं, जैसा कि चित्र 10.12 में दिखाया गया है। इस चित्र में (1) AFC, औसत स्थिर लागत वक्र है। इसकी ढ़ाल नीचे की ओर लागातार गिरता है इसका आशय है कि उत्पादन बढ़ता है, औसत स्थिर लागत गिर रहा है। शुरूआत में यह तेजी से गिरता है लेकिन बाद में इसकी दर धीमी हो जाती है। (2) AVC, औसत परिवर्तनशील लागत वक्र को दर्शाता है। यह बिन्दु 'A' तक गिरती है जो कि इसकी न्यूनतम बिन्दु है। इस बिन्दु के बाद यह ऊपर की ओर बढ़ता है। 'U' यह आकार (तश्तरी के आकार) का है। (3) SAC, अल्पकालिक औसत लागत है, यह भी 'U' आकार का होता है। न्यूनतम बिन्दु 'A', AVC वक्र का अल्पकालिक औसत लागत वक्र के न्यूनतम बिन्दु 'B' से पहले होता है।

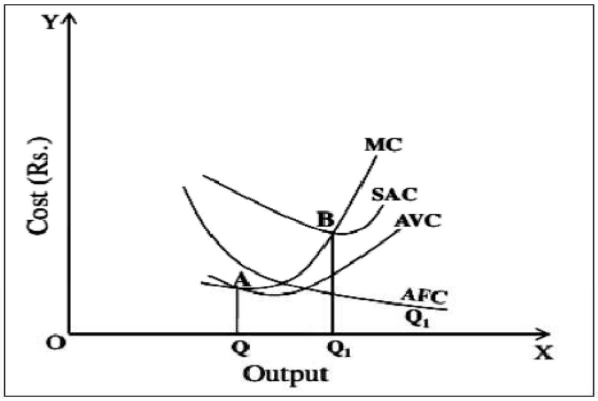

चित्र 10.12: अल्पकालिक लागतों के बीच सम्बन्ध

यह नोट किया जा सकता है कि अल्पकालिक औसत लागत और औसत परिवर्तनशील लागत, अधिक से अधिक आगम के उत्पादन करने में संकीर्ण होता जाता है। यह दूरी तथ्य के रुप में, औसत स्थिर लागत के बराबर होता है। जैसे ही औसत स्थिर लागत गिरता है, अल्पकालिक औसत लागत एवं औसत परिवर्तनशील लागत के बीच की दूरी कम होती जाती है। (4) सीमान्त लागत वक्र भी 'U' आकार का होता है। यह औसत परिवर्तनशील लागत वक्र और अल्पकालिक औसत लागत वक्र को न्यूनतम बिन्दु क्रमशः A और B पर काटते हैं।

10.6 दीर्घकालि लागत वक्र

प्रत्येक फर्म अल्पकालिन उत्पादन के अन्तर्गत काम करती है लेकिन यह दीर्घकालिन योजना कार्यान्वित करती है। एक फर्म की उत्पादन योजना के बारे में जानने की स्थिति में दीर्घ–कालिन लागत का अध्ययन करना जरूरी है।

दीर्घकाल में, उत्पादन के सभी साधन परिवर्तनशील होते हैं, अतः स्थिर और परिवर्तनशील लागतों के बीच कोई भेदभाव नहीं होता है। स्थिर लागत जैसे कोई चीज नहीं होती है। मकानें, मशीनें, कर्मचारी, पूंजी और संस्थायें सभी परिवर्तनीय हैं। इन परिवर्तनों को लाने के लिए, दीर्घकाल में प्रर्याप्त समय होता है। इसलिए, दीर्घकाल में, एक फर्म को गणना पर ध्यान देना चाहिए।

1. दीर्घ–कालीन औसत लागत (LAC)।
2. दीर्घ–कालीन सीमान्त लागत (LMC)

दीर्घ–कालीन लागत वक्र एक योजनाबद्ध वक्र है, इसका अर्थ है कि यह साहसी के उसके उत्पाद को आगे बढ़ाने की योजना बनाने के सम्बन्ध में निर्णय लेने में एक मार्गदर्शक का काम करता है।

1. दीर्घकालिक औसत लागत वक्र या लिफाफा वक्र

दीर्घकालिक औसत लागत वक्र का आशय है न्यूनतम संभावित प्रति इकाई लागत, जो कि दीर्घकाल में, उत्पाद के विभिन्न मात्रा के उत्पादन में लगती है। दीर्घ–काल में, प्रत्येक फर्म अलग–अलग आकार के उद्योगों का इस्तेमाल कर सकती है। उत्पाद की दी हुई मात्रा में उत्पाद की विशेष आकार के संयंत्र से इसे उपर्युक्त किया जा सकता है। यदि एक ऐसा संयंत्र जो ऑपरेशन के लिए या काम में लाने के लिए रखा गया है, वस्तुयें न्यूनतम औसत लागत पर उत्पादित किया जायेगा। एक बुद्धिजीवी उपभोक्ता, दीर्घकाल में, उत्पादन ऐसे संयंत्र से

करेगी जिससे उसकी औसत लागत घट कर न्यूनतम हो सकती है। उत्पाद के मांग में परितर्वतन के साथ, वह संयंत्र के आकार में बदलाव लायेगा। प्रत्येक संयंत्र का उसका अपना अल्पकालिक औसत लागत वक्र (SAC) है, जिसकी सहायता से हम दीर्घकालिन औसत लागत वक्र निर्धारित कर सकते हैं।

माना कि एक फर्म तीन तरह के संयंत्र का इस्तेमाल कर सकती है; (1) लघु संयंत्र, (2) मध्यम आकार का संयंत्र एवं (3) विशाल आकार का संयंत्र। छोटा संयंत्र, जिस लागत पर काम करता है उसे SAC_1 वक्र से दिखाया गया है। मध्यम आकार के संयंत्र की लागत को SAC_2 से दर्शाया गया है, और सबसे बड़े संयंत्र की लागत को SAC_3 से दर्शाया गया है।

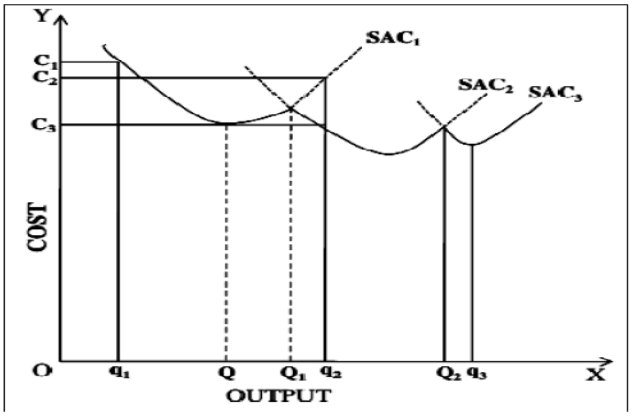

चित्र 10.13: LAC का व्यूत्पन्न

चित्र 10.13 में, यदि फर्म OQ_2 आगम का उत्पादन करना चाहती है, तो यह मध्यम आकार के संयंत्र को चुनाव करेगी और यदि OQ_3 उत्पादन करने की योजना बनाता है तो उसे बड़े संयंत्र शुरूआत करती है और इसकी धीरे–धीरे बढ़ती है, तो व कम दाम पर OQ_2 स्तर तक उत्पादन करती है। इस बिन्दु के आगे लागत बढ़ना शुरू कर देगी। यदि मांग OQ_1 स्तर तक पहुंच जाती है, तो फर्म या जो छोटे संयंत्र के साथ हीं उत्पादन जारी रखेगा और या तो यह मध्यम आकार के संयंत्र की व्यवस्था करेगा। इस बिन्दु पर यह निर्णय केवल लागत पर निर्भर नहीं करता है, बल्कि यह भावी मांग के उम्मीद पर निर्भर करता है। यदि फर्म आशा करती है कि भविष्य में मांग का भविष्य में OQ_1 विस्तार होगाा, ऐसे में वह मध्यम आकार के संयंत्र को मुहैया करेगा। क्योंकि इस संयंत्र से फर्म OQ_1 से ज्यादा उत्पादन करेगी। ताकि OQ_1 मात्रा का उत्पादन कम लागत पर कर सके। फर्म के निर्णय के लिए समान विचार धारण करना जब उसे मध्यम आकार के संयंत्र से बड़े संयंत्र तक स्थानातरित करना पड़ता है। दूसरी तरफ, यदि फर्म आशा करती है कि मांग OQ_1 पर स्थिर रहेगा, तब ऐसे फर्म मध्यम आकार के संयंत्र को मुहैया नहीं करेगी, दिया है कि इसमें एक बड़ा निवेश शामिल है जो तभी लाभदायक है जब मांग OQ_1 से आगे बढ़ती है। उदाहरण के लिए, OQ_2 उत्पाद का स्तर उत्पादित की जाती है, OC_3 के लागत पर मध्यम आकार के संयंत्र से, जबकि इसकी लागत C_2 है, यदि छोटे संयंत्र से उत्पादित किया जाता है, $(C_2 > C_3)$।

अब, यदि हमने माना कि एक बड़ी संख्या में संयंत्र उपलब्ध है, प्रत्येक संयत्र अलग–अलग आकार के लिए उचित है, तब ऐसे में वक्र प्रत्येक संयंत्र के न्यूनतम लागत को दर्शाता है, फर्म की दीर्घकालिक औसत लागत वक्र कहलायेगा। इस वक्र पर प्रत्येक बिन्दु, उत्पादन के इसी स्तर के उत्पादन के न्यूनतम लागत को दर्शाता है। LAC वक्र, इसी उत्पाद के कम से कम लागत को इंगित करने वाले बिन्दुओं का स्थान है। यह एक 'नियोजन वक्र' है। क्योंकि इसकी वक्र के आधार पर फर्म निर्णय लेता है कि न्यूनतम लागत पर उत्पाद के उत्पादन के लिए कौन से संयंत्र की स्थापना की जा सकती है, परम्परागत LAC वक्र 'U' आकार का होता है।, अक्सर 'R' को लिफाफा वक्र कहा जाता है, क्योंकि यह SAC वक्रों को लिफाफे की तरह ढ़कता है जैसा कि चित्र 10.14 में दिखाया गया है।

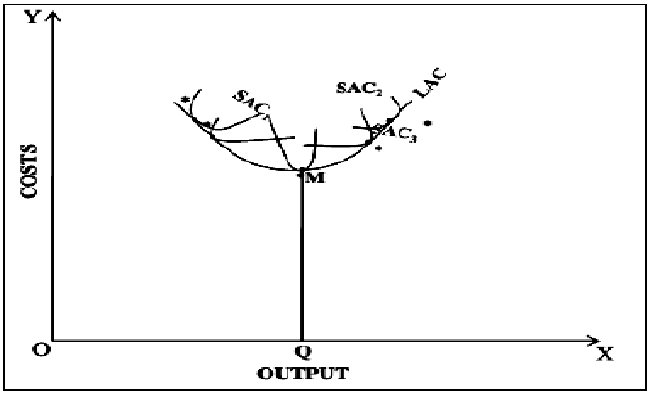

चित्र 10.14: दीर्घ काल औसत लागत वक्र

एक अंर्तनिहित धारणा है कि U–आकार के दीर्घकालिक लागत वक्र की प्रत्येक संयंत्र को उत्पादन का बेहतर रुप तैयार करने के लिए डिजाईन किया गया है। इससे कोई प्रस्थान लागत को बढ़ाता है। संयंत्र पूरी तरह से अनम्य है। कोई आरक्षित क्षमता नहीं है। इस धारणा के परिणाम स्वरूप LAC वक्र, SAC वक्र को (Envelops) है। LAC के न्यूनतम बिन्दु M, के बायीं ओर SAC वक्रों की बिन्दुयें होती हैं, जिसके गिरते हुये भाग पर स्पर्श रेखा की बिन्दु होती है। उत्पादों के लिए स्पर्श बिन्दु OQ से बड़ा होता है SAC वक्रों के बढ़ते हुये मांग पर होता है। इसलिए, LAC के गिरते हुये भाग पर संयंत्र अपने पूर्ण क्षमता से काम नहीं करती है। जबकि, LAC बढ़ते हुये हिस्सों को संयंत्रों से अधिक काम किया जाता है, केवल न्यूनतम बिन्दु M हीं पूर्ण रोजगारित संयंत्र है।

दीर्घकालिक औसत लागत वक्र जो कि U–आकार का होता है, उसे अर्थव्यवस्थाओं और असमान अर्थव्यवस्थाओं के पैमाने के द्वारा समझा जा सकता है। शुरूआत में, जब फर्म उत्पादन के पैमाने को बढ़ाता है तो यह पैमाने के अर्थव्यवस्थाओं को प्राप्त करता है। हालांकि, अल्पकाल में एक बिन्दु से परे, उत्पादन के पैमाने में आगे विस्तार असमान अर्थव्यवस्थाओं के पैमाने का परिणाम है और दीर्घ–कालीन औसत लागत बढ़ना शुरु कर देता है।

दीर्घ काल में औसत लागत वक का आकार

दीर्घ–काल में औसत लागत वक्र U–आकार का होता है, यह दिखाने के लिए कि यह पहले घटता है और बाद में बढ़ता है। जहां यह न्यूनतम होता है,

उत्पादन का अधिकतम बिन्दु होता है। यह कई अर्थशास्त्रियों द्वारा तर्क किया गया है कि यह लंबी अवधि का औसत लागत वक्र सामान्य आकार का है। कई, अर्थशास्त्रियों ने इसे स्वीकार किया है, लेकिन कुछ ने लम्बे समय तक चलने वाली औसत लागत वक्री की घटती हुई, उपर की ओर ढ़ाल और क्षैतिज ढ़ाल के लिए बढ़ती प्रतिफल से जूड़े अनुभवों को विस्तार करने में सक्षम है तो ऐसे में औसत लागत वक्र की ढ़ाल केवल ह्रासमान होती है। दूसरी तरफ, फर्म अपने उत्पादन के पैमाने का विस्तार करती है और असका प्रतिफल स्थिर है और लागत भी स्थिर है, तो दीर्घ कालिक औसत लागत वक्र होगा। यहां, जो कि आकार में क्षेतिज होता है। अंततः यदि फर्म के विस्तार में घटती या बढ़ती लागत के साथ है, तो फर्म क पास उपर बढ़ती हुई दीर्घकालीन औसत लागत वक्र होगा।

लम्बी अवधि के औसत लागत और कम अवधि के औसत लगत के बीच संबंध

लम्बी अवधि के औसत लागत और कम अवधि के औसत लागत वक्रों के बीच के अन्तर को चित्र 10.15 में दिखाया गया है, जहां SAC वक्र एकल संयंत्र, की लागतों का प्रतिनिधित्व करता है, जबकि LAC वक्र विभिन्न संयंत्रों के औसत लागत का प्रतिनिधित्व करता है। LAC वक्र जैसे SAC, 'U' आकार का होता है, परन्तु यह अपेक्षाकृत चपटा होता है। LAC वक्र का U आकार SAC वक्र के U आकार का होता है। इसका अर्थ है कि लम्बी अवधि में लागत में कमी या कमी की दर कम अवधि की तुलना में कम होती है। मुख्यकारण यह है कि LAC वक्र उत्पादन की विभिन्न मात्राओं की न्यूनतम औसत लागत का प्रतिनिधित्व करता है। इसलिए इसमें अस्थिरता की बहुत कम संभावना है। इसके विपरीत, SAC वक्र उत्पादन के अलग–अलग मात्रा का प्रतिनिधित्व करता है। SAC वक्र एक फर्म की औसत स्थिर लागत और औसत परिवर्तनशील लागत का कुल योग है। जैसें हीं फर्म की उत्पाद/आगम बढ़ती है, एक बिन्दु तक, AFC और AVC दोनों हीं तेजी से गिरते है। न्यूनतम बिन्दु पर पहुंचने पर, AFC बहुत धीमी गति से बढ़ता है जबकि AVC बहुत तेजी से बढ़ता है। इसलिए, SAC वक्र, LAC वक्र से अधिक नहीं हो सकता है। यह ऐसा इसलिए है क्योंकि LAC वक्र, SAC वक्र की स्पर्श रेखा है। परन्तु, LAC वक्र, SAC वक्र को कभी भी नहीं काटता है।

हालांकि, यह ध्यान देने वाली बात है, कि एक SAC वक्र को छोड़कर, बाकि सभी SAC वक्रों के उनके न्यूनतम बिन्दु पर स्पर्श करेगा जो LAC वक्र के न्यूनतम बिन्दु पर मिलता है। यह बिन्दु उत्पाद के इष्टतम या अधिकतम स्तर का प्रतिनिधित्व करेगा।

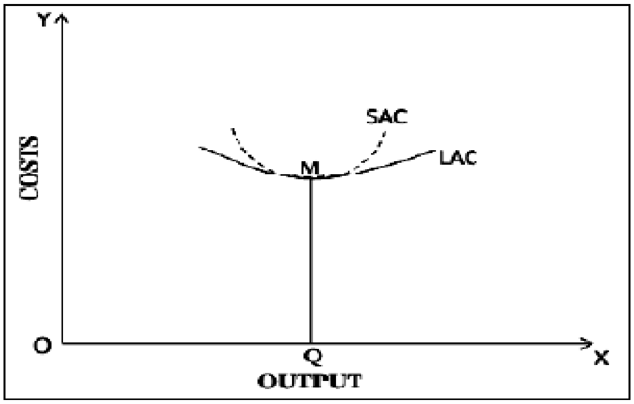

चित्र 10.15: अल्प–काल और दीर्घ कालके लागत वक्रों के बीच सम्बन्ध

2. दीर्घकालिक सीमान्त लागत वक्र

लम्बी अवधि में, कुल लागत में परिवर्तन, एक अतिरिक्त इकाई के उत्पादन के कारण दीर्घकालिक सीमान्त लागत कहलाता है या एक और इकाई के उत्पादन के कारण, लंबी अवधि में, कुल लागत में परिवर्तन को दीर्घ कालिक सीमान्त लागत कहा जाता है। LMC, LAC के साथ समान संबंधों पर ध्यान देते हैं ताकि कोई भी दी हुई अल्पकालिक सीमान्त लागत, पर भी समान संबंध रखे। LMC वक्र, LAC वक्र को उसके न्यूनतम बिन्दु पर काटता है जैसा कि न्यूनतम बिन्दु को चित्र 10.16 में दिखाया गया है। LMC, LAC को उसके न्यूनतम बिन्दु R पर काटता है। LMC वक्र, SMC वक्र से चपटा होता है। इस तथ्य का कारण है कि LAC वक्र, SAC वक्र से कम स्पष्ट होता है।

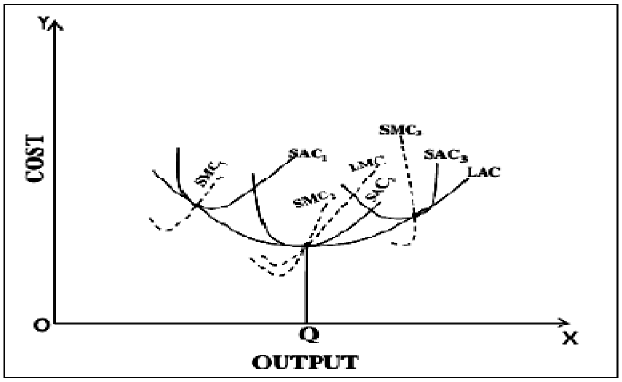

चित्र 10.16: दीर्घ–काल सीमान्त लागत वक्र

10.7 लागत वक्रों के आधुनिक उपागम

हम अब लागत सिद्धान्तों में कुल नवीन विकास के बारे में चर्चा करेगें। लागत के नवीन सिद्धान्त या आधूनिक सिद्धान्त जैसे स्टीग्लर, एंड्रयूज, सार्जेंट, फलोरेंस आर फ्रिडमैन जैस अर्थशास्त्रियों के द्वारा दिया गया है। लागत के पारम्परिक सिद्धान्तों के अनुसार, लागत U–आकार की होती है; परन्तु अर्थशास्त्रियों के अनुसार, वास्तविक जीवन में लागत वक्र L–आकार का होता है। ये अनुभव –जन्य वक्र भी कहलाता है। पारम्परिक लागत सिद्धान्तों की तरह, आधुनिक लागत सिद्धान्त भी दो समय अवधि के आधार पर अध्ययन किया जा सकता है।

1. अल्प अवधि की लागत वक्रें;

2. दीर्घ अवधि की लागत वक्रें, और चार प्रकार से अल्प अवधि की लागत वक्रें दिखाई जा सकती है।

(a) औसत स्थिर लागत,

(b) औसत परिवर्तनशील लागत,

(c) औसत लागत और

(d) सीमान्त लागत।

1. औसत स्थिर लागत

यह अप्रत्यक्ष कारकों की लागत है, इसका अर्थ है, फर्म की भौतिक और व्यक्तिगत संस्थओं की लागत है। स्थिर लागत अपन खाते में जिन लागतों को शामिल करता है वे है:

1. प्रशासनिक अधिकारियों के या कर्मचारियों के वेतन और अन्य खर्चें;
2. कर्मचारियों का वेतन सीधे उत्पादन में शामिल हैं लेकिन एक निश्चित अवधि के आधार पर भुगतान किया जाता है;
3. मशीनरी का मूल्यह्रास;
4. कारखानों–इमारतों के रखरखाव के खर्चें;
5. भूमि के रखरखाव से जुड़े खर्चे जिस पर संयंत्र स्थापित और संचालित किया जाता है।

इन परिस्थितियों में औसत स्थिर लागत चित्र 10.17 में दिखाया गया है। फर्म की सबसे अधिक क्षमता वाली मशीनों की कुछ इकाईयां अल्प काल में उत्पाद के विस्तार की सीमा निर्धारित करती है। यह चित्र में या आरेख में सीमा रेखा M द्वारा दर्शाया गया है। फर्म में कुछ छोटे आकार के मशीनरी भी हैं, जो उत्पादन विस्तर की सीमा तय करती है। यह सीमा रेखा N.N, द्वारा दिखाया जा सकता है, हालाकि यह एक पूर्ण सीमा नहीं है क्योंकि फर्म अपकालिन उत्पाद को M तक बढ़ा–सकती है इसके लिए वह मजदूरों से अधिक घंटे काम करने के लिए अधिक मजदूरी अदा करता है। इस स्थिति में, औसत स्थिर लागत को बिंदीदार रेखा ‘ab’ से दिखाया गया है। फर्म कुछ अतिरिक्त छोटे मशीनरी खरीदकर भी उत्पाद का विस्तार कर सकती है। इस मामलें में, औसत स्थिर लागत उपर की ओर बढ़ता है और फिर से गिरना शुरू हो जाता है, जैसा कि बिन्दीदार रेखा ‘cd’ द्वारा दिखाया गया है।

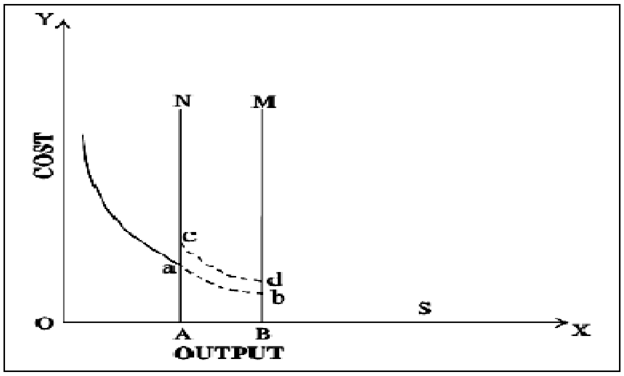

चित्र 10.17: औसत स्थिर लागत

2. औसत परिवर्तनीय लागत

जैसा कि पारंपरिक सिद्वान्त में, इसलिए आधुनिक अर्थशास्त्र में, औसत परिवर्तनीय लागत रोजगार प्राप्त मजदरों के वेतन, कच्चे– संसाधनों की कीमत, और मशीनरी के चलाने के खर्चों को शामिल करता है। अल्पकालिन औसत परिवर्तनशील लागत वक्र आधुनिक व्यष्टि अर्थशास्त्र के सिद्धान्त में तश्तरी के आकार का है, आशय यह है कि मोटे तौर पर यह U–आकार का हीं है लेकिन उत्पाद की सीमा से अधिक चपटा खिंचवा है इसकी। इसका चपटा खिंचाव खंड संयंत्र की अर्न्तनिहित आरक्षित क्षमता को दर्शाता है। व्यवसायी विभिन्न कारणों से कुछ आरक्षित क्षमता अपने पास रखना चाहता है।

1. मांग में मौसमी और चक्रीय उतार–चढ़ाव को पुरा करने के लिए।
2. यह व्यवसायी को बड़ी मात्रा में रियायत होता है टूटे–फूटे मशीनरी के मरम्मत में ताकि उत्पादन प्रक्रिया को निर्वाध प्रवाह को कोई परेशानी न हो।
3. यह साहसी को उत्पादन बढ़ाने के लिए अधिक से अधिक आजादी प्रदान करता है, यदि मांग बढ़ जाता है।
4. प्रौद्योगिकी संयंत्र में कुछ आरक्षित क्षमता को बनाने के लिए आवश्यक बनाता है।

इस चपटे खण्ड पर SAVC, MC के बराबर होता है, दोनो प्रति इकाई उत्पादन पर स्थिर है। चपटे के बायीं ओर MC है जो कि SAVC के नीच स्थित है, जबकि फलैट खण्ड के दायीं ओर SAVC वक्र के उपर सीमान्त लागत बढ़ती है। SAVC वक्र का गिरता हुआ हिस्सा लागत में कमी को दर्शाता है जिसका कारण है जैसे मशीनरी का बेहतर उपयोग, श्रम की गुणवता और दक्षता में सुधार। श्रम की गुणवता में सुधार कच्चे सामग्रियों की अपव्यय को कम करने और संपूर्ण संयंत्र का बेहतर तरीके से उपयोग करने में मदद करता है। दूसरी तरफ, SAVC वक्र का बढ़ता हुआ हिस्सा श्रम की गुणवता में गिरावट को दर्शाता है जिसका कारण है लम्बें समय तक काम करवाना, लागत में वृद्धि अधिक काम के मजदूरी के भुगतान करन कारण, बराबर मशीनों को टूटने की वजह से कच्चे माल की बर्बादी। इसे चित्र 10.18 में दिखाया गया है।

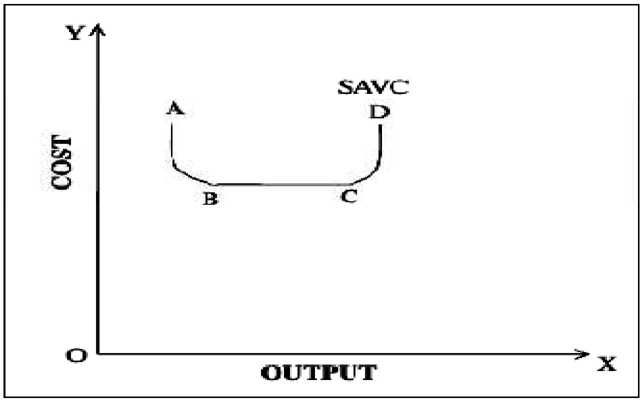

चित्र 10.18: अल्प कालीन औसत परिवर्तनशील लागत

अतिरिक्त क्षमता का पारंपरिक अवधारणा

पारम्परिक सिद्धान्तों का मानना है कि प्रत्येक संयंत्र बिना किसी भी लचीलेपन के डिजाईन तैयार किया गया है। इसे उत्पाद के एकल इष्टतम स्तर को उत्पादन करने के लिए तैयार किया गया है। उत्पाद का इष्टतम स्तर आदर्श उत्पाद कहलाता है। आदर्श उत्पाद और वास्तविक उत्पाद के बीच के अंतर को अतिरिक्त क्षमता के रुप में जाना जाता है। अतिरिक्त क्षमता का अस्तित्व व्यर्थ है, क्योंकि यह उच्च इकाई लागतों को प्रतिनिधित्व करता है। इसे चित्र 10.19 मं दिखाया गया है।

लागत के आधूनिक सिद्धान्त में, उत्पाद QQ_1 की सीमा, नियोजित भंडार क्षमता को दर्शाती है जो लागतों में वृद्धि नहीं करता है, इसे चित्र 10.20 में देखें।

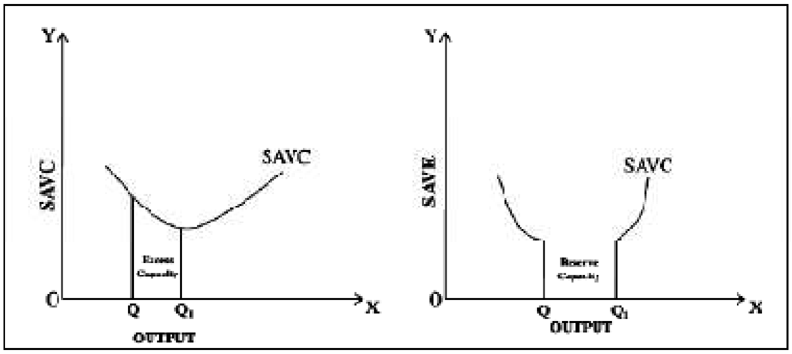

चित्र 10.19: अतिरिक्त क्षमता (पारम्परिक) *चित्र 10.20: अतिरिक्त क्षमता* (आधुनिक उपागम)

समान्यतः फर्म यह मानता है कि उसके प्लांट की सामान्य स्तर उपभोग की क्षमत उसके कुल क्षमता के दो तिहाई या तीन चौथाई के आसपास है। अर्थात् Q_1 और Q के बीच।

3. लघु–काल में औसत लागत वक्र

औसत लागत का निर्धारण आसत स्थिर लागत और औसत परिवर्तनशील लागत के योग से होता है। आधुनिक अर्थशास्त्रियों के अनुसार लघु काल में औसत लात वक्र दिये हुये उत्पाद पर सतत् गिरता हुआ होता है। यह दिया हुआ उत्पाद, आरक्षित क्षमता उत्पाद को प्रदर्शित करता है। उसके बाद, औसत लगात वक्र उपर की ओर उठता हुआ होता है, अर्थात औसत लागत तेजी से बढ़ेगा यदि उत्पाद आरक्षित क्षमता से अधिक हो। इसे चित्र 10.21 की सहायता से दिखाया गया है।

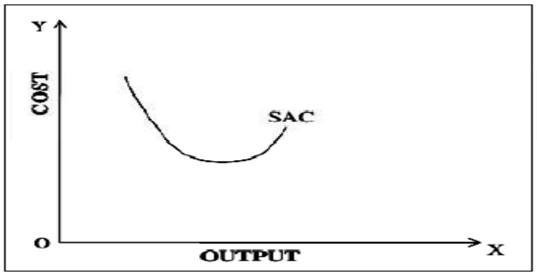

चित्र 10.21: अल्प–काल औसत लागत वक्र

4. अल्प–कालिन सीमान्त लागत

शुरूआत में अल्पकालिक सीमान्त लागत आधुनिक अर्थशास्त्रियों के अनुसार गिरता है और सीमान्त लागत, औसत परिवर्तनशील लागत के नीचे होता है। A से B बिन्दु तक यह क्षैतिज हो जाता है। जबकि A से B तक सीमान्त लागत औसत परिवर्तनशील लागत के बराबर होता है। इस स्थिति में उत्पादन आरक्षित क्षमता के अन्तर्गत होता है। B बिन्दु के बाद सीमान्त लागत, औसत परिवर्तनशील लागत के उपर दिखाया गया है। जैसा कि चित्र 10.22 में दिखाया गया है।

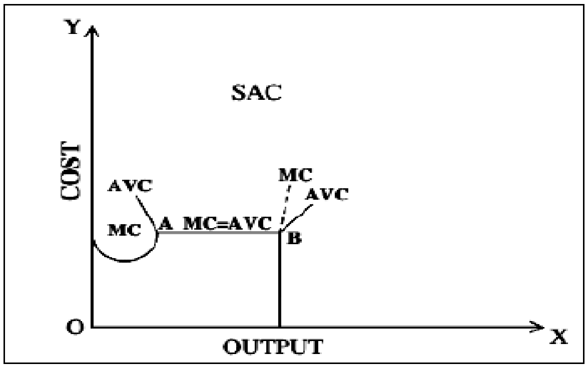

चित्र 10.22: अल्प–काल सीमान्त लागत वक्र

दीर्घ–काल लागत वक्र का आधूनिक सिद्धान्त

दीर्घ–काल में सभी लागत परिवर्तनशील लागत होती है। कोई स्थिर लागत नहीं होती। लागत वक्र के आधूनिक सिद्धान्त के अनुसार दीर्घकालीन औसत लागत वक्र और दीर्घ–कालीन सीमान्त लागत वक्र L–आकार का होता है, नाकि U–आकार का जैसा पारम्परिक सिद्धान्त कहता है।

1. दीर्घ काल औसत लागत वक्र

आधूनिक सिद्धान्त के अनुसार, दीर्घ–काल में लागत दो प्रकार के होते है।

(i) उत्पादन लागत और

(ii) सीमान्त लागत।

उत्पादन मं वृद्धि के साथ उत्पादन लागत सत्त् कम होता जाता है। इसके विपरीत, ज्योंहीं उत्पादन का पैमाना बढ़ता है, प्रबन्धकीय लागत भी बढ़ती है। क्योंकि उत्पादन लागत में कमी, प्रबन्धकीय लागत में वृद्धि से अधिक होती है, दीर्घ–काल औसत लागत और उत्पाद में वृद्धि के साथ कम होता है। दीर्घ–काल में प्रत्येक फर्म विभिन्न आकार के फर्म आर यंत्र का प्रयोग करत हैं। एक दिये गय उत्पाद की मात्रा के लिए एक विशेष प्रकार के प्लांट की आवश्यकता होती है। सभी प्लांट के अपने लघु–काल औसत लागत होती हैं। इसकी सहायता से दीर्घ–काल औसत लागत का आंकलन किया जाता है। मान लिया जाय कि एक फर्म चार प्रकार के प्लांट का प्रयोग विभिन्न परिणामों में करता है। उसका लघु–काल औसत लागत वक्र SAC_1, SAC_2, SAC_3 और SAC_4 है। लागत वक्रों के आधूनिक सिद्धान्त के अनुसार दीर्घ–कालिन उत्पादन सम्बन्धी आंकड़े यह बताते हैं कि फर्म अपने प्लांक के 2/3 भाग उत्पादन क्षमता का हीं प्रयोग करता है। यह अपने प्लांट के पूर्ण क्षमता का प्रयोग नहीं करता है। अतः लघु–काल आसत लागत के आधार पर दीर्घ–काल और लागत 2/3 भाग प्लांट क्षमता के बराबर आंकलित की जा सकती है। चित्र 10.23 मं दीर्घ – काल औसत लागत

वक्र को दिखाया गया है। यह विभिन्न लघु–काल के औसत लागत वक्र के 2/3 भाग के उत्पादन क्षमता को प्रदर्शित करते हुये बिन्दुओं को जोड़ कर दिखाया गया है।

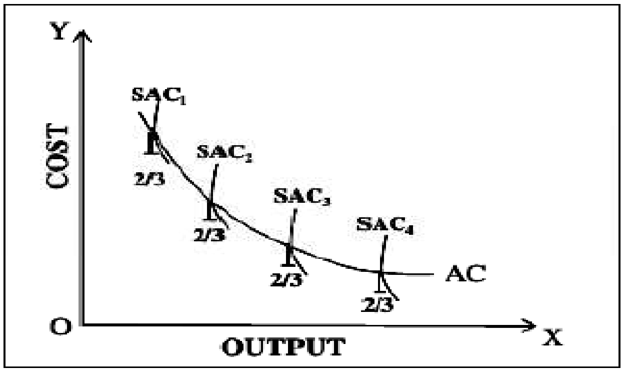

चित्र 10.23: दीर्घ–काल औसत लागत

LAC वक्र L–आकार का क्यों होता है?

LAC वक्र L–आकार के होने का दो प्रमुख कारण है।

1. **तकनीकि प्रगति**
2. **कर के सीखना।**

1. **तकनीकि प्रगति और दीर्घ–काल औसत लागतः** LAC को L–आकार का होने का पारम्परिक मत, इस मान्यता पर आधारित है कि व्यापार में तकनीकि प्रगति नहीं हो रही है। जबकि आधुनिक अर्थशास्त्री लागत को कम करने तथा उत्पादन फलन को अधिकतम करने में तकनीकि प्रगति की महत्वपूर्ण भूमिका मानते हैं । तकनीकि प्रगति की उपस्थिति दीर्घ–काल में औसत लागत वक्र के –आकार के होने की पुष्टि करता है, जैसा कि चित्र 10.24 में प्रदर्शित है।

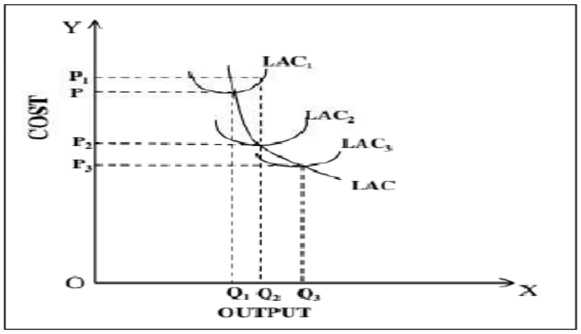

चित्र 10.24: L–आकार LAC

चित्र 10.24 यह दिखाता है कि प्रारम्भ में फर्म OQ_1 उत्पाद उत्पादित करता है LAC_1 पर OP लागत प्रति इकाई के दर से। मांग में वृद्धि के साथ फर्म अपने उत्पाद को OQ_2 बढ़ायेगा और तकनीकि स्थिर है (अर्थात् उसी LAC_1 पर उत्पादन हो रहा है) तो लागत OP_1 हो जायेगा। जबकि तकनीकि में प्रगति होने पर OQ_2 उत्पाद, OP_2 लागत पर प्राप्त होगा। फर्म तकनीकि प्रगति के बाद LAC_2 पर कार्य करेगा। तकनीकि में ओर प्रगति LAC, LAC_3 की ओर परिवर्तित हो जायेगा और अब OQ_3 अधिक उत्पाद कम लागत पर प्राप्त होगा। संक्षेप में, तकनीकि प्रगति के कारण LAC, L–आकार का होगा।

2. **करना और सीखनाः** करना और सीखना दीर्घ–काल औसत लागत के गीरता हुआ ढ़ाल होने का एं और महत्वपूर्ण कारक है। करना और सीखना विधि के कारण अधिक मात्रा में उत्पाद इकाई हो जाता है। श्रम का उत्पादन बढ़ जाता है। अतः LAC का स्तर समय के साथ कम होने लगता है। करने और सीखने का उत्पादन बढ़ने के कई कारण हैं। उदाहरण के लिए विकास बड़े पैमाने पर कर्मचारियों, जिसमें मशीन चलाने वाले, प्रवेक्षक, सेल्समैन, गुणवत्ता नियंत्रण और उत्पाद विशिष्टीकरण के लिए बेहतर कुशलता और आसान विधि का विकास कच्चे माल की बचत या मशीन से प्राप्त प्रत्येक इकाई उत्पाद के समय में कमी करता है। अतः करना और सीखना के कारण दीर्घ–काल में औसत लागत को L–आकार का होता है न की U–आकार का।

2. दीर्घ–कालिन सीमान्त लागत वक्र

आधुनिक सिद्धान्त के अनुसार दीर्घ–काल सीमान्त लागत वक्र का आकार, दीर्घ–काल औसत लागत वक्र के अनुसार होता है। LMC वक्र और LAC वक्र के बीच सम्बन्ध को चित्र 10.25(A) और 10.25(B) क्रमशः दिखाया गया ह। चित्र 10. 25(A) यह दिखाता है कि जब LAC, L–आकार का और LAC वक्र जब गिरता हुआ होता है, तब LMC वक्र भी गिरता हुआ होगा और गिरता हुआ भाग LAC वक्र के नीचे होगा। चित्र दिखाता है कि जब LAC वक्र उल्टा J–आकार का होता है तो LMC वक्र भी उल्ट J–आकार का होता है और हमेशा LAC वक्र के नीचे होता है। लेकिन जब LAC वक्र स्थिर होता है तब LMC वक्र भी स्थिर होता है और उसके उपर होता है।

10.8 सारांश

विभिन्न आगतों के क्रय पर खर्च किये गये मुद्रा की मात्रा को लागत कहते हैं। अल्प–काल के लागत का दो प्रकार से वर्गीकृत किया जाता है स्थिर लागत और परिवर्तनशील लागत। स्थिर लागत वह है जो फर्म द्वारा उत्पादन बन्दं करने पर भी होता है। वहीं परिवर्तनशील लागत वह है जो उत्पादन की मात्रा में परिवर्तन के साथ परिवर्तित होता है। सीमान्त लागत कुल लात में वह योग है, जो एक अतिरिक्त इकाई उत्पादन के साथ बढ़ता ह। औसत लागत अल्पकाल में स्थिर लागत और परिवर्तनशील लागत का योग है। औसत लागत वक्र U–आकार का होता है। अल्प–काल में AC और MC के बीच सम्बन्ध होता ह। जबकि दूसरी तरफ स्थिर और परिवर्तनशील लागत में कोई अंतर नहीं होता है। दीर्घ–काल में सभी आगत परिवर्तनशील है। जैसे SAC, LAC भी U–आकार का होता है लेकिन यह सापेक्षिक रूप से प्लैटर होता है।

10.9 शब्दावली

लागतः मुद्रा की उस मात्रा से है जिसे उत्पादक वस्तु और सेवाओं के विभिन्न आगतों का क्रय करने के लिए करता है।

सामाजिक लागतः यह उस लागत को प्रदर्शित करता है, जिसे समाज को बढ़े–हुये प्रदूषण, मिट्टी, पानी और अन्य प्राकृतिक संसाधनों का अपवर्तन का वहन करना पड़ता है।

परिवर्तनशील लागतः वह लागत है जो उत्पाद के परिवर्तन के साथ परिवर्तित होता है। इसका अर्थ है उत्पादन में परिवर्तन होने पर लागत में भी परिवर्तन होता है।

कुल लागतः विभिन्न उत्पाद स्तर पर कुल स्थिर लागत और कुल परिवर्तनशील लागत का योग है।

10.10 बोध प्रश्न

(C) रिक्त स्थानों को भरें।

7. लेखांकन लागत .... लागत को शामिल करता है।
8. वास्तविक लागत को .... रुप में नहीं मापा जा सकता है।
9. जब उत्पादन शून्य है तो .... लागत भी शून्य होगी।
10. औसत लागत, औसत स्थिर लागत और .... लागत का योग है।
11. सीमान्त लागत .... में परिवर्तन प्रदर्शित करता है।
12. सीमान्त लागत वक्र औसत लागत वक्र को .... बिन्दु पर काटता है।

(D) सत्य या असत्य

1. अवसर लागत, अनुकूलतम उत्पादन स्तर से सम्बंधित लागत की व्याख्या करता है।
2. कुल लागत, अवसर लागत और सामान्य लाभ का योग है।
3. स्थिर लागत को संरचनात्मक लागत भी कहते हैं।
4. उत्पादन में वृद्धि के साथ औसत स्थिर लागत में गिरने की प्रवृति होती है।
5. कुल लागत, सीमान्त लागत और औसत लागत के योग से निर्धारित होता है।
6. आधूनिक सिद्धान्त के अनुसार औसत लागत वक्र और सीमान्त लागत वक्र U –आकार का नहीं होता है।

10.11 बोध प्रश्नों के उत्तर

(A) 1. स्पष्ट, 2. मौद्रिक, 3. परिवर्तनशील लागत, 4. औसत परिवर्तनशील लागत, 5. कुल लागत एवं 6. न्यूनतम।

(B) 1. असत्य, 2. सत्य, 3. सत्य, 4. सत्य, 5. असत्य एवं 6. सत्य।

10.12 स्वपरख प्रश्न

(A) लघु उत्तरीय प्रश्न

1. स्थिर लागत को परिभाषित किजिये।
2. औसत लागत वक्र और सीमान्त लागत वक्र के बीच सम्बन्धों की व्याख्या कीजिए।
3. दीर्घकाल के प्रकृति की व्याख्या कीजिए।
4. व्यवसायिक लागत क्या है।

(B) दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

1. विभिन्न अल्पकालीन लागतों की व्याख्या कीजिये।

2. औसत स्थिर लागत, औसत परिवर्तनशील लागत और औसत लागत के आपस में सम्बन्धों की व्याख्या कीजिए?
3. विभिन्न लागत उपागमों की संक्षिप्त विवेचना कीजिये।

10.13 सन्दर्भ पुस्तकें

1. lfed W. Stonier and Douglas C. Hague, A Text Book of Economic Theory, Longman, 1990.
2. Spencer, M. H. and L. Sieglemen, Managerial Economics Richard Irwin, 1964.
3. Mehta, P. L., Managerial Economics – Analysis, Problem and Cases, Sultan Chand & Sons, New Delhi.
4. H. L. Ahuja, Business Economics Micro- S. Chand & Co. Ltd., New Delhi, 1999.

*****

इकाई 11 फर्म के सिद्धान्त

इकाई की रूपरेखा

11.1 प्रस्तावना
11.2 फर्म के सिद्धान्त
11.2.1 लाभ अधिकतमीकरण का सिद्धान्त
11.2.2 सम्पति अधिकतमीकरण की अवधारणा
11.3 बॉमल का बिक्री अधिकतमीकरण सिद्धान्त
11.4 संतुष्टि अधिकतमीकरण का सिद्धान्त
11.5 संवृद्धि अधिकतमीकरण मॉडल
11.6 फर्म की सुरक्षा
11.7 साइर्ट एवं मार्च का व्यवहारिक सिद्धान्त
11.8 प्रबंन्धकीय उपयोगिता का अधिकतमीकरण
11.9 सारांश
11.10 शब्दावली
11.11 बोध प्रश्न
11.12 बोध प्रश्नों के उत्तर
11.13 स्वपरख प्रश्न
11.14 संदर्भ पुस्तकें

उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप इस योग्य हो सकेंगे कि –

- फर्म के विभिन्न सिद्धान्तों की व्याख्या कर सकें।
- संतुष्टि अधिकतमीकरण की अवधारणा व फर्म की सुरक्षा की व्याख्या कर सकें।
- प्रबंन्धकीय उपयोगिता का अधिकतमीकरण को समझ सकें ।

11.1 प्रस्तावना

फर्म एक तकनीकि इकाई है जो वस्तुओं तथा सेवाओं के उत्पादन में संगलग्न होती है। फर्में कई प्रकार की होती है। जैसे, निजी स्वामित्व की फर्म, साझेदारी की अथवा संयुक्त स्वामित्व की कम्पनियां आदि। व्यवसाय की सफलता बहुत हद तक फर्म के उत्पादन, विपणन, वित्तीय और मानवीय संसाधनों के सम्बन्ध में लिए गये निर्णयों से प्रभावित होती है। दूसरे शब्दों में व्यावसायिक निर्णयों में विभिन्न प्रकार के कार्य योजना तथा रणनीतियां शामिल होती है। फर्म विभिन्न विकल्पों में से दुलर्भ संसाधनों के आंवटन हेतु कई निर्णय करती है। फर्म को विभिन्न साधनों की लागत और उनके प्रतिफल को भी ध्यान में रखना पड़ता है। फर्म अधिकांश समय विभिन्न उद्देश्यों जैसे लाभ अधिकतमीकरण, विक्रय अधिकतमीकरण तथा उपयोगिता अधिकतमीकरण को ध्यान में रखती है।

फर्म के उद्देश्यों के सम्बन्ध में अर्थशास्त्रियों के विचार भिन्न–भिन्न है। क्लासिकल अर्थशास्त्रियों का विचार था कि फर्म का मुख्य उद्देश्य लाभ अधिकतम करना है। कारण यह है कि ज्यादतर फर्म का मालिक भी वहीं साहसी ही होता थ। इसका आशय है कि प्रबन्धक तथा स्वामी एक हीं व्यक्ति थे। लेकिन आधुनिक

युग में बड़े आकार के संगठन ने प्रबन्धन करते हैं। आधुनिक संगठनों का वास्तविक प्रबन्धन शेयर धारकों द्वारा नियुक्त प्रबन्धकों के हाथों में होता है। ये प्रबन्धक अपनी सेवाओं के बदले वेतन तथा अन्य प्रोत्साहन प्राप्त करते हैं। प्रबन्धकों तथा शेयरधारकों के उद्देश्य भिन्न–भिन्न होते हैं। प्रबन्धक बिक्री तथा अपने अनुलाभों की वृद्धि में रूचि रखते हैं, जबकि शेयर धारक अपने लाभ को अधिकतम करना चाहते हैं।

इस प्रकार आधुनिक संगठनों का उद्देश्य एक संगठन से दूसरे संगठन में भिन्न–भिन्न होता है। फर्म के विभिन्न वैकल्पिक उद्देश्य; अधिकतम लाभ; बिक्रय अधिकतमीकरण, अधिकतम संन्तुष्टि, संवृद्धि अधिकतमीकरण आदि हो सकते है।

11.2 फर्म के सिद्धान्त

एक हीं उद्योग की अलग–अलग फर्में जो कि समान बाजार दशा में कार्य कर रही होती है। अलग–अलग प्रकार से व्यवहार करती है। इसलिए फर्म के सिद्धान्तों की आवश्यकता है। सिद्धान्त की व्याख्या तथा पूर्वानुमान दोनों के रूप में मूल्य होना चाहिए। सिद्धान्त की वैद्यता कई कसौटियों पर निर्भर करती है जैसेः संगतता, मान्यताओं की वास्तविकता, इसकी सामान्यकीकरण तथा सरलता एवं प्रयोग। फर्म के सिद्धान्तों का उद्देश्य विभिन्न बाजार संरचना में फर्म के निर्णयों का विश्लेषण करना है। फर्म के सिद्धान्त को इसके कीमत–उत्पादन निर्णयों की पूर्ण व्याख्या करनी चाहिए कि कैसे फर्म अपनी कीमत तय करती है तथा उत्पादन का निर्णय लेती है, विज्ञापन व्यय तथा बिक्री वृद्धि के प्रयास, शोध तथा विकासात्मक व्यय आदिक का निर्णय करती है।

अर्थशास्त्रियों ने इस पर विचार किया है कि कैसे प्रबन्धक इस प्रकार के निर्णय अलग–अलग करते हैं। सामान्यतः फर्म लाभ अधिकतम करने का प्रयास करती है। फर्म का परम्परागत सिद्धान्त इसकी व्याख्या करती है लेकिन 1930 के दशक में इस सिद्धान्त की आलोचना की गई तथा इससे असन्तुष्टि हुई। इसके दो प्रमुख कारण थेः

(a) **अल्पाधिकारी की उत्पत्तिः** वह बाजार की अवस्था जिसमें कुछ बड़ी फर्में हीं होती है। विलय तथा एकीकरण ने उद्योग की संरचना को इस प्रकार बना दिया है जिसमें कुछ बड़ी फर्में ही उद्योग के उत्पादन का अधिकांश भाग पूरा करती है। इसने व्यक्तिक रूप से लाभ अधिकतम करने के दबाव को कार्टेल या संगठन के द्वारा संयुक्त लाभ को अधिकतम करने के रूप में स्थान्तिरत कर दिया। अधिकतम लाभ हीं एकमात्र अनिवार्य उद्देश्य नहीं था।

(b) **स्वामित्व का प्रबन्धन से भिन्न होनाः** आधुनिक फर्म में नियन्त्रण, स्वामित्व से भिन्न है। फर्म का नियन्त्रण शेयार धारकों के बजाय प्रबन्धकों द्वारा किया जाता है। क्योंकि शेयरों का स्वामित्व विखण्डित एवं बिखरा हुआ होता है। प्रबन्धको के कार्यों से साहसी का विचार अपनी प्रासंगिकता खोने लगा। प्रबन्धक लाभ अधिकतम करने के अलावा अन्य उद्देश्यों की प्राप्ति का प्रयास कर सकते हैं साथ हीं वे लाभांश के वितरण हेतु प्रर्याप्त सीमा तक लाभ प्राप्त करने को बाध्य भी होंगे, जिसके अभाव में शेयर धारक कम्पनी से अपनी पूंजी निकाल सकते हैं।

11.2.1 लाभ अधिकतमीकरण का सिद्धान्त (सीमान्तवादी सिद्धान्त)

सीमान्तवादी सिद्धान्त का विकास 1980 के दशक में वालरा, डब्लू. एस. टेननस तथा अल्फ्रेड मार्शल द्वारा किया गया।

(क) सिद्धान्त की आधारभूत मान्यताएं

सिद्धान्त की प्रमुख आधारभूत मान्यताएं निम्नलिखित हैंः

1. साहसी ही फर्म का मालिक या स्वामी भी होता है।
2. फर्म का एकमात्र उद्देश्य लाभ अधिकतम करना है।
3. इस उद्देश्य की प्राप्ति सीमान्तवादी सिद्धान्त अर्थात MC = MR के द्वारा की जाती है।
4. फर्म वर्तमान स्थितियों तथा भविष्य के परिवर्तन का निश्चित ज्ञान रखती है। फर्म को अपने मांग तथा लागत फलन का पूर्ण ज्ञान है। यह अपनी पिछली गलतियों से सीखती है तथा अपने अनुभवों का प्रयोग लगातार अपनी मांग तथा लागत के आंकलन में करती है।
5. विशेष मॉडल के अनुसार फर्मों के प्रवेश की मान्यता अलग–अलग होती है। फर्म के प्रवेश की सामान्य शर्तें निम्नलिखित हैंः
   (a) प्रवेश का तात्पर्य उद्योग में फर्म के वास्तविक प्रवेश से है। सम्भावित प्रवेश पर कोई ध्यान नहीं दिया गया है;
   (b) अल्पकाल में प्रवेश व्यवहारिक रुप से असम्भव है, प्रवेश केवल दीर्घकाल में हीं हो सकता है।
6. फर्म कुछ समय आधारों के साथ कार्य करती है जो कि कई कारकों पर निर्भर करता है जैसेः तकनीकि प्रगति की दर, उत्पादन तरीके की पूंजी गहनता, उत्पाद की प्रकृति तथा परिपक्वता अवधि आदि। इस समय सीमा के अन्दर फर्म अधिकतम करना है। इसकी प्राप्ति प्रत्येक समय अवधि में लाभ को अधिकतम करने से हो सकती है। MC = MR का नियम प्रत्येक अवधि में प्रयोग किया जाता है और इस व्यवहार से अल्पकाल तथा दीर्घकाल दोनों में लाभ अधिकतम होता है।

(ख) लाभ अधिकतमीकरण की शर्तें

प्रत्येक फर्म का प्राथमिक उद्देश्य इसके परिचालन से अधिकतम आय प्राप्त करना है। कुल आय तथा कुल लागत के बीच का अन्तर हीं फर्म को प्राप्त शुद्ध आय है। अधिकतम लाभ के लिए निम्नलिखित शर्तें पूरी होनी आवश्यक हैः

लाभ अधिकतम होने के लिए दो शर्तों का पूरा होना आवश्यक है। जो इस प्रकार हैः

(i) आवश्यक या प्रथम स्तरीय शर्त;

(ii) पूरक या द्वितीय कोटि की शर्त।

1. **आवश्यक या प्रथम कोटि की शर्तेंः** प्रथम कोटि की शर्त के अनुसार अधिकतम लाभ वहां होता है जहां सीमान्त लागत (MC), सीमान्त आय (MR) के बराबर होता है। अर्थात् । पर आवश्यक शर्त है क्योंकि लाभ अधिकतम होने के लिए इसकी पूर्ति अनिवार्य है यदि यह पूरी नहीं होती तो लाभ अधिकतम नहीं होगा।

2. **पूरक या द्वितीय कोटि की शर्तः** द्वितीय कोटि की शर्त के अनुसार लाभ अधिकतम होने के लिए प्रथम शर्त की पूर्ति बढ़ती हुई सीमान्त लागत की दशा में होनी चाहिए। इससे द्वितीय कोटि की शर्त प्राप्त होती है जिसके अनुसार सीमान्त लागत वक्र को नीचे से काटे।

यह प्रक्रिया चित्र 11.1 की सहायता से स्पष्ट की जा सकती हैः

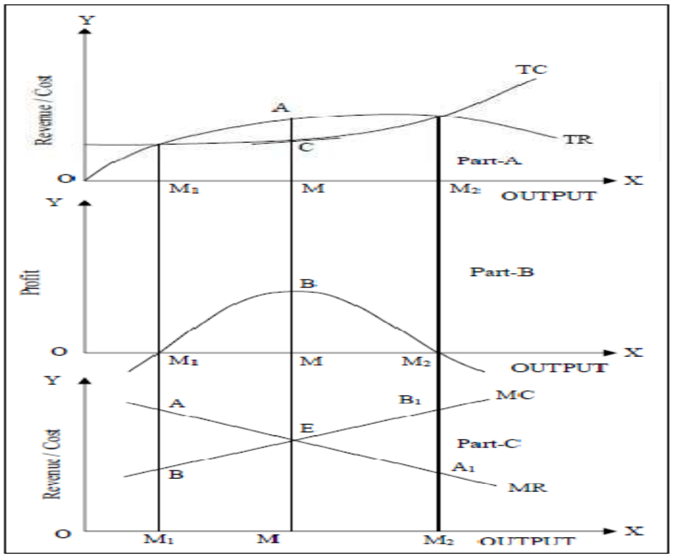

चित्र 11.1

चित्र के भाग A में TC वक्र कुल लागत वक्र तथा TR कुल आय वक्र, कुल आय तथा कुल लागत वक्र के बीच अन्तर OM उत्पादन स्तर पर अधिकतम होगा जिस पर दोनों वक्रों की ढाल समान है। TR तथा TC वक्र के स्पर्श रेखाओं का ढ़ाल बिन्दु R तथा C पर बराबर है। AC दूरी जो दोनों के बीच अधिकतम है, अधिकतम लाभ को व्यक्त करता है। OM_1 तथा OM_2 उत्पानस्तर पर कुल लागत कुल आय के बराबर है इसका अर्थ है कि फर्म कोई लाभ अर्जित नहीं कर रहीं है।

चित्र के भाग B में कुल लाभ वक्र प्रदर्शित है, OM उत्पादन स्तर पर लाभ अधिकतम है जहां पर सन्तुलन की दोनों शर्तें पूरी होती है। अर्थात MC = MR तथा MC, MR को नीचे से काटे। यदि फर्म OM से कम उत्पादन करे । मान लीजिए OM_1 तो इसका MR वक्र AM_1 होगा, जो इसके MC से अधिक होगा क्योंकि MC, BM है। इसलिए फर्म OM_1 से अधिक उत्पादन करेगी और इसका लाभ बढ़ेगा। दूसरी तरफ यदि फर्म से अधिक उत्पादन करती है। मान लीजिए OM_2 तो इसकी MC (B_1M_2) इसके MR (A_1M_1) से अधिक होगी। इसका अर्थ है कि फर्म को B_1A_1 के बराबर हानि होगी। इसलिए फर्म OM_2 से कम उत्पादन करेगी। इसका आशय है कि फर्म OM उत्पादन पर अधिकतम लाभ प्राप्त करती है जिस पर अधिकतम लाभ की दोनों शर्तें पूरी होती है।

(ग) सिद्धान्त की विशेषताएं

इस सिद्धान्त की प्रमुख विशेषताएं निम्नलिखित हैंः

1. **फर्म का प्रमुख उद्देश्यः** अधिक लाभ हीं वह प्रमुख उद्देश्य है जिसके लिए फर्म स्थापित की जाती है। फर्म का अन्तिम उद्देश्य होने के कारण

यह फर्म के मालिक अथवा प्रबन्धक ही प्रत्येक क्रियाओं को नियंत्रित करती है।

2. **फर्म का जीवनः** प्रतियोगिता का दबा फर्म को बाजार में बने रहने के लिए अधिकतम लाभ अर्जित करने को विवश करता है
3. **दक्षता का निर्देशांकः** अर्जित लाभ ही फर्म के कुशल कियान्वयन का पैमाना है। अधिक लाभ से फर्म के अधिक कुशल होने का अनुमान लगाया जाता है।
4. **आंतरिक वित्त का स्त्रोतः** लाभ आंतरिक वित्त पोषण एक प्रमुख स्त्रोत समझा जाता है। लाभ का जो भाग आरक्षित रखा जाता है वह व्यावसायिक उद्यम के विस्तार अथवा आधूनिकीकरण पर खर्च किया जाता है।

(ग) सिद्धान्त की सीमाएं या कमियां

फर्म के अधिकतम लाभ दृष्टिकोण की निम्नलिखित कारणों से आलोचना की जाती हैः

(a) लाभ अधिकतमीकरण की अवधारणा संकीर्ण तथा स्पष्ट है।

(b) यह मुद्रा के समय–मूल्य की अवहेलना करता है।

(c) यह अल्पकालीन लाभ पर जोर देता है इसलिए यह दीर्घकालीन स्थिरता तथा लाभदेयता की कीमत पर भी निर्णय लेने की अनुमति दे सकता है।

(d) आधूनिक फर्म में विभिन्न साझीदार होते हैं जैसेः शेयर धारक ऋणपत्र धारक, वित्तीय संस्थाएं, बैंक, प्रबन्धक, कामगार, सरकार, ऋणदाता, आपूर्तिकर्ता, उपभोक्ता आदि ऐसी फर्मों के विभिन्न उद्देश्यां में लाभ सिर्फ एक उद्देश्य है।

(e) यह व्यवसाय के सामाजिक दायित्व पर विचार नहीं करता है। समाज की कीमत पर फर्म का लाभ अधिकतम करना संकीर्ण दृष्टिकोण है।

11.2.2 सम्पति अधिकतमीकरण की अवधारणा

सम्पत्ति को अधिकतम करना फर्म का दीर्घकालीन उद्देश्य है क्योंकि यह अपने निवेश के प्रतिफल को अधिकतम करना चाहती है। सम्पत्ति को अधिकतम करने का अर्थ है शुद्ध वर्तमान मूल्य को अधिकतम करना। किसी क्रियाविधि का शुद्ध वर्तमान मूल्य उसके वर्तमान लाभों का मूल्य तथा वर्तमान लागतों के मूल्य के बीच का अन्तर है। ऐसा वित्तीय कार्य जिसका धनात्मक वर्तमान मूल्य हो, सम्पति बढ़ाता है और इसलिए वांछित है। ऋणात्मक वर्तमान मूल्य के वित्तीय कार्यों की अस्वीकृति किया जाना चाहिए। कई सारी अपवर्जन परियोजनाओं में से जिसकी उच्चतम शुद्ध वर्तमान मूल्य हो, उसका चयन किया जाना चाहिए। धन या सम्पति का अधिकतमीकरण सम्भव है। यदि फर्म निर्णयों के माध्यम से लागतों से अधिक लाभ सृजित करती है। दीर्घकालीन नियोजन तथा प्रबन्धन के लिए कोई फर्म अपने समस्त उद्देश्यों का आंकलन करती है।

धन का शुद्ध वर्तमान मूल्य निम्न प्रकार से मापा जाता हैः

$$W = \frac{A_1}{(1+k)} + \frac{A_2}{(1+k)^2} + \ldots + \frac{A_n}{(1+k)^n} = -C_o$$

जहां $A_1, A_2 \ldots\ldots\ldots A_n$ किसी क्रियाविधि से प्रत्याशित लाभ हैं, C_o उस क्रियाविधि की लागत है तथा k उपयुक्त बट्टे की दर है तथा इसे निवेश की अवसर लागत

एवं लाभों का जोखिम भी कहा जाता है। W शुद्ध वर्तमान मूल्य या धन है तो लाभों के प्रवाह का वर्तमान मूल्य तथा प्रारम्भिक लागत का अन्तर है। फर्म को किसी क्रियाविधि का चयन तभी करना चाहिए जबकि W का मूल्य धनात्मक हो अर्थात् जब फर्म की सम्पति में शुद्ध वृद्धि हो।

(अ) विशेषताएं

निम्नलिखित आधारों पर सम्पति अधिकतमीकरण का समर्थन किया जाता है:

(a) यह फर्म के दीर्घकालीन जीवन तथा संवृद्धि को ध्यान में रखता है।

(b) यह शेयर धारकों को नियमित तथा सुसंगत लाभांश अदायगी का सुझाव देता है।

(c) वित्तीय निर्णय शेयरों की कीमतों के पूंजीगत मूल्यांकन के सुधार की दृष्टि से लिए जाते हैं।

(d) यह मुद्रा के जोखिम तथा समय मूल्य पर प्रकाश डालता है।

(e) यह प्रति शेयर पर भविष्य की सभी नकद प्रवाह, लाभांश तथा अर्जनों को ध्यान में रखता है।

(f) फर्म के मूल्य का अधिकतमीकरण का प्रतिबिम्ब शेयरों के बाजार मूल्य में होता है, चूंकि यह प्रत्याशाओं पर निर्भर करता है जैसे: फर्म की लाभ देयता, दीर्घकालीन सम्भावना, प्रतिफल के समय जोखिम, प्रतिफलों के वितरण आदि से सम्बन्धित होता है।

(g) लाभ अधिकतमीकरण फर्म को कुछ हद तक सम्पति के अधिकतमीकरण के योग्य बनाता है।

(h) शेयर धारक हमेशा लाभों के अन्तः प्रवाह को अधिकतम करने की अपेक्षा सम्पति को अधिकतम करना पसन्द करते हैं।

(ब) आलोचनाएं

फर्म के उद्देश्यों का सम्पति अधिकतमीकरण सिद्धान्त की संकीर्णता के कारण आलोचना की जाती है। यह समाज की सम्पति को अधिकतम करने की अवधारणा की उपेक्षा करता है। क्योंकि समाज के संसाधन विशेष फम के लाभ के लिए प्रयोग किये जाना चाहिए, इससे अर्थव्यस्था की संवृद्धि तथा पूंजी निर्माण होना चाहिए जिससे अन्ततः समाज का अधिकतम आर्थिक कल्याण होता है।

फर्मों के लाभ सृजन की व्याख्या करने के कई सिद्धान्त हैं। कुछ महत्पूर्ण सिद्धान्तों का विवेचन निम्न प्रकार है:

नवप्रवर्तन सिद्धान्तः फर्म नये उत्पाद, नई उत्पादन तकनीकि, नई विपणन तकनीकि आदि में नवाचार करती है। नवप्रर्वन मंहगे होते हैं और उनके लिए प्रतिफल अवश्य मिलना चाहिए ताकि उन्हे अनवरत जारी रखा जा सके। इस कारण से नवप्रर्वतन करने वाली फर्म को कुछ समय के लिए पेटेंट अधिकार प्रदान किये जाते हैं। जिस समय के दौरान कोई दूसरी फर्म उत्पाद अथवा तकनीकि की नकल नहीं कर सकती है। इस प्रकार लाभ नवप्रर्वतन के प्रतिफल समझे जाते हैं।

जोखिम वहन का सिद्धान्तः फर्में उत्पादन प्रणाली में बड़ा निवेश करती हैं। ताकि वस्तुओं के उत्पादन से लाभ कमा सकें। इसक अलावा उत्पादन में कठिनाईयां हो सकती हैं, उसमें बिलम्ब हो सकता है तथा उत्पादन के होने पर प्रर्याप्त बाजार की भी कमी हो सकती है। फर्में इन सभी जोखिम को वहन करती हैं इसलिए उन्हें इसका प्रतिफल मिलना चाहिए।

एकाधिकार सिद्धान्तः कुछ फर्में बड़ी पूंजी, पैमाने के मितव्ययिताएं, पेटेंट अधिकार अथवा सामाजिक–राजनीतिक शक्तियों के कारण कुछ एकाधिकारी शक्तियों का प्रयोग करने में सक्षम होती है। इसके कारण पूर्ण प्रतियोगिता की कमी होती है और ऐसी फर्में आर्थिक लाभ काटने में समर्थ होती हैं।

घर्षण का सिद्धान्तः इस सिद्धान्त के अनुसार आर्थिक लाभ दीर्घकालीन सन्तुलन में शून्य होता है। इसके अलावा, बाजार शायद हीं कभी सन्तुलन में होता है। इसके अलावा, बाजार शायद हीं कभी सन्तुलन में होता ह जो कि आर्थिक लाभ या हानियों को जन्म देता है। उदाहरण के लिए, यदि शीत ऋतु अधिक कड़ी या लम्बी हो तो उनी वस्त्रों का कारोबार कने वाली फर्म अधिक लाभ कमा सकती है। जबकि आइसक्रीम तथा पंखे की फर्मों को हानि उठानी पड़ सकती है।

प्रबन्धकीय दक्षता का सिद्धान्तः इस सिद्धान्त के अनुसार आर्थिक लाभ कुशल फर्म प्रबन्धन तथा विशेष प्रबन्धकीय कौशल के कारण प्राप्त होता है। उदाहरण के लिए, यदि सामान्य स्तर की दक्षता एवं कुशलता में कार्य करने वाली फर्म कोा हानि होती है तो जो उस स्तर से उच्चतर पर कार्य कर रही होंगी उन्हें आर्थिक लाभ प्राप्त होगा। इस प्रकार लाभ उत्तम प्रदर्शन के लिए आवश्यक है।

11.3 बॉमल का बिक्री अधिकतमीकरण सिद्धान्त

यह सिद्धान्त इस मान्यता पर आधारित है कि बिक्री अधिकतम करना, लाभ अधिकतम से प्रमुख उद्देश्य है। बिक्री से हमारा आशय वस्तुओं के विक्रय से प्राप्त कुल आय है। इसे आय अधिकतमीकरण्ण के नाम से भी जाना जाता है। इस सिद्धान्त के अनुसार जब फर्म शेयर धारकों को स्वीकृत एक लाभ के स्तर को प्राप्त कर लेती है तो प्रबन्धक लाभ अधिकतम करने के बजाय बिक्री के उन्नयन से आय अधिकतम करने का प्रयास करते हैं। यह ध्यान में रखना चाहिए कि फर्म साथ– साथ में हीं लाभ की उपेक्षा नहीं करती है।

बॉमेल के अनुसार, व्यवसायी निम्न कारणों से लाभ अधिकतमीकरण की अपेक्षा बिक्री अधिकतमीकरण के लक्ष्य को प्राप्त करना चाहता हैः

1. वित्तीय संस्थाएं बिक्री के निष्पादन पर ध्यान देती हैं किसी फर्म के निष्पादन स्तर का पता लगाने के लिए बिक्री स्तर एक महत्वपूर्ण सीमा स्तर का निर्धारण करती हो।
2. लाभ आंकड़ों के अपेक्षाकृत बिक्री आंकड़ों को प्राप्त करना ज्यादा आंसान होता है।
3. प्रबन्धक के वेतन और परिलब्धियां लाभ के बजाय बिक्री से जुड़ी होती है।
4. कार्मिकों के समस्याओं को बढ़ती हुई बिक्री स्तर से दूर किया जा सकता है। कार्मिकों को ज्यादा बिक्री हासिल करने पर ज्यादा वेतन दिया जाता है।
5. बिक्री अधिकतमीकरण बढ़ते बाजार के शेयरां और अधिक प्रतिस्पर्धी शक्ति तथा सौदेबाजी की शक्ति का भी संकेत देता है।

बिक्री अधिकतमीकरण की शर्तें

बिक्री अधिकतमीकरण का आशय फर्म को उत्पादन उस स्तर पर करना चाहिए जहां उसकी सीमान्त आय शून्य हो। निम्न चित्र के माध्यम से बिक्री अधिकतमीकरण मॉडल को आसानी से समझा जा सकता है।

चित्र 11.2 के खण्ड (a) TR व TC फर्म के क्रमशः कुल आय व कुल लागत को प्रदर्शित करते हैं। PP रेखा फर्म न्यूनतम लाभ प्रतिबन्ध को प्रदर्शित करता है जो कि सभी शेयर धारियों द्वारा स्वीकार्य है। चित्र के भाग b में AR व MR फर्म के क्रमशः औसत आय व सीमान्त आय को प्रदर्शित करते हैं। MC फर्म की सीमान्त लागत है। यदि फर्म अपन आय को अधिकतम करना चाहेगी तो फर्म उत्पादन के उस स्तर पर उत्पादन करेगी जहां MR शून्य होगा। फर्म आगत के OM स्तर पर उत्पादन करेगी क्योंकि OM पर MR शून्य है। OM उत्पादन कुल आय के अधिकतम स्तर को प्रदर्शित करती है जो कि AM के बराबर है। लेकिन OM उत्पादन स्तर पर फर्म BM का लाभ अर्पित करेगी जो कि शेयर धारकों द्वारा स्वीकार्य लाभ B_1M_1 से कम है। इसलिए उत्पादन स्तर शेयर धारकों द्वारा स्वीकार्य नहीं होगा।

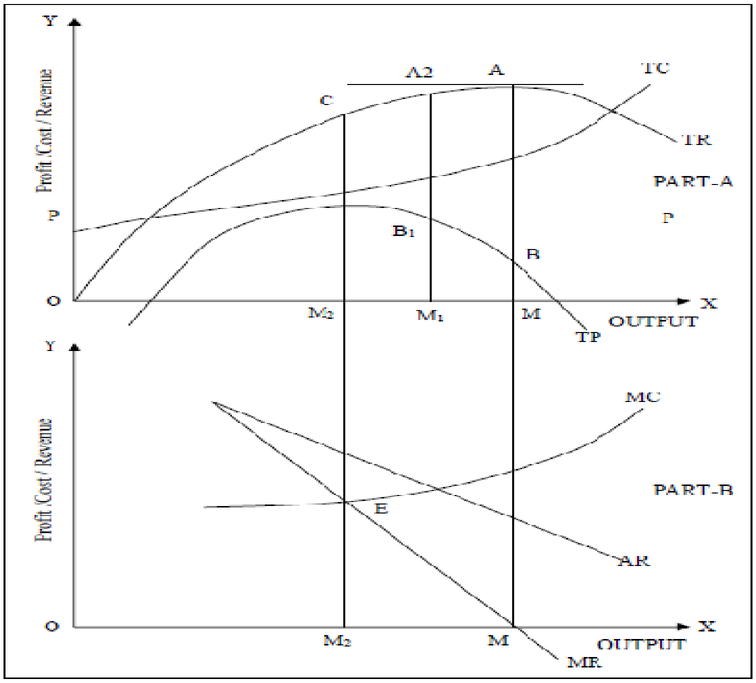

चित्र 11.2

दूसरी तरफ, यदि फर्म लाभ का अधिकतम करना चाहताी है तो वह उत्पादन के OM_2 स्तर पर उत्पादन करेगी। उत्पादन में इस स्तर पर MC = MR है और MC वक्र, MR वक्र को नीचे से काट रही है। इसलिए OM_2 उतपादन की संतुलन अवस्था का दर्शाती है। यहां पर प्राप्त कुल आय CM_2, अधिकतम आय AM की तुलना में कम है। यदि फर्म लाभ का न्यूनतम स्तर चाहती है, जो कि B_1M_1 है तब फर्म OM_1 के स्तर पर उतपादन करेगें। इस स्थिति में फर्म A_1M_1 के बराबर आय अर्जित करेगी जो कि कुल आय AM से कम रहेगा।

यहां ध्यान देने वाली बात यह है कि फर्म का B_2M_1 आय न्यूनतम लाभ पर आधारित है। यदि लाभ का न्यूनतम स्तर BM होता है तब फर्म अधिकतम आय

अर्जित करती है लेकिन यदि लाभ का न्यूनतम स्तर B_1M_1 होगा, तब फर्म अधिकतम आय से कम आय प्राप्त करेगी।

सिद्धान्त की मान्यताएं

अर्थशास्त्रियों द्वारा निम्न बिन्दुओं के आधार पर इस सिद्धान्त की आलोचना की जाती हैः

1. **अवास्तविक मान्यताः** यह सिद्धान्त इस मान्यता पर आधारित है कि वस्तुओं एवं सेवाओं की कीमत स्थिर है। लेकिन वास्तव में कीमत तेजी से बदल जाती है और लाभा भी। दूसरे शब्दों में गत्यात्मक बाजार में कीमतें शीघ्र हीं बदल जाती है।
2. **उद्योग संतुलनः** यह सिद्धान्त इस बात की व्याख्या करने में असफल होती है कि जब सभी फर्मों का उद्देश्य बिक्री अधिकतमीकरण होगा तब उद्योग का संतुलन क्या होगा। अन्य शब्दों में बिक्री अधिकतमीकरण उद्देश्य के साथ उद्योग संतुलन को कैसे प्राप्त करेगी।
3. **संकीर्ण क्षेत्रः** बिक्री अधिकतमीकरण का उद्देश्य संयुक्त स्टॉक कम्पनियों का एक उद्देश्य हो सकता है। लेकिन वास्तव में, अर्थव्यवस्था छोटे और मझले उद्योगों से प्रभावित होता है जिनका उद्देश्य लाभ को अधिकतम करना होता है न कि बिक्री को।
4. **अवास्तविकः** यह सिद्वान्त बाजार में प्रचलित प्रतिस्पर्द्धा और कदाचित भविष्य में उसके प्रभाव की उपेक्षा करता हो।
5. **लाभ प्रतिबन्धः** यह सिद्धान्त लाभ के न्यूनतम स्तर की मान्यता पर आधारित है। लेकिन व्यवहारिक रुप से यह निश्चित करना काफी कठिन होता है कि शेयर धारकों द्वारा स्वीकार्य, न्यूनतम लाभ स्तर कितना होगा। बदलते वातावरण और बढ़ती प्रतिस्पर्द्धा के दौर में स्वीकार्य न्यूनतम लाभ स्तर का निर्धारण करना काफी कठिन हो गया हो।

11.4 संन्तुष्टि अधिकतमीकरण का सिद्धान्त

यह सिद्धान्त इस धारणा पर आधारित है कि उद्यमियां को लाभ के कीमत पर भी संतुष्टि को अधिकतम करना है। इस सिद्धान्त के अनुसार एक निश्चित मुनाफे के बाद, उद्यमी मुनाफे की तुलना में अवकाश को अधिक प्राथमिकता देना पसंद करते हैं। उद्यमी आय में वृद्धि के कारण, उद्यमियों को उत्पादन को बढ़ाने के प्रयास करने के बजाय अवकाश ग्रहण करना ज्यादा पसंद करते हैं। दूसरे शब्दों में, यदि उद्यमी ज्यादा काम करता है तो उसके पास अवकाश के लिए कम समय उपलब्ध होगा।

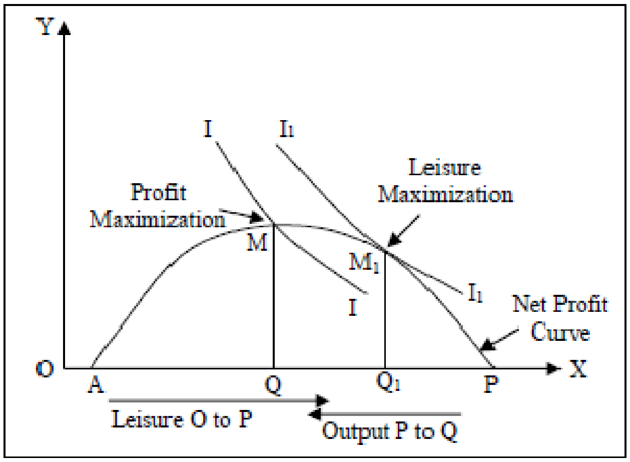

चित्र 11.3: संतुष्टि अधिकतमीकरण विश्लेषण

चित्र 11.3 में Y–अक्ष पर लाभ व X–अक्ष पर अवकाश का प्रयास को प्रदर्शित किया गया है। अवकाश को बिन्दु A से Q तक तथा उत्पादन को P से Q तक मापा गया है। ज्यादा उत्पादन से आशय कम अवकाश कम उत्पादन से आशय ज्यादा अवकाश। I I और I_1I_1 अनधिमान वक्र है। इन वक्रों से उद्यमियों के लाभ व अवकाश से मिलने वाले संतोष के स्तर के संयोजन को प्रदर्शित किया गया है। उद्यमी का संतुष्टि स्तर वहां अधिकतम होगा जहां अनधिमान वक्र कुछ लाभ वक्र को स्पर्श करेगी। ऐसी स्थिति में उत्पादन स्तर PQ_1 है। लेकिन उत्पादन को यह स्तर, उत्पादन के लाभ अधिकतमीकरण PQ से कम है।

इस सिद्धान्त की आलोचना इसकी इस अवास्तविक मान्यता से की जाती है की उद्यमी के काम करने की इच्छा उसके आय से स्वतंत्र होती है। व्यावारिकता में उद्यमी, ज्यादा लाभ द्वारा निर्देशित होते है। फर्म अपनी क्षमता और सफलता के सूचकांक को लाभ के रुप में मानता है। इस प्रकार, यह मानना कि फर्म ज्यादा काम की अपेक्षा अवकाश को ज्यादा महत्व देती है, काफी ज्यादा अवास्तविक हैं।

11.5 संवृद्धि अधिकतमीकरण मॉडल

आधुनिक व्यावसायिक उद्यमियों का मुख्य उद्‌देश्य संवृद्धि को अधिकतम करना होता है। संवृद्धि अधिकतमीकरण से आशय फर्म के आकार, उत्पादन व बिक्री में वृद्धि लाने से है।

(i) **फर्म की पेनरोस का सिद्धान्तः** श्रीमति पेनरोस ने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक में फर्म के इस उद्‌देश्य को समाविष्ट किया। इन्होंने बताया कि प्रबन्धक लाभ के बजाय संवृद्धि को अधिकतम करने में अधिक रुचि प्रदर्शित करता है। इस सिद्धान्त के अनुसार, प्रबन्धकां की क्षमता उनके द्वारा प्रबंधित फर्मों के विकास को प्राप्त करने से निर्णित होता है। प्रबंधक द्वारा प्रर्याप्त लाभ की उपलब्धता हीं उनको और निवेश के लिए फंडस उपलब्ध कराती है और बाहरी पूंजी को आकर्षित करती है।

दूसरे शब्दों में, फर्म के विस्तार के लिए आवश्यक फण्ड आंतरिक स्त्रोतों के द्वारा निर्मित किये जाने चाहिए। बाह्य स्त्रोतों या उधार फंडों की तुलना में आंतरिक स्त्रोतों से प्राप्त फंड को अधिक वांछनीय माना जाता है। इसके अलावा बाह्य स्त्रोतों के फंड फर्म पर बोझ के रुप में छोटे हैं। इसके कारण फर्म को

मूलधन के साथ ब्याज को चुकाना पड़ता है जो कि फर्म के विकास क्षमता को प्रभावित करता है। इसलिए वित्त के आंतरिक स्त्रोतों को लाभ में वृद्धि कर अर्जित करते हैं। फर्म के अधिग्रहण के खतरे से बचने के लिए, प्रबंधकों को उन रणनीतियों को अपनाना चाहिए, जो फर्म को अधिकतम लाभ दें ताकि यह कड़ी प्रतिस्‍र्द्धा का सामना कर सके और अन्य कम्पनियों द्वारा अधिग्रहण की समस्या से बचा जा सके।

(ii) **मैरिस का प्रबंधकीय उद्यम मॉडलः** मैरिस की अवधारणा यह है कि प्रबंधक की कार्यवाही, प्रबंधन की आवश्यकताओं द्वारा निर्धारित होती है जो कि स्वयं को बर्खास्तगी से बचाने के लिए या असफलता की स्थिति से बचने के लिए होता है। यह बताते है कि प्रबंधक का एक उपयोगिता फलन होता है जिसमें वेतन, पावर, प्रतिष्ठा और सुरक्षा महत्वपूर्ण चर है। फर्म के अशंधारी (या मालिक) लाभ, बाजार मं हिस्सा, उत्पादन आदि पर ध्यान देते हैं।

मैरिस सुझाव देते हैं कि प्रबन्धक का उद्‌देश्य एक संतुष्टि विकास को प्राप्त करना होता हे जो कि मांग में वृद्धि (विशेषतया नये प्रोडक्ट) पूंजी में वृद्धि के समान हो। अतः प्रबन्धक एक संतुलित विकास दर (g) को अधिकतम करना चाहता है जो कि प्रोडक्ट के मांग वृद्धि दर (gd) और पूंजी पूर्ति के वृद्धि दर (gc) के बराबर होता है।

इस प्रकार, Max. g = gd = gc.

सर्वप्रथम, संतुलित वृद्धि दर प्राप्त करने में उन साधनों का पहचान किया जाना चाहिए जो व को निर्धारित करते हैं। ये दो हैः

1. विवधिता दर (d) और
2. औसत लाभ मांर्जिन (m) ।

ये दोनों प्रबंधन द्वारा निर्धारित किया जाता है जब वह वित्तीय नीति बनाते हैं। विवधिकरण दर या तो उपस्थित वस्तु के स्वरूप मं बदलाव या उत्पाद को विस्तारित करने के रुप में चुना जाता है। उत्पाद के दिये गये मूल्य और उत्पादन लागत पर औसत लाभ मांर्जिन (m) विज्ञापन के स्तर और R & D द्वारा प्रभावित होगा। विज्ञापन R & D पर ज्यादा कम P औसत लाभ मांर्जिन (m) होगा। इस प्रकार मैरिस के अनुसार फर्म की तीन नीतिगत चर a, d होंगे m और।

आलोचना

इस सिद्धान्त की निम्न कमियां हैंः

1. **अवास्तविक मान्यताः** यह सिद्धान्त मानता है कि फर्म के साधन कीमत, लाभ बिक्री और लागत में कोई परिवर्तन नहीं होता है लेकिन व्यवहार में, एक समयावधि के दौरान ये चर तेजी से परिवर्तित हो जाते हैं।

2. **वित्तीय प्रतिबन्धः** यह सिद्धान्त मानता है कि धन आसानी से उपलब्ध हो जाता है। दूसरे शब्दों में फर्म आसानी से वित्तीय स्त्रोतों को हासिल करता है। लेकिन वास्तव में फर्मों को प्रर्याप्त वित्त प्राप्त करने में समस्या का सामना करना पड़ता है। लोन की मंजूरी में देरी फर्म के विकास में अवरोध पैदा करती है। छोटे और मझले उद्यमियों को सामने समय पर फण्ड प्राप्त करने में कठिनाई होती है।

3. **संवृद्धि दर के आंकलन में कठिनाईः** फर्म के सामनें सबसे बड़ी चुनौती होती है कि वह एक स्थिर दर पर आगे बढ़े। बदलते बाजार की परिस्थिति में फर्म यह सुनिश्चित कर सकती है कि एं समय में तेजी से वृद्धि और दूसरे समय कम वृद्धि चाहे। एक लंबे समयातंराल फर्म के लिए यह आंकलन करना काफी कठिन होता है कि वह किस वृद्धि दर को हासिल करे।
4. **परस्पर निर्भरताः** यह सिद्धान्त मानता है कि फर्म स्वतंत्र रुप से निर्णय लेती है। यह सिद्धान्त अल्पाधिकारी फर्मों की उपेक्षा करता है, जहां परस्पर निर्भरता काफी अधिक होता है। इसका आशय है जब फर्म, मूल्य और उत्पादन का सामना कर रहा होता है तो यह अपने प्रतिद्वन्दी फर्म के प्रतिक्रिया पर ध्यान नहीं देता है।

11.6 फर्म की सुरक्षा

रोथचिड के अनुसार फर्म का उद्देश्य अधिकतम लाभ अर्जित करना नहीं होता है बल्कि वह लंबी अवधि तक लाभ का एक नियमित प्रवाह बना नियमित प्रवाह बनाये रखना चाहता है। अर्थात् फर्म लाभ की सुरक्षा प्राप्त करने में रूचि दिखलाते हैं। इस सिद्धान्त के अनुसार, पूर्ण प्रतियोगिता या एकाधिकारिक प्रतियोगिता में अन्दर लाभ अधिकतमीकरण उचित है जहां फर्मों की संख्या अधिक होती है। एकाधिकारी के सन्दर्भ में यहां कोई प्रतियोगिता नहीं होती है, लाभ की सुरक्षा सुनिश्चित होती है। रोथचिड के अनुसार अल्पाधिकार मं यह मान्यता वैद्य नहीं होती है। अल्पाधिकार में फर्म लाभ के द्वाराा प्रेरित नहीं होती है। ये बाजार में सुरक्षित स्थिति को प्राप्त करना चाहती है। फर्म का मुख्य उद्देश्य लंबे समय तक खुद को बनाये रखना होता है।

11.7 सीर्ट और मार्च का व्यवहारवादी सिद्धान्त

सीर्ट और मार्च के अनुसार जगत में काफी ज्यादा अनिश्चितता होती है। फर्मों को सूचनाएं आसानी से उपलब्ध नहीं होती है अर्थात् सही/शुद्ध आंकड़े नही मिलते हैं। प्रबंधक को जो आंकड़े उपलब्ध होते हैं, समय प्रतिबन्ध के कारण प्रबन्धक उसका उपयोग नहीं कर पाता है। इसके अलावा, मैनेजर कई प्रतिबन्धों के अन्दर कार्य करता है। ऐस स्थितियां के अन्तर्गत फर्म को लाभ अधिकतमीकरण मान्यता के साथ कार्य करना काफी कठिन हो जाता है। इसलिए फर्म एक संतोषप्रद लाभ को प्राप्त करना चाहती है। फर्म का यही व्यवहार संतोषप्रद व्यवहार के रुप में जाना जाता है। फर्म कई समूहों से सम्बन्धित होती है जैस कि अंशधारी, प्रबंधक, श्रमिक, आगतों का पूर्तिकर्ता, ग्राहक, बैंकर इत्यादि। इन सभी समूहों की अपनी अलग प्रत्याशा या लक्ष्य होते है और संगठन इन विभिन्न समूहों क लक्ष्यों को संतुष्ट करना चाहता है।

इस सिद्धान्त की आलोचना निम्न आधारों से की जाती हैः

- ❖ यह सिद्धान्त लम्बे समय में गत्यात्मक स्थिति में फर्म के व्यवहार की व्याख्या करने में असफल है।
- ❖ फर्म क भविष्य की क्रियाएं आसानी से अनुमानित नहीं की जा सकती है।
- ❖ उद्योग के संतुलन को यह सिद्धान्त समझा नहीं पाता है।
- ❖ यह सिद्धान्त का अल्पाधिकारिक बाजार में फर्म के परस्पर निर्भरता व व्यवहार की व्याख्या नहीं करता है।

11.8 प्रबन्धकीय उपयोगिता का अधिकतमीकरण

यह सिद्धान्त प्रबन्धकीय विचार शीलता के सिद्धान्त के रुप में भी जाना जाता है। इस सिद्धान्त की मान्यता है कि अंशधारी व प्रबन्धक दो अलग समूह है, जिनके लक्ष्य अलग–अलग होते हैं। अंशधारी समूह लाभ को अधिकतम करने में अधिक रूचि दिखाता है जबकि प्रबन्धक समूह का उद्देश्य लाभ अधिकतम करने से इतर होता है।

दूसरे शब्दों में, अंशधारी अधिक लाभांश की इच्छा करते हैं और लाभ अधिकतम करने में रूचिकर होते हैं। जब प्रबन्धक अंशधारियों को स्वीकार्य लाभ स्तर को प्राप्त कर लेता है तअ वह अपने वेतन, स्टॉफ के आकार और उन पर व्यय बढ़ाने को स्वतंत्र होते हैं।

विलियम्सन के अनुसार, प्रबन्धकी उपयोगिता फलन को इस प्रकार प्रदर्शित कर सकते हैं:

$$U = f(S, M, I_D)$$

जहां,

U = प्रबन्धकीय उपयोगिता,
S = स्टॉफ के उपर अतिरिक्त व्यय,
M = प्रबन्धकीय परिलब्धि,
I_D = विवेकाधीन निवेश।

इन सभी चरों की व्याख्या नीचे की गई है।

स्टॉक में विस्तारः प्रबन्धक, अच्छी गुणवत्ता और ज्ञान के लिए स्टॉफ के विचार में अधिक रूचि दिखाते हैं। प्रबंधक के अन्दर ज्यादा स्टॉफ उसके वेतन और प्रतीष्ठा में वृद्धि करती है। अर्थात् प्रबन्धक अपने नीचे काम करने वाल कर्मकारों की संख्या को बढ़ाने में रूचि रखता है। इस प्रक्रिया में, जब ज्यादा व्यक्ति काम में रहेगें, प्रबन्धक ज्यादा वेतन के लिए दावा कर सकता है।

प्रबन्धकीय परिलब्धि में वृद्धिः प्रबन्धकीय उपयोगिता भी प्रबंन्धन परिलब्धि पर आश्रित होता है। यह ऑफिसों में अधिकतम आराम को समाविष्ट करता है जैसे कि कार्यालय के लिए ज्यादा कार, दूरदर्शन, वातानुकूलित आदि। इन सुविधाओं की बेहतर उपलब्धता प्रबन्धक के रूतबा, शक्ति और सम्मान को रेखांकित करती है।

विवेकाधीन निवेश शक्तिः सामान्य आवश्यकताओं के अतिरिक्त प्रबन्धकीय उपयोगिता भी प्रबन्धकों के धन निवेश की शक्ति पर आश्रित होता है। यह उद्योग में नये तकनीकों में निवेश को बढ़ावा देता है। इस तरह के कुछ निवेश जरूरी नहीं है कि संगठन के लिए लाभप्रद ही हों। यह निवेश स्वचालित हो सकती है जो कि समय के बीतने के साथ महंगी सिद्ध हो सकती है। लेकिन ऐसे सुधार प्रबन्धक के रूतबा में सुधार लाती है।

आलोचना

यह सिद्धान्त मौद्रिक और गैर मौद्रिक साधनों को जोड़ती है। इन लाभों के साथ भिन्न उपयोगिता होती है। विलासिताओं पर ज्यादा महत्व देना है, अंशधारियों को पसन्द/स्वीकार्य नही हो सकता है। इसके बावजूद यह फर्म के लाभ धारणीयता कमी में परिणत होगी।

11.9 सारांश

फर्म दुलर्भ स्त्रोतों को विभिन्न विकल्पों में आवंटन के संदर्भ में कई निर्णय लेती है। वह विभिन्न संसाधनों की लागतें और उनके प्रतिफल पर भी ध्यान देती है। क्लासिकल अर्थशास्त्रियों का विचार था कि फर्म का मुख्य उद्देश्य लाभ अधिकतम करना है। कारण यह था कि अधिकांशतः फर्म के प्रबन्धक तथा स्वामी एक हीं व्यक्ति थे। लेकिन आधुनिक समय में फर्मों का वास्तविक प्रबन्धन शेयरधारकों द्वारा नियुक्त प्रबन्धकों के हाथों में होता है। इस प्रकार आधूनिक फर्मों के कई उद्देश्य है जो कि एक फर्म से दूसरे फर्म में अलग–अलग हो सकते हैं। फर्म के विभिन्न उद्देश्यों में लाभ अधिकतमीकरण, बिक्री अधिकतमीकरण, संन्तुष्टि अधिकतमीकरण, संवृद्धि अधिकतमीकरण आदि हो सकते हैं। बॉमल के सिद्धान्त के अनुसार यदि फर्म अधिकतम आय चाहती है तो उसकी लाभ देयता घटेगी। दूसरी ओर यदि फर्म न्यूनतम लाभ प्राप्त करना चाहती है जो फर्म की आय अधिकतम होगी। सिटोवास्की के द्वारा दिये गये 'सन्तुष्टि अधिकतमीकरण' सिद्धान्त के अनुसार साहसी लाभ की कीमत पर भी अधिकतम सन्तुष्टि प्राप्त करना चाहता है। लाभ की निश्चित स्तर के बाद लाभ की अपेक्षा आशय को अधिक बरीयता दी जाती है। पेनरोज के संवृद्धि अधिकतमीकरण सिद्धान्त के अनुसार, प्रबन्धक फर्म की लाभ अधिकतमीकरण की अपेक्षा संवृद्धि के अधिकतमीकरण में अधिक रूचि रखते हैं। फर्म की सुरक्षा सिद्धान्त के अनुसार फर्म का उद्देश्य अधिकतम लाभ प्राप्त करने के बजाय लाभ के स्थिर प्रवाह को बनाये रखना है।

फर्म व्यावसायिक जगत की अनिश्चितताओं के कारण सन्तोषजनक लाभ का प्रयास करती है। प्रबन्धकीय विवेकशीलता सिद्धान्त के अनुसार प्रबन्धक लाभ की न्यूनतम सीमा के अन्दर अपनी उपयोगिता फलन को अधिकतम करने का प्रयास करते हैं। इस प्रकार फर्म के कई सिद्धान्त हैं और उनकी अपनी–अपनी विशेषताएं है और किसी साहसी के द्वारा उत्कृष्ट मॉडल का चुनाव उसके व्यवसाय की प्रकृति तथा केन्द्र बिन्दु पर निर्भर करता है।

11.10 शब्दावली

लाभ अधिकतमीकरणःप्रत्येक फर्म का प्राथमिक उद्देश्य इसके परिचालन से अधिकतम आय प्राप्त करना है।

सम्पति अधिकतमीकरणःसम्पत्ति को अधिकतम करना फर्म का दीर्घकालीन उद्देश्य है क्योंकि यह अपने निवेश के प्रतिफल को अधिकतम करना चाहती है।

11.11 बोध प्रश्न

(E) रिक्त स्थानों को भरें।

1. कुल आय और कुल लागत के बीच का अन्तर .... को प्रदर्शित करता है।
2. सीमान्त आगम और सीमान्त लागत के बीच समानता अधिकतम लाभ .... है।
3. ऐसा वित्तीय नीति, जो धनात्मक निबल वर्तमान मूल्य सृजित करता है, ... है।
4. बिक्री से सम्बन्धित आंकड़े .... के आंकड़ों की तुलना में आसानी से उपलब्ध है।

5. एक विशिष्ट स्तर के बाद लाभ की जगह आराम को पसंद किया है, जो .... जरूरत है।
6. सीमान्त उपयोगिता की अवधारणा .... पर अधिक जोर देता है।

(F) सत्य या असत्य

7. लाभ अधिकतमीकरण सिद्धान्त के अनुसार प्रबंधन उत्पाद के स्तर का निर्णय लेता है, जो, न्यूनतम लागत पर हो।
8. लाभ बाह्य कारकों का मूल्य स्त्रोत है।
9. लाभ अधिकतमीकरण की अवधारणा, मुद्रा के समय मूल्य को नहीं स्वीकारता है।
10. बॉमेल के फर्म सिद्धान्त में, फर्म अने बिक्री मूल्य को बढ़ाने के लिए उत्साहित होता है।
11. मैरीस के फर्म सिद्धान्त में, फर्म के प्रबंधक संवृद्धि दर को अधिकतम करना चाहते हैं।
12. व्यापारिक साहसी द्वारा आंतरिक वित्त की जगह बाह्य वित्त को पसंद किया जाता है।

11.12 बोध प्रश्नों के उत्तर

(A) 1. निवल आय, 2. प्रथम कोटि, 3. धन, 4. लाभ, 5. संतुष्टि अधिकतमीकरण की अवधारणा, 6. विलासिता

(B) 1. असत्य, 2. असत्य, 3. सत्य, 4. असत्य, 5. सत्य, 6. असत्य

11.13 स्वपरख प्रश्न

(C) लघु उतरीय प्रश्न

3. लाभ अधिकतमीकरण फर्म का आधारभूत उद्देश्य कैसे है?
4. बिक्री अधिकतमीकरण फर्म के व्यवहार की व्याख्या करें।
5. विलियमसन और मेरिस मॉडल के प्रबंधकीय उद्देश्यों की तुलना करें।

(D) दीर्घ उतरीय प्रश्न

5. लाभ अधिकतमीकरण की अवधारणा की विस्तृत चर्चा करें।
6. सम्पत्ति अधिकतमीकरण मॉडल की व्याख्या करें।
7. संवृद्धि अधिकत्तमीकरण अवधारणा की व्याख्या करें।
8. साइरट मार्च के व्यवहारिक सिद्धान्त की चर्चा करें।

11.14 सन्दर्भ पुस्तकें

1. Cyert, R. M. and J. G. March, A Behavioural Theory of the Firm, Englewood Cliffs, N. J., Prentice Hall, 1963.
2. Chamberlin, E. H., The Theory of Monopolistic Competition, Cambridge, Mass : Harvard University Press, 1933.
3. Mrs. J. Robinson, The Economics of Imperfect Competition,London, Macmillan, 1933.
4. Jhingan, M. L. Advanced Economic Theory, Vrinda Publications (P) Ltd., New Delhi.

*****

इकाई 12 बाजार व्यवस्था और संस्थिति

इकाई की रूपरेखा

12.1 प्रस्तावना
12.2 बाजार संरचना
12.3 पूर्ति विश्लेषण
12.4 सन्तुलन
12.4.1 सन्तुलन क्या है?
12.4.2 मांग और पूर्ति का संतुलन
12.4.3 संतुलन कीमत
12.4.4 मांग एवं पूर्ति में उच्चावचन का सन्तुलन कीमत पर प्रभाव
12.4.5 मांग एवं पूर्ति के शर्तों में परिवर्तन
12.5 सारांश
12.6 शब्दावली
12.7 बोध प्रश्न
12.8 बोध प्रश्नों के उत्तर
12.9 स्वपरख प्रश्न
12.10 संदर्भ पुस्तकें

उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप इस योग्य हो सकेंगे कि –

- विभिन्न प्रकार के बाजार संरचना को समझ सकें।
- सभी प्रकार के बाजार में फर्म की संस्थिति मानदण्डों को समझ सकें।

12.1 प्रस्तावना

वस्तु का मूल्य और उसकी पूर्ति एक दूसरे से जुड़े हुए हाते है। जब वस्तु की प्रर्ति में परिवर्तन वस्तु के मूल्य की वजह से होता है तो परिणामस्वरुप वस्तु की पूर्ति में विस्तार तथा संकुचन होता है। जब मूल्य बढ़ता है तो पूर्ति बढ़ती है। तथा जब मूल्य गिरता है तो पूर्ति संकुचित होती है। पूर्ति का नियम वस्तु की मात्रा तथा उसके मूल्य के बीच संबंध को दर्शाता है।

वस्तु की मांग तथा पूर्ति बाजार के स्वरुप पर निर्भर करती है। वस्तु का मूल्य उस स्थान पर निर्धारित होता है, जिस स्थान पर वस्तु की मांग, वस्तु की पूर्ति के बराबर होती है। वस्तु की मात्रा को जिस संतुलित मूल्य पर क्रय तथा विक्रय किया जाता है। वह संतुलित मूल्य कहलाता है। यह मात्रा, पूर्ति, पूर्ति के नियम, बाजार के स्वरुप तथा संतुलन की स्पष्ट व्याख्या करता है।

संतुलन का बिन्दु, ''स्थिर स्थिति'' संतुलन की स्थिति की स्थिति तथा कोई परिवर्तन न होने को दर्शाता है। फर्म एक मात्र इकाई है जो की वस्तु का उत्पादन तथा विक्रय करती है। एक फर्म संतुलन के बिन्दु पर उस स्थान पर होती है, जहां पर उत्पादन में कोई परिवर्तन न हो। यदि फर्म अधिकतम संभावित लाभ के स्तर तक पहुंच जाती है तो उसमें उसके अपने उत्पादन की बदलने की प्रवृति नहीं पायी जाती है। फर्म संतुलन के बिन्दु पर उस स्थान पर होती है, जहां

फर्म का लाभ अधिकतम होता है। यदि फर्म अपने उत्पादन का विस्तार तथा संकुचन करती है तो, फर्म का कुल लाभ, अधिकतम लाभ से कम होता है।

इस इकाई में फर्म के संतुलन को समान तौर पर बताया गया है जिसमें वस्तु की बाजार के सभी प्रकारों के अन्तर्गत रख गया है। इसके सरलीकरण के लिए, इसका विश्लेषण कुछ मान्यताओं पर आधारित है। इसके अनुसार, साहसी समझदार व्यक्ति है, तथा फर्म के लाभ को अधिकतम करना चाहता है। एक अन्य मान्यता के अनुसार फर्म के पास संतुलन के बिन्दु का पूर्ण ज्ञान है। तीसरी मान्यता के अनुसार फर्म केवल एक वस्तु का उत्पादन करता है।

12.2 बाजार संरचना

एक फ्रांसिस अर्थशास्त्री, कार्ने के अनुसार, बाजार वह स्थान नहीं है जहां वस्तु का क्रय–विक्रय होता है। ये वास्तव में उस अवस्था को दर्शाता है, जिस स्थान पर वस्तु की मांग उसके विक्रय के लिए होती है। विक्रेता, वस्तु का क्रय किसी दूसरे विक्रेता से करता है जबकि वस्तुएं एक समान है।

1. **क्रेता व विक्रेता की संख्याः** यदि बाजार में विक्रेताओं की संख्या अधिक होगी तो इसका बहुत कम प्रभाव किसी एक फर्म पर पड़ेगा; लेकिन अगर बाजार में विक्रेताओं की संख्या कम होगी तो इसका अधिक प्रभाव क्रेता एवं विक्रेताओं पर पड़ेगा। यदि फर्म एक प्रभावशील इकाई है तो इसका अधिक प्रभव मांग एवं पूर्ति पर पड़ेगा।

   इसी प्रकार यदि बाजार में अधिक क्रेता होगें तो, मोल भाव कमजोर होगा।
2. **वस्तु विभेदः** एक वस्तु का दूसरे वस्तु से पूर्णतया अलग होना। जब बाजार में वस्तु विभेद होता है तब, बिक्रेता के द्वारा लिया गया निर्णय वस्तु के विशेष गुण से प्रभावित होता है।
3. **प्रवेश व निकास की स्थितिः** प्रवेश व निकास की स्वतंत्रता बाजार के स्वरुप पर निर्भर करती है। यदि फर्म के प्रवेश पर प्रतिबन्ध लगा हो तो, मौजूदा फर्म को प्रतियोगिता का कोई भय नहीं होता और वह अपने नियमों में ज्यादा स्वतंत्रता महसूस करती है।

   फर्म निकास की अवस्था में तब होती है, जबकि फर्म घाटे में होती है तथा उसके संसाधनों का पूर्णतया दोहन, दूसरी वस्तुओं के उत्पादन के लिए होता है।

पूर्ण प्रतियोगिता

पूर्ण प्रतियोगिता के आधारभूत लक्षण निम्नलिखित हैः

1. **बहुसंख्यक क्रेता तथा बिक्रेताः** इसमें असीमित संख्या में क्रेता तथा विक्रेता बाजार में उपस्थित होते हैं। उदाहरण के लिए मान लीजिए की बहुत से किसान गेंहूं का उत्पादन कर रहे हैं। यदि उनमें से कोई गेहूं का उत्पादन कम करेगा तो वह बाजार के मूल्य को प्रभावित नहीं करेगा। इसमें असीमित संख्या में विक्रेता होते हैं। यहां तक की समस्त बिक्रेता एक साथ मिलकर भी मूल्य को नहीं प्रभावित कर पाते क्योंकि प्रत्येक क्रेता व विक्रेता उंट के मुंह में जीरे के समान है।

2. **सजातीय वस्तुएं:** वे वस्तुएं, जिसके अधिक संख्या में क्रेता एवं विक्रेता एक सजातीय होते हैं, वे एक दूसरे से स्थानान्तरित किये जा सकते हैं, यदि एक विक्रेता मूल्य बढ़ाता है तो, क्रेता इसे दूसरे विक्रेता मूल्य बढ़ाता है तो, क्रेता इस दूसरे विक्रेता से खरीद लेता है।
3. **फर्म का स्वतंत्र प्रवेश व विकास:** इसमें नई फर्म के प्रवेश पर कोई भी प्रतिबंध नहीं लगा होता है, न ही अवस्थित फर्म के निकास पर हीं कोई रोक होता है।
4. **फर्म मूल्य को नहीं प्रभावित करती है:** अब चूंकि, बाजार में क्रेता तथा विक्रेताओं की संख्या अधिक होती है, कोई भी फर्म वस्तु के मूल्य तथा उसकी पूर्ति को प्रभावित नहीं कर पाती है। फर्म मूल्य निर्धारक की अपेक्षा मूल्य अर्जन करती है। मूल्य का निर्धारण कुल मांग तथा पूर्ति के द्वारा होता है। कोई भी फर्म अधिक मूल्य नहीं लगाती है।
5. **पूर्ण ज्ञान:** सभी क्रेता तथा विक्रेताओं को बाजार का पूर्ण ज्ञान होता है।
6. **परिवहन मूल्य:** परिवहन का मूल्य नहीं लगता क्योंकि वस्तु जहां पर उत्पादित होती है उसी जगह उसकी मांग होती है।
7. **उत्पादन के साधनों का पूर्ण स्थापना:** उत्पादन के साधन एक स्थान से दूसरे स्थान पर जा सकते हैं। वस्तु के आवागमन पर कोई बाधा नहीं होती है। ये नई फर्म के प्रवेश तथा मौजूद फर्म के विकास में सहायक होती है। अब हम विशुद्ध व पूर्ण बाजार में विभेद करेगें।

एकाधिकार

जब की संपूर्ण बाजार में एक हीं विक्रेता होता है, तो एकाधिकार कहलाता है। एकाधिकार ही अवस्था में केवल एक हीं क्रेता तथा बिक्रेता होता है।

एकाधिकार की विषेषताएं:

1. **एकमात्र विक्रेता:** एकाधिकार अंग्रेजी के शब्द, 'मोनोपॉली' में 'मोनो' का अर्थ एक तथा 'पॉली' का अर्थ विक्रेता है। इस प्रकार एकाधिकार का अर्थ एक से है। उत्पादक या तो कोई व्यक्ति, सरकार फर्म हो सकती है। लेकिन केवल एक हीं उत्पादक बाजार में हों।
2. **कोई नजदीकी स्थानापन्न नहीं:** बाजार में वस्तु की कोई भी स्थानापन्न वस्तु उपलब्ध नहीं है।
3. **फर्म का प्रवेश प्रतिबन्धित है:** उद्योग में नये फर्म का प्रवेश प्रतिबन्धित है, जिससे एकाधिकारी का बाजार पर नियंत्रण सुरक्षित रहता है।

क्रेता एकाधिकार

क्रेता एकाधिकार ऐसी बाजार स्थिति है जिसमें वस्तु और सेवाओं का एक हीं क्रेता होता है। उदाहरण के लिए, यदि किसी क्षेत्र में एक हीं उद्योग है, जो श्रमिकों का एक मात्र क्रेता है, तो इसी स्थिति में श्रम बाजार में क्रेता एकाधिकार की स्थिति होगी।

द्विपक्षीय एकाधिकार

द्विपक्षीय एकाधिकार ऐसी बाजार स्थिति है, जहां एकाधिकारी एक क्रेता एकाधिकारी के सामने होता है, अर्थात एक उत्पादक एक क्रेता से संबंधित होता है।

इस प्रकार के बाजार की मुख्य विशेषताएं निम्नलिखित है:

1. एक हीं वस्तु का उत्पादन बिना किसी स्थानापन्न वस्तु के होता है।
2. एकाधिकारी हीं एक मात्र उत्पादक होता है।
3. केता एकाधिकारी हीं एक मात्र केता होता है।
4. एकाधिकारी अपने लाभ को अधिकतम करना चाहता है, जबकि केता एकाधिकारी अपनी उपयोगिता को अधिकतम करना चाहता है।

एकाधिकारात्मक प्रतियोगिता

इस प्रकार की बाजार व्यवस्था में अधिक मात्रा में विकेता विभेदी वस्तुओं का विकय करते है। ऐसी स्थिति तब आती है जब बिकेता वस्तु को विभिन्न ब्रांड के नाम से बेचता है, जैसे, साबून, डिटर्जेंट, सैम्पू इत्यादि। पर प्रत्येक फर्म केता के समूह में कुछ हद तक एकाधिकार तत्व का अनुभव करता है। जो उसके ब्रांड की वस्तु को हीं पसंद करते हैं। अतः एकाधिकार और प्रतियोगिता इस बाजार व्यवस्था में एक साथ रहती है। एकाधिकारात्मक प्रतियोगिता की विशेषताएं निम्नांकित है।

1. **अधिक संख्या में केता और विकेताः** बहुत अधिक संख्या में केता और बिकेता होते है। प्रत्येक बिकेता अपने लक्ष्य के लिए कियाशील रहते हैं, एक दूसरे पर निर्भरता नहीं होती है।
2. **वस्तु विभेदः** यह एकाधिकार की प्रमुख विशेषता है। वस्तु में अन्तर एक या दूसरे तरफ होता है। ये या तो वास्तविक होगा या फिर काल्पनिक के साथ ये केता तथा विकेता के लिए आवश्यक है। वस्तुएं एक दूसरे की पूर्णतया स्थानापन्न नहीं बल्कि आपसी स्थानापन्न होती है। वस्तुओं के बीच में बहुत कम अंतर होता है।
3. **विज्ञापन तथा विकय लागतः** वस्तु को ये बताना की ये सही है का मात्र एक हीं रास्ता विज्ञापन है। विज्ञापन बिकेताओं के मनोवैज्ञानिक किया को प्रभावित करता है; और यह काल्पनिक विभेद भी वस्तुओं के मध्य में पैदा करता है। बिकय मूल्य और विज्ञापन का प्रभाव मांग को प्रभावित करता है। इस प्रकार वह मांग को कम लोचदार बनाता है।
4. **फर्मों का स्वतंत्र प्रवेश एवं विकासः** किसी भी अकेली फर्म का पूर्ण नियंत्रण बाजार पर नहीं होता है बल्कि वस्तु की मांग पर होता है। फर्मों को वस्तुआं के उत्पादन के लिए स्वतंत्रता होती है। ताकि वह वस्तुओं का उत्पादन करके पूर्ण स्थापन्न ला सके। इसक पश्चात् जो भी फर्म घाटे में होती है तो उसे बाजार छोड़ने की पूर्ण स्वतंत्रता रहती है।

अल्पाधिकार

अल्पाधिकार बाजार की वह अवस्था है जिसमें केता व विकेताओं की संख्या कम होती है तथा वह एक दूसरे के पूर्णतया स्थानापन्न होते हैं। अल्पाधिकार की विशेषताएं निम्नलिखित हैं:

1. **एक दूसरे पर निर्भरताः** यह अल्पाधिकार की मुख्य विशेषता है। निर्भरता का आशय निर्णय लेने की निर्भरता पर है। विकेताओं की संख्या कम होती है तो जब भी कोई विकेता मूल्य में परिवर्तन करता है तो इसका प्रभाव इसके प्रतिद्वन्दी पर पड़ता है। मान लीजिए कि दो विकेता हैं, व तो जब अपने मूल्य को बढ़ाता है तो भी इसमें प्रभावित होकर मूल्य को बढ़ाता है, क्योंकि यह एक दूसरे के स्थानापन्न होते हैं। इसके बाद वह मूल्य को

स्थिर नहीं रखते हैं बल्कि वह इस मूल्य को घटाते रहते हैं। अल्पाधिकार में बिक्रता की क्रिया उसके प्रतिद्वन्दी की प्रतिक्रिया होती है।

2. **विक्रय व विज्ञापन लागत का महत्वः** विज्ञापन व बिक्रय लागत विक्रय तथा आय को बढ़ाने के लिए आवश्यक होते हैं। अल्पाधिकार मूल्यों का प्रयोग एक शक्तिशाली अस्त्र के रुप में करते हैं।
3. **सामूहिक स्वभावः** समूह के स्वभाव की तरफ अल्पाधिकार में झुकाव होता है। निर्भरता की वजह से, विक्रेता समूह को बढ़ाने बल्कि उसे बढ़ावा देने की ओर कदम बढ़ाते हैं न कि उसे दबाने की ओर।

12.3 पूर्ति विश्लेषण

किसी भी वस्तु की पूर्ति, क्रेता द्वारा एक निर्धारित समय में एक निश्चित मूल्य पर बेचने के लिए वस्तुओं को लेकर आता है, वह पूर्ति कहलाती है। पूर्ति का आशय यहां पर विक्रय के लिए लायी गई वस्तुओं से है ना कि वस्तुओं के भण्डार से।

पूर्ति अनुसूचीः पूर्ति अनुसूची से आशय एक समय में वस्तुओं तथा सेवाओं की पूर्ति अलग–अलग मूल्यों पर करने से है। ये वस्तु की मात्रा तथा बाजार में वस्तु के मूल्य के बीच संबंध को दर्शाती है। अब हम चावल के लिए पूर्ति अनुसूची का विश्लेषण करेंगें।

सारणी 12.1: चावल के लिए पूर्ति अनुसूची

मूल्य	मात्रा किलो ग्राम में
50	100
75	150
100	200

पूर्ति अनुसूची में दिये गये आंकड़ों के आधार पर पूर्ति वक्र का निर्माण निम्न रूप से कर सकते हैं।

X–अक्ष चावल की मात्रा तथा Y–अक्ष उसके मूल्य को दर्शाता है । जैसे–जैसे मूल्य बढ़ता है, चावल की पूर्ति की मात्रा भी बढ़ती है।

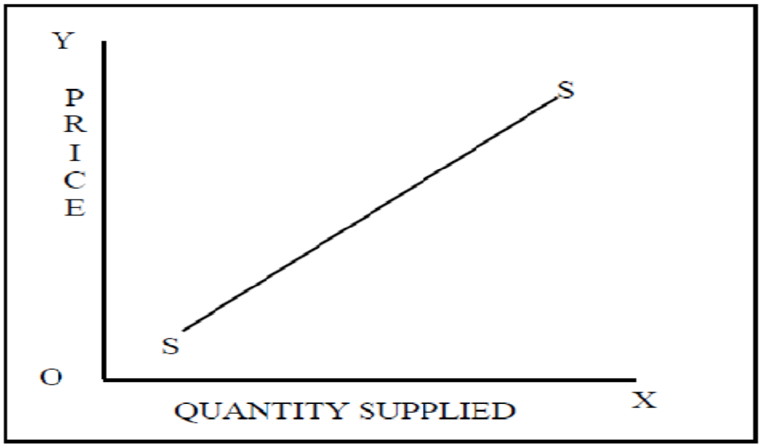

चित्र 12.1: पूर्ति वक्र

पूर्ति का नियम

पूर्ति का नियम किसी निश्चित वस्तु के मूल्य तथा उसकी पूर्ति के बीच संबंध को दिखाता है। ये सम्बन्ध धनात्मक होगा, यदि मूल्य के बढ़ने से पूर्ति में भी वृद्धि हो। यहां हम यह मान्यता लेते हैं कि मूल्य में परिवर्तन होगा तथा अन्य चीजें स्थिर होगी।

चित्र 12.2 में, X–अक्ष वस्तु की पूर्ति तथा Y–अक्ष वस्तु के कीमत को प्रदर्शित करती है। पूर्ति वक्र उपर की ओर बढ़ती हुई है जोकि यह प्रदर्शित करती है की वस्तु की मात्रा तथा मूल्य एक दूसरे से संगत है।

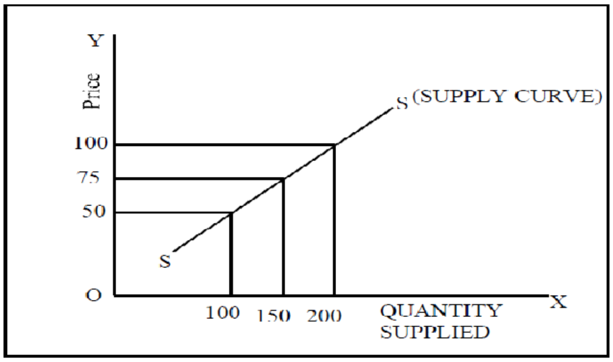

चित्र 12.2: पूर्ति का नियम

इस नियम के अपवादः निम्नलिखित स्थितियों पर पूर्ति का नियम सही नहीं हैं:

1. ये संभव है कि विक्रेता वस्तु का ज्यादा विक्रय करे जबकि मूल्य कम हो, लेकिन ये केवल अल्पकाल में हीं संभव है।
2. तकनीकि में सुधार की वजह से उत्पादन की लागत घट जायेगी, परिणामस्वरुप ज्यादा वस्तुओं का विक्रय घटे हुए मूल्य पर होगा।
3. उत्पाद के अप्रचलन व उपभोक्ताओं के पसंद और वरीयताओं में हुए परिवर्तन के कारण में बिक्री में हुई कमी को बढाने के लिए मूल्य में कमी करनी पड़ती है ।

पूर्ति में विस्थापन

पूर्ति में परिवर्तन होता है जबकि वस्तु की पूर्ति की मात्रा में परिवर्तन किसी साधन की वजह से होता है, न कि मूल्य की वजह से। इस स्थिति में पूर्ति वक्र पूर्णतया दांये से बांयी ओर परिवर्तित हो जायेगी।

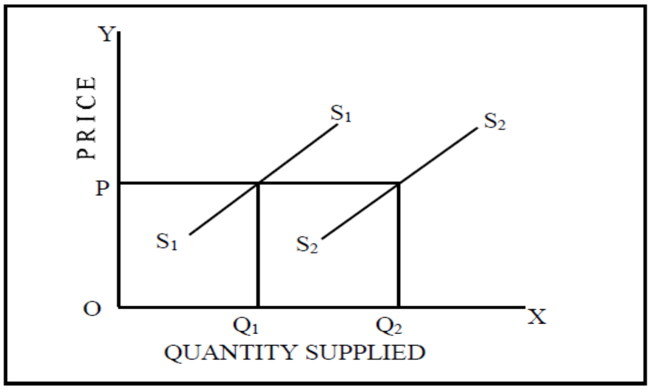

चित्र 12.3: दायीं ओर पूर्ति वक्र का विस्थापन

यदि आम के बाजार में विक्रेताओं की संख्या बढ़ती है तो मूल्य स्थिर होता है तथा पूर्ति बायीं ओर परिवर्तित हो जाता है।

इस चित्र में X–अक्ष वस्तु की मात्र तथा Y–अक्ष की मूल्य को प्रदर्शित करती है। जब बाजार में विक्रेताओं की संख्या बढ़ती है तो पूर्ति वक्र बांयें से दायीं ओर परिवर्तित हो जाती है। अब हम पूर्ति वक्र के दायें से बायीं आर परिवर्तित होते दीखेंगें, जबकि आय के विक्रेताओं की संख्या घटती है।

चित्र 12.4 पूर्ति वक्र दांये से बांये परिवर्तित हो जाता है जबकि आम के बाजार में विक्रेताओं की संख्या घटती है।

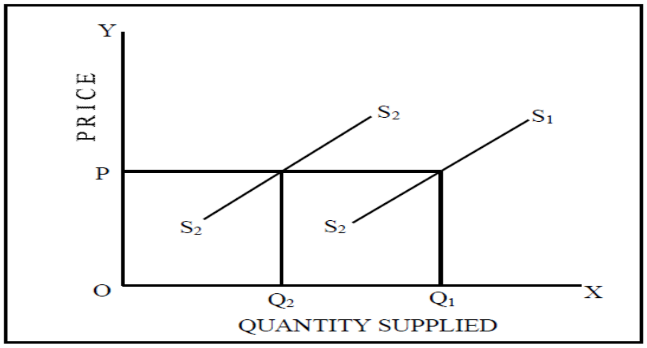

चित्र 12.4: पूर्ति वक्र का बायीं ओर विस्थापन

पूर्ति वक्र का विस्तार एवं संकुचन या पूर्ति वक्र में हीं खिसकना

जब कभी पूर्ति में परिवर्तन मूल्य में परिवर्तन की वजह से होगा, तो हम इसे पूर्ति का विस्तार व संकुचन कहेगें। परिणामस्वरुप, पूर्ति में विस्तार होगा। इस अवस्था में, पूर्ति, उसी पूर्ति वक्र पर और ऊपर जायेगी।

जब मूल्य गिरता है तो, इसकी वजह से पूर्ति में संकुचन होता है। इस अवस्था में पूर्ति वक्र नीचे की ओर गिर जाता है तथा पूर्ति वक्र परिवर्तित नहीं होगा।

मूल्य	पूर्ति की मात्रा
50 (P_1)	100 (Q_1)
75 (P_2)	150 (Q_2)
100 (P_3)	200 (Q_3)

जब चावल का मूल्य P_1 है तो वस्तु की मात्रा Q_1 है, और हम चित्र 12.5 के, बिन्दु A पर प्रदर्शित करते हैं। जब चावल का मूल्य P_1 से P_3 की ओर बढ़ता है तो हम पूर्ति वक्र को बिन्दु C पर पाते हैं। लेकिन जब वापस मूल्य P_3 से P_1 की ओर गिरता है तो हम वापस पूर्ति वक्र के बिन्दु A पर आ जाते हैं। जहां पर चावल की मात्रा Q_2 है।

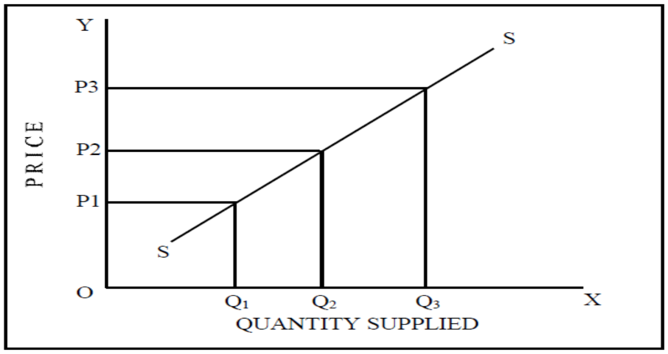

चित्र 12.5: पूर्ति वक्र के साथ चलन

पूर्ति को प्रभावित करने वाले कारक

ये कुछ निम्नलिखित कारक हैं जो कीमत के अलावा भी, पूर्ति को प्रभावित करते हैं:

1. **उत्पादन के लागत में परिवर्तन:** किसी भी वस्तु क उत्पादन के लिए विभिन्न कारकों की आवश्यकता होती है। उत्पादन लागत में वृद्धि उत्पादन के कारकों में वृद्धि से होता है। लागत में वृद्धि के कारण पूर्ति घटती है जबकि लागत में कमी पूर्ति में वृद्धि करता है।
2. **तकनीकि स्थिति:** जब फर्म उत्पादन तकनीक को परिवर्तित करती है, जो उत्पादन लागत को घटाता है, उत्पादन की क्षमता स्वतः हीं बढ़ेगी। यह पूर्ति की गई मात्रा में वृद्धि करता है।
3. **राजनीतिक अस्थिरिता:** राजनीतिक अनिश्चितता निवेश के स्तर में कमी लाती है। इसलिए पूर्ति में कमी होती है।
4. **प्राकृतिक कारक:** प्रतिकूल प्राकृतिक परिवर्तन जैसे, भूकम्प, बाढ़, तथा सूखा आदि पूर्ति पर प्रतिकूल प्रभाव डालते हैं।

पूर्ति की कीमत लोच

पूर्ति की कीमत लोच से तात्पर्य है, 'मूल्य में प्रतिशत परिवर्तन' के कारण पूर्ति की मात्रा में होने वाला प्रतिशत परिवर्तन। इसे निम्नलिखित सूत्र से ज्ञात किया जा सकता है।

$$Es = \frac{\Delta q}{\Delta p} \times \frac{p}{q}$$

$\Delta - change$

$\Delta q - new\ quantity\ \text{supplied} - old\ quantity\ \text{supplied}$

$\Delta p - new\ price - old\ price$

q = पूर्ति की गई वास्तविक मात्रा।

p = वास्तविक मूल्य।

आईए गणितीय उदाहरण को देखें:

एक फर्म 10 रुपये/पेंसिल क हिसाब से 300 पेंसिल की पूर्ति करता है। कुछ महीनों बाद, मूल्य में 10 रूपये प्रति पेंसिल से 20 रुपये होने पर फर्म पेंसिल की पूर्ति में 300 से 600 की वृद्धि करती है। पूर्ति की कीमत लोच ज्ञात करें।

$$Es = \frac{\Delta q}{\Delta p} \times \frac{p}{q}$$

$$= \frac{600 - 300}{20 - 10}$$

$$= \frac{300}{10}$$

$$= 30$$

अतः पूर्ति की कीमत लोच उच्च कोटि की है। यदि पूर्ति के लोच की कोटि 1 से अधिक तब इसे उच्च कोटि का पूर्ति लोच तथा एक से कम होने पर, यह कम लोच पूर्ति कहलाती है।

12.4 संस्थिति/ सन्तुलन

12.4.1 संस्थिति/ सन्तुलन क्या है?

संस्थिति का अर्थ है दो परस्पर विरोधी शक्तियों में संतुलन है। इस अवस्था में विभ्रम की स्थिति अनुपस्थिति रहती है।

12.4.2 मांग और पूर्ति की संस्थिति/ सन्तुलन

मांग और पूर्ति की अवधारणा समझने के बाद, हम इन दोनों में अंतः क्रिया को समझेगें। वह मूल्य जिस पर, पूर्ति मात्रा तथा मांग मात्रा बराबर हो जाये, वहां संस्थिति मूल्य निर्धारित होगा। इस मूल्य म बेचे तथा खरीदे गये मात्रा संस्थिति मात्रा कहलाती है।

बाजार संतुलन का रेखाचित्रीय वर्णनः

बाजार संतुलन बिन्दु E पर होगा जहां DD_1 मांग वक्र तथा SS_1 पूर्ति वक्र एक दूसरे को प्रतिच्छेदित करते हैं। बिन्दु E पर मांग तथा पूर्ति OQ के बराबर होगें।

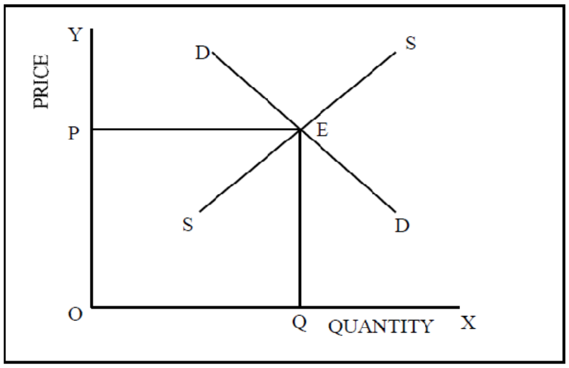

चित्र 12.6: मांग एवं पूर्ति का संतुलन

12.4.3 संस्थिति मूल्य/ संतुलन कीमत

वह मूल्य जिस पर मांग एवं पूर्ति वक्र बराबर होते हैं वह संस्थिति मूल्य कहलाता है। इसे निम्नलिखित रेखाचित्र में प्रदर्शित किया गया है।

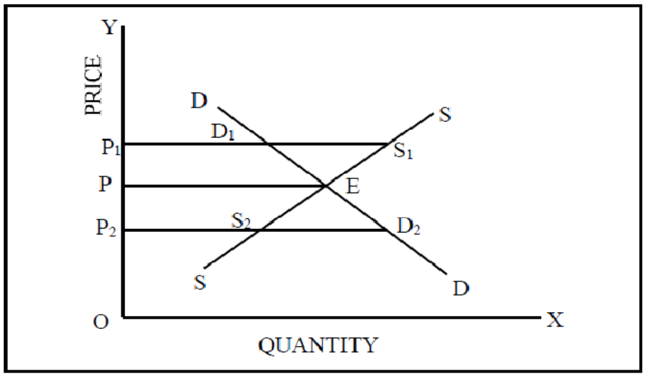

चित्र 12.7: संतुलन कीमत

रेखाचित्र 12.7 में, मात्रा तथा मूल्य को क्रमशः X–अक्ष एवं Y-अक्ष पर प्रदर्शित किया गया है। यदि मूल्य OP_1 तक बढ़ता है तो मांगी गई मात्रा तथा पूर्ति की गई मात्रा क्रमशः P_1D_1 तथा P_1S_1 होगें। यहां पूर्ति मांग के अपेक्षा ज्यादा है। P_1S_1 आधिक्य पूर्ति की मात्रा है। OP_2 पर मांग की कुल मात्रा तथा पूर्ति की

कुल मात्रा क्रमशः P_2D_2 तथा P_2S_2 है। इस अवस्था में, कुल मांग, कुल पूर्ति के बराबर है। आधिक्य पूर्ति S_2P_2 के बराबर है। जब मूल्य OP_2 पर आधिक्य मांग होगी, तो केताओं में प्रतिस्पर्धा होगी जो मूल्य को बढ़ायेगा। जबकि, आधिक्य पूर्ति की अवस्था में पूर्तिकर्ता के बीच प्रतिस्पर्धा होगी, जो मूल्य को घटायेगी। OP_1 वह मूल्य है जहां केता P_1D_1 मात्रा खरीदना चाहेगा, जबकि विक्रेता P_1S_1 मात्रा बेचना चाहेगा। P_1S_1, P_1D_1 से बढ़ा है, विक्रेता अपने उत्पाद को नहीं बेचेगा। इसलिए वे मूल्रू को कम करके इसके इसे खत्म कर देगें तथा मूल्य OP तक नीचे आ जाएगा।

यदि प्रारम्भिक मूल्य OP_2 है तो मांग P_2D_2 होगा जबकि पूर्ति P_2S_2 होगा। S_2P_2 के मांग की अधिकता होगी। केताओं में प्रतिस्पर्धा के कारण मूल्य OP तक बढ़ेगा।

12.4.4 मांग एवं पूर्ति में उच्चावचन का संस्थिति कीमत पर प्रभाव

मांग और पूर्ति की शर्तों में परिवर्तन न होने तक संस्थिति की अवस्था बनी रहेगी। पूर्ति वक्र की स्थिर मान कर मांग वक्र में परिवर्तन करने पर, संस्थिति की अवस्था बिन्दु E पर है, जहां OP मूल्य है तथा मांग एवं पूर्ति की मात्रा OQ है। मांग वक्र का PP से P_1P_1 पर विस्थापित होने पर, आय में वृद्धि के कारण OP_1 नया मूल्य होगा। जबकि OQ_1 नई मात्रा होगी। अतएव संस्थिति बिन्दु E से E_1 विस्थापित होगी। जबकि मांग बढ़े व पूर्ति स्थिर रहे।

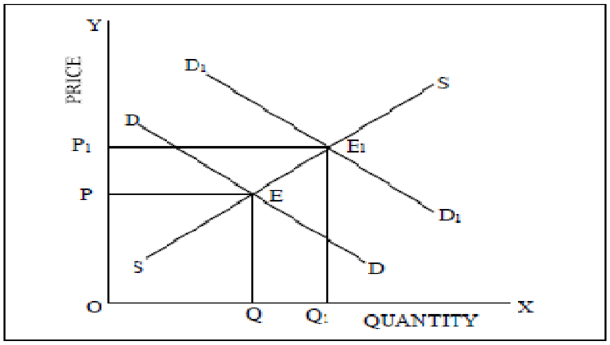

चित्र 12.8: बाजार संतुलन या मांग वक्र में विस्थापन

अब हम पूर्ति वक्र में विस्थापन को देखेंगें, जबकि मांग वक्र स्थिर है।

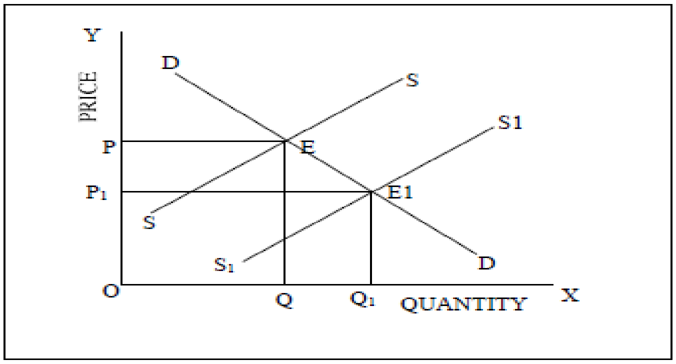

चित्र 12:9 बाजार संस्थिति जब पूर्ति वक्र में विस्थापन

रेखाचित्र 12.9 में पूर्ति वक्र SS का विस्थापन S_1S_1 तक होता है। जब मांग वक्र DD स्थिर हो। पूर्ति में वृद्धि होने के कारण नई संस्थिति मूल्य संस्थिति मात्रा तथा संस्थिति बिन्दु क्रमशः OP_1, OQ_1 तथा E होगा।

नीचे दिये गये सारणी मूल्य और मात्रा पर मांग और पूर्ति में हुई विस्थापन को प्रभाव को दर्शाता है।

सारणी 12.3: मूल्य और मात्रा पर मांग और पूर्ति के विस्थापन का प्रभाव।

यदि मांग बढ़ता है।	मांग वक्र दाहिने ओर विस्थापित होता है।	मूल्य और मात्रा दोनों में वृद्धि होता है।
यदि मांग घटता है।	मांग वक्र बायीं ओर विस्थापित होता है।	मूल्य और मात्र दोनों में कमी होती है।
यदि पूर्ति बढ़ती है।	पूर्ति वक्र दाहिने ओर विस्थापित होता है।	मूल्रू में कमी होती है जबकि मात्रा बढ़ती है।
यदि पूर्ति घटती है।	पूर्ति वक्र बायीं ओर विस्थापित होती है।	मूल्य बढ़ती है तथा मात्रा घटती है।

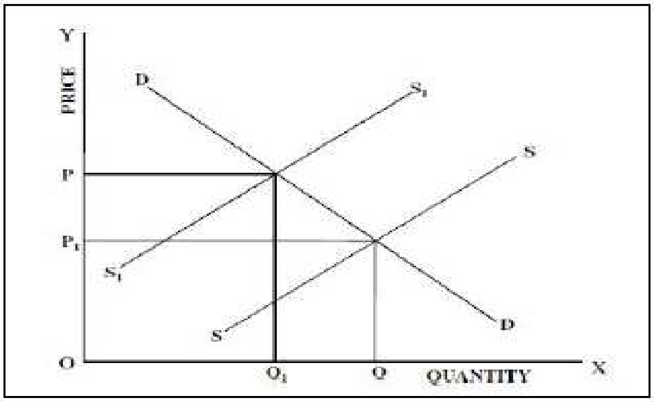

चित्र 12.10: पूर्ति की कीमत एवं मात्रा में विस्थापन का प्रभाव

रेखाचित्र 12.10 में, सारणी 13.3 के आंकड़ों को अधिक स्पष्ट करती है।

रेखाचित्र 12.10 में पूर्ति वक्र SS, SS_1 तक विस्थापित होता है। जबकि, मांग वक्र DD स्थिर है। पूर्ति में कमी होती है, मूल्य OP से OP_1 तक बढ़ती है तथा मात्रा OQ से OQ_1 तक घटती है।

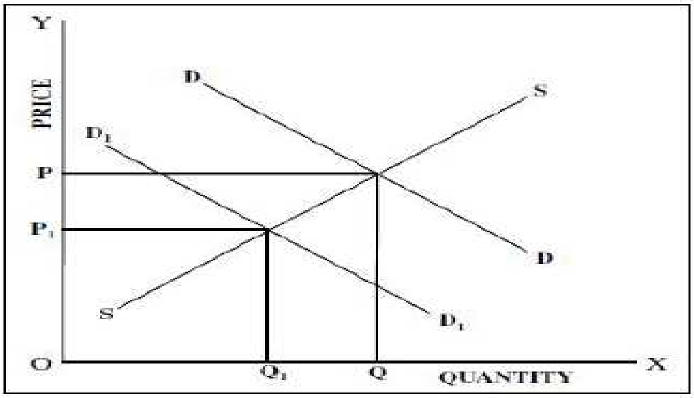

चित्र 12.11: मांग के कीमत एवं मात्रा में विस्थापन का प्रभाव

रेखाचित्र 12.11 से स्पष्ट है कि मांग वक्र DD से D_2D_2 पर विस्थापित हो जाता है। जबकि, पूर्ति स्थिर है। मांग में कमी के कारण मूल्य OP से OP_1 पर विस्थापित होता है तथा मात्रा OQ से घटकर OQ_2 हो जाता है।

12.4.5 मांग एवं पूर्ति की शर्तों में परिवर्तन

मांग एवं पूर्ति दोनों मं विस्थापन की प्रक्रिया को समझने के पश्चात् हम मांग एवं पूर्ति में दोनों में एक साथ होने वाले परिवर्तन को समझेगें।

जब मांग और पूर्ति दोनों एक ही समय में परिवर्तित होते हैं तब मूल्य तथा मात्रा में होने वाला परिवर्तन, मांग और पूर्ति में होने वाले आपसी परिवर्तन की मात्रा पर निर्भर करता है। रेखाचित्र 12.12 में, मांग तथा पूर्ति दोनों का दाहिने ओर विस्थापित होने पर मूल्य अप्रभावित रहेग।

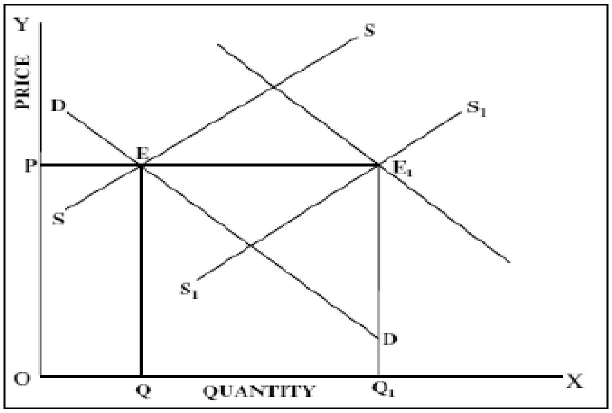

चित्र 12.12: मांग एवं पूर्ति में एक साथ विस्थापन तथा कीमत का अप्रभावित

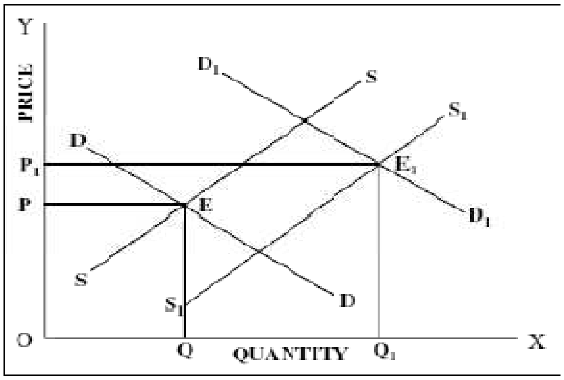

चित्र 12.12: मांग एवं पूर्ति में एक साथ विस्थापन तथा कीमत में वृद्धि

नोटः रेखाचित्र 12.13 में, मांग वक्र में होने वाला विस्थापन पूर्ति वक्र में होने वाले विस्थापन से अधिक है, अतएव मूल्य में वृद्धि हो जाता है।

12.5 सारांश

यह इकाई हमें पूर्ति एवं पूर्ति के नियम की मूलभूत अवधारणाओं से परिचित कराता है। पूर्ति वक्र का ढ़ाल उपर की ओर है। पूर्ति वक्र की पूर्ति सारणी की मदद से बनाया जा सकता है जो मूल्य और पूर्ति की गई मात्रा के बीच प्रत्यक्ष संबंध को दर्शाता है। पूर्ति को अनेकों अन्य कारक भी प्रभावित करते

हैं जैसे उत्पादन की लागत, तकनीकि, मौसम, विक्रेता की संख्या, लागत तथा संबंधित वस्तुओं की कीमतें।

बाजार संस्थिति वह अवस्था है जहां पूर्ति वक्र तथा मांग वक्र एक दूसरे को प्रतिच्छेद करते हैं। यदि यह संतुलन बिगड़ता है तो मूल्य संस्थिति से उपर हो जाती है। पूर्ति, मांग से अधिक होगा जो विक्रेताओं के आधिक्य की अवस्था को बनाता है और यह मूल्य को नीचे गिराता है। मांग में वृद्धि संस्थिति मात्रा, संस्थिति मूल्य दोनों में वृद्धि करता है जबकि मांग में कमी संस्थिति मूल्य तथा मात्रा दोनों में कमी लाती है। पूर्ति में वृद्धि संस्थिति मूल्य में कमी करती है जबकि संस्थिति मात्रा में बढ़ोतरी करती है। इसके विपरीत पूर्ति में कमी संस्थिति मूल्य में वृद्धि एवं संस्थिति मात्रा में कमी करती है। जब पूर्ति और मांग में एक हीं दिशा में विस्थापन होते हैं तो संस्थिति में परिवर्तन अनुमान योग्य रहती है जबकि मूल्य में परिवर्तन का आंकलन नहीं किया जा सकता। जब पूर्ति तथा मांग दोनों विपरीत दिशाओं में विस्थापित होती है तब संस्थिति मूल्य का आंकलन किया जा सकता है जबकि संस्थिति मात्रा का अनुमान नहीं लगाया जा सकता है।

12.6 शब्दावली

संस्थिति कीमतः जिस पर मांग एवं पूर्ति दोनों बराबर होते हैं।

संतुलन मात्राः संस्थिति कीमत पर वह मात्रा जो क्रेता खरीदने को तथा विक्रेता बेचने को तैयार हो।

पूर्तिः किसी विशेष समय में, वस्तु और सेवाओं की वह मात्रा जो विक्रेता दिये हुए कीमत पर बेचने को तैयार हो।

अतिरेकः संस्थिति कीमत से कीमत में वृद्धि होने पर, जब पूर्ति की नई मात्रा, मांगी गई मात्रा से अधिक हो जाता है, तब अतिरेक का सृजन होता है।

कमी व ह्रासः संस्थिति कीमत से कीमत में कमी होने पर, जब मांगी गई मात्रा, पूर्ति की गई मात्रा से अधिक होता है, तब कमी की स्थिति उत्पन्न होती है।

संस्थितिः यह ऐसी स्थिति का संकेतक है कि जब मांग और पूर्ति की शक्ति संतुलन में कार्यरत है, और दोनों की परिवर्तन की कोई प्रवृति न हो।

पूर्ति में परिवर्तनः यह मूल पूर्ति वक्र को बायें या दायें ओर परिवर्तन को प्रदर्शित करता है। जो उत्पादन साधनों के कीमत में परिवर्तन के कारण होता है।

12.7 बोध प्रश्न

(G) रिक्त स्थानों को भरें।

13. बाजार उस सम्बन्ध हो प्रदर्शित करता है जिसमें एक वस्तु ————— है जब वह बिक्री के लिए आता है।
14. ——————, किसी वस्तु की कीमत तथा पूर्ति की मात्रा के बीच सम्बन्ध को दिखाता है।
15. पूर्ति वक्र परिवर्तित होता है जब पूर्ति की मात्रा में परिवर्तन ———— के अलावा कारकों द्वारा होता है।
16. संस्थिति कीमत पर वस्तु की खरीदी गई तथा बेची गई मात्रा —————— कहलाती है।
17. जब पूर्ति बढ़ती है तो पूर्ति वक्र —————— परिवर्तित होता है।
18. यदि मांग घटती है, तब मांग वक्र ————— परिवर्तित होता है।

(H) सत्य या असत्य

7. पूर्ण प्रतियोगिता में फर्म अपने कीमत के निर्धारण के लिए स्वतंत्र है।
8. एकाधिकार में सीमित मात्रा में फर्मों का प्रवेश स्वतंत्र है।
9. एक एकाधिकारी का मांग पर पूर्ण नियंत्रण होता है।
10. संस्थिति कीमत वह कीमत है जिस पर मांग और पूर्ति बराबर होता है।
11. कीमत घटती है जब पूर्ति में कमी होती है।
12. यदि मांग और पूर्ति दोनों दायीं ओर एक हीं गति से परिवर्तित हो तो कीमत स्थिर रहती है।

12.8 बोध प्रश्नों के उत्तर

(A) 1. मांगी गई, 2. पूर्ति का नियम, 3. कीमत, 4. संस्थिति मात्रा, 5. दायीं ओर, 6. बायीं ओर

(B) 1. असत्य, 2. असत्य, 3. सत्य, 4. सत्य, 5. असत्य, 6. सत्य।

12.9 स्वपरख प्रश्न

1. पूर्ति के नियम का इसके अपवादों के साथ व्याख्या करें।
2. पूर्ति परिवर्तन और पूर्ति में विवर्तन के बीच अन्तर स्पष्ट करें।
3. पूर्ति को प्रभावित करने वाले कारक कौन–कौन से है?
4. संस्थिति, संस्थिति कीमत और संस्थिति मात्रा को परिभाषित करें।
5. कीमत का निर्धारण मांग और पूर्ति पर कटान बिन्दु पर क्यों होता है। इसकी व्याख्या करें।

12.10 सन्दर्भ पुस्तकें

1. Chamberlin, E. H., The Theory of Monopolistic Competition, Cambridge, Mass : Harvard University Press, 1933.
2. Stigler, “Price and Non-Price Competition”, Journal of Political Economy, Feb., 1968.
3. Mrs. J. Robinson, The Economics of Imperfect Competition, London, Macmillan, 1933.
4. Jhingan, M. L. Advanced Economic Theory, Vrinda Publications (P) Ltd., New Delhi.
5. S. K., Mishra and V. K. Puri, Advanced Microeconomic Theory, Himalaya Publishing House, Mumbai, 2001.

*****

इकाई 13 कीमत सिद्धान्त (Price Theory)

इकाई की रूपरेखा

13.1 प्रस्तावना
13.2 कीमत निर्धारण
13.3 कीमत–गुणवत्ता सम्बन्ध
13.4 आगम विश्लेषण
13.5 कीमत निर्णयन में विचारणीय घटक
13.6 कीमत निर्धारण रणनीतियां
13.7 कीमत निर्धारण नीतियां
13.8 कीमत निर्धारण नीति के उद्देश्य
13.9 विविध मूल्य / कीमत निर्धारण पद्धतियां
13.10 सारांश
13.11 शब्दावली
13.12 बोध प्रश्न
13.13 बोध प्रश्नों के उत्तर
13.14 स्वपरख प्रश्न
13.15 सन्दर्भ पुस्तकें

उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप इस योग्य हो सकेंगे कि –

- कीमत निर्धारण को परिभाषित कर सकें।
- कीमत और गुणवत्ता सम्बन्ध को समझ सकें।
- कीमत निर्धारण रणनीति का वर्णन कर सकें।
- कीमत निर्णयन में विचारणीय घटकों से परिचित हों सकें।
- कीमत निर्धारण नीति की व्याख्या कर सकें।

13.1 प्रस्तावना

विपणन मिश्रण के चार 'पी' में एक है – कीमत, अन्य तीन हैं– उत्पाद,, संवर्धन एवं स्थान। सूक्ष्म अर्थशास्त्र के संसाधन वितरण सिद्धान्त में कीमत एक महत्वपूर्ण चर है। चारों 'पी' में कीमत ही केवल एक आगम सृजक तत्व है, शेष सभी लागत केन्द्र हैं। कीमत निर्धारण एक मैनुअल अथवा स्वचालित प्रक्रिया है जिसमें खरीद अथवा बिक्री के लिये कीमत तय की जाती है। इस प्रक्रिया में सम्मिलित प्रमुख घटक हैं– न्यूनतम राशि, पूर्ति की मात्रा, प्रमोशन अथवा बिक्री कैम्पेन, प्रवेश के समय प्रचलित कीमत, शिपमैण्ट अथवा बीजक की तिथि, कई आदेशों का संयोजन। स्वचालित प्रणालियों के लिये अधिक सैट–अप और अनुरक्षण की आवश्यकता होती है। किन्तु, इसमें मूल्य निर्धारण में गलतियों की सम्भावना कम हो जाती है।

13.2 मूल्य/ कीमत निर्धारण

मूल्य निर्धारण एक प्रक्रिया है जिसमें यह तय होता है कि कम्पनी को अपने उत्पाद के बदले कितनी राशि प्राप्त होगी। मूल्य निर्धारण के प्रमुख घटकों में

सम्मिलित हैं–उत्पादन लागत, बाजार का स्थान, प्रतिस्पर्धा, बाजार की दशा, उत्पाद की गुणवत्ता। व्यापारिक छूट, प्रचार और अन्य प्रोत्साहनों के लेखांकन के बाद, कम्पनी को जो राषि मिलती है, उसे प्रभावी मूल्य कहा जाता है।
यदि विपणन मिश्रण में, कीमत सर्वाधिक महत्वपूर्ण कारक है, तब प्रचार मूल्य निर्धारण का आश्रय लिया जाता है। यह वह अवस्था है, जहां विक्रय सम्वर्धन के लिये प्रचार के विविध साधन अपनाये जाते हैं।

13.3 मूल्य/ कीमत –गुणवत्ता सम्बन्ध

मूल्य–गुणवत्ता सम्बन्ध का आशय है कि अधिकांश उपभोक्ता मानते हैं कि अधिक कीमत होना, उत्तम क्वालिटी होने का पर्याय है। जटिल उत्पादों के सन्दर्भ में, मूल्य–गुणवत्ता विषयक विश्वास अधिक प्रासंगिक होता है। जटिल उत्पाद उन्हें कहा जाता है जिनका वस्तुनिष्ठ परीक्षण कठिन हो। ऐसे उपभोग आश्रित उत्पाद जिनका परीक्षण बिना इस्तेमाल किये नहीं किया जा सकता, जटिल उत्पादों की श्रेणी में आते हैं। विषेशकर, व्यक्तिगत सेवायें इस श्रेणी में आती हैं। किसी उत्पाद में अनिश्चितता का तत्व जितना ज्यादा होगा, मूल्य–गुणवत्ता मान्यता उतनी अधिक प्रभावी होगी, उपभोक्ता उतना ही और ज्यादा भुगतान करने को तत्पर होंगे। इस सन्दर्भ में, ट्विन्कल्स स्नैक केक का उदाहरण प्रसिद्ध है, इसकी कीमत कम किये जाने पर, इसको कम ज्याकेदार के तौर पर चिन्हित किया गया। मूल्य–गुणवत्ता सम्बन्ध पर आश्रित धारणा के कारण सभी वस्तुओं और सेवाओं की कीमतों में वृद्धि हो सकती, चाहे वे निम्न गुणवत्ता वाली ही क्यों न हों। बाद में, इसका परिणाम यह होगा कि मूल्य–गुणवत्ता सम्बन्ध मान्यता विश्वसनीय नहीं रह जायेगी।

प्रीमियम मूल्य निर्धारण एक रणनीति है जिसमें कीमत को लगातार अधिकतम स्तर पर अथवा यथा सम्भव अधिकतम के नजदीक तय किया जाता है और इसका उद्‌देश्य होता है कि हैसियत दिखाने वाले ग्राहकों को आकर्षित किया जा सके। बाजार में प्रीमियम मूल्य निर्धारण करने वाली कम्पनियों में रोलैक्स और बैण्टले के नाम उल्लेखनीय हैं। व्यक्ति प्रीमियम कीमत उत्पाद खरीदते हैं क्योंकि–

1. वे विश्वास करते हैं कि ऊंची कीमत होना, श्रेष्ठ क्वालिटी का द्योतक है।
2. वे विश्वास करते हैं कि यह उनके लिये श्रेयस्कर है, वे इसके लिये सुपात्र हैं। इससे उनकी सफलता और हैसियत सिद्ध होती है। दूसरे लोगों के लिये यह एक संकेत है कि वे विशिष्ट समूह के सदस्य हैं।
3. वे पूरी तरह त्रुटि रहित वस्तु चुनने के इच्छुक होते हैं। वस्तु में किंचित भी त्रुटि होने की सम्भावना बहुत भयावह हो सकती है, इसलिये व्यक्ति श्रेष्ठतम चयन करना चाहेगा। उदाहरण के लिये, जैसे किसी को हार्ट पेसमेकर खरीदना हो।

गोल्डी लॉक्स की चर्चित कहानी है जिसमें गोल्डी लॉक्स न तो सबसे गरम खिचड़ी चुनता है और न ही सबसे ठंडी। बल्कि वह मध्यम तापमान की खिचड़ी चुनता है। सामान्य मानसिकता होती है कि लोग अतिरेक से बचने की प्रवृत्ति रखते हैं। मूल्य निर्धारण की यह तकनीक, अतिरेक से बचने की मनोवृत्ति का दोहन करती है।मूल्य निर्धारण की यह रीति फ्रेमिंग कही जाती है, इसमें तीन विकल्प दिये जाते हैं– लघु, मध्यम और बृहत्(small, medium and large)। उपभोक्ता

को मध्यम विकल्प चुनने को प्रेरित किया जाता है। इसप्रकार, मध्यम श्रेणी से विक्रेता को सर्वाधिक लार्भाजन होता है क्योंकि यही विकल्प सबसे ज्यादा उपभोक्ताओं द्वारा चुना जाता है।

मांग आधारित मूल्य निर्धारण – यह मूल्य निर्धारण की ऐसी रीति है जिसमें उपभोक्ता की मांग को मूल तत्व माना जाता है। इनमें शामिल हैं– मूल्य स्किमिंग (price skimming), मूल्य विभेद, अर्जन प्रबन्ध, मूल्य बिन्दु, मनोवैज्ञानिक मूल्य निर्धारण, बण्डल मूल्य निर्धारण, पैनीट्रेशन प्राइसिंग, प्राइस लाइनिंग, मूल्य आधारित कीमत निर्धारण, प्रीमियम प्राइसिंग। मूल्य निर्धारण को प्राभावित करने वाले घटक हैं– निर्माण लागत, बाजार स्थान, प्रतियोगिता, बाजार की दशायें, उत्पाद की किस्म।

बहुआयामी मूल्य निर्धारण–यह मूल्य निर्धारण की ऐसी रीति है जिसमें वस्तु अथवा सेवा का एक नहीं अपितु कई मूल्य निर्धारित किये जाते हैं। उदाहरण के लिये कार के मूल्य निर्धारण में – स्टीकर मूल्य, मासिक भुगतान के लिये मूल्य, कुछ किश्तों में प्रस्तावित मूल्य, तत्काल अदायगी (डाउन पेमेण्ट मूल्य)। विविध शोध अध्ययनों से स्पष्ट हुआ है कि बहु आयामी मूल्य निर्धारण ग्राहकों को आकर्षित करने और उनकी खरीद को सुगम बनाने में सहायक है।

13.4 आगम विश्लेशण

फर्म द्वारा प्राप्त आय को आगम कहा जाता है। आगम अवधारणा के तीन प्रमुख आयाम हैं– कुल आगम, औसत आगम और सीमान्त आगम।

कुल आगम (Total Revenue :TR)–किसी दिये हुए मूल्य पर किसी वस्तु की बिक्री से होने वाली कुल आय को कुल आगम कहा जाता है। यदि एक फर्म 2 रूपये प्रति इकाई की दर से पांच इकाईयां बेचती है, तब–

$$TR = P \times Q$$
$$TR = 2 \times 5$$
$$TR = 10$$
$$TR - total\ revenue$$
$$P - price$$
$$q - number\ of\ units$$

औसत आगम (Average Revenue) – कुल आगम को बेची गई इकाईयों की संख्या से भाग देने पर जो राशि प्राप्त होगी, वह औसत आगम कहा जायेगा। उदाहरण के लिये, कुल आगम 10 है और बेची गई इकाईयों की संख्या 2 है तब–

$$AR = \frac{TR}{Q}$$
$$AR = \frac{10}{2}$$
$$AR = 5$$
$$TR - Total\ revenue$$
$$Q - number\ of\ units$$

अब, यह कहा जा सकता है कि किसी फर्म का औसत आगम किसी भी उत्पादन स्तर के लिये वस्तु का मूल्य होता है।

सीमान्त आगम(Marginal Revenue: MR)–किसी फर्म में एक अतिरिक्त इकाई की बिक्री से कुल आगम में जो वृद्धि दर्ज होती है, उसे सीमान्त आगम कहा जाता है।

$$MR = \frac{\Delta\ TR}{\Delta\ Q}$$

$\Delta\ TR$ – *Change in total revenue*

$\Delta\ Q$ – *change in number of units*

मांग की कीमत लोच और कुल आगम में सम्बन्ध–मांग की कीमत लोच और कुल आगम का सम्बन्ध बहुत महत्वपूण है क्योंकि किसी भी फर्म के लिये कीमत कमी अथवा वृद्धि करने का निर्णय अत्यधिक प्रासंगिक होता है जिसके लिये उत्पाद की कीमत लोच का आधार लिया जाता है। यदि वस्तु की मांग की कीमत लोच इकाई से कम $(Ep < 1)$ है, तब वह कीमत में वृद्धि कर सकता है और अपने कुल आगम को बढ़ा सकता है। दूसरी ओर, यदि वस्तु की मांग की कीमत इकाई से अधिक है (Ep>1), तब कीमत में वृद्धि होने पर मांग में कमी हो जायेगी और कुल आगम में कमी आ जायेगी। यदि मांग की कीमत लोच इकाई के बराबर है (Ep=1), तब कीमत में परिवर्तन का कुल आगम पर कोई प्रभाव नहीं होगा। मांग की कीमत लोच और कुल आगम के सम्बन्ध को आगे तालिका में स्पष्ट किया गया है–

तालिका 13.1 कुल आगम और मांग की कीमत लोच में सम्बन्ध

कीमत में परिवर्तन	**अपेक्षाकृत लोचदार(Ep>1)**	**अपेक्षाकृत बेलोचदार** $(Ep < 1)$	**इकाई के बराबर लोचदार मांग (Ep=1)**
जब मूल्य बढ़ता है।	कुल आगम में कमी होगी।	कुल आगम में वृद्धि होगी।	कुल आगम अपरिवर्तित रहेगा।
जब मूल्य कम होता है।	कुल आगम में वृद्धि होगी।	कुल आगम में कमी होगी।	कुल आगम अपरिवर्तित रहेगा।

कुल आगम और मांग की कीमत लोच का रेखाचित्र द्वारा स्पष्टीकरण–

जब कीमत में वृद्धि होती है और *Ep* सापेक्षिक लोचदार है जैसे $(Ep < 1)$.

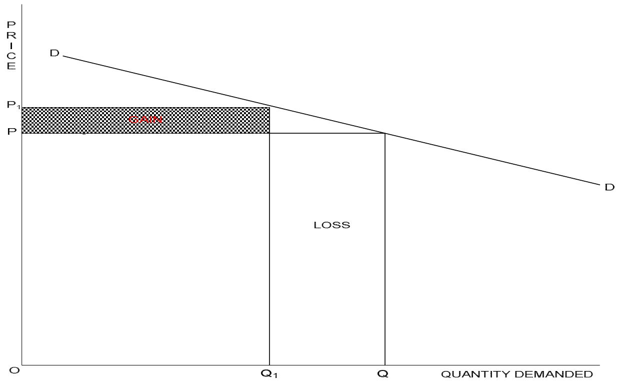

चित्र **13.1:** $(Ep < 1)$

उपरोक्त चित्र 14.1, में प्रारंभिक कीमत OP है और चाही गई मात्रा OQ है । जब कीमत में OP से OP_1, वृद्धि होती है तब चाही गई मात्रा में OQ से OQ_1 कमी

होती है । कीमत में हुई वृद्धि को लाभ 'G' (छायादार भाग) के रूप में दर्शाया गया है । परन्तु चाही गई मात्रा में हुई कमी को हानि 'L' के रूप में दिखाया गया है । हम चित्र में देख सकते है कि G < L, इसीलिए कुल आय में कमी आई है । जब कीमत में कमी होती है और *Ep* सापेक्षिक लोचदार है जैसे $(Ep < 1)$.

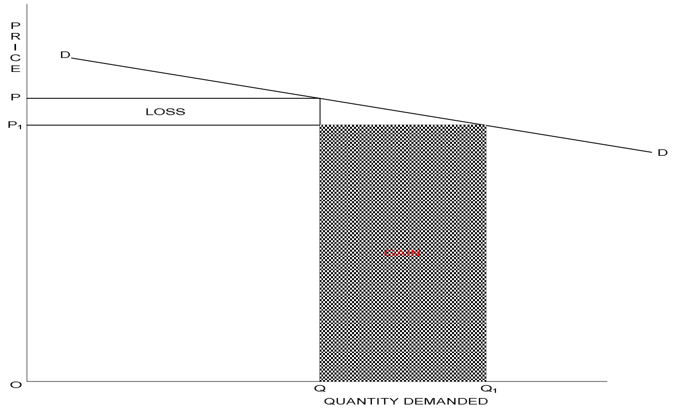

चित्र **13.2** $(Ep < 1)$

उपरोक्त चित्र 13.2, में प्रारंभिक कीमत OP है और चाही गई मात्रा OQ है । जब कीमत में OP से OP_1, कमी होती है तब चाही गई मात्रा में OQ से OQ_1 वृद्धि होती है । कीमत में हुई वृद्धि को हानि 'L' के रूप में दर्शाया गया है । परन्तु चाही गई मात्रा में हुई वृद्धि को हानि 'G' (छायादार भाग) के रूप में दिखाया गया है । हम चित्र में देख सकते है कि G > L, इसीलिए कुल आय में वृद्धि हुई है ।

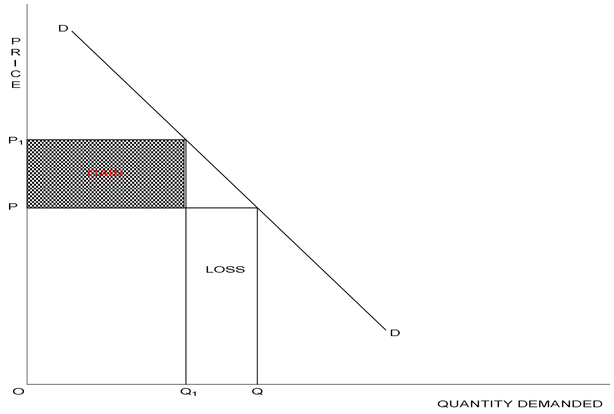

चित्र **13.3** $(Ep < 1)$

उपरोक्त चित्र 13.3, में प्रारंभिक कीमत OP है और चाही गई मात्रा OQ है । जब कीमत में OP से OP_1, वृद्धि होती है तब चाही गई मात्रा में OQ से OQ_1 कमी होती है । कीमत में हुई वृद्धि को लाभ 'G' (छायादार भाग) के रूप में दर्शाया गया है । परन्तु चाही गई मात्रा में हुई कमी को हानि 'L' के रूप में दिखाया गया है । हम चित्र में देख सकते है कि G > L, इसीलिए कुल आय में वृद्धि हुई है । जब कीमत में कमी होती है और *Ep* सापेक्षिक बेलोचदार है जैसे $(Ep < 1)$.

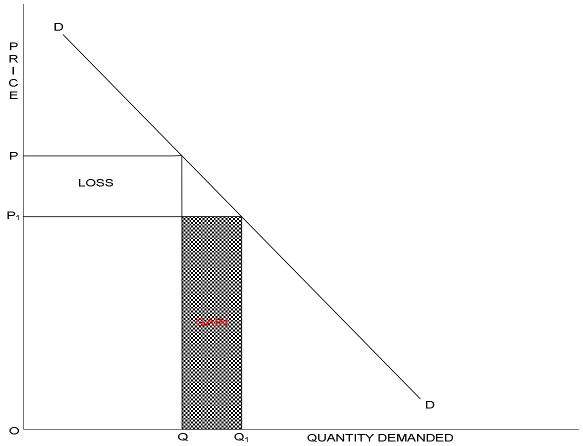

चित्र **13.4** $(Ep < 1)$

उपरोक्त चित्र 13.4, में प्रारंभिक कीमत OP है और चाही गई मात्रा OQ है । जब कीमत में OP से OP_1, कमी होती है तब चाही गई मात्रा में OQ से OQ_1 वृद्धि होती है । कीमत में हुई कमी को हानि ‘L’ के रूप में दर्शाया गया है । परन्तु चाही गई मात्रा में हुई वृद्धि को लाभ ‘G’ (छायादार भाग) के रूप में दिखाया गया है । हम चित्र में देख सकते है कि $G < L$, इसीलिए कुल आय में कमी हुई है ।

13.5 मूल्य/कीमत निर्णयन में विचारणीय घटक

मूल्य निर्धारण एक जटिल प्रक्रिया है, इसके लिये कोई बना–बनाया फार्मूल नहीं हो सकता जिससे मूल्य निर्धारण सम्बन्धी निर्णय लिये जा सकें।
कुछ महत्वपूर्ण घटक हैं जिन्हें मूल्य निर्धारण करते समय ध्यान में रखना आवश्यक होता है। मूल्य निर्धारण में विचारणीय आवश्यक तत्व इस प्रकार हैः–

(1) **कम्पनी के उद्देश्य**–सामान्यतया, कम्पनी के दो लक्ष्य होते हैं–पहला, लाभार्जन और दूसरा, अपने बाजार अंश (market share) में वृद्धि। मूल्य नीति इस बात पर निर्भर करती है कि लाभ की अपेक्षित दर कितनी रखी गई है।

(2) **प्रतियोगिता की प्रकृति एवं स्वरूप** –बाजार में पूर्ण प्रतियोगिता की अवस्था में, किसी एक फर्म की मूल्य निर्धारण में कोई भूमिका नहीं होती। इसलिये पूर्ण प्रतियोगिता की अवस्था में, फर्म की मूल्य नीति की कोई आवश्यकता नहीं होती। इसके विपरीत, यदि बाजार में अपूर्ण प्रतियोगिता है, तब फर्म की मूल्य नीति प्रासंगिक हो जाती है।

(3) **विज्ञापन नीति**–फर्म की मूल्य नीति को विज्ञापन नीति के संगत बनाया जाता है। मूल्य नीति और विज्ञापन नीति दोनों का एक लक्ष्य है–बिक्री को अधिकतम करना। अतः दोनों नीतियां एक दूसरे की पूरक होनी चाहिए।

(4) **मध्यस्थों का प्रभाव**– बाजार मूल्य केवल उत्पादक फर्म पर ही निर्भर नहीं करता, अपितु मध्यस्थों के व्यवहार और उनकी प्रतिक्रिया से भी प्रभावित होता है। यदि उत्पादक और मध्यस्थों के हितों में टकराहट होती है, तब कुछ समय के लिये ऐसा मूल्य बना रह सकता है जोकि सर्वमान्य न हो।

(5) **अन्य फर्मों की मूल्य नीति**– कभी–कभी फर्म अपनी मूल्य नीति नहीं बनाती, अपितु दूसरी फर्मों की मूल्य नीति को अपना लेती है। समान

उत्पाद का करोबार करने वाली दूसरी फर्मों की मूल्य नीति प्रायः उपयुक्त बैठती है। ऐसा तभी किया जाता है जब कुल आगम का केवल छोटा हिस्सा इस उत्पाद से प्राप्त होता है। दूसरी परिस्थिति होती है, जब फर्म को मांग के सम्बन्ध में विष्वसनीय आंकड़े उपलब्ध न हो पा रहे हों। तब, समान व्यवसाय में संलग्न फर्म की मूल्य नीति को ही अपनी मूल्य नीति के रूप में स्वीकार कर लिया जाता है क्योंकि यही विकल्प सुगम और उपयुक्त रहता है।

(6) **बाह्य घटक**—मूल्य नीति को प्रभावित करने वाले प्रमुख कारक हैं— उत्पाद की मांग और पूर्ति की लोच, अर्थव्यवस्था में सामान्य क्रय क्षमता का स्तर, मूल्यों के प्रति सरकार की नीति। उपभोक्ता हित रक्षा के लिये सरकार आवश्यक वस्तुओं पर नियंत्रण के उपाय कर सकती है। सरकार किन्हीं व्यवसायों में एकाधिकार के विरूद्ध कदम उठा सकती है। व्यवसायिक घरानों में टकराव की स्थिति से निपटने के लिये उपचारात्मक निर्णय ले सकती है। सरकारी हस्तक्षेप के अलावा, फर्म को व्यापार चक्रों, मन्दी के दौर और स्फीति आदि प्रभावों को भी ध्यान में रखना होता है।

13.6 मूल्य / कीमत निर्धारण रणनीतियां

(1) **स्टे आउट मूल्य निर्धारण**— मूल्य निर्धारण में अनिश्चितता के वातावरण में, फर्म काफी ऊंची कीमत से शुरूआत् करती है। यदि इस मूल्य पर बिक्री नहीं होती, तब कीमत में कमी कर देती है। फर्म कीमत में क्रमषः तब तक कमी करती रहती है, जब तक कि लक्ष्य बिक्री की स्थिति न आ जाये। इस रीति से, उत्पाद के लिये अधिकतम मूल्य ज्ञात करना सम्भव होता है।

(2) **प्राइस लाइनिंग**— मूल्य निर्धारध की इस रीति में, उत्पाद श्रृंखला में एक उत्पाद का मूल्य तय कर दिया जाता है, अन्य उत्पादों का मूल्य इसके आधार पर तय हो जाता है। यहां उत्पाद इस प्रकार के होते हैं कि वे परस्पर किसी प्रकार से सम्बन्धित होते हैं। उदाहरण के लिये कोई फर्म, रेडीमेड कपड़े बनाती है, वह एक साइज के वस्त्र की कीमत तय कर देती है। बाकी दूसरे साइजों की कीमत इसी आधार पर निर्धारित कर दी जाती है। बाद में, कभी उत्पाद के मूल्य में परिवर्तन होता है, तब फिर उसीप्रकार उसके सभी साइजों के मूल्य में समायोजनकर दिया जाता है।

(3) **मनोवैज्ञानिक मूल्य निर्धारण**—वस्तुतः यह मूल्य निर्धारण नहीं अपितु मूल्य टैगिंग की एक रीति है। इसमें कीमत का निर्धारण इस प्रकार किया जाता है कि उत्पाद की कीमत कम प्रतीत हो। उदाहरण के लिये, यदि किसी वस्तु की कीमत 80.00 रुपये के स्थान पर 79.99 रुपये रखी जाये, तब ऐसा लगता है कि यह मूल्य 80.00 रुपये से कम है। उपभोक्ता के मानस पर मूल्य के कुछ कम होने का संदेष जाता है। कई उत्पादों पर मूल्य निर्धारण की यह विधि देखने को मिलती है। जूते और चप्पल के मामले में यह परम्परा बहुत ज्यादा चलन में है।

(4) **स्किमिंग मूल्य**— स्किमिंग मूल्य रणनीति अपनाने के लिये तीन पूर्व अनिवार्यतायें हैं—

(अ) ऐसे उपभोक्ताओं का बड़ा समूह होना चाहिए जिनकी मांग अपेक्षाकृत कम लोचदार हो। ये ग्राहक मूल्य के अधिक अथवा कम होने के प्रति संवेदनशील न हों।

(ब) थोड़ी मात्रा में उत्पादन में वृद्धि अथवा कमी से इकाई लागत पर तुलनात्मक रूप से कम प्रभाव पड़ता हो। यह परिवर्तनशील लागत और स्थिर लागत के मध्य सम्बन्ध के कारण होता है।

(स) वास्तव में, यह विभेदकारी (discriminatory)रणनीति है। मूल्य अधिक होने के कारण प्रतिस्पर्धा के लिये कोई प्रेरणा नहीं होती। विक्रेता, ऐसे क्रेता समूह से लाभ कमाने का इच्छुक होता है जो अधिक मूल्य देने को तैयार हैं।

(5) **पैनीट्रेशन मूल्य–** पैनीट्रेशन मूल्य निर्धारण के लिये तीन पूर्व अनिवार्यतायें हैं–

(अ) बाजार मूल्य के प्रति बहुत संवेदनशील है। उत्पाद की मांग अधिक लोचदार है।

(ब) बड़े पैमाने पर उत्पादन और वितरण में लाभ कमाया जा सकता है। परिवर्तनशील लागत का स्थिर लागत के साथ निम्न अनुपात है।

(स) कीमत कम होने के कारण बाजार में प्रतियोगिता अधिक नहीं है।

इस रणनीति में वस्तु की कीमत कम करके उसकी मांग को प्रोत्साहित किया जाता है और फर्म के बाजार अंश में वृद्धि की जाती है।

(6) **लिमिट मूल्य–** कोई फर्म जब ऐसा मूल्य तय करती है जिस पर उद्योग में नई फर्म के प्रवेश की सम्भावना कम हो जाये अथवा समाप्त हो जाये, तब इस मूल्य को लिमिट मूल्य कहा जाता है।

13.7 मूल्य / कीमत निर्धारण नीतियां

श्रेष्ठ विपणन के लिये उत्तम मूल्य निर्धारण नीति आधारशिला का कार्य करती है। वस्तु अथवा सेवा की कीमत से तीन चीजें अत्यधिक प्रभावित होती हैं– बिक्री की मात्रा, लाभ का स्तर, व्यवसायी की छवि। एक प्रभावी और सुस्थापित मूल्य निर्धारण नीति विकसित करने के लिये, किसी फर्म को निम्न बिन्दु ध्यान में रखने होते हैं–

(1) मूल्य निर्धारण के उद्देश्यों का स्पष्टीकरण– मूल्य में परिवर्तन का व्यापक प्रभाव पड़ता है। मूल्य से प्रभावित होने वाले प्रमुख घटक हैं– बिक्री की मात्रा, विक्रय आगम, बाजार अंश, प्रतिस्पर्धा स्थिति, कम्पनी की छवि, लाभदायकता। अतः मूल्य निर्धारण के उद्देश्यों को सावधानीपूर्वक परिभाषित किया जाना चाहिए, ताकि कम्पनी अपने लक्ष्य को प्राप्त कर सके और कोई भ्रम की स्थिति न रहे।

(2) सरल एवं प्रभावी मूल्य संरचना स्थापित की जानी चाहिए जिसमें लागत के सभी तत्वों का पूरा ध्यान रखा गया हो।

(3) मूल्य निर्धारण रणनीति का चयन करते समय, बाजार अंश का दृश्टिकोण अवश्य ध्यान में रखा जाना चाहिए।

(4) मूल्य निर्धारण का प्रधान सम्बन्ध बाजार में प्रतियोगिता से होता है। साथ ही, मूल्य नीति का समन्वय अन्य कारकों से भी आवश्यक है जिनमें प्रमुख हैं– बाजार के रूझान(trends), उद्योग में प्रचलित व्यवहार, नई मूल्य निर्धारण रणनीतियां।

मूल्य को प्रभावित करने घटक और मूल्य द्वारा प्रभावित होने वाले घटकों को निम्न चार्ट द्वारा स्पष्ट किया गया है–

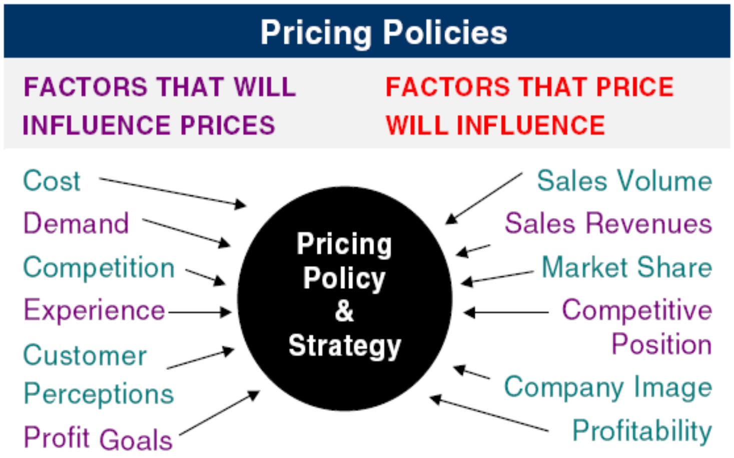

यदि मूल्य निर्धारण करते समय चार्ट में वर्णित बिन्दुओं का समुचित ध्यान रखा गया, तब फर्म की मूल्य नीति प्रभावी और सफल सिद्ध होगी।

13.8 मूल्य / कीमत निर्धारण नीति के उद्देश्य

मूल्य नीति के निम्नलिखित उद्देश्य होते हैं–

(1) **अधिकतम लाभ**– प्रत्येक फर्म का प्रयास होता है कि अधिकतम लाभ कमाया जाये। इसलिये, मूल्य नीति इस प्रकार होनी चाहिए कि आगम को अधिकतम रखा जा सके। इस सन्दर्भ में, फर्म को मूल्य नीति के लिये दीर्घकालिक दृष्टिकोण पर ध्यान केन्द्रित करना चाहिए।

(2) **स्थिर मूल्य**– मूल्य नीति में प्रयास किया जाता है कि मूल्य में स्थिरता रहे क्योंकि स्थिर मूल्य ग्राहकों का विश्वास जीतने में सफल होता है।

(3) **बाजार में पहुंच** –उत्पाद का सदैव प्रयास रहता है कि उसके बाजार अंष में वृद्धि हो। बाजार में अपनी ज्यादा जगह बनाने के लिये किसी उत्पाद को लॉन्च करते समय उसकी कीमत तुलनात्मक रूप से कम रखी जाती है। बाद में, दीर्घकाल में फर्म अपनी मूल्य नीति में परिवर्तन कर सकती है।

(4) **प्रतिस्पर्धी स्थितियों से तालमेल**–प्रत्येक उत्पादक को अपने प्रतिस्पर्धी फर्मों की कीमत को ध्यान में रखकर मूल्य निर्धारित करना होता है। कुछ बाजार संरचनाओं में मूल्य निर्धारण इस प्रकार किया जाता है कि उद्योग में प्रतिद्वन्दी प्रवेश न कर सकें।

(5) **भुगतान क्षमता के अनुरूप** –मूल्य निर्धारण करते समय उपभोक्ता की क्रय शक्ति को भी ध्यान में रखा जाता है। सम्पन्न व्यक्तियों के लिये ऊंचा

मूल्य और गरीबों के लिये कम मूल्य रखा जा सकता है। चिकित्सक अथवा वकील इस प्रकार फीस का निर्धारण कर सकते हैं।

13.9 विविध मूल्य / कीमत निर्धारण पद्धतियां

प्रत्येक फर्म मूल्य निर्धारण के लिये कोई पद्धति चुनती है। मूल्य निर्धारण पद्धति का चयन कुछ बातों पर निर्भर करता है, उनमें प्रमुख हैं– उत्पाद की प्रकृति, मांग, उत्पाद के उपयोग, टैक्स आदि। आगे कुछ प्रमुख मूल्य निर्धारण पद्धतियों का वर्णन किया गया है।

(1) **कॉस्ट प्लस प्राइसिंग**–प्रति इकाई लागत ज्ञात करने के बाद, इसमें लाभ मार्जिन जोड़ दिया जाता है। मूल्य निर्धारण की यह रीति कॉस्ट प्लस प्राइसिंग कही जाती है। इसमें फर्म औसत परिवर्तनशील लागत ज्ञात कर लेती है, इसमें स्थिर लागत का भाग जोड़ दिया जाता है और अपेक्षित लाभ की राशि जोड़ने पर विक्रय मूल्य प्राप्त हो जाता है। अपेक्षित लाभ को मार्क अप अथवा लाभ मार्जिन कहा जाता है। लाभ मार्जिन का निर्धारण सर्वाधिक कठिन होता है। एक नई फर्म जिसने उद्योग में अभी प्रवेश किया है, वह पहले से कार्यरत फर्म का अनुसरण करेगी और इसके लिये लाभ सम्बन्धी सूचनायें अपने प्रतिद्वन्दी से हासिल करेगी। किसी नये उत्पाद के मामले में, फर्म को स्वयं निर्णय करना होगा और इसके लिये आधार बनाया जायेगा– बाजार की दशायें और सम्भावित मांग। ऐसे उत्पाद जिनमें अधिक विनियोग की जरूरत होती है, वहां लाभ का प्रतिशत अधिक रखा जायेगा, जैसे– टेलीवीजन, एअर कंडीशनर, कार आदि। ऐसी वस्तुओं में प्रायः लागत का 25 प्रतिशत तक लाभ लिया जाता है। दूसरी ओर, साधारण तकनीक और कम विनियोग वाली वस्तुओं के मामले में लाभ का प्रतिशत कम होता है।

मूल्य निर्धारण की इस पद्धति की दो सीमायें हैं–

- इसमें मांग पक्ष को पूरी तरह नजर अंदाज कर दिया जाता है। मांग में होने वाले उच्चावचनों की पूरी तरह उपेक्षा कर दी जाती है।
- इसमें बाजार में प्रतियोगिता की ताकत का कोई ध्यान नहीं रखा जाता है।

(2) **प्रचलित मूल्य(Going rate pricing)**–प्रचलित मूल्य रीति, लागत योग विधि का ठीक उल्टा रूप है। इस पद्धति में, बाजार में समान उत्पाद के प्रचलित मूल्य के आधार पर अपने उत्पाद का मूल्य निर्धारित किया जाता है। फर्म सामान्य मूल्य संरचना के अनुरूप अपना मूल्य समायोजित करती है। यह काफी सुरक्षित विधि है, इसमें मूल्य नेतृत्व की धारणा प्रभावी होती है।इस पद्धति से किसी को पूर्ण प्रतियोगिता का भ्रम नहीं होना चाहिए क्योंकि पूर्ण प्रतियोगिता में विक्रेता को मूल्य निर्धारण नहीं करना होता। अपितु, उन्हें बाजार मूल्य को स्वीकार करना होता है। प्रचलित मूल्य रीति में आपूर्तिकर्ता मूल्य का निर्धारण करता है। उत्पादक बाजार की उत्साहपूर्ण अवस्था में अपने प्रतियोगियों से कुछ ऊंचा मूल्य तय कर सकता है और मन्दी के दौर में मूल्य को थोड़ा कम रख सकता है। इसप्रकार, विक्रेता बाजार की अवस्था के अनुरूप मूल्य में समायोजन कर

सकता है। इस रीति को छोटी फर्म ही नहीं, बड़ी फर्म भी अपनाती हैं। यह सरल और सुगम रीति है।

(3) अनुसरण मूल्य (Imitative Pricing)– यह प्रचलित मूल्य विधि से ही मिलती–जुलती रीति है। इसमें फर्म, बाजार का नेतृत्व करने वाली फर्म के मूल्य का अनुसरण करती है। बाजार की अल्पाधिकार अवस्था में यह विधि अपनाई जाती है। बाजार में, बाद में आने वाली फर्म पूर्ववर्ती फर्म का मूल्य ही अपना लेती है। यहां मूल्य का नेतृत्व करने वाली एक फर्म होती है और बाकी फर्म उसकी अनुयायी फर्म होती हैं। यह विधि भी काफी सरल और सुगम है।

सीमान्त लागत मूल्य निर्धारण विधि(Marginal Cost Pricing)–इस पद्धति में, वस्तु की कीमत का आधार उसकी सीमान्त लागत होती है। यहां कीमत में सम्पूर्ण लागत का विचार नहीं किया जाता, लेकिन मूल्य परिवर्तनषील लागत से कम नहीं हो सकता। सीमान्त लागत विधि तब प्रयुक्त होती है, जब कई उत्पाद हों और बाजार भी कई उपलब्ध हों। ऐसी स्थिति में फर्म किसी एक वस्तु की कीमत केवल सीमान्त लागत के बराबर रख सकती है और दूसरी वस्तु की कीमत अधिक तय कर सकती है। इस पद्धति की निम्नलिखित तीन सीमायें हैं–

- सीमान्त लागत विधि मूल्य निर्धारण के लिये केवल अल्प काल में प्रयुक्त होती है। इसमें दीर्घकाल के लिये स्थिर मूल्य प्रस्तुत नहीं किया जा सकता।
- यह बन्दी (shut down)के बिन्दु की ओर संकेत करती है, किन्तु इसका यह अर्थ नहीं कि फर्म ब्रेक ईवन प्वाइण्ट पर संचालन करे।
- मन्दी के दौर में, बिक्री के स्तर को बनाये रखने के लिये फर्म इस विधि का आश्रय कर सकती हैं। लेकिन, दूसरी फर्मों द्वारा इसके अनुसरण करने पर व्यापार में गला काट प्रतियोगिता की स्थिति बनती है।

13.10 सारांश

मूल्य निर्धारण एक प्रक्रिया है जिसमें यह तय किया जाता है कि कम्पनी को अपने उत्पाद के बदले क्या मिलेगा। प्राइस लाइनिंग रीति में, उत्पाद श्रृंखला में एक उत्पाद का मूल्य तय कर दिया जाता है, अन्य उत्पादों का मूल्य इसके आधार पर तय हो जाता है। मूल्य–गुणवत्ता सम्बन्ध का आषय है कि अधिकांष उपभोक्ता यह मानते हैं कि कीमत ज्यादा होने का अर्थ यह है कि क्वालिटी ज्यादा अच्छी होगी। प्रीमियम मूल्य निर्धारण (Premium Pricing) एक रणनीति है जिसमें कीमत को लगातार अधिकतम स्तर पर अथवा यथा सम्भव अधिकतम के नजदीक तय किया जाता है और इसका उद्देष्य होता है कि हैसियत दिखाने वाले ग्राहकों को आकर्षित किया जा सके। व्यावसायिक अर्थशास्त्र में, लागत अवधारणा के साथ–साथ आगम अवधारणा का भी समान महत्व है।

फर्म द्वारा अर्जित कुल आय को कुल आगम कहा जाता है। प्रति इकाई आगम को औसत आगम कहा जाता है। वस्तु की एक अतिरिक्त इकाई बेचने से कुल आगम में जो वृद्धि होती है, उसे सीमान्त आगम कहा जाता है। वास्तविक व्यवहारिक व्यावसायिक अनुभव में, आगम और वस्तु की मांग की कीमत लोच के सम्बन्ध का बहुत महत्व है। उत्पादक, आगम और कीमत लोच के सम्बन्ध के

आधार पर मूल्य तय कर सकता है और मूल्य में परिवर्तन कर सकता है। मांग की लोच के आधार पर सरकार तय करती है कि किस वस्तु पर टैक्स लगाया जाये। लोचदार मांग वाली वस्तुओं की तुलना में बेलोच मांग वाली वस्तुओं पर अधिक टैक्स लगाया जाता है।

एक बार मूल्य निर्धारण करने के बाद, इसमे समय—समय पर परिस्थितियों और आर्थिक दशाओं के अनुरूप परिवर्तन करते रहना होता। कोई एक मूल्य सदैव के लिये स्थिर नहीं रह सकता। मूल्य नीति का प्राथमिक उद्देश्य लाभ को अधिकतम करना होता है। साथ ही, उपभोक्ताओं का विश्वास जीतने के लिये जरूरी है कि मूल्य में स्थायित्व रहे। इसके अतिरिक्त, मूल्य नीति का लक्ष्य होता है कि बाजार में फर्म के अंश में बढ़ोत्तरी की जा सके। मूल्य निर्धारण के लिये फर्मों द्वारा विभिन्न विधियों का उपयोग किया जाता है। एक रीति विशेष का चयन करने के लिये वस्तु की मांग, वस्तु की प्रकृति और इसके उपयोग आदि का ध्यान रखा जाता है। बाजार में पहले से प्रचलित उत्पादों और नए उत्पादों के लिये पृथक—पृथक मूल्य निर्धारण विधियां प्रयुक्त होती हैं। मूल्य निर्धारण विधियों में प्रमुख हैं— कॉस्ट प्लस प्राइसिंग, प्रचलित मूल्य विधि, अनुसरण मूल्य विधि, सीमान्त लागत विधि। पैनीट्रेशन मूल्य निर्धारण का अर्थ है कि फर्म बाजार में अपने पैर जमाने के लिये आर्थिक विश्लेशण के आधार पर ज्ञात मूल्य से कम मूल्य प्रस्तुत करती है। स्किमिंग प्राइसिंग का अर्थ है कि फर्म आर्थिक विश्लेशण से ज्ञात मूल्य से अधिक कीमत तय करती है, यह तभी हो सकता है जबकि प्रतियोगिता कम हो।

13.11 शब्दावली

प्रभावी मूल्य : व्यापारिक छूट एवं विज्ञापन व्यय घटाने के बाद जो राशि कम्पनी को प्राप्त होती है, प्रभावी मूल्य कही जाती है।

प्राइस लाइनिंगः उत्पाद श्रृंखला में एक उत्पाद का मूल्य तय कर दिया जाता है, अन्य उत्पादों का मूल्य इसके आधार पर तय हो जाता है। ये उत्पाद परस्पर किसी प्रकार सम्बन्धित होते हैं।

प्रमोशनल प्राइसिंगः यह ऐसी अवस्था का उदाहरण है जहां विपणन मिश्रण में मूल्य निर्धारण सर्वाधिक महत्वपूर्ण कारक होता है।

मांग आधारित मूल्य निर्धारण : मूल्य निर्धारण की ऐसी विधियां जिनमें उपभोक्ता मांग को आधार बनाया जाता है, जैसे— प्राइस स्किमिंग, प्राइस प्वाइण्ट, मनोवैज्ञानिक मूल्य निर्धारण, बंडल प्राइसिंग, पैनीट्रेशन प्राइसिंग, प्राइस लाइनिंग, प्रीमियम प्राइसिंग।

पैनीट्रेशन प्राइसिंगः आक्रामक विज्ञापन के साथ कम कीमत तय करना जिसका उद्देश्य बाजार में अपना वर्चस्व बनाना हो।

स्किमिंग प्राइसिंगः उच्च गुणवत्ता वाले सुस्थापित उत्पादों की ऊंची कीमत तय करना और अधिक लाभ कमाना।

13.12 बोध प्रश्न

(अ) रिक्त स्थान भरिए—

(1) यदि औसत आगम वक्र, औसत लागत के ऊपर है, तब फर्म. . . . . .लाभ अर्जित कर रही होगी।

(2) वह बिन्दु जहां सीमान्त लागत और . . . . .बराबर होते हैं, फर्म के साम्य की दशा होती है।

(3) दिए हुए मूल्य पर, वस्तु की कुछ इकाईयां बेचने पर होने वाली कुल आय. . . . . .कही जाती है।

(4) सदैव, उपभोक्ताओं का विश्वास जीतने वाला . . . . .मूल्य होता है।

(5). .. . . .और . . . . .जोड़कर, कॉस्ट प्लस प्राइस तय किया जाता है।

(6) ऐसी मूल्य नीति जिसमें फर्म उत्पाद की काफी ऊंची कीमत तय करती है, ...कही जाती है।

(7) सीमान्त लागत मूल्य निर्धारण प्रणाली केवल . . . . .अवधि के लिये उपयुक्त होती है।

(ब) सत्य/ असत्य

(1) ऊंची कीमत सदैव उत्तम क्वालिटी का सूचक है।

(2) यदि कीमत लोच इकाई के बराबर है, कीमत बढ़ने पर कुल आगम में कमी होगी।

(3) हैसियत दिखाने वाले ग्राहकों को लक्ष्य करके, प्रीमियम प्राइसिंग की जाती है।

(4) फर्म का औसत आगम ही वस्तु का मूल्य होता है।

(5) बाजार में पूर्ण प्रतियोगिता की अवस्था में, फर्म को मूल्य नीति बनानी होती है।

(6) ऑन गोइंग रेट प्राइसिंग में, फर्म बाजार में बदलती परिस्थितियों के अनुरूप कीमत में परिवर्तन नहीं कर सकती।

13.13 बोध प्रश्नों के उत्तर

(अ)

(1) सुपर नार्मल (2) सीमान्त आगम (3) कुल आगम (4) स्थिर (5) प्रति इकाई लागत और लाभ मार्जिन (6) स्किमिंग प्राइसिंग (7) अल्प

(ब)

(1) असत्य (2) असत्य (3) सत्य (4) सत्य (5) असत्य (6) असत्य

13.14 स्वपरख प्रश्न

1. मूल्य रणनीति से आप क्या समझते हैं?
2. मूल्य निर्धारण में किन घटकों का ध्यान रखना आवष्यक है?
3. मूल्य नीति क्या होती है? मूल्य निर्धारण नीति को प्रभावित करने वाले कारकों का उल्लेख कीजिए।
4. फर्म की विविध मूल्य निर्धारण नीतियों का वर्णन कीजिए।
5. कॉस्ट प्लस मूल्य निर्धारण विधि को स्पश्ट कीजिए।

13.15 सन्दर्भ पुस्तकें

1. Deein J., Managerial Economics, Prentice Hall, Englewood Cliffs, N. J.

2. Alfed W. Stonier and Douglas C. Hague, A Text Book of Economic Theory, Longman, 1990.
3. Spencer, M. H. and L. Sieglemen, Managerial Economics Richard Irwin, 1964.
4. Chamberlin, E. H., The Theory of Monopolistic Competition, Cambridge, Mass : Harvard University Press, 1933.
5. Stigler, "Price and Non-Price Competition", Journal of Political Economy, Feb., 1968.
6. Mrs. J. Robinson, The Economics of Imperfect Competition, London, Macmillan, 1933.
7. Jhingan, M. L. Advanced Economic Theory, Vrinda Publications (P) Ltd., New Delhi.
8. Dr. D.M. Mithani, Managerial Economics- Theory and Applications : Himalaya Publishing House.
9. Mehta, P. L., Managerial Economics – Analysis, Problem and Cases, Sultan Chand & Sons, New Delhi.
10. Dorfman, R. H. The Price System, Pretince Hall of India, New Delhi.

इकाई 14 पूर्ण एवँ अपूर्ण प्रतिस्पर्धा के अंतर्गत मूल्य निर्धारण

इकाई की रूपरेखा

14.1 प्रस्तावना
14.2 बाजार संरचना एवँ मूल्य निर्धारण
14.3 पूर्ण प्रतियोगिता के अंतर्गत साम्य (संतुलन)
14.4 एकाधिकार के अंतर्गत साम्य (संतुलन)
14.5 मूल्य विभेद
14.6 क्रेता एकाधिकार
14.7 द्विपक्षीय एकाधिकार
14.8 एकाधिकार प्राप्त (एकाधिकारी) बाजार संरचना
14.9 अल्पाधिकार
14.10 साराँश
14.11 शब्दावली
14.12 बोध प्रश्न
14.13 बोध प्रश्नों के उत्तर
14.15 स्वपरख प्रश्न
14.15 सन्दर्भ पुस्तकें

उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप इस योग्य हो सकेंगे कि –

- यह वर्णन कर सकें कि किस प्रकार मूल्य लेने वाले (पाने वाले) उत्पादक लाभ अधिकतम (महत्तम) उत्पादों (निर्गतों) का उत्पादन करते हैं ।
- यह विश्लेषित कर सकें कि क्यों लाभ न पाने (लाभ न बना पाने) वाला उत्पादक अल्पकाल में उत्पादन जारी रखता है,
- मूल्य विभेदीकरण एवं बाजार की शक्तियों का वर्णन कर सकें।
- यह वर्णन कर सकें कि अल्पाधिकार किस प्रकार व्यवहारत कार्य करता है,
- यह वर्णन कर सकें कि क्यों एकाधिकारी एवं अल्पाधिकारी बाजार संरचना में उत्पादक अपने उत्पादों को विभेदित करते हैं ।

14.1 प्रस्तावना

अब तक हम उत्पादन फलन के समस्त मूलभूत सिद्धाँतों (संकल्पनाओं) को जान चुके हैं, तथा हम लोग पूर्व में ही माँग व पूर्ति की प्रकृति का अध्ययन कर चुके हैं। उत्पादन के मूल्य स्तर, विपणन, विक्रय रणनीतियों, इत्यादि के कतिपय मूलभूत (प्राथमिक) निर्णय उस बाजार संरचना के प्रकार इसमें व्यवसाय (फर्म/कंपनी/व्यक्ति) संचालित हो रहा है। इस इकाई में आप विभिन्न बाजार संरचनाओं को जानेंगे एवं समझेगें। हम प्रत्येक बाजार संरचना के साथ क्रमशः (उत्तरोत्तर) शुरुआत करेंगे। यह जानकारी आवश्यक एवं महत्वपूर्ण है, क्योंकि प्रबंधक को अपने विशिष्ट बाजार वातावरण में विभिन्न प्रकार के निर्णय लेने होते हैं।

14.2 बाजार संरचना एवं मूल्य निर्धारण

बाजार को वर्गीकृत करने के कई ढंग (तरीके) हैं, किंतु कुछ विशिष्ट विशेषतायें हैं जो निम्नलिखित हैं,

1. **विक्रेताओं की संख्या एवँ आकार**

यदि विक्रेताओं की संख्या अधिक है, तो किसी फर्म विशेष का प्रभाव लघु (कम) होगा, किंतु यदि बाजार में विक्रेताओं की संख्या अल्प (कुछ विक्रेता) है, तो उस दशा में प्रत्येक फर्म मूल्य एवँ आपूर्ति पर पर्याप्त प्रभाव रखेगी। जब बाजार प्रभावशाली प्रकार्य/फलन रखता है तो ये मूल्य एवँ आपूर्ति पर पर्याप्त प्रभाव रखते हैं।

2. **क्रेताओं की संख्या एवँ आकार**

जब बाजार में कई क्रेता होते हैं, तो वे लगभग समान मूल्य चुकाते (देते) हैं ,किंतु यदि एक ही क्रेता है तो वह कम मूल्य की मांग करने में सक्षम होता है।

3. **उत्पाद भेद**

उत्पाद विभेद (भेद/अंतर) वह मात्रा है, जहां तक (जितना) बाजार में एक उत्पाद दूसरे उत्पाद से भित्र/अलग होता है। उत्पाद विभेद की दशा में (स्थिति में) ग्राहक का क्रय निर्णय मूल्य पर निर्भर होता है। प्रत्येक फर्म अपने उत्पाद को अलग (विभेद) करने का (बनाने का) प्रयास करती है तथा काल्पनिक विभेद/अंतर रचने का प्रयास करती है।

4. **प्रवेश एवं निर्गत की दशाएँ**

प्रवेश अर्थात जब एक नवीन फर्म उच्च आकर्षक रूप रेखा (प्रोफाइल)/वर्णन लेकर बाजार में आती है। यदि बाजार में वस्तु के विकल्प उपलब्ध नहीं है, तो कंपनी ग्राहकों को खोने के भय के बिना निर्णय ले सकती है। किंतु यदि बाजार में मुक्त प्रवेश (सरल) है, तो नवीन कंपनियाँ (फर्म) सरलता से बाजार में प्रवेश कर सकती हैं। उस दशा में यह बाजार में पहले से विद्यमान कंपनियों की प्रतिस्पर्धा को बढ़ायेगा।

उद्योग से निष्काशन (निकास) उस दशा में होता है जब हानि उठा रही हो तथा प्रयुक्त संसाधन अन्य उत्पादों के उत्पादन में प्रयुक्त किए जा सकते हों। इस दशा में फर्म उस उद्योग से निष्काशन लेगी (छोड़ देगी) तथा ऐसे नए उद्योग में प्रवेश करेगी जहाँ फर्म उन्ही (पिछले उद्योग के) संसाधनों का उपयोग कर सकती हो।

किंतु यदि संसाधन विशिष्ट प्रकार के हैं तथा उनका विशेष वस्तुओं के उत्पादन हेतु ही प्रयोग हो सकता है अथवा अत्यल्प वैकल्पिक प्रयोग हो सकता है तब निकास का निर्णय कठिन एवँ लागत साध्य होगा। संरचनाओं को किस प्रकार वर्गीकृत किया गया है यह विमर्श करने के उपराँत हम लोग बाजार संरचना के प्रत्येक प्रकार को समझने का प्रयास करेंगे।

14.3 पूर्ण प्रतियोगिता के अंतर्गत साम्य (संतुलन)

सर्वप्रथम हमें पूर्ण प्रतियोगिता के अंतर्गत माँग वक्र का अवलोकन करना चाहिए। माँग वक्र निम्न प्रकार से दृष्टगम्य होता है।

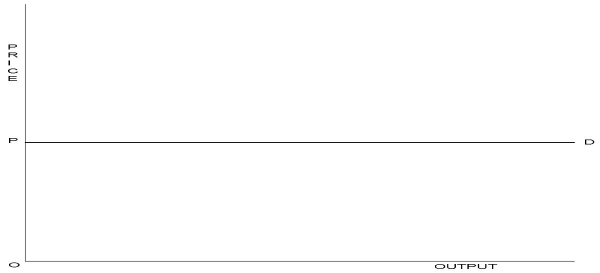

चित्र 14.1

पूर्ण प्रतियोगिता के अंतर्गत साम्यावस्था (संतुलन)

हमें एक क्षैतिज माँग वक्र प्राप्त होता है। इस प्रकार मूल्य दिया हुआ होता है, तथा फर्म को उस मूल्य पर अपनी लागत दशाओं के अनुसार यह निर्णय करना होता है, कि उत्पादन की क्या मात्रा उत्पादित की जानी है।

साम्यावस्था (संतुलन) की दशा अथवा अनुकूलतम उत्पादन स्तर

उस फर्म को जो अपने लाभ को अधिकतम एवँ हानि को न्यूनतम करना चाहती है, उसे उस बिंदु पर उत्पादन करना चाहिए जहां सीमांत आगम =. सीमांत लागत (MR= MC) (यह वह बिंदु होता है जहां एक अतिरिक्त इकाई के/अंतिम इकाई के उत्पादन से प्राप्त आगम, इस इकाई के उत्पादन में लगी लागत के बराबर होते हैं) हो। यह शर्त (दशा) समस्त फर्मों पर, इस बात से निरपेक्ष कि वे मूल्य निर्धारण पर नियंत्रण रखती हैं, अथवा नहीं, लागू होती है। किंतु जब (जिस दशा में) निर्धारण करने की क्षमता नहीं रखती है, तो मूल्य सीमाँत आगम (MR) बाजार मूल्य हो जाता है (P=MR)।

जैसा कि हम जानते हैं, कि आगम एवँ लागत सिद्धाँत के अंतर्गत कुल आगम - कुल लागत = कुल लाभ (TR – TC = TP) इसी प्रकार सीमांत आगम - सीमांत लागत = सीमांत लाभ (MR – MC = MP) होता है। जब वे इस बिंदु पर पहुँचते हैं , (MR = MC) तो यह ये दर्शाता है, कि अब फर्म और लाभ नहीं कमा सकती अत उसे यहाँ रुक जाना चाहिए। यह अनुकूलतम उत्पादन स्तर होता है। वे अधिक या अल्प (कम) उत्पादन कर सकते हैं, किंतु यदि वे कम उत्पादन करते हैं तो वे सामान्य लाभ प्राप्त करेंगे।

इसलिए पूर्ण प्रतियोगिता के अंतर्गत साम्यावस्था (पूर्ण संतुलन) की दशा (स्थिति) होगी।

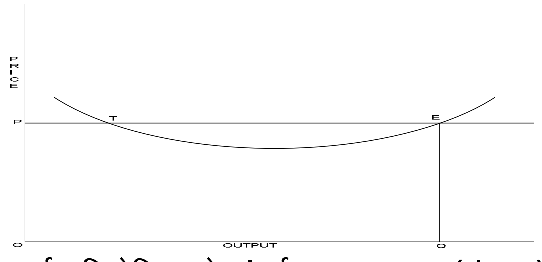

चि़त्र 14.2 पूर्ण प्रतियोगिता के अंतर्गत साम्यावस्था (संतुलन) की दशा

उपरोक्त चित्र में E संतुलन बिंदु है, जहां MR = MC । PD सीमाँत आगम और औसत आगम को दर्शाता है। MC सीमाँत लागत को दर्शाता है। फर्म तब संतुलन की अवस्था में होगी जब उत्पादन OP मूल्य पर होगा।

लाभ के साथ अल्पकालीन संतुलन

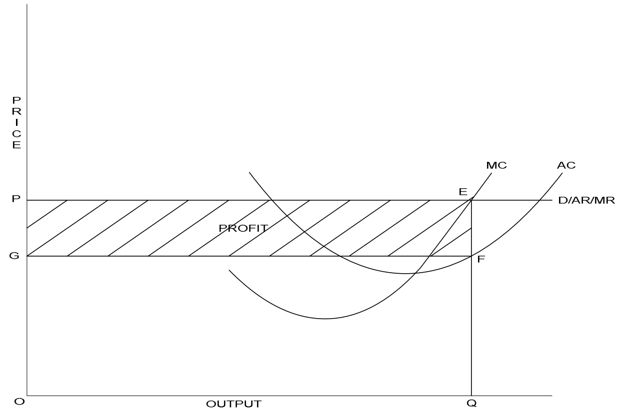

चित्र 14.3 लाभ के साथ अल्पकालीन संतुलन

उपरोक्त चित्र में हम कह सकते हैं, कि PD औसत एवं सीमाँत आगम (AR & MR) है। फर्म OP मूल्य पर (मूल्य प्राप्त करते हुए) OQ उत्पादन करेगा तथा बिंदु E पर संतुलन में होगा। छायाँकित भाग अर्जित लाभ दिखाता है। चूंकि OP मूल्य तथा OG लागत है अतः PEFG लाभ है।

हानि के साथ अल्पकालीन संतुलन

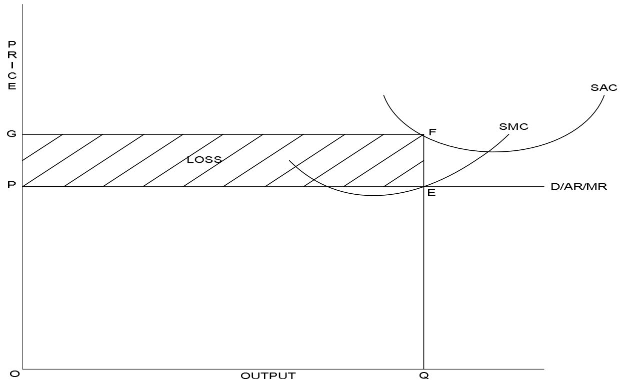

चित्र 14.4

प्रस्तुत चित्र में OP बाजार के माँग व पूर्ति के अनुसार दिया गया मूल्य है, OG लागत तथा OP मूल्य है जो कि लागत से कम है, E संतुलन बिंदु है।छायाँकित भाग PEFG हानि को व्यक्त करता है।

उत्पादन बंद करने का बिंदु

अल्पकाल में फर्म अपना उत्पादन, दीर्घकाल में अपनी हानियों की भरपाई (क्षतिपूर्ति/वसूली) हेतु जारी रख सकती है। जैसा कि पूर्व में विचार किया जा चुका है, कि अल्पकाल में उत्पादन शुन्य (0) होने पर भी स्थिर लागतें लगती हैं। अब इस दशा में, जबकि फर्म हानि उठा रही है, तो वह तब तक उत्पादन जारी रख सकती है, जब तक कि हानि स्थिर लागतों से अथवा उसके बराबर (समान) है। तब फर्म उस दशा तक उत्पादन कर सकती है, जब तक कि हानि कुल स्थिर लागत (TFC) के बराबर अथवा उससे कम है। यदि फर्म अपने परिवर्तनशील लागतों तथा स्थिर लागत के कुछ भाग को वसूल (प्राप्त करना) करने में समर्थ होती है, तो वह उत्पादन जारी रखेगी, क्योंकि यदि फर्म उत्पादन बंद कर देती है, तो फर्म के समस्त स्थिर व्यय उसके घाटे (हानि) के रूप में आएंगे (घाटा होगा)।

उत्पादन न होने (उत्पादन रोक देने) की दशा में परिवर्तनशील लागतें बिल्कुल नहीं होंगी, किंतु यदि हानि स्थिर लागतों से अधिक है तब उत्पादक उत्पादन बंद कर देगा। इसलिए सिर्फ संपूर्ण स्थिर लागतों को ही नहीं वरन परिवर्तनशील लागतों के एक भाग का भी वहन अपने स्वयं के खर्च (जेब) से देना होगा, आगम (राजस्व) से नहीं। अतः यह सलाह उपयुक्त है, कि जब हानि स्थिर लागत के बराबर हो तो उत्पादन रोक (बंद) देना चाहिए, क्योंकि इस दशा में कोई परिवर्तनशील लागत नहीं होगी क्योंकि उत्पादन शून्य होगा। इस सिद्धाँत को निम्न रेखा चित्र द्वारा दर्शाया गया है,

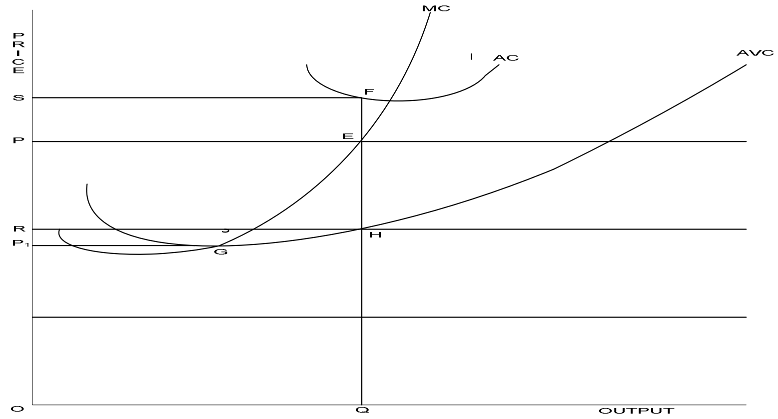

चित्र 14.5

उत्पादन ठप्प बिंदु मान लेते हैं, OP मूल्य है तब कुल आगम OPEQ तथा कुल परिवर्तनशील लागत OQHR तथा कुल स्थिर लागत RHFS है। OP मूल्य के साथ (OP मूल्य पर) कुल आगम परिवर्तनशील लागत तथा स्थिर लागत के एक भाग को समाहित करता (PEHR जो कि स्थिर लागत का भाग है तथा ORHQ परिवर्तन लागत है जो मूल्य OP समाहित करता है) है। जब मूल्य OP से OP_1 तक गिरता है तब इस स्थिति में केवल एक भाग OP_1G तक मूल्य द्वारा आच्छादित (ढका/समाहित) होता है, तथा हानि स्थिर लागत तथा परिवर्तनशील लागत के एक भाग के बराबर होती है। यदि उत्पादक इस बिंदु पर उत्पादन रोक देता (बंद/ठप्प) है तो उसे सिर्फ स्थिर लागत पर ही हानि उठानी पड़ती है, क्योंकि उत्पादन (निर्गत) ठप्प है अतः परिवर्तनशील लागत शून्य रहती है।

दीर्घकालिक (दीर्घकाल में) साम्यावस्था (संतुलन)

हम कल्पना करते हैं,कि प्रत्येक फर्म उद्योग में समरूप लागत दशाएँ रखती है, (सबको समान लागत स्थिति प्राप्त है)। अल्पकाल में फर्म हानि की दशा में भी उत्पादन जारी रखती है, किंतु दीर्घकाल में फर्म यदि साधारण लाभ भी नहीं प्राप्त कर रही तो भी उत्पादन बंद कर देगी। स्वतंत्र प्रवेश एवं निकास के मूलभूत विशेषताओं के अनुसार जब उत्पादन ठप्प करने के बिंदु पर अवस्थित कोई फर्म उत्पादन बंद करेगी जो कि आपूर्ति को कम करेगा लाभ को बढ़ाएगा तथा अन्य फर्में जो अभी तक हानि उठा रही थी सामान्य लाभ प्राप्त करने लगेगी। जब अधिकाँश फर्में लाभार्जन कर रही हों तो उद्योग आकर्षक (संभावना युक्त) लगता है। कई नई फर्म उद्योग में प्रवेश करती है जो उद्योग में आपूर्ति को बढ़ाता है तथा लाभ कम हो जाता है। उद्योग में विद्यमान फर्म अत्यधिक (अधिलाभ) की स्थिति से सामान्य लाभ की स्थिति में वापस (लौट) आ जाएगी। इस प्रकार

दीर्घकाल में पूर्ण प्रतियोगिता के अंतर्गत फर्म को सामान्य लाभ प्राप्त होता है, न तो कोई अधिलाभ होता है और ना ही कोई बड़ी हानि (घाटा)।

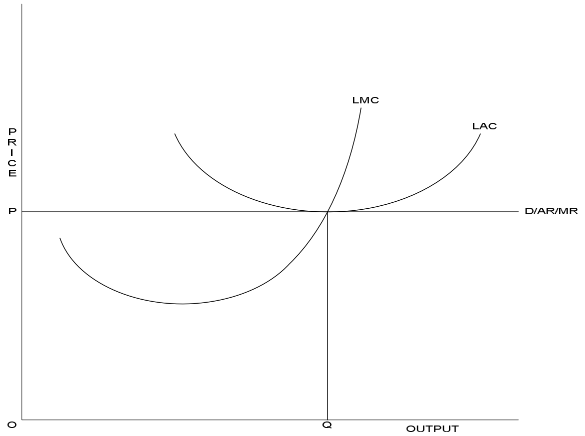

चित्र 14.6

दीर्घकाल में फर्म उस बिंदु पर संतुलन (साम्यावस्था) में होगी जहाँ SMC केवल LAC ही नहीं वरन LMC के भी बराबर है। यदि यहाँ लाभ है, वे नई फर्मों को आकर्षित करेंगे, आपूर्ति बढ़ेगी, लाभ OP बिंदु तक नीचे आएगा तथा लाभ सामान्य लाभ पर वापस आएगा।

यदि लाभ OP से नीचे है, तो दीर्घकाल में कई फर्म उत्पादन बंद करने की स्थिति (उत्पादन ठप्प बिंदु) में पहुंच जाएगी तथा उद्योग से निष्कासन ले लेंगी जो कि आपूर्ति को कम करेगा। लाभ मूल्य को OP बिंदु तक ले जाएगा तथा पुनः फर्मे सामान्य लाभ (साधारण लाभ) प्राप्त करने लगेंगी।

प्रतिस्पर्धा का कष्ट (दर्द)

कभी कभी उद्योग को पूर्ण प्रतिस्पर्धी होता देखना संभव होता है। वस्तुतः यह दवा निर्माण उद्योग नियमिततः होता है जैसे ही लोकप्रिय दवाओं का पेटेंट समाप्त (अवसान) होता है, पूर्ण प्रतियोगिता की दशाएँ (शीघ्र ही) प्राप्त होती हैं।

जब कोई कंपनी नवीन (नयी) जगह विकसित करती है, तो प्रायः वह कंपनी उस पर पेटेंट,एक ऐसा विछित एकाधिकार जो उसे उसके आवेदन (प्रपत्र जमा करन) की तिथि से 20 वर्षों तक के लिए दवा बेचने का अनन्य अधिकार प्रदान करता (देता) है, प्राप्त करने में समर्थ (सक्षम) होती है। जब यह पेटेंट समाप्त होता है, तब यह क्षेत्र अन्य कंपनियों के लिए खुल जाता है, कि वे दवा के अपने संस्करण को सामान्य (जेनेरिक) के नाम पर दवा के चिकित्सीय नाम से बेच सकते हैं, न कि मूल उत्पादक के द्वारा प्रयुक्त ब्रांड के नाम से।जेनेरिक (सामान्य) मानकीकृत उत्पाद होते हैं, एस्प्रिन की तरह तथा अधिकांशतः कई (अनेक) उत्पादकों द्वारा बेची जाती हैं।

इसका एक अच्छा (सटीक) उदाहरण सन 1984 में दृष्टण्य हुआ जब आइबूप्रोफेन दवा, एक दर्द निवारक दवाई, पर जिसे कि उसकी उत्पादक कंपनी अपजान अभी भी मार्टिन ब्रांड के अंतर्गत बेचती है, पर अपजान कंपनी का पेटेंट समाप्त हो गया था, अर्थात पेटेंट के समाप्त होने के बाद भी कंपनी इसे अन्य नाम (ब्रांड) के अंतर्गत बेच रही है। कई लोग (अधिकाँश) जो आइब्रोफेन का प्रयोग करते हैं, इसी प्रकार अधिकाँश लोग जो एस्प्रिन का प्रयोग करते हैं, अब इन

दवाओं के सामान्य संस्करण का प्रयोग करते हैं, जो अनेक उत्पादकों द्वारा उत्पादित किए जाते हैं।

पूर्ण प्रतियोगिता की ओर खिसकाव (परिवर्तन) बाजार मूल्य में गिरावट से संयोगिक रूप से ही (संयोगतः) नहीं जुड़ा है। पेटेंट के समाप्त (अवसान) के पश्चात अपजान ने मार्टिन के मूल्य 35 प्रतिशत कम कर (घटा) दिए, किंतु जब और कंपनियों ने सामान्य (जेनरिक) दवाएं बेचनी आरंभ किए तो अंतोगत्वा आइब्रूफेन के मूल्य दो तिहाई गिर गए। दस वर्ष पश्चात नेप्रोसीन के ब्रांड नाम से बिकने वाली दर्द निवारक दवा नेप्रोजेन का पेटेंट समाप्त हो गया। शीघ्र ही नेप्रोजेन दवा का सामान्य संस्करण मूल (असली) नेप्रोसीन की कीमत के एक दहाई मूल्य पर बिक रही थी।

14.4 एकाधिकार के अंतर्गत साम्य (संतुलन)

एकाधिकारी विक्रेता उद्योग में एकमात्र (अकेला) विक्रेता होता है, वह मूल्य एवं उत्पादन पर संपूर्ण नियंत्रण रखता है। इसलिए मांग वक्र नीचे की ओर गिरता हुआ होगा। यदि एकाधिकारी माँग का जरा सा त्याग करने को तैयार हो तो मूल्य को बढ़ा सकता है, तथा यदि वह विक्रय को बढ़ाना चाहता है, तो मूल्य को गिरा (कम कर) सकता है।

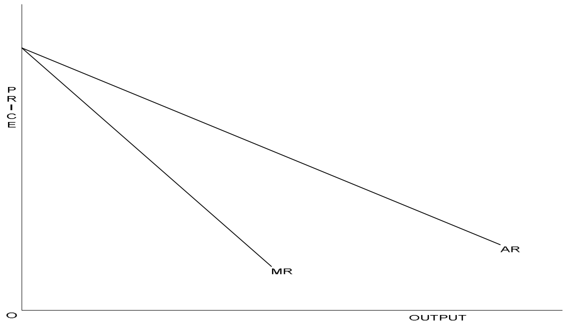

चित्र 14.7 एकाधिकार के अंर्तगत मांग वक्र

चित्र 14.7 में X अक्ष् उत्पादन को तथा Y अक्ष मूल्य को दर्शाता है। जैसा कि हम देख सकते हैं, कि मांग वक्र नीचे की ओर गिर रहा है। मांग वक्र औसत आगम (AR) वक्र है तथा सीमांत आगम (MR) औसत आगम से कम है। इसलिए (अतः) सीमाँत आगम (MR) औसत आगम (AR) से नीचे (कम) रहता है।

मूल उत्पादन साम्य (संतुलन)

एकाधिकारी सदैव अपने लाभ को अधिकतम करने का प्रयास करेगा। वह तब तक अतिरिक्त उत्पादन करता रहेगा जब तक कि सीमाँत आगम (MR) सीमाँत लागत से अधिक है, क्योंकि यह उसके लिए तब तक लाभदायक है जब तक यह उसके आगम में वृद्धि करता रहे। उसका उत्पादन उस जगह पर अधिकतम होगा जब वह वहां उत्पादन करे जहां MR=MC (सीमाँत आगम =सीमांत लागत) होता है। यदि वह इससे कम उत्पादन करता है, तो वह उस लाभ का त्याग करेगा जो वह अर्जित कर सकता है। यदि वह MR = MC की स्थिति (दशा) से अधिक उत्पादन करेगा जहां MR < MC होगा तथा वह अतिरिक्त उत्पादित इकाई पर हानि उठाएगा। यह एक सामान्य विचार (धारणा) है, कि एकाधिकारी सदैव लाभ प्राप्त प्राप्त करता है, किंतु वास्तविकता यह है, कि माँग के अपर्याप्त होने की दशा में वे भी हानि उठा सकते हैं।

लाभ के साथ दीर्घकालीन साम्य (संतुलन)

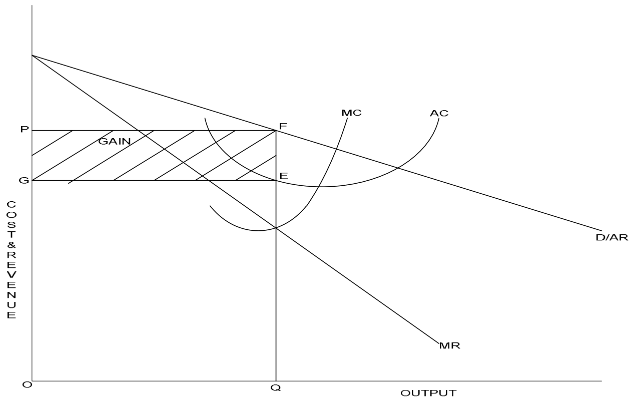

चित्र 14.8 लाभ के साथ दीर्घकालीन साम्य (संतुलन)

चित्र 14.8 में X अक्ष उत्पादन तथा Y अक्ष मूल्य को दर्शाता है। OQ उत्पादित, उत्पादन की मात्रा है, जहां MR=MC है उस बिंदु पर OP मूल्य है, QE औसत लागत तथा EF प्रति इकाई अर्जित लाभ है। OQ उत्पादन से गुणित लाभ प्रति इकाई आर्थिक लाभ प्रदान करता है जो छायांकित भाग PFEG के बराबर है।

हानि के साथ अल्पकालीन संतुलन

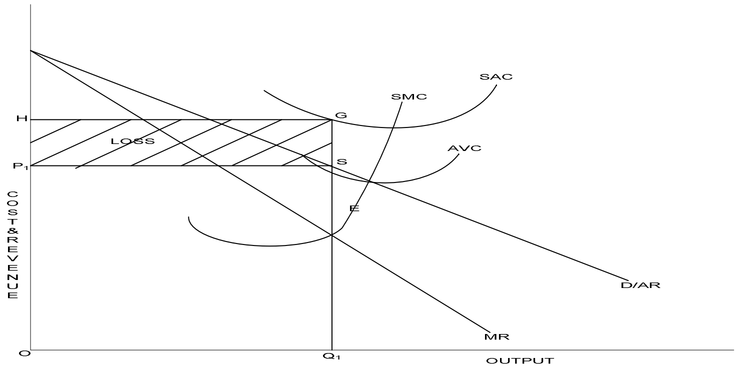

चित्र 14.9 हानि के साथ अल्पकालीन संतुलन (साम्य)

चित्र 14.9 में विक्रेता OQ_1 उत्पादन पर, OP_1 मूल्य पर संतुलन अवस्था (साम्यावस्था) में है, जो कि औसत लागत Q_1G से कम है। इस प्रकार विक्रेता P_1SGH छायाँकित क्षेत्र पर हानि प्राप्त करता (उठाता) है। जैसे ही मूल्य OP_1 औसत परिवर्तनशील लागत से अधिक होगा, उत्पादक उत्पादन जारी (चालू) रखेगा।

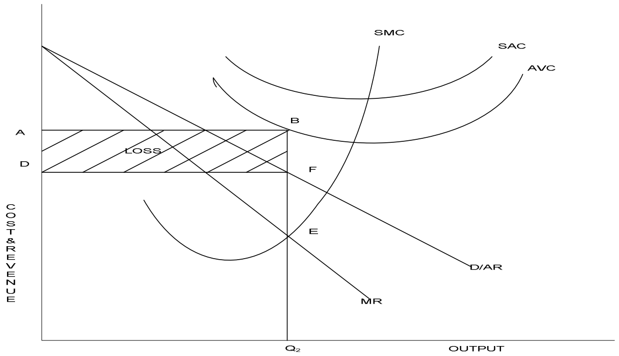

चित्र 14.10

चित्र 14.10 में मांग वक्र, औसत परिवर्तनशील लागत से नीचे (कम) है। एकाधिकारी फर्म हानि को न्यून करेगी तथा OQ_2 उत्पादन करेगी एवं छायाँकित क्षेत्र ABFD द्वारा दिखाए गए कुल परिवर्तनशील लागत तथा कुल लागत के मध्य के अंतर एवँ स्थिर लागत के बराबर हानि उठायेगी। एकाधिकारी के लिए यह विवेक सम्मत नहीं होगा कि इस उत्पादन बिंदु पर उत्पादन करें एवँ स्थिर लागत से अधिक हानि उठाये।

दीर्घकालिक दीर्घकालीन साम्य (संतुलन)

उत्पादन के समस्त साधन (घटक) दीर्घकाल में परिवर्तनशील होते हैं। अतः संयत्र के आकार में समस्त प्रकार के समायोजन केवल (मात्र) दीर्घकाल में ही किए जाते हैं। फर्म को संयत्र का आकार बढ़ाकर (समायोजित कर) लाभ को बढ़ाना होगा। संयंत्र के आकार को इस प्रकार समायोजित किया जाता है, कि MR = LMC = SMC (सीमाँत आगम = दीर्घकालीन सीमाँत लागत = अल्पकालीन सीमाँत लागत) हो।

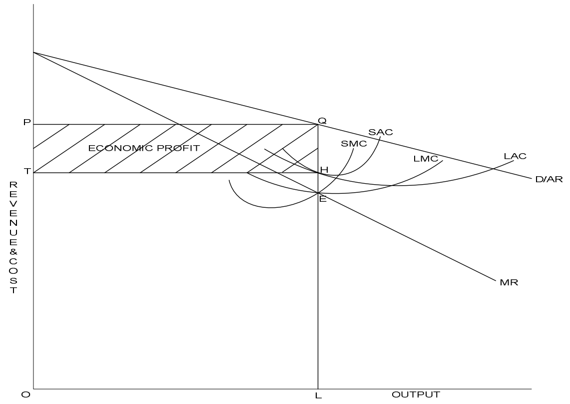

चित्र 14.11

बिंदु OP अथवा OQ पर दीर्घकालीन संतुलन है, जहाँ OL उत्पादन होता है। इस बिंदु पर MR = LMC (सीमाँत लागत = औसत सीमाँत लागत)।

फर्म LAC बिंदु पर संचालित होगी जहां SAC इसकी स्पर्शी है क्योंकि केवल स्पर्श बिंदु पर अनुकूलतम संयत्र का SMC, LMC के बराबर होगी। OL साम्य (संतुलन) उत्पादन है जहां LMC, MR को प्रतिच्छेदित करती है तथा OP मूल्य भारित करती है तथा लाभ, छायाँकित PQHT भाग प्राप्त करती है।

14.5 मूल्य विभेद

एकाधिकारी मूल्य विभेद कर सकता है अर्थात वह इस स्थिति में होता है, कि वह भिन्न–भिन्न क्रेताओं से अलग अलग मूल्य प्राप्त कर सके, मूल्य विभेद क्योंकि वह बाजार में संबंधित वस्तु का एकमात्र उत्पादक होता है।

मूल्य विभेद की मात्राएँ

1. **मूल्य विभेद की प्रथम मात्रा**

इसे पूर्ण मूल्य विभेद भी कहा जाता है, और इसमें (इसके अंतर्गत) विक्रेता के हित में उपभोक्ता का अधिकतम शोषण सम्मिलित होता है। यह तब होता है, जब कि विक्रेता प्रत्येक इकाई को पृथकतः एवं भिन्न–भिन्न मूल्य पर बेच सकने में समर्थ (योग्य) होता है। प्रत्येक उपभोक्ता इस प्रकार लक्षित किया जाता है (बनाया) कि वह अपने द्वारा दी जाने वाली कीमत (मूल्य पर ही) पर ही वस्तु प्राप्त करने कर ले बजाय कि वह वस्तु के बिना रहे। विक्रेता प्रत्येक क्रेता से अलग अलग तरह की सौदेबाजी करेगा। उदाहरणार्थ उपभोक्ता यदि किसी वस्तु के लिए रु 50 देने को तैयार है, किंतु यदि उससे अधिक मूल्य पर वह उस वस्तु को त्यागना (छोड़ देना) पसंद करेगा। विक्रेता उससे रु 50 भारित (प्राप्त) करेगा और क्रेता अपना ऐच्छिक मूल्य अथवा वह अधिकतम मूल्य जो वह दे सकता है भुगतान कर सकता है। यदि क्रेता B उसी उत्पादन के लिए रु 75 देने का इच्छुक है, तो विक्रेता उससे रु 75 भारित करेगा तथा यह सुनिश्चित करेगा की क्रेता वही मूल्य दे रहा है जो वह देना चाहता है। यहाँ एकाधिकारी विक्रेता द्वारा क्रेता का पूर्ण शोषण होता है। विक्रेता को प्राप्त इस मूल्य विभेद के अवसर (लाभ/अधिकार) को प्रथम प्रकार (प्रथम कोटि) का मूल्य विभेद कहा जाता है।

2. **द्वित्तीय मात्रा (कोटि/प्रकार) का मूल्य विभेद**

यह उस दशा में होता है, जब एकाधिकारी विक्रेता अलग (पृथक पृथक) अलग इस प्रकार भारित करेगा जैसे कि क्रेता, उसके उत्पाद के लिए, माँग की मूल्य लोच के अनुसार विभिन्न समूहों में विभाजित है। वह उस बाजार में, निम्न (कम) मूल्य उद्धृत (लगायेगा) करेगा जहाँ उसके उत्पाद के माँग की लोच सापेक्षतः (सापेक्षिक रूप से) लोचशील (प्रत्यास्थ) है, जबकि उस बाजार में जहाँ उसके उत्पाद के माँग की लोच अलोचशील (अप्रत्यास्थ) है वहाँ वह अपने उत्पादों पर अधिक मूल्य भारित (प्राप्त) करेगा।

3. **तृतीय प्रकार (कोटि/मात्रा) का मूल्य विभेद**

जब विक्रेता उप बाजार में विभाजित होगा तथा उस उप बाजार की माँग दशाओं एवं बाजार में विक्रित उत्पादन पर आधारित भिन्न भिन्न मूल्य भारित (प्राप्त) करेगा तो इसे तृतीय कोटि (तीसरे प्रकार/मात्रा) का मूल्य विभेद कहा जाता है। अंतर्राष्ट्रीय एवं घरेलू बाजार के मध्य मूल्य विभेद कर रहा विक्रेता घरेलू बाजार में अधिक मूल्य भारित करेगा, जहाँ वह एकाधिकारी की स्थिति में है, तथा अंतर्राष्ट्रीय बाजार में निम्न मूल्य (कम दाम पर) भारित करेगा जहाँ कि उसे अधिक प्रतिस्पर्धा का सामना करना पड़ता है।

मूल्य विभेद के अंतर्गत साम्यावस्था (संतुलन)

मूल्य विभेद के अंतर्गत, एकाधिकारी विक्रेता विभिन्न बाजारों में उत्पाद की माँग की लोच के अनुसार पृथक पृथक मूल्य भारित करेगा। विश्लेषण को सरल बनाने हेतु हम यह कल्पना करते हैं, कि विक्रेता संपूर्ण बाजार को दो उप बाजारों में विभाजित करता है।

यदि विक्रेता दो निर्णय, कुल कितना उत्पादन उसे करना है, तथा ये कुल उत्पादन उप बाजार में किस प्रकार वितरित किया जाना चाहिए, लेना चाहता है तो इसके पश्चात उसे यह निर्णय करना होगा कि वह इन दो उप बाजारों में क्या मूल्य भारित करना होगा।

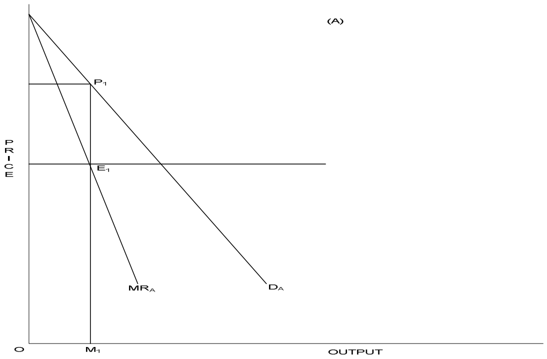

चित्र 14.12

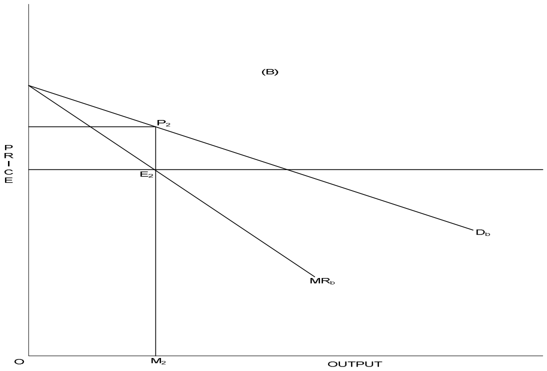

चित्र 14.13

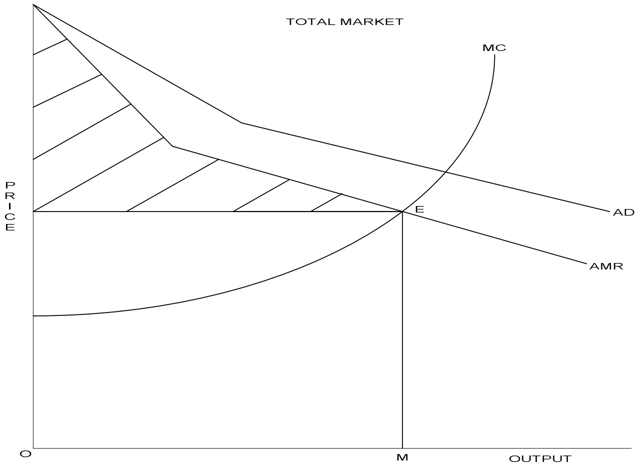

चित्र 14.14

प्रस्तुत चित्र **14.14** में एकाधिकारी ने संपूर्ण बाजार को दो उप बाजारों, 'A' एवं 'B' में विभाजित किया है। अब सर्वप्रथम उसे यह गणना करनी होगी कि बाजार का संपूर्ण सीमाँत आगम क्या है, तथा तत्पश्चात साम्यावस्था का उत्पादन

(संतुलन अवस्था का उत्पादन) निर्धारित करने हेतु उसे इसकी तुलना संपूर्ण सीमाँत लागत से करनी होगी। ऊपर प्रदर्शित चित्र में D_a बाजार 'A' के लिए माँग वक्र है तथा MR_a बाजार '**A**' के लिए सीमाँत आगम है। D_b बाजार 'B' का माँग वक्र तथा MR_b बाजार 'B' का सीमाँत आगम है।

AD संपूर्ण बाजार के कुल माँग है तथा AMR संपूर्ण बाजार का कुल सीमाँत आगम है। संपूर्ण बाजार में AD , AMR को बिंदु 'E' पर प्रतिच्छेदित करता है। यह OM उत्पादन है जो विक्रेता MR=MC बिंदु पर उत्पादित करेगा बाजार 'A' व 'B' बिंदु E_1 व E_2 पर साम्यावस्था (संतुलन) में होंगे। उत्पादन की कुल मात्रा निर्धारित होने के उपराँत, फर्म को इस कुल उत्पादन के दो बाजारों 'A' एवं 'B' में विभाजित करना होगा। वह अपने कुल उत्पादन को इस प्रकार वितरित करेगा कि दोनों बाजारों का MR कुल बाजार अथवा कुल उत्पादन के MC के बराबर है। इस दशा में $OM = OM_1+OM_2$ होते हैं। जब हम माँग वक्र पर दृष्टिपात करते हैं, तो स्पष्ट दृष्टिगम्य में होता है, कि बाजार 'A' में माँग 'B' बाजार के सापेक्ष अधिक आलोचनाशील (अप्रत्यास्थ) है। अब बाजार 'A' में भारित मूल्य बाजार 'B' के मूल्य की तुलना में अधिक (ऊंचा) होगा। विक्रेता उत्पादन OM_1 को M_1E_1 मूल्य पर बेचेगा, जबकि बाजार 'B' में मांग अधिक प्रत्यास्थ है। इसलिए फर्म 'A' बाजार की तुलना में कम मूल्य भारित करेगी तथा फर्म M_2E_2_ मूल्य को भारित करेगी तथा OM_2 उत्पादन विक्रित करेगा।

इस प्रकार से एकाधिकारी विक्रेता मूल्य विभेद के अंतर्गत साम्यावस्था (संतुलन) की स्थिति में होगा।

क्या हीरे का एकाधिकार सदैव होता है?

जब सिसिल रोड्स ने डीबियर्स का एकाधिकार स्थापित किया यह एक समयोचित (अवसर परक) क्षण था। दक्षिण अफ्रीका में नवीन हीरों की खानों ने पहले के समस्त साधनों को बौना कर दिया। अतः विश्व के हीरे का लगभग कुल उत्पादन कुछ वर्ग मील के क्षेत्र में संकेंद्रित हो गया था।

उस समय से हीरे का उतना ही भंडार कुछ क्षेत्रों अन्य अफ्रीकी देशों,रूस और ऑस्ट्रेलिया, जोकि अब हीरे का सबसे बड़ा उत्पादक है, में स्थित (पायी जाती) है। अतः अब डीबीयर्स किस प्रकार एकाधिकारी बना रह सकता है?

जब तक डीबीयर्स नए उत्पादकों को खरीदने अथवा नवीन खानों के स्वामित्व रखने वाली स्थानीय सरकारों से अनुबंध करने में सक्षम था, जो डीबीयर्स की एकाधिकारिता स्थापित करने में प्रभावी सिद्ध हो रहा था। इन सब में सबसे उल्लेखनीय बात पूर्व सोवियत संघ के साथ अनुबंध, जोकि विश्व भर में आपूर्ति नियंत्रण की योग्यता का परिरक्षण (बनाए रखना) करने के लिए था, ने यह सुनिश्चित किया कि रूस के हीरे अब डीबीयर्स के द्वारा विपणित किए जाएंगे।

हाल के वर्षों में, हालांकि, हीरे के उत्पादन का प्रसार, संयुक्त रुप से कृत्रिम हीरे के उत्पादन के साथ जो कि अब वास्तविक (प्राकृतिक) पत्थरों का श्रेष्ठतर विकल्प बनता जा रहा है, अब डीबीयर्स के नियंत्रण में, क्षरण को दर्शा रहा है, यहां तक कि मूल्य भी गिर (कम) गए। यह ये बताने को पर्याप्त है, कि हीरे का एकाधिकार सदैव नहीं रह सकता।

14.6 क्रेता एकाधिकार

एकाधिकार का लक्ष्य (उद्देश्य) लाभ को अधिकतम करना होता है, जबकि क्रेता एकाधिकार का उद्देश्य उपभोक्ता आधिक्य को अधिकतम करना होता है। उपभोक्ता आधिक्य, उपभोक्ता जो मूल्य देना चाहता है तथा जो वह वास्तव में देता है, के मध्य का अंतर है। एकाधिकार की दशा में साम्यावस्था (संतुलन) तब होती है जब MR = MC साम्यावस्था होते हैं, जबकि क्रेता एकाधिकार में साम्यावस्था तब होती है जब MC = MU (सीमाँत उपयोगिता) होते हैं।

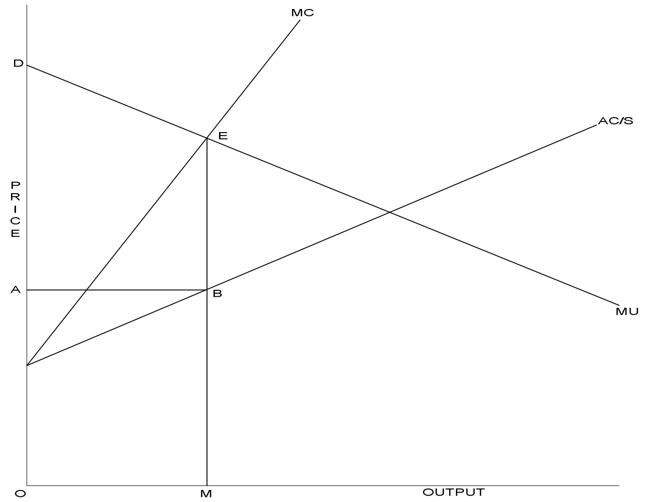

चित्र 14.15 क्रेता एकाधिकार की दशा में साम्यावस्था (संतुलन)

उपरोक्त प्रदर्शित चित्र में उद्योग का आपूर्ति वक्र औसत लागत वक्र, AC है। MU क्रेता एकाधिकारी की सीमाँत उपयोगिता है। क्रेता एकाधिकारी (एकाधिकारी क्रेता) E बिंदु पर साम्यावस्था में होगा, जहां MU = MC होगा तथा वह OM उत्पादन OA मूल्य पर खरीदेगा। एकाधिकारी क्रेता द्वारा प्राप्त आधिक्य DEBA क्षेत्र है जो उपभोक्ता जो देने का इच्छुक है तथा जो वह वास्तव में देता है, उसके अंतर का क्षेत्र है।

अर्थात DEBA = ODEM – OABM

DEBA - एकाधिकारी क्रेता द्वारा अर्जित आधिक्य

ODEM - जो मूल्य देने का एकाधिकारी क्रेता इच्छुक है

OABM - जो मूल्य एकाधिकारी क्रेता वास्तव में चुकाता (देता) है

14.7 द्विपक्षीय एकाधिकार

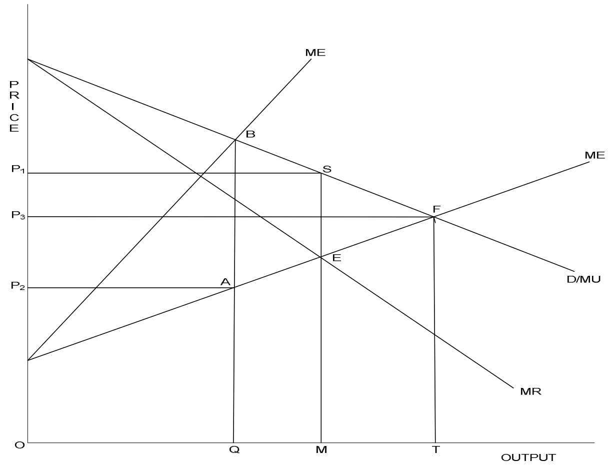

चित्र 14.16

उपरोक्त चित्र में D एकाधिकारी उत्पादक के लिए माँग वक्र है, MC एकाधिकारी उत्पादक के लिए सीमाँत लागत तथा एकाधिकारी क्रेता हेतु आपूर्ति वक्र है। माँग वक्र D एकाधिकारी क्रेता हेतु सीमाँत उपयोगिता (MU) है।

एकाधिकारी E बिंदु पर साम्यावस्था (संतुलन) में होगा जहां MR = MC तथा यदि वह OM उत्पादन करता है तो लाभ अधिकतम होगा। एकाधिकारी क्रेता B बिंदु पर साम्यावस्था (संतुलन) में होगा जहां MED /MU को प्रतिच्छेदित करता है,वह OQ उत्पाद OP_2 अथवा QA मूल्य पर क्रय करेगा। अब यहाँ पर एकल क्रेता एवं एकल विक्रेता के मूल्य के मध्य असहमति (मतभेद) है। एकाधिकारी विक्रेता OP_1पर अधिकतम मूल्य प्राप्त करना चाहता है, वहीं एकल क्रेता (एकाधिकारी क्रेता) OP_2 पर निम्न (कम) मूल्य देना चाहता है। विक्रय की वास्तविक मात्रा एवं मूल्य दोनों पक्षों की सौदेबाजी की क्षमता के द्वारा निर्धारित होगा। यदि एकल क्रेता श्रेष्ठतर सौदेबाजी की क्षमता रखता है, तो मूल्य OP_2 मूल्य के निकट निश्चित (तय) हो जाएगा, और यदि एकल विक्रेता की सौदेबाजी की क्षमता एकल क्रेता से श्रेष्ठकर है तो वह मूल्य को OP_1 मूल्य पर तय करने को प्रवृत्त होगा। इस प्रकार मूल्य को OP_1 , OP_2 के मध्य तय करने की प्रवृत्ति होगी। यदि दोनों एक फर्म में संविलियत हो जाते हैं तो मूल्य OP_3 होगा तथा फर्म F बिंदु पर अपने लाभ को अधिकतम करेगी, जहां MC/S , D/MU को काटता हैं। फर्म OT उत्पादन की OP_3 मूल्य पर आपूर्ति करेगी। इस दशा में फर्म एकाधिकारी उत्पादन की तुलना में अधिक उत्पादन, क्रेता एकाधिकारी मूल्य से कम मूल्य पर उत्पादित कर रही है।

14.8 एकाधिकार प्राप्त (एकाधिकारी) बाजार संरचना

लाभ के साथ अल्पकालिक साम्य (संतुलन)

एकाधिकारी (एकाधिकार प्राप्त) बाजार संरचना के अंतर्गत माँग वक्र नीचे की ओर गिरता हुआ होता है, क्योंकि विक्रेता उत्पादों के निकट प्रतिस्थानापत्र वस्तुओं को बेचता है, अतः मूल्य का निर्धारण उत्पाद के मांग की लोच द्वारा होता है।

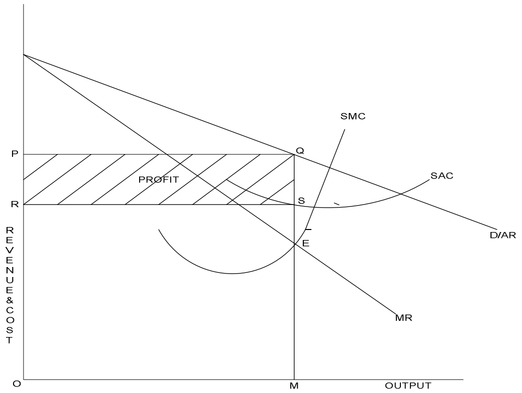

चित्र 14.17 एकाधिकार प्राप्त बाजार संरचना के अंतर्गत माँग वक्र

प्रस्तुत (उपरोक्त) चित्र में लागत एवं माँग दशाएँ दिखाती है, कि फर्म अपने मूल्य एवं उत्पादन को उस स्तर पर समायोजित करेगी जहाँ वह MR = MC होने पर वह अधिकतम लाभ अर्जित करेगी। फर्म OM उत्पादन OP मूल्य पर करती है, फर्म E बिंदु पर साम्यावस्था (संतुलन) में होती है, तथा इस बिंदु पर फर्म PQSR लाभ अर्जित करेगी। यह फर्म द्वारा अर्जित आर्थिक लाभ (असामान्य लाभ/अधि सामान्य लाभ) है।

हानि के साथ अल्पकालीन संतुलन

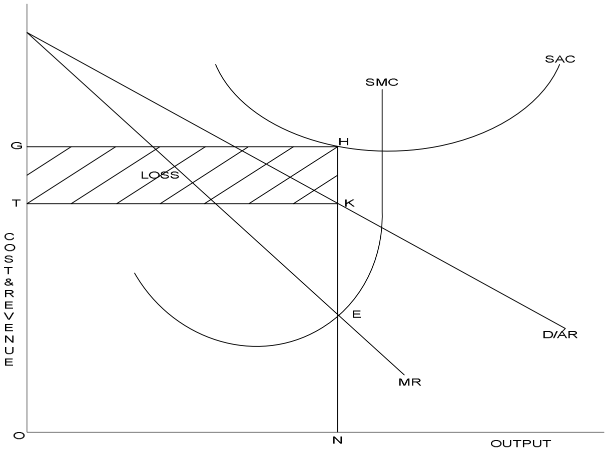

चित्र 14.18 हानि के साथ अल्पकालीन साम्य

अल्पकालीन साम्यावस्था में फर्म को हानि भी हो सकती है। जब फर्म के उत्पाद की माँग दशाएँ इसकी लागत दशाओं की तुलना में अनुकूल न हो तो फर्म को अल्पकालीन साम्यावस्था में हानि का सामना भी करना पड़ सकता है। D माँग वक्र है तथा ON उत्पादन, OT मूल्य पर उत्पादित कर रहा है, फर्म की लागत OG है। इस प्रकार फर्म द्वारा अर्जित हानि GHKT है।

दीर्घकालिन साम्य (दीर्घकालिक संतुलन)

एकाधिकार प्राप्त (एकाधिकारी) प्रतिस्पर्धा में मुक्त प्रवेश एवं निकास की विशेषता पायी जाती है। इसका आशय यह है, कि नये उत्पादक उद्योग में प्रवेश कर सकते हैं, तथा निकट प्रतिस्थानापत्र वस्तुएँ उत्पादित कर सकते हैं। जब फर्म असमान्य लाभ अर्जित करती है, तो उद्योग आकर्षक बन जाता है। नए उत्पादकों के उद्योग में प्रवेश करने से आपूर्ति बढ़ती है तथा यह मूल्यों में कमी (गिरावट) लाती है। परिणामतः नयी फर्मों द्वारा असमान्य लाभ साझा (प्राप्त) किया जाता है,

तथा अन्य समस्त फर्में केवल सामान्य लाभ प्राप्त करती हैं। दूसरी तरफ जब फर्म को हानि होती है, तो वे फर्में जो दीर्घ अवधि से हानि में है, वे लंबे समय के लिए अपना उत्पादन बंद कर देगी तथा उद्योग से निष्कासित हो जाएगी। परिणामतः आपूर्ति कम (घट) हो जाती है, मूल्य बढ़ जाते हैं, तथा उद्योग में विद्यमान फर्म सामान्य लाभ प्राप्त करने लगेगी।

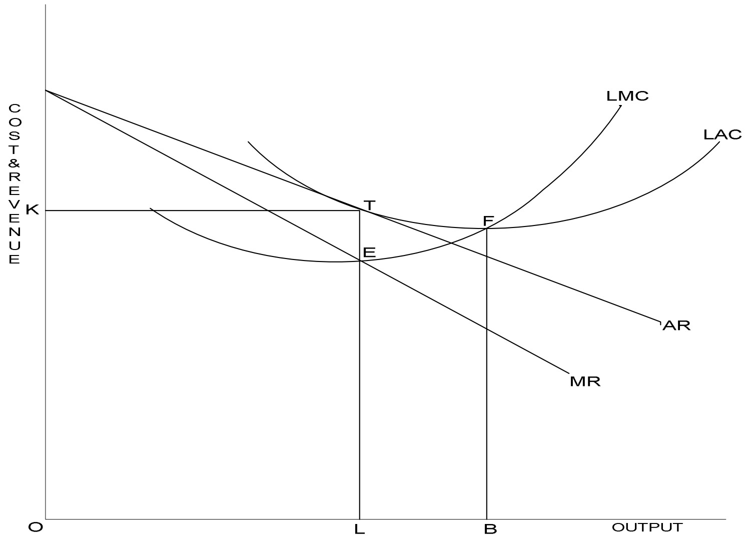

चित्र 14.19 दीर्घकालिक (दीर्घकालिन) साम्य

ऊपर प्रदर्शित चित्र में AR वक्र LAC को बिंदु T पर स्पर्श करती (स्पर्शज्या) है। इसलिए फर्म OL उत्पादन OK अथवा LT मूल्य पर उत्पादित करके साम्यावस्था (संतुलन) में रहेगी क्योंकि AR = AC (औसत आगम = औसत लागत) है। इस बिंदु पर फर्म सामान्य लाभ प्राप्त करती है। जब फर्में सामान्य लाभ प्राप्त कर रही होती हैं, तो उद्योग में नए प्रवेश की प्रवृत्ति नहीं होती है, समस्त फर्में साम्यावस्था (संतुलन) में होती हैं।

14.9 अल्पाधिकार

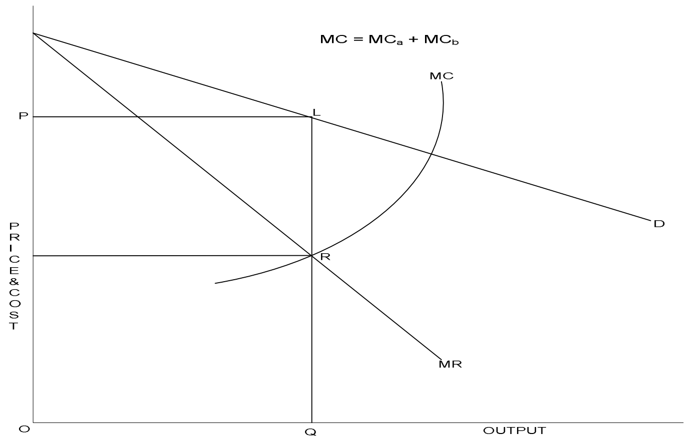

चित्र 14.20 अल्पाधिकार के अंतर्गत मूल्य निर्धारण

उपरोक्त चित्र में D उपभोक्ताओं एवं संपूर्ण उद्योग का समेंकित (एकीकृत/संयुक्त) मांग वक्र है, जो कि नीचे की ओर गिर रहा है। MR सीमाँत आगम है, जो D से नीचे रहता (अवस्थित) है। संघ सीमाँत लागत, MC_a एवं MC_b के योग द्वारा क्षैतिज है। उद्योग का उत्पादन, फर्मों के मध्य इस प्रकार वितरित होता है कि उनकी सीमाँत लागत समान हों। R बिंदु पर MR , MC वक्र को प्रतिच्छेदित करता है। OQ कुल उत्पादित मात्रा है, जो उस बिंदु पर उत्पादित होता है जहां MR , MC को काटती है, तथा जो संतुलन में है। कुल उत्पादन की मात्रा निर्धारित करने के पश्चात संघ प्रत्येक फर्म को उत्पादित करने हेतु कोटा (निश्चित मात्रा) इस प्रकार आँवटित करेगा कि जिससे सभी फर्मों की MC (सीमाँत लागत) समान हो। फर्म 'A' OQ_1 तथा फर्म 'B' OQ_2 मात्रा उत्पादित करते हैं, दोनों फर्म की सीमाँत लागत समान है। कुल उत्पादन OQ , OQ_1 एवं OQ_2 का योग है। फर्म 'A' OQ_1 उत्पादन के साथ PFTK लाभ अर्जित करेगी तथा फर्म 'B', OQ_2 उत्पादन के साथ PEGH लाभ अर्जित करेगी। फर्म के सदस्यों द्वारा उपार्जित लाभ उनके पास नहीं रहेंगे,वरन साथ में इकट्ठा (समुच्चित) किए जाएंगे तथा फर्म के सदस्यों के मध्य संघ निर्माण के समय निर्मित अनुबंधों के आधार पर वितरित किए जायेगें।उन सब के उत्पादन कोटा का आवँटन कतिपय आधारों पर होता है।

विकंपित माँग वक्र

अल्पाधिकार में यदि मूल्य अस्थिर होते है, तो अल्पाधिकारी की यह प्रवृत्ति होती है, कि वह मूल्यों में कोई परिवर्तन न करें भले ही बाजार दशाएँ परिवर्तन से गुजर रही हों।अल्पाधिकार बाजार संरचना को विकंपित माँग वक्र का सामना करना पड़ता है, जिसका आशय यह है, कि प्रचलित मूल्य अथवा जहाँ मूल्य अस्थिर होने की ओर उद्वत (अग्रसर) हों वह एक विकंपन होता है।

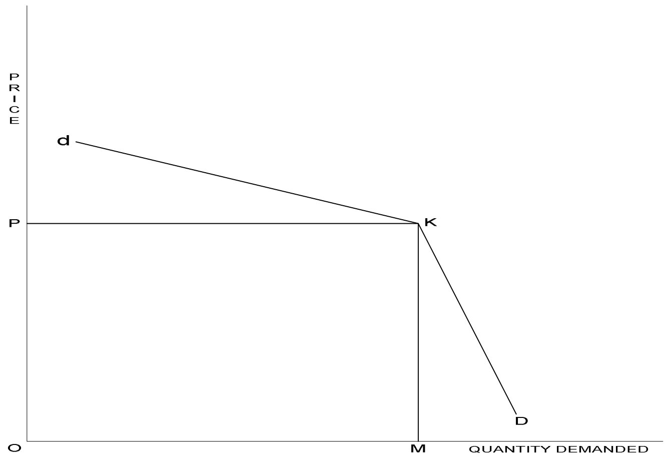

चित्र 14.21 विकंपित माँग वक्र

उपरोक्त चित्र में हम K बिंदु पर एक विकंपन देख सकते हैं। माँग वक्र का ऊपरी खंड सापेक्षिक रूप से लोचशील तथा निम्न (निचला) भाग सापेक्षतः अलोचशील है। विकंपित माँग वक्र dD , OP मूल्य स्तर पर K बिंदु पर विकंपन रखता है (पाता) तथा फर्म OM उत्पादन को उत्पादित एवं विक्रय कर रही है। फर्म के ऊपरी खंड (भाग) के लोचशील होने का कारण यह है, कि यदि फर्म

मूल्यों में वृद्धि करती है, तो यह माँग में अनुपातिक कमी से कम होगी, क्योंकि अन्य प्रतिद्वंदी मूल्य बढ़ाने के इस क्रिया (गतिविधि) का अनुसरण नहीं करेंगी, क्योंकि उनका यह कार्य अन्य प्रतिद्वंदी फर्म के लिए लाभदायक होगा। इस प्रकार माँग वक्र का यह भाग लोचशील कहा जाता है। दूसरी ओर माँग वक्र का निम्न (निचला) भाग अलोचशील है, क्योंकि जब एक फर्म मूल्य कम करती है, तो यह माँग में वृद्धि से कम होती है, क्योंकि अन्य कंपनियाँ उसी मूल्य पर चिपकी (बनी/जमी/स्थिर) नहीं रह सकती तथा वे दाम (मूल्य) कम करने (गिराने) को बाध्य होती हैं, अन्यथा वे सारे उपभोक्ताओं को खो देगी। माँग में आंशिक (जरा सी/हल्की/मामूली) वृद्धि तभी तक होती है जब तक की अन्य फर्म दाम गिरने पर ध्यान नहीं देती हैं। इसलिए प्रचलित मूल्य स्तर में अलोचशीलता (दृढता/जड़ता) व्याप्त होती है।यह अलोचशीलता इसलिए होती है, क्योंकि अल्पाधिकार में कोई प्रेरक नहीं होता है, चाहे मूल्य बढ़ायें अथवा गिरायें, क्योंकि मूल्य गिराने से माँग नहीं बढ़ेगी तथा ऐसे में मूल्य युद्ध की प्रवृत्ति होगी। अतः अल्पाधिकारी प्रचलित मूल्यों के अनुसार चलेगा।

14.10 सारांश

मूल्य नीति, विक्रेता एवं क्रेता के कर्तव्य (आचार), विपणन रणनीति इत्यादि का निर्धारण उस बाजार की संरचना के आधार पर होता है, जिसमें प्रबंधक कार्य (व्यवसाय)कर रहा होता है। किसी भी बाजार संरचना में चार विशेषतायें, क्रेता की संख्या एवं आकार वितरण, प्रवेश एवं निष्कासन की सरलता, उत्पाद विभेदीकरण एवं विक्रेताओं का आकार वितरण पायी जाती हैं। पूर्ण प्रतियोगिता में माँग वक्र क्षैतिज रेखा होती है, तथा उस बिंदु पर साम्यावस्था में होता है, जहां MR = MC होते हैं। बाजार में विक्रित उत्पाद समघातीय होते हैं, ये मूल्य प्राप्तकर्ता (पाने वाल) तथा उत्पादन समायोजनकर्ता (समायोजक) होते हैं, तथा चूँकि पूर्ण प्रतियोगिता में मुक्त प्रवेश एवं निकास होता है, अतः सभी फर्म केवल सामान्य लाभ प्राप्त करती हैं, इस बाजार में अधि सामान्य लाभ (असामान्य लाभ) अथवा बड़ी हानि नहीं होती है।

एकाधिकारी बाजार संरचना, बाजार संरचना का वह प्रकार होता है जिसमें किसी वस्तु/सेवा का एक ही विक्रेता/उत्पादक होता है। बाजार में इसकी वस्तुओं के निकट स्थानापत्र नहीं होते हैं, तथा उद्योग में प्रवेश एवं निवास बाधायुक्त होता है। विक्रेता मूल्य विभेद का लाभ समान उत्पाद के भिन्न–भिन्न क्रेताओं से अलग अलग मूल्य प्राप्त करना, उठाता है। एकाधिकार की दशा में माँग वक्र नीचे की ओर गिरता हुआ होता है, क्योंकि एकाधिकारी मूल्य निर्माता होता है तथा मूल्य बढ़ाने के लिए उत्पादन को प्रतिबंधित (सीमित) कर सकता है।

क्रेता एकाधिकार बाजार की वह दशा होती है, जिसमें क्रेता की दशा में एकाधिकार तत्व पाये जाते हैं। इस बाजार संरचना में एक वस्तु के एक से अधिक विक्रेता किंतु एक और केवल एक (एकमात्र) क्रेता होता है तथा जब सीमाँत उपयोगिता, सीमाँत लागत के बराबर होती है, तब संतुलन (साम्यावस्था) होती है। एकाधिकारी क्रेता अपने क्रय की मात्रा के द्वारा मूल्य को प्रभावित कर सकता है।

द्विपक्षीय एकाधिकार तब होता है, जब एक क्रेता एक विक्रेता से मिलता है। क्रेता उसी दशा में साम्यावस्था पाने का प्रयास करेगा MC = MR (सीमाँत लागत = सीमाँत आगम) होंगे तथा विक्रेता उस दशा में संतुलन पाने का प्रयास

करेगा जब MU = MC (सीमाँत उपयोगिता = सीमाँत लागत) होंगे। इनमें से जब दो संविलयित (संविलयन करना) होते हैं, तो वे क्रेता एकाधिकार एवं एकाधिकारी विक्रेता के मूल्य के मध्य सौदेबाजी एवं मूल्य निश्चित करेगें। एकाधिकारी क्रेता मूल्य कम करने का प्रयास करेगा तथा एकाधिकारी विक्रेता मूल्य बढ़ाने का प्रयास करेगा।

एकाधिकारात्मक बाजार संरचना की प्रमुख विशेषताओं में निम्नांकित को सम्मिलित किया जाता है,

- क्रेता एवं विक्रेताओं की अधिक संख्या
- विक्रेताओं द्वारा स्थानापत्र वस्तुओं का विक्रय
- मुख्य प्रवेश एवं विकास की दशाएँ

हानि प्राप्त कर रही कोई फर्म उद्योग से निकास ले सकती है तथा कोई भी फर्म उद्योग में प्रवेश कर के उत्पादन प्रारंभ कर सकती है। विज्ञापन व्यय एवं विक्रय व्यय एकाधिकारात्मक बाजार संरचना में अति बहुत महत्वपूर्ण है। उत्पाद विभेदीकरण इस बाजार संरचना में महत्वपूर्ण है।

अल्पाधिकारी बाजार संरचना में निकट प्रतिस्थानापत्र वस्तुएं बेचने वाले कुछ विक्रेताओं के मध्य प्रतिस्पर्धा होती है। विक्रेताओं के मध्य अत्यधिक अंर्तनिर्भरता होती है। मूल्य को लेकर एक विक्रेता की क्रिया पर प्रतिस्पर्धी विक्रेता प्रतिक्रिया करते हैं। यहाँ मूल्य युद्ध की प्रवृति होती है, क्योंकि मूल्य में एक फर्म द्वारा की गई कमी का तो अन्य फर्म (प्रतिस्पधी) अनुसरण करते हैं, किंतु मूल्य बढ़ाने का अनुसरण अन्य फर्म द्वारा नहीं किया जाता है। विज्ञापन व्यय एवं विक्रय व्यय का अल्पाधिकारी बाजार संरचना में प्रमुख स्थान है। दुरभिसंधिपूर्ण (कपटपूर्ण) अल्पाधिकार तब होता है, जब विक्रेता गैर मूल्य आधार पर प्रतिस्पर्धा करने हेतु साथ–साथ आते हैं, संघ एवं मूल्य नेतृत्व इसके उदाहरण हैं।

संरचना आचार निष्पादन प्रतिमान, संरचना, आचार एवं निष्पादन के मध्य आकस्मिक सम्बन्ध को दर्शाता है। हालाँकि यह सम्बन्ध बहुत सरल नहीं है। यह प्रतिमान यह दर्शाने का प्रयास करता है, कि बाजार की संरचना बाजार में क्रेताओं एवं विक्रेताओं के व्यवहार (आचार) को निर्धारित करती है तथा क्रेताओं व विक्रेताओं का आचार (व्यवहार) बाजार संरचना में उद्योग के निष्पादन को निर्धारित करता है। बाजार संरचना की विशेषता बाजार के प्रकार को परिभाषित करती है, तथा आचार अपूर्ण प्रतियोगिता में रुचि रखता है, जहाँ उत्पाद विभेद विद्यमान होता है, तथा जहाँ मूल्य विभेद अथवा नयी फर्मों के प्रवेश को नियंत्रित करने हेतु रणनीतियाँ उपलब्ध होती हैं। बाजार संरचना का निष्पादन कुशलता, शोध एवं विकास से प्रभावित (प्रेरित) होता है।

14.11 शब्दावली

<u>पूर्ण प्रतियोगिता</u> वह बाजार संरचना जिसमें क्रेताओं एवं विक्रेता की अधिक संख्या होती ह‍ै समघातीय उत्पाद, मुक्त प्रवेश एवं निकास, बाजार के विषय में पूर्ण सूचना आदि विशेषतायें पायी जाती हैं।

<u>एकाधिकार</u> ऐसी बाजार संरचना जिसमें मात्र एक विक्रेता कई क्रेता, प्रतिस्थानापत्र वस्तुओं की अनुपस्थिति, मुक्त प्रवेश एवं निकास पर प्रतिबंध की विशेषता पायी जाती है।

<u>**क्रेता एकाधिकार**</u> वह बाजार जहां मात्र एक क्रेता होता है तथा वह सीमाँत उपयोगिता एवं सीमाँत लागत को समान कर साम्यावस्था प्राप्त करने का प्रयास करता है।
<u>**द्विपक्षीय एकाधिकार**</u> जब एकल विक्रेता एकल क्रेता से मिलता है। क्रेता एवं विक्रेता में एकाधिकारी तत्व।
<u>**विकंपित माँग वक्र**</u> वह मांग वक्र जो अल्पाधिकारी मूल्यन के स्थायित्व का वर्णन करता है, मांग वक्र का ऊपरी भाग लोचशील तथा निचला भाग अलोचशील होता है।
<u>**उत्पादन ठप्प (स्थगत/ रोकना) मूल्य**</u> वह मूल्य जिस पर फर्म उत्पादन उत्पाद रोकने का निर्णय लेती है क्योंकि बाजार मूल्य न्यूनतम परिवर्तनशील लागतों की भी वसूली (प्राप्ति) करने के योग्य नहीं होता है।
<u>**उत्पाद विभेद**</u> फर्म का उपभोक्ताओं को यह आभास दिलाने (निश्चितता प्रदान करने) का प्रयास कि उनका उत्पाद उद्योग के अन्य उत्पादों से पृथक तथा श्रेष्ठतर है।
<u>**मूल्य विभेद**</u> सामान उत्पाद के लिए अलग–अलग क्रेताओं से भिन्न भिन्न मूल्य भारित (प्राप्त) करना।

14.12 बोध प्रश्न

अ) रिक्त स्थान की पूर्ति

1. पूर्ण प्रतियोगिता में माँग वक्र ....रेखा होता है।
2. .... विक्रेता मूल्य निर्मित करने वाला होता है तथा मूल्य बढ़ाने हेतु उत्पादन को सीमित (प्रतिबंधित) कर सकता है।
3. .... वह बाजार दशा है, जिसमें क्रेता की दशा में एकाधिकारी तत्व होते हैं।
4. .... एकाधिकार तब होता है, जब एक क्रेता एक विक्रेता से मिलता है।
5. .... क्रेता मूल्य कम करने का प्रयास करेगा तथा .... विक्रेता मूल्य बढ़ाने का प्रयास करेगा।
6. .... लागत एवं .... लागत एकाधिकारात्मक प्रतिस्पर्धा में अति महत्वपूर्ण होती है।

ब) सत्य व असत्य

(i) असामान्य लाभ तब होता है जब ए आर ए सी के बराबर होता है।
(ii) एक एकाधिकार तब तक उत्पादन जारी रहेगा जब तक एम आर एम सी के बराबर नहीं हो जाता है ।
(iii) एक एकाधिकारी का लाभ जो मूल्य जिसे देने के वह लिए तैयार है और जो वह वास्तव में भुगतान करता है के अधिक्य के बराबर है ।
(iv) उत्पाद भेदभाव मूल्य भेदभाव का एक रूप है।
(v) विकंपित मांग वक्र यह सुझाता हैं कि जब एक विक्रेता कीमत कम या बढ़ता है या तो दूसरों भी उसी का अनुपालन करते है ।
(vi) संगठित क्रेताओं की स्थिति में, एक संचालित फर्म एकाधिकार प्रतियोगिता के तहत कठिन प्रतियोगिता का सामना करती है ।

14.13 बोध प्रश्नों के उत्तर

अ)

1. क्षैतिज
2. एकाधिकार
3. क्रेता एकाधिकार
4. द्विपक्षीय
5. क्रेता एकाधिकार, एकाधिकार
6. विज्ञापन, विक्रय

ब)

i) असत्य ii) सत्य iii) सत्य iv) असत्य v) असत्य vi) सत्य

14.14 स्वपरख प्रश्न

1. एकाधिकारात्मक प्रतिस्पर्धा के अंतर्गत मूल्य उत्पादन साम्य (संतुलन) का वर्णन कीजिए।
2. अल्पाधिकार बाजार संरचना की विशेषताओं तथा विकंपित मांग वक्र के सिद्धांत की व्याख्या कीजिए।
3. द्विपक्षीय एकाधिकार में साम्यावस्था को सोदाहरण समझाइये।
4. पूर्ण प्रतियोगिता के अंतर्गत अल्पकालीन एवं दीर्घकालीन साम्यावस्था का वर्णन कीजिए।

14.15 सन्दर्भ पुस्तकें

1. Deein J., Managerial Economics, Prentice Hall, Englewood Cliffs, N.J.
2. Alfed W. Stonier and Douglas C. Hague, A Text Book of Economic Theory, Longman, 1990.
3. Chamberlin, E.H., The Theory of Monopolistic Competition, Cambridge, Mass : Harvard University Press, 1933.
4. Stigler, “Price and Non-Price Competition”, Journal of Political Economy, Feb., 1968.
5. Mrs. J. Robinson, The Economics of Imperfect Competition, London, Macmillan, 1933.
6. Mehta, P.L., Managerial Economics – Analysis, Problem and Cases, Sultan Chand & Sons, New Delhi.
7. H.L. Ahuja, Business Economics Micro- S. Chand & Co. Ltd., New Delhi, 1999.

इकाई 15 रणनीति और खेल के सिद्धान्त

इकाई की रूपरेखा

15.1 प्रस्तावना
15.2 प्रतिस्पर्धात्मक खेल एवं रणनीतियाँ
15.3 अधिक न्यून – न्यूनाधिक सिद्धान्त एवं सैडिल बिन्दु
15.4 प्रबलता (प्रभुत्व)
15.5 रेखाचित्रीय (आलेखी) तरीका 2xN या Mx2 गेम के लिये
15.6 सारांश
15.7 शब्दावली
15.8 बोध प्रश्न
15.9 बोध प्रश्नों के उत्तर
15.10 स्वपरख प्रश्न
15.11 संदर्भ पुस्तकें

उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप इस योग्य हो सकेंगे कि –

- किसी भी प्रबंधन संबंधी परियोजनाओं में खेल के सिद्वान्त को लागू कर सकें।
- एक प्रतियोगी खेल के गणितीय मॉडल को सीख सकें।
- प्रभुत्व के सिद्धान्त को जान सकें।
- खेल समस्याओं को हल करने के लिये आलेखीय विधि सीख सकें।
- सैडिल बिन्दु के बिना और बिन्दु के साथ खेल का समाधान खोज सकें।

15.1 प्रस्तावना

1928 में वानन्यूमैन ने खेल के सिद्धान्त का विकास किया, इन्हें खेल सिद्धान्त का जनक भी कहा जाता है। यद्यपि कि, 1944 में वान न्यूमैन और मार्गेनस्ट्रेन ने अपनी परिचित 'खेल सिद्धान्त और आर्थिक व्यवहार नामक सिद्धान्त और आर्थिक व्यवहार' नामक सिद्धान्त को प्रकाषित किया और इस सिद्धान्त ने ध्यान आकर्षित किया। खेल के सिद्धान्त प्रतिस्पर्धी समस्याओं के गणितीय विष्लेषण से संबंधित हैं और वान न्यूमैन के द्वारा अग्रेषित न्यून अधिक के सिद्धान्त पर आधारित है, जिसका अर्थ है कि प्रत्येक प्रतिद्वद्वी अपनी अधिकतम हानि को कम करने या अपने न्यूनतम लाभ को अधिक करने के लिये कोई कार्य नहीं करेगा ।

प्रत्येक व्यक्ति खेल में रूचि रखता है और सीखता है कि कैसे जीतना है। इसलिये खेल सिद्धान्त को बहुत लोकप्रिय ध्यान मिला है, यद्यपि इस गणितीय सिद्वान्त के द्वारा साधारण सी प्रतिस्पर्धी समस्याओं का विष्लेषण किया गया। खेल किस तरह खेला जाएगा, यह इस सिद्वान्त द्वारा नहीं बताया जाता है। यह केवल प्रक्रिया और सिद्धान्तों के विषय में वर्णन करती है जिनके द्वारा खेल चुना जाना चाहिये। अतः यह एक निर्णय सिद्वान्त है जो प्रतिस्पर्धी स्थितियों पर प्रभावषील है।

15.2 प्रतिस्पर्धी खेल एवं रणनीतियाँ

परिभाषा:– एक प्रतिस्पर्धी स्थिति को एक प्रतियोगी खेल कहा जायेगा यदि उसके पास निम्न छः गुण हैः–

(1) प्रतिभागियों की सीमित संख्याएँ हैं। प्रतिभागियों की संख्या एन $\geq$ 2 है । यदि एन = 2 है, दो व्यक्तियों का खेल कहा जायेगा, यदि एन $\geq$ 2 है तो इसे एन– व्यक्ति खेल कहा जायेगा।

(2) प्रत्येक प्रतिभागी के पास संभावित कार्यवाही की सीमित संख्या है।

(3) अन्य प्रतिभागियों को उपलब्ध प्रत्येक कार्यवाही या क्रिया कलाप की जानकारी प्रत्येक प्रतिभागी को होनी चाहिये। किन्तु यह जानकारी नहीं होनी चाहिये कि इन कार्यवाहियों में से कौन सी कार्यवाही चुनी जानी है।

(4) कहा जाता है कि खेल तब खेल होता है जब प्रत्येक खिलाड़ी अपनी कार्यवाही को चुनता है, ऐसा माना जाता है कि विकल्प एक साथ लिये गये हैं, ताकि अपने विकल्प के चुनाव के समय वह दूसरे प्रतिभागी की विरोधी नीति के बारे में न जान पाये।

(5) प्रतिभागियों के द्वारा कार्यवाही के एक कोर्स को चुनने के बाद, उनके लाभ सीमित होते हैं।

(6) प्रतिभागी को होने वाला लाभ दूसरों की गतिविधियों के साथ–साथ स्वयं की कार्य योजना पर भी निर्भर करता है। प्रस्तुत चर्चा में केवल वह खेल जिनमें प्रतिस्पर्धा कार्य और प्रतिकार्य सम्मिलित हैं, ही संबंधित है।

प्रतिस्पर्धी खेल के स्थान पर साधारण शब्द खेल का प्रयोग किया जायेगा।

परिभाषाएँ:–

(1) प्रत्येक प्रतिभागी (इच्छुक पक्षकार) खिलाड़ी कहलायेगा।

(2) गेम का परिणाम तब आयोगा जब प्रत्येक खिलाड़ी अपनी गतिविधि चुन लेगा। खेल की प्रत्येक पारी के बाद एक खिलाड़ी दूसरे खिलाड़ी को निष्चित राषि देगा।

(3) निर्णित नियम जिसके द्वारा एक खिलाड़ी अपनी कार्यप्रणाली विनिश्चित करता है रणनीति कहलाती है। कौनसी रणनीति अपनायी जानी है, इस निर्णय तक पहुंचने के लिये खिलाड़ी को दूसरे की रणनीति की जानकारी होना आवष्यक नहीं है।

(4) यदि कोई खिलाड़ी प्रत्येक पारी के दौरान केवल एक ही विशिष्ट कार्य प्रणाली का प्रयोग करने का निष्चय करता है, तो उसे विषुद्ध रणनीति का उपयोग करने वाला कहा जाता है। एक शुद्ध रणनीति आमतौर पर संख्या का प्रतिनिधित्व करती है जो कार्यप्रणाली से संबंधित है।

(5) यदि कोई खिलाड़ी कार्यवाही की सभी उपलब्ध गतिविधियों का निष्चित अनुपात में उपयोग करने का पहले से ही तय कर लेता है तो उसे मिश्रित रणनीति का उपयोग करने वाला कहा जाता है।

(6) दो खिलाड़ियों के साथ एक गेम, जहाँ एक खिलाड़ी का लाभ दूसरे के नुकसान के बराबर होता है उसे दो–व्यक्ति शून्य कुल (योग) खेल कहा जाता है। इस खेल में दो खिलाड़ियों के हितों का विरोध किया जाता है ताकि शुद्ध लाभ का योग शून्य हो। यदि एन खिलाड़ी हैं और खेल का योग शून्य तो इसे एन व्यक्ति शून्य योग खेल कहा जाता है। (दो व्यक्ति शून्य योगक खेलों को आयताकार खेल भी कहा जाता है क्योंकि उनका भुगतान आयताकार रूप में ही

होता है। इस इकाई में, हम प्राथमिक रूप से दो –व्यक्ति शून्य योग खेल पर ही चर्चा करेंगे।

खेल खेलने का परिणाम भुगतान है। भुगतान (लगभग खेल) करने का स्थान एक मेज है जिसमें गेम खेलने के बाद बायीं हाथ की ओर लिखे नाम पर खिलाड़ी द्वारा प्राप्त राषि दिखायी जाती है। मेज के ऊपर नामांकित खिलाड़ी द्वारा भुगतान किया जाता है।

दो व्यक्ति शून्य योग खेल की विषेषताएँ :–

(अ) केवल दो ही खिलाड़ी भाग लेंगे।

(ब) प्रत्येक खिलाड़ी के पास रणनीतियाँ उपयोग करने की संख्या सीमित हैं।

(स) प्रत्येक विषिष्ट रणनीति का परिणाम भुगतान है।

(द) प्रत्येक पारी के समाप्त होने पर दो खिलाड़ियों को किया गया भुगतान शून्य होगा। एक प्रतिस्पर्धी खेल की निम्नलिखित विषेषताए हैं:–

1. खिलाड़ियों (प्रतिस्पर्धियों) की संख्या सीमित होती है।
2. प्रत्येक खिलाड़ी के पास कार्रवाई की सीमित संख्या है।
3. गेम खेला गया है तब माना जायेगा जब प्रत्येक खिलाड़ी अपनी कार्य प्रणाली ग्रहण कर लेता है।
4. हर बार खेल खेला जाता है, कार्यवाही के अनुरूप संयोजन के परिणाम स्वरूप प्रत्येक खिलाड़ी के साथ लेन–देन (भुगतान) होता है। भुगतान को लाभ का नाम दिया जाता है। यह भुगतान मौद्रिक भी हो सकता है या कोई ऐसा लाभ हो सकता है जिससे बिक्री इत्यादि में बढ़ोत्तरी होती है।

(5) खिलाड़ी एक दूसरे के साथ संवाद नहीं करते है।

(6) खेल प्रारंभ होने के पहले खेल के नियमों की जानकारी प्रत्येक खिलाड़ी को होती है।

भुगतान स्थापना की संरचना:–

चरण –1 :– A को प्रत्येक स्थान पर पंक्ति नामांकन की कार्यवाही के लिये गतिविधियाँ उपलब्ध है।

चरण – 2 :– B को प्रत्येक स्थान के लिये कॉलम पदनाम के हेतु गतिविधियाँ उपलब्ध है।

चरण – 3 :– दो व्यक्ति शून्य योग खेल के साथ, बी के भुगतान स्थान में प्रकोष्ट प्रविष्टि की तरह यदि A के भुगतान स्थान में भी प्रविष्टि की जाती है तो वह नकारात्मक होगी और स्थान निम्नानुसार दिखायी देंगे।

Player B

Player A	1	2	3	...	j ...	n
1	a_{11}	a_{12}	a_{13}	...	a_{1j}...	a_{1n}
2	a_{21}	a_{22}	a_{23}	...	a_{2j}...	a_{2n}
3	a_{31}	a_{32}	a_{33}	...	a_{3j}...	a_{3n}
⋮	⋮	⋮	⋮		⋮	⋮
i	a_{i1}	a_{i2}	a_{i3}	...	a_{ij}...	a_{in}
⋮	⋮	⋮	⋮	⋮	⋮	⋮
m	a_{m1}	a_{m2}	a_{m3}	...	a_{mj}...	a_{mn}

A's payoff matrix

तालिका – 15.1

Player B

Player A	1	2	3	..j	..n
1	$-a_{11}$	$-a_{12}$	$-a_{13}$	... $-a_{1j}$	... $-a_{1n}$
2	$-a_{21}$	$-a_{22}$	$-a_{23}$	... $-a_{2j}$	... $-a_{2n}$
3	$-a_{31}$	$-a_{32}$	$-a_{33}$	... $-a_{3j}$	... $-a_{3n}$
⋮	⋮	⋮	⋮	⋮	⋮
i	$-a_{i1}$	$-a_{i2}$	$-a_{i3}$	... $-a_{ij}$	... $-a_{in}$
⋮	⋮	⋮	⋮	⋮	⋮
m	$-a_{m1}$	$-a_{m2}$	$-a_{m3}$	... $-a_{mj}$	... $-a_{mn}$

B's payoff matrix

तालिका – 15.2

अवलोकन (टिप्पणियाँ) :–

(1) ए और बी के लिये भुगतान स्थानों का योग शून्य स्थान है।

(2) अन्य द्वारा उपयोग की जाने वाली रणनीति के बावजूद दोनों खिलाड़ियों के लिये अनुकूलतम नीति निर्धारित करना उद्देश्य हैं ताकि दोनों को उचित भुगतान मिल सके।

(3) हम आमतौर पर बी के भुगतान स्थान को इस आधार पर छोड़ देंगे कि यह A के भुगतान स्थान के विपरीत है।

(4) अधिक संख्या में खेल की पारियाँ खेलने के बाद प्रत्येक पारी की औसत जीत खेल की कीमत होती है।

उदाहरणः– निम्नलिखित खेल पर विचार करें, जहाँ ए और बी दोनों प्रतिभागी क्षमता और बुद्धि में समान माने जा रहे है। A ने नीति 1 या नीति 2 को चुना, जबकि B नीति 3 या नीति 4 चुन सकता है।

		Competitor B Strategy 3	Competitor B Strategy 4	Minimum of row
Competitor A	Strategy 1	+4	+6	4
	Strategy 2	+3	+5	3
Maximum of column		4	6	

तालिका 15.3

दोनों प्रतिस्पर्धियों के लिये संभावित नीतियाँ इस प्रकार है :–

(1) A यदि नीति 1 के अनुसार खेलता है तो सर्वाधिक जीत हासिल करेगा है, क्योंकि नीति – 2 की तुलना में यह अधिक मूल्यवान है।

(2) B स्थिति का आंकलन कर लेता है और अपनी हानियों को कम करने के उद्देश्य से नीति संख्या –3 के अनुसार खेलता है, क्योंकि नीति 3 में 4 की कीमत, नीति–4 में 6 की कीमत से कम है।

खेल की कीमत 4 होनी चाहिये, प्रत्येक बार जब खेल खेला जाता है, A 4 अंक जीतता है, और B-4 अंक हारता है।

15.3 अधिक न्यून–न्यूनाधिक सिद्धान्त एवं सैडिल बिन्दु

माना A और B खिलाड़ी बिना यह जाने की खिलाड़ी के द्वारा क्या किया जायेगा, गेम खेलने के लिये तैयार होते है। A अधिक लाभ कमाने की इच्छा रखता है और B अपनी हानि को कम करना चाहता है। अतः प्रत्येक खिलाड़ी को उम्मीद है कि उसके प्रतिद्वन्दी को गणनात्मक होना चाहिये।

माना कि, खिलाड़ी A, A_1 पारी खेलता है, तो उसका लाभ होगा A_{11}, a_{12} ..... A_{1n}, इसी तरह B की पसंद के अनुसार B का होगा B_1, B_2, ,,,, Bn. $\Delta 1 =$ न्यून $\{a_{11}, a_{12} ---- a_n\}$ तब , A का न्यूनतम लाभ $\Delta 1$, होगा जब वह A_1 खेलता है। (यहाँ, Δ 1 पहली पंक्ति में न्यूनतम भुगतान है।) इसी तरह यदि A, A_2 गेम खेलता है, उसका न्यूनतम लाभ है $\Delta 2$ जो कि दूसरी पंक्ति में सबसे कम भुगतान है। इस प्रकार आगे बढ़ते हुये, हम पाते हैं कि A के A_1, A_2........... Am पारी में न्यूनतम लाभ है $\Delta 1$, $\Delta 2$ ..... Δm । मान लीजिए A, a कोर्स चुनता है, अधिक है। इस प्रकार पंक्ति में अंधिक और भुगतान के स्थान में न्यूनतम ही अधिक न्यून कहलाती है।

अधिक न्यून है $\alpha = \max_i \left\{ \min_j (a_{ij}) \right\}$

इसी तरह कालम (खाने) में न्यूनतम और भुगतान के स्थान में अधिकतम को न्यूनाधिक कहा जाता है ।

न्यूनाधिक है $\beta = \min_{j}\left\{\min_{i}(a_{ij})\right\}$

परिभाषा :–

किसी भी खेल के लिये, यदि अधिक न्यून और न्यूनाधिक दोनों समान हैं, तब इन खेलों को कहा जाता है कि इनमें सैडिल बिन्दु है।

टिप्पणी :–

(1) यदि गेम में सैंडिल बिन्दु है, और यदि (r,s) सैडिल बिन्दु है, दोनों के लिये समाधान रूपी सुझाव है कि शुद्ध रणनीति के साथ गेम खेला जाय। खिलाड़ी A के लिये समाधान रूपी सुझाव है , Ar, खिलाड़ी B के लिये समाधान रूपी सुझाव है Bs।

(2) यदि गेम में सैंडिल बिन्दु नहीं है, तो समाधान रूपी सुझाव है मिश्रित रणनीति अपनायी जानी चाहिये।

(3) कोई भी गेम तभी साफ सुथरा माना जायेगा यदि उसकी कीमत शून्य है।

(4) दो व्यक्ति शून्य योग गेम मे, अधिक न्यून और न्यूनाधिक दोनों समान है, हम कहते हैं कि गेम में सैडिल बिन्दु है।

(5) जहाँ अधिक न्यून (न्यूनतम पंक्ति का अधिकतम) और न्यूनाधिक (अधिकतम कालम का न्यूनतम) दोनों एक साथ मिल जाते हैं, वहाँ सैडिल बिन्दु की स्थिति उत्पन्न होती है।

(6) यदि आर पंक्ति में अधिक न्यून होता है और एस कालम में न्यूनाधिक होता है, तो स्थिति (r,s) सैडिल बिन्दु है। यहाँ $v=a_{rs}$ अधिक न्यून और न्यूनाधिक का सामान्य मूल्य है। इसे गेम की कीमत (मूल्य) कहा जाता है।

(7) यदि गेम के दोनों ही खिलाड़ी इष्टतम रणनीति अपनाते हैं तो खिलाड़ी A की लाभ की उम्मीद ही खेल का मान है।

टिप्पणी 1 :– यदि किसी गेम में सैडिल बिन्दु है और यदि (r,s) सैडिल बिंदु है, दोनों खिलाड़ियों का सुझाया गया समाधान हैं शुद्ध रणनीति अपनाना। खिलाड़ी A के लिये सुझाया गया समाधान है A_r, खिलाड़ी B के लिये सुझाया गया समाधान B_s है।

टिप्पणी 2 :– यदि किसी गेम में सैडिल बिन्दु नहीं है, तो सुझाया गया समाधान मिश्रित रणनीति है।

टिप्पणी 3 :– एक खेल उचित माना जाता है, अगर उसका मान शून्य है।

सैडिल बिन्दु के साथ गेम का समाधान :–

खिलाड़ी A और B के साथ दो व्यक्ति के शून्य योग खेल पर विचार करें। चलो, खिलाड़ी A के लिये A_1 A_2 .... A_m कार्य प्रणाली होगी। और खिलाड़ी B की कार्यप्रणाली होगी $B_1, B_2, \ldots\ldots B_n$ । गेम का सैडिल बिन्दु इस प्रकार प्राप्त किया जा सकेगाः–

1. न्यूनतम भुगतान सारणी में न्यूनतम भुगतान को वृत्त में दर्षाया गया है।
2. प्रत्येक कॉलम में अधिकतम भुगतान को बाक्स में दर्शाया गया है।

3 उपर्युक्त प्रक्रिया में, यदि भुगतान वृत्त में भी दर्शाया गया है और बॉक्स में भी दर्षाया गया है, यही भुगतान खेल का मान है। यही स्थिति सैडिल बिन्दु है।

यदि सैडिल बिन्दु r,s है तो खिलाड़ी A के लिये शुद्ध रणनीति A_r है। खिलाड़ी B के लिये B_s शुद्ध रणनीति अपनाने का सुझाव दिया गया है। गेम का मान a_{rs} है।

टिप्पणी :–' यद्यपि उपर्युक्त प्रक्रिया में, यदि किसी भी भुगतान को न तो वृत्त में दर्षाया गया है और न ही बॉक्स में, तो गेम में सैडिल बिन्दु नहीं होगा। और फिर खिलाडियों के लिये सुझाया गया समाधान होगा मिश्रित रणनीति ।

सैडिल बिंदु पता लगाने के लिये चरणः–

चरण 1:–प्रत्येक पंक्ति के दाहिनी ओर न्यूनतम पंक्ति लिखें और सबसे बड़े पर वृत्त बनाये।

चरण 2:–प्रत्येक कालम के नीचे अधिकतम कालम लिखें और सबसे छोटे कालम पर वृत्त बनाएं।

चरण 3 :– यदि यह दोनों तत्वसमान हैं, तो वह प्रकोष्ठ जहाँ पंक्ति और कालम मिलते है, सैडिल बिंदु होता है और प्रकोष्ठ में पाये जाने वाले तत्व खेल का मान होता है।

चरण 4 :– यदि वृत्त किये गये दो तत्व समान नहीं है, तो कोई सैडिल बिंदु नहीं होगा और खेल का मान इन दोनों मानों के ऊपर निर्भर करेगा।

चरण 5 :– यदि एक से अधिक सैडिल बिन्दु है तो वहां एक से अधिक समाधान होंगे, प्रत्येक समाधान प्रत्येक सैडिल बिंदु से मिलता जुलता होगा।

उदाहरण :– दो व्यक्ति के शून्य योग खेल सैडिल बिंदु के साथ

किसी खेल में खिलाड़ी A के पास L, M, और N तीन विकल्प हैं, जबकि खिलाड़ी B के पास P और Q दो ही विकल्प हैं । दिये गये विकल्पों के आधार पर भुगतान किया जायेगा ।

विकल्प	भुगतान
L, P	A pays B Rs. 3
L, Q	B pays A Rs. 2
M, P	A pays B Rs. 2
M, Q	B pays A Rs. 4
N, P	B pays A Rs. 2
N, Q	B pays A Rs. 3

तालिका 15.4

इस गेम में A और B खिलाड़ियों के लिये अच्छी रणनीतियाँ क्या होनी चाहिये ? A और B के लिये गेम का मान क्या होगा ?

हल :– उपरोक्त भुगतानों को सारणी के रूप में आसानी से व्यवस्थित किया जा सकता है। चलिये B से A को भुगतान सकारात्मक संख्या द्वारा करते हैं और A से B को भुगतान ऋणात्मक संख्या द्वारा करते है। अब हमारे पास भुगतान सारणी है जो नीचे दर्षायी गयी है।

जब खिलाड़ी A अपनी पहली रणनीति (L) के अन्तर्गत पारी खेलता है, उसे –3 या 3 लाभ होता है जो B के द्वारा चयनित रणनीति पर आधारित है। हालांकि वह B की चयनित रणनीति की परवाह किये बिना कम से कम –3, 3= – 3 के लाभ की गारंटी दे सकता है। इसी तरह, यदि A अपनी दूसरी रणनीति (M) अपनाता है, वह कम से कम (–2, 4) = 2 तक की आय की गारंटी दे सकता है, यदि तीसरी रणनीति (N) अपनाता है वह कम से कम (2, 3) = 2 तक आय की गारंटी दे सकता है। अतः प्रत्येक पंक्ति में न्यूनतममान A को प्राप्त होने वाले न्यूनतम लाभ काप्रतिनिधत्व करती है, यदि वह अपनी शुद्ध (बड़ी) रणनीतियों के अनुसार खेलता है।

इन मूल्यों (मान) को 'पंक्ति की न्यूनता' के अन्तर्गत सारणी में दर्शाया गया है।

अब, खिलाड़ी A अपनी तीसरी रणनीति (N) का चयन करके अपने न्यूनतम लाभ में बढ़ोत्तरी कर रहा है। यह लाभ अधिकतम (–3, –2, 2) = 2 के द्वारा दिया गया है। A के द्वारा यह चयन अधिक न्यून रणनीति कहलाता है और इस प्रकार इससे होने वाला लाभ अधिक न्यून या गेम का निचला मान कहलाता है।

		Player B Plans (choices)		
		P	**Q**	***Minimum of row***
	L	–3	3	–3
Plans Player A (choices)	**M**	–2	4	–2
	N	2	3	(2) maximin
	Maximum of column	(2) minimax	4	

तालिका 15.5

इसी तरह हम खिलाड़ी B का भी न्यून अधिक लाभ प्राप्त कर सकते हैं, जो अपनी हानियों को कम करना चाहता है (सारणी में दिखाया गया है)। अतः इस खेल में न्यून अधिक मान = अधिक – न्यून मान = 2 होगा। खेल का मान 2 के बराबर है। गेम में सारणी की प्रविष्टि (N.P.) में ही सैडिल बिंदु है।

जैसा कि गेम का मान 2 है (शून्य नहीं), गेम उचित नहीं है।

उदाहरण :– यदि सैडिल बिंदु हैं तोड़ से ज्ञात करें, गेम का मान और इष्टतम रणनीतियाँ भी ज्ञात कीजिए।

(a) $\begin{bmatrix} -4 & 3 \\ -3 & -7 \end{bmatrix}$ (b) $\begin{bmatrix} 3 & 2 \\ -2 & -3 \\ -4 & -5 \end{bmatrix}$ (c) $\begin{bmatrix} 1 & 13 & 11 \\ -9 & 5 & -11 \\ 0 & -3 & 13 \end{bmatrix}$

(d) $\begin{bmatrix} 16 & 4 & 0 & 14 & -2 \\ 10 & 8 & 6 & 10 & 12 \\ 2 & 6 & 4 & 8 & 14 \end{bmatrix}$

8 10 2 2 0

हल :– सभी सारणियों में पंक्तियाँ खिलाड़ी A की रणनीति दर्शित कर रही हैं और कालम खिलाड़ी बी की रणनीति दिखा रही है।

(1) मैं A और B दोनों खिलाड़ियों में प्रत्येक की 2 रणनीतियाँ है। ऐसा कोई तत्व नहीं है जो पंक्ति में सबसे कम हो और कालम में सबसे अधिक हो, कोई सैडिल बिन्दु उत्पन्न ही नहीं होता है।

(2) में, पंक्ति में न्यूनतम 2, –3, –5,

कालम में अधिकतम 3, 2 है।

अधिक न्यून = अधिक (2, –3, –5) 2= और न्यून – अधिक = न्यून (3, 2) = 2 है। यह पंक्ति 1 और B कालम 2, A की रणनीति से मिलता है। अतः सैडिल बिंदु (1, 2) है। गेम का मान 2 है।

(3) न्यूनतम पंक्ति के लिये, हम पाते हैं, अधिक न्यून = अधिक (1, – 11–3) = 1, और कालम के लिये अधिकतम, न्यून– अधिक = न्यून (1, 13, 13) = 1 । अतः रणनीतियाँ A, पंक्ति । और B , कालम 1 हैं। सैडिल बिंदु (1,1) है। गेम कालम 1 है।

(4) सैडिल बिंदु (2,3) रणनीतियाँ A, पंक्ति 2, और B , कालम 3, गेम का मान + 6 है।

उदाहरण :– P और Q का मान ज्ञात कीजिए जो कि (2, 2) गेम का सैडिल बिंदु की प्रविष्टि प्रस्तुत करेगा।

खिलाड़ी B			
खिलाड़ी **A**	2	4	5
	10	7	q
	4	p	6

तालिका 15.6

हलः– पहले P और Q के मानों को अनदेखा कर भुगतान तालिका के अधिक न्यून और न्यून अधिक मानों को इस प्रकार निकालें :–

	B_1	B_2	B_3	स्तंभ न्यून
A_1	2	4	5	2
A_2	10	7	q	7
A_3	4	p	6	4
कॉलम अधिक	10	7	6	

तालिका 15.7

अतः अधिक न्यून =7 और न्यून अधिक =7 है। इससे P पर एक शर्त लगाती है जैसे $P \leq 7$ और Q पर शर्त इस प्रकार होगी $Q \geq 7$ ।

अतः P और Q का क्षेत्र $P \leq 7$ और $Q \leq 7$ होगा।

15.4 प्रभुत्व (प्रबलता)

परिभाषाः– स्तम्भों के लिये प्रभुत्व नियमः– वर्चस्व वाले कॉलम के हर मान में वर्चस्व वाले स्तंभ के मान से कम या उसके बराबर होना चाहिये।

पंक्ति के लिये प्रभुत्व का नियम :– वर्चस्व स्थापित करने वाली प्रत्येक पंक्ति का मान दबाब मे रहने वाली पंक्ति के मान के या तो बराबर होना चाहिये या उसमें अधिक होना चाहिये।

उदाहरणः– (3 x 3 गेम, प्रभुत्व द्वारा सारणी में कमी):–

P और Q दो खिलाड़ी गेम खेलते है। दोनों को ही तीन रंगों में से कोई एक रंग चुनना है, सफेद, काला और लाल। उसके बाद रंगों की तुलना की जाती है। यदि P और Q दोनों ही सफेद रंग चुनते हैं, कोई भी कुछ भी नहीं जीत पाता है। यदि P नामक खिलाड़ी सफेद और काला दोनों रंग चुनता है तो 2 रूपये का नुकसान होगा या Q 2 रूपये जीत जायेगा । पूर्ण भुगतान की सारणी में दिखाया गया है। P और Q की इष्टतम रणनीति और गेम का मान ज्ञात करें।

Color chosen by Q				
Color chosen by P		W	B	R
	W	0	-2	7
	B	2	5	6
	R	3	-3	8

तालिका 15.8

हल :– इस सारणी से सैडिल बिंदु नहीं है। जाहिर है, खिलाड़ी Q रणनीति R नहीं खेलेंगे क्योंकि इससे उसको भारी नुकसान होगा और खिलाड़ी P को उच्चतम लाभ होगा। वह कालम W या B खेलकर अच्छा कर सकता है। इस प्रकार कॉलम (स्तंभ) R हटाया जाना है। (यहाँ रणनीति R को दबाव में रहने वाली के नाम से जाना जाता है।

Q			
P		W	B
	W	0	-2
	B	2	5
	R	3	-3

तालिका 15.9

उपरोक्त सारणी से यह स्पष्ट होता है कि खिलाड़ी P पंक्ति W नहीं खेलेगा, क्योंकि यदि वह W पंक्ति खेलता है तो उसे पंक्ति B के द्वारा मिलने वाले लाभ से कम लाभ मिलेगा। यहाँ पंक्ति W पर पंक्ति B द्वारा वर्चस्व स्थापित किया गया और उसे हटाया जा सकता है।

Q			
P		W	B

	B	2	5
	R	3	-3

तालिका 15.10

उपरोक्त कम किये हुये गेम को अंकगणित विधि से हल किया जा सकता है।

टिप्पणी :– (1) हमेशा एक खेल को हल करते हुये प्रभुत्व की तलाश है।

(2) उन मामलों में जहाँ सैडिल बिंदु नहीं है, और वर्चस्व द्वारा गेम सारणी को कम किया गया है, खिलाड़ी मिश्रित रणनीतियों का उपयोग करेंगे। प्रत्येक खिलाड़ी को इष्टतम जीत के लिये और गेम को हल करने के लिये एक अलग तरीका वर्णित करना होगा। किसी एक खिलाड़ी को एक पंक्ति से खेलने का समय निर्धारित करना होगा और दूसरा खिलाड़ी प्रत्येक कालम में लगने वाला समय विनिश्चित करेगा। प्राप्त भुगतान, अपेक्षित आहरण होगा और खेल का मान खेल का अनुमानित मूल्य होगा।

इष्टतम रणनीतियों एवं गेम वैल्यू खोजने के लिये अंकगणित विधिः–

2 X 2 के गेम में प्रत्येक खिलाड़ी के लिये इष्टतम रणनीतियों को खोजने के लिये सबसे आसान तरीका यह है । इसमें निम्नलिखित चरण हैः–

चरण–1 :–कालम 1 में से 2 संख्या घटाये और उन्हें कालम 2 के नीचे लिख दें, चिन्ह पर ध्यान दिये बिना ।

चरण –2:– कालम 2 में से दो संख्या घटाएं और उन्हें कालम 1 के नीचे लिख दें, चिन्ह पर ध्यान दिये बिना।

चरण –3 :– दो पंक्तियों के लिये यही प्रक्रिया अपनाएं।

इन मूल्यों को अजीब कहा जाता है।

उदाहरणः–सिक्कों के मिलान करने वाले गेम में खिलाड़ी A दो रूपये जीतता है यदि दो हैड आ जाते हैं और कुछ नहीं जीत पाता यदि दो टेल आ जाते हैं एवं यदि एक हैड और एक टेल आ जाता है तो एक रूपये का नुकसान हो जाता है। भुगतान सारिणी, प्रत्येक खिलाड़ी के लिये सर्वश्रेष्ठ रणनीतियाँ और A को गेम का मूल्य निर्धारण इस प्रकार हैः–

हलः– A के लिये भुगतान सारिणी इस प्रकार होगी :–

खिलाड़ी B			
		H	**T**
खिलाड़ी **A**	**H**	2	-1
	T	-1	0

तालिका 15.11

चूंकि ‘यहाँ कोई सैडिल बिंदु नहीं है, इष्टतम रणनीतियाँ मिश्रित रणनीतियाँ होंगी। ऊपर बताये गये चरणों के आधार हम पाते हैंः–

खिलाड़ी B			
खिलाड़ी **A**	**H**	**T**	

	H	2	-1	**1** $\frac{1}{3}+1=0.25$
	T	-1	0	**3** $\frac{3}{3}+1=0.75$
		1 **0.25**	**3** **0.75**	

तालिका 15.12

खिलाड़ी A को इष्टतम लाभ प्राप्त करने के लिये समय के 25% के लिये H रणनीति और समय के 75 % के लिये T रणनीति इस्तेमाल करनी चाहिये जबकि खिलाड़ी B को समय के 25% H रणनीति और समय के 75% T रणनीति का उपयोग करना चाहिये। गेम का मान निकालने के लिये निम्न में से कोई भी सूत्र इस्तेमाल किया जा सकता है।

A के द्वारा उपयोग किया जाने वाला अजीबोगरीब सूत्रः–

B H रणनीति खेलता है, गेम का मान होगाः

$$\text{मान} = \text{रूपये} \left(\frac{1 \times 2 - 3 \times 1}{3+1}\right) = (-1/4) \text{ रूपये}$$

B T रणनीति खेलता है, गेम का मान होगाः

$$\text{मान} = \left(\frac{1 \times -1 + 3 \times 0}{3+1}\right) = (-1/4) \text{ रूपये}$$

इसी तरह :–

A H रणनीति खेलता है, गेम का मान होगाः

$$\text{मान} = \text{रूपये} \left(\frac{1 \times 2 - 1 \times 3}{1+3}\right) = (-1/4) \text{ रूपये}$$

A T रणनीति खेलता है, गेम का मान होगाः

$$\text{मान} = \text{रूपये} \left(\frac{-1 \times 1 + 0 \times 3}{3+1}\right) = (-1/4) \text{ रूपये}$$

यह कि A के लिये खेल का मान होगा, A को (–1/4) रूपयों का लाभ हुआ, अतः उसे 1/4 का नुकसान हुआ, जो कि बदले में B को मिल जायेंगे। अंकगणितीय तरीका बीजगणितीय तरीके से काफी आसान है, लेकिन यह बड़े खेलों पर लागू नहीं किया जा सकता है।

उदाहरणः–

प्रभुत्व द्वारा निम्नलिखित को कम करें और गेम वैल्यू ज्ञात करेंः–

खिलाड़ी B					
खिला		I	II	III	IV
	I	3	2	4	0

	II	3	4	2	4
	III	4	2	4	0
	IV	0	4	0	8

तालिका 15.13

हलः— इस सारिणी में सैडिल बिंदु नहीं है। हम प्रभुत्व के सिद्धान्त के द्वारा सारिणी का आकार छोटा कर देते हैं। खिलाड़ी A के विचार में पंक्ति III, पंक्ति पर हावी है, अतः पंक्ति 1 निरसित की गयी एवं कम की हुई सारिणी इस प्रकार हैः—

खिलाड़ी B					
खिलाड़ी A		I	II	III	IV
	II	3	4	2	4
	III	4	2	4	0
	IV	0	4	0	8

तालिका 15.14

B के विस्तार में कालम III पर कालम I का वर्चस्व हावी है, अतः कालम I निरसित किया जाता है, और फिर सारिणी ऐसी होगी

	II	III	IV
II	4	2	4
III	2	4	0
IV	4	0	8

तालिका 15.15

उपरोक्त सारिणी में न कोई पंक्ति और न ही कोई कालम किसी दूसरी पंक्ति या कालम पर वर्चस्व स्थापित कर रहा है। किन्तु कालम III और IV का औसत वर्चस्व कालम II पर है, जो कि इस प्रकार हैः—

$$\begin{pmatrix} \frac{2+3}{2} \\ \frac{4+0}{2} \\ \frac{0+8}{2} \end{pmatrix} = \begin{pmatrix} 3 \\ 2 \\ 4 \end{pmatrix}$$

अतः कालम II को हटाया जाता है। अतः कम की हुयी सारिणी इस प्रकार हैः—

	III	IV
II	2	4
III	4	0
IV	0	8

तालिका 15.16

पुनः पंक्ति III और IV द्वारा II को दबाया गया, जिससे

$\left(\frac{4+0}{2}, \frac{0+8}{2} \right) = (2,4)$ प्राप्त होता है।

अतः पंक्ति II हटायी गयी और परिणामस्वरूप 2 X 2 सारणी प्राप्त हुई।

	III	IV
III	4	0
IV	0	8

तालिका 15.17

उपरोक्त 2x2 सारिणी में कोई सैडिल बिंदु नहीं है। इसे अंकगातितीय तरीके से भी हल किया जा सकता है।

खिलाड़ी B				
खिलाड़ी **A**		**III**	**IV**	
	III	4	0	**8 2/3**
	IV	0	8	**4 1/3**
		8 2/3	**4 1/3**	

तालिका 15.18

अतः समस्या का पूरा समाधान यह है :–

खिलाड़ी A के लिये इस्टतम रणनीति, (0,0 ,2 / 3,1 / 3)ˑ

खिलाड़ी B के लिये इस्टतम रणनीति, (0,0,2 / 3,1 / 3)ˑ

(A के लिये) गेम का मान = $\left(\frac{8 \times 4 + 0 \times 4}{8 + 4} \right) = 8/3$ ।

<u>समस्या :–</u>

प्रभुत्व द्वारा गेम को छोटा (कम) करें और हल कीजिए।

खिलाडी **B**						
खिलाडी **A**		**1**	**2**	**3**	**4**	**5**
	I	1	3	2	7	4
	II	3	4	1	5	6
	III	6	5	7	6	5
	IV	2	0	6	3	1

तालिका 15.19

हलः– पंक्ति III द्वारा पंक्ति IV पर वर्चस्व स्थापित किया जा रहा है।

खिलाडी B						
		1	**2**	**3**	**4**	**5**
खिलाडी A	**I**	1	3	2	7	4
	II	3	4	1	5	6
	III	6	5	7	6	5

तालिका 15.20

अब कॉलम 4 में कॉलम 1 और 2 का वर्चस्व है, कॉलम 5 में कॉलम–2 का वर्चस्व है। अतः कालम 4 और 5 हटाएं । हमारे पास हैः–

	1	**2**	**3**
I	1	3	2
II	3	4	1
III	6	5	7

तालिका 15.21

उपरोक्त सारिणी में पंक्ति I और II पर पंक्ति 3 का वर्चस्व है। अतः हम पंक्ति 1 और 2 हटा देते हैं और हम पाते है।

	1	**2**	**3**
III	6	5	7

तालिका 15.22

खिलाड़ी बी के लिये उपलब्ध तीन रणनीतियों में से वह रणनीति 2 का इस्तेमाल करेगा ताकि उसके नुकसान को कम किया जा सके। अतः समस्या का समाधन इस प्रकार हैः–

A के लिये इष्टतम रणनीति, III

B के लिये इष्टतम रणनीति, II

गेम का मान (ए के लिये) V

15.5 रेखाचित्रीय (आलेखी) तरीका 2xN या Mx2 गेम के लिये

हम मानते हैं कि एक्स समय के अंष (आवृत्ति) का प्रतिनधित्व करता है जिसके लिये खिलाड़ी रणनीति 1 का उपयोग करता है और उस समय के अंश (1-x) का प्रतिनिधित्व करता है जिसके लिये वह रणनीति 2 का उपयोग करता है । इसी तरह Y और (1-Y) उस समय के अंश का प्रतिनिधित्व करता है जिसके लिये खिलाड़ी B रणनीति । और 2 का उपयोग क्रमशः करता है।

आलेखी विधि केवल उन खेलों पर लागू होती हैजिनमें खिलाड़ियों मेंसे एक केवल दो रणनीतियाँ अपनाता है। इस विधि का लाभ यह है यह कि अपेक्षाकृत अधिक तेज़ है। निम्नलिखित 2xn गेम पर विचार करें,

		B			
		y_1	y_2	...	y_n
A	x_1	a_{11}	a_{12}	...	a_{1n}
	$x_2 = 1 - x_1$	a_{21}	a_{22}	...	a_{2n}

तालिका 15.23

यह माना गया कि गेम में कोई सैडिल (काठी) बिंदु नहीं है। खिलाड़ी A की दो रणनीतियाँ हैं X_1 और X_2 (= $1 - x_1$),

जहाँ $x_1 \geq 0$, $x_2 \geq 0$ ।

B की शुद्ध रणनीतियों के अनुरूप A के लिये अपेक्षित भुगतान नीचे दिया गया है।

B's pure strategies	A's expected payoff
1	$a_{11}x_1 + a_{21}(1 - x_1) = (a_{11} - a_{21})x_1 + a_{21}$
2	$a_{12}x_1 + a_{22}(1 - x_1) = (a_{12} - a_{22})x_1 + a_{22}$
.	
.	
.	
n	$a_{1n}x_1 + a_{2n}(1 - x_1) = (a_{1n} - a_{2n})x_1 + a_{2n}$

तालिका 15.24

अतः A का अपेक्षित भुगतान (आय) X_1 के साथ रैखिक रूप से बदलती है।

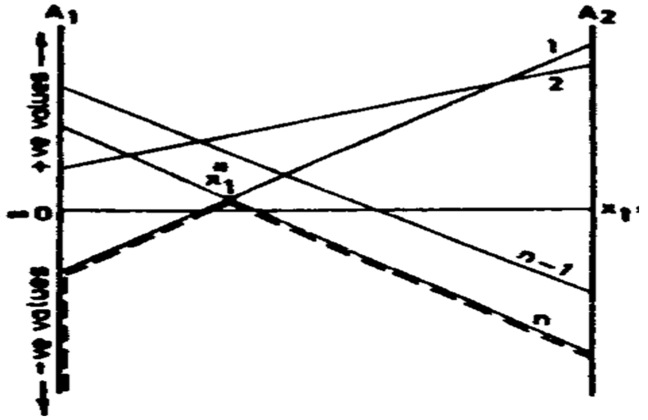

चित्र 15.1

B के लिये इष्टतम रणनीतियों को दो रेखाओं के द्वारा दिखाया गया है जो अधिक न्यून बिन्दु के ऊपर से गुजरती है। इस प्रकार 2n खेल को कम करके 2 X 2 खेल कर दिया गया जिसे आसानी से पहले से ही वर्णित विधियों द्वारा हल किया जा सकता है।

अधिक न्यून बिंदु का महत्व यह है कि इसका स्तर उच्चतम है, औसतन जिस पर BA की जीत को ले सकता है। इसी प्रकार, यह वह स्तर है जिसके आधार पर अपने नुकसान कम करने के लिये AB पर हावी हो सकता है। दूसरे शब्दों में, यह केवल इंगित करता है कि अपने प्रतिद्वन्द्वी की रक्षात्मक रणनीतियों

द्वारा नियंत्रित होने से पहले एक खिलाड़ी कितनी दूर जा सकता है। यह औसत भुगतान है जिसके आस–पास गेम फिर से घूमता है।

उदाहरण :– सारिणी में दी गयी समस्या का हल रेखा चित्रीय विधि से करियेः–

		B y_1	y_2	y_3	y_4
	x_1	19	6	7	5
A	x_2	7	3	14	6
	x_3	12	8	18	4
	x_4	8	7	13	–1

तालिका 15.25

हल :–चरण–1 : सैडिल बिंदु देखें । इस समस्या में यह नहीं है।

चरण– 2 : प्रभुत्व के सिद्वान्त का इस्तेमाल करें। कालम 2 में संपूर्ण प्रकोष्ठ मान कॉलम और 3 में इसी मान से कम है। अतः कालम 1 और 3 पर कॉलम 2 का वर्चस्व है ओर कम की हुई सारिणी इस प्रकार हो जाती है।

		y_2	y_4
	x_1	6	5
A	x_2	3	6
	x_3	8	4
	x_4	7	–1

तालिका 15.26

पुनः पंक्ति 3 के लिये सभी प्रकोष्ठ मान पंक्ति 4 के मान की तुलना में अधिक है। अतः पंक्ति 3 का वर्चस्व है। और सारिणी इस प्रकार घटा (कम) दी गयी

		y_2	$y_4 = 1 - y_2$
	x_1	6	5
A	x_2	3	6
	x_3	8	4

तालिका 15.27

अब इस सारिणी को आलेख विधि के द्वारा हल किया जा सकता है। A की शुद्ध रणनीतियों के अनुरूप B के अपेक्षित भुगतान नीचे दिये गये हैः–

A’ शुद्ध रणनीतियां	**B’s** अपेक्षित रणनीतियां
1	$6y_2 + 5(1-y_2) = y_2 + 5$
2	$3y_2 + 6(1-y_2) = -3y_2 + 6$
3	$8y_2 + 4(1- y_2) = 4y_2 + 4$

तालिका 15.28

इन तीन सीधी रेखाओं को Y2 के क्रिया कलापों के रूप में संकलित किया जा सकता है :–

रेखाचित्र बनाने की प्रक्रियाः–

चरण क्र.–1 B2 और B4 दो समानान्तर रेखाएं बनाओ यह दो रेखाएँ दो रणनीतियों का प्रतिनिधित्व करती हैं जो B को उपलब्ध है।

चरण क्र.–2 A की प्रथम रणनीति का प्रतिनिधित्व करने के लिये, B2 पर अंकित 6 को B4 पर अंकित 5 से जोड़ें । A की दूसरी रणनीति का प्रतिनिधित्व करने के लिये B2 पर अंकित 3 को B4 पर अंकित 6 से जोड़ें और ऊपर बताये गये आंकड़े से बाध्य करें।

चरण क्र. 03 :– चूंकि खिलाड़ी B अपने अपेक्षित नुकसान को कम करना चाहता है, दो लाइनें जो ऊपरी बाउंड के सबसे निचले बिंदु पर एक दूसरे के रूप में दिखती हैं, A को अपने सर्वश्रेष्ठ रणनीति में कार्रवाई के दो एक्शन A और A2 का चयन करना चाहिये।

अतः हम जल्द ही 3 x 2 गेम को कम करे 2 x 2 कर सकते हैं जिसे अंकगणितीय पद्धति से आसानी से हल किया जा सकता है। 2x2 गेम को इस प्रकार सारणी में दिखाया गया हैः–

		B 2	B 4		
A	1	6	5	3	3/4
	2	3	6	1	1/4
		1	3		
		1/4	3/4		

तालिका 15.29

अतः इष्टतम रणनीतियाँ इस प्रकार हैः–

A (3/4, ¼, 0, 0), और B (0, ¼, 0, ¾)

खेल का मान है $v = \dfrac{6 \times 1 + 3 \times 5}{1 + 3} = \dfrac{21}{4}$

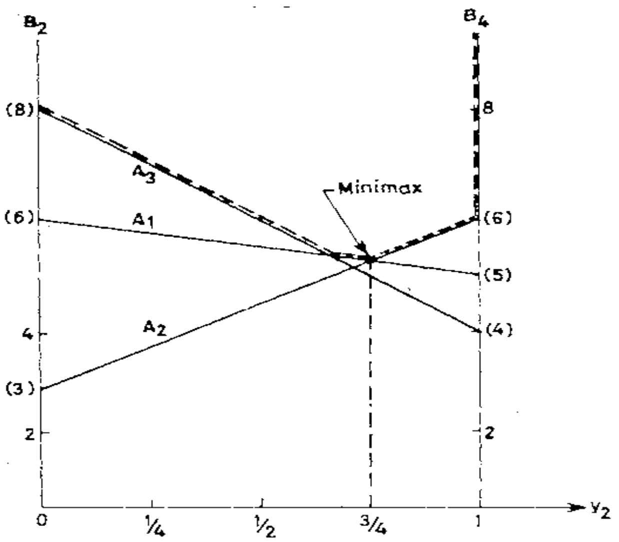

चित्र 15.2

15.6 सारांश

गेम सिद्धान्त की इस इकाई में हमने प्रतिस्पर्धी स्थितियों की अवधारणा का अध्ययन किया जहाँ प्रतिस्पर्धात्मक खेल की विशेषताओं और इसकी रणनीतियों को माना जाता है। अधिकतम न्यूनतम सिद्धान्त की चर्चा की गयी, सैडिल बिन्दु और प्रभुत्व की भी चर्चा संक्षेप में की गयी, इनकी चर्चा उपयुक्त उदाहरणों के साथ की गयी। फिर 2x4 और mx2 खेलों के लिये आलेख (रेखाचित्र) अवधारणा का भी अध्ययन किया गया। यहाँ उपलब्ध माडल निर्णयात्मक सिद्धान्त और निर्णय विष्लेषण में बहुत उपयोगी है। इस इकाई में हमने यह भी अध्ययन किया कि जिस गेम में 4 खिलाड़ी भाग लेते हैं उसे n व्यक्ति गेम कहा जाता है। ऐसा गेम जिसमें दो खिलाड़ी भाग लेते हैं उसे 2 व्यक्तियों का गेम कहा जाता है। यदि कोई गेम ऐसा है कि जब भी यह खेला जायेगा खिलाड़ियों का लाभ (भुगतान) का योग्य शून्य होाग। इसे आयताकार गेम के नाम से जाना जाता है। दो व्यक्ति शून्य योग खेल में, एक खिलाड़ी का लाभ दूसरे को होने वाले हानि के समान होगा। हम यह भी देखते है ंकि खेल में खिलाड़ी द्वारा अपनायी जाने वाली रणनीति एक पूर्व निर्धारित नियम होता है जिसके द्वारा वह गेम खेलते समय अपनी कार्यवाही का चुनाव करता है।

खिलाड़ी द्वारा अपनायी जाने वाली रणनीति 'शुद्ध रणनीति' या 'मिश्रित रणनीति' हो सकती है। जब गेम खेला जा रहा है, खिलाड़ी की शुद्ध रणनीति उसका पूर्व में लिया गया निर्णय है जिसके माध्यम से वह एक विशिष्ट कार्यवाही को स्वीकार करता है (A_r कहता है), और वह अपने प्रतिद्वन्द्वी की रणनीति की परवाह भी नहीं करता है।

15.7 शब्दावली

प्रतिस्पर्धी स्थितियाँ – यह तब होता है जब दो या दो से अधिक पक्षकार किसी कार्य को परस्पर विरोधी हितों के साथ संचालित करते हैं।

n व्यक्ति खेल :– एक खेल जिसमें n खिलाड़ी भाग लेते हैं उसे n व्यक्ति खेल कहा जाता है।

15.8 बोध प्रश्न

निम्नलिखित में सही को T और गलत F लिखें:–

ए– दो व्यक्तियों के खेल में, दोनों ही खिलाड़ियों की रणनीतियाँ समान मात्रा में होनी चाहिये।

बी– प्रतिस्पर्धी खेल में, एक प्रतिभागी के असीमित संख्या में कार्यवाही हो सकती है।

सी– रेखाचित्रीय विधि केवल उन खेलों पर प्रभावी है जिनमें एक खिलाड़ी की केवल दो रणनीतियाँ हैं।

डी– दो व्यक्ति शून्य योग खेल में, प्रत्येक खेल के अन्त में दो खिलाड़ियों को किया गया कुल भुगतान शून्य होता है।

ई– दो खिलाड़ियों के मध्य खेल जहाँ एक खिलाड़ी का लाभ दूसरे खिलाड़ी की हानि के बराबर होता है उसे दो व्यक्ति शून्य योग खेल कहा जाता है।

15.9 बोध प्रश्नों के उत्तर

ए गलत बी गलत सी सही डी सही इ सही

15.10 स्वपरख प्रश्न

(1) शब्दों की व्याख्या करें :–

1 सैडिल बिन्दु

2 अधिक–न्यून और न्यूनाधिक सिद्वान्त।

3 प्रभुत्व का सिद्वान्त।

4 प्रतिस्पर्धी खेल, शून्य योग खेल,, दो व्यक्ति शून्य योग खेल ।

(2) प्रभुत्व के सिद्वान्त का उपयोग करते हुये निम्नलिखित खेलों को हल करें:–

		खिलाड़ी बी					
		I	II	III	IV	V	VI
खिलाड़ी ए	I	4	2	0	2	1	1
	II	4	3	1	3	2	2
	III	4	3	7	-5	1	2
	IV	4	3	4	-1	2	2
	V	4	3	3	-2	2	2

(3) निम्नलिखित खेल को कम करके खेल रेखाचित्रीय तरीके से हल करें।

	खिलाड़ी बी				
खिलाड़ी ए	3	0	6	-1	7
	-1	5	-2	2	1

(4) रेखाचित्रीय तरीके से निम्नलिखित खेल को कम करके 2x2 आधार पर हल करें।

	खिलाड़ी बी				
खिलाड़ी ए	0	4	-8	5	1
	1	5	8	-4	0

प्रश्नों के उत्तरः–

(2) A के लिये इस्टतम रणनीति, (0, 6/7,1/7, 0, 0),
B के लिये इस्टतम रणनीति, (0,0,4/7, ,3/7, 0, 0)
और खेल का मान होगा 13/7 ।

(3) A (3/7, 4/7), B(3/7, 0,0,4/7), खेल का मान V= 5/7

(4) A2, B4, खेल का मान V= -4

15.11 सन्दर्भ पुस्तकें

1. Deein J., Managerial Economics, Prentice Hall, Englewood Cliffs, N.J.
2. Alfed W. Stonier and Douglas C. Hague, A Text Book of Economic Theory, Longman, 1990.
3. Chamberlin, E.H., The Theory of Monopolistic Competition, Cambridge, Mass : Harvard University Press, 1933.
4. Stigler, "Price and Non-Price Competition", Journal of Political Economy, Feb., 1968.
5. Mrs. J. Robinson, The Economics of Imperfect Competition, London, Macmillan, 1933.
6. Mehta, P.L., Managerial Economics – Analysis, Problem and Cases, Sultan Chand & Sons, New Delhi.
7. H.L. Ahuja, Business Economics Micro- S. Chand & Co. Ltd., New Delhi, 1999.

———————

इकाई 16 कुल माँग, आपूर्ति, निवेश, मुद्रास्फीति और बेरोजगारी की बुनियादी अवधारणाएं

इकाई की रूपरेखा

16.1 प्रस्तावना
16.2 प्रभावी माँग
16.2.1 कुल मांग कारक
16.2.2 कुल आपूर्ति
16.2.3 अर्थव्यवस्था का संतुलन
16.3 निवेश
16.4 मुद्रास्फीति
16.5 बेरोजगारी
16.6 सारांश
16.7 शब्दावली
16.8 बोध प्रश्न
16.9 बोध प्रश्नों के उत्तर
16.10 स्वपरख प्रश्न
16.11 संदर्भ पुस्तकें

उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप इस योग्य हो सकेंगे कि –

- प्रभावी मांग, कुल माँगए कुल माँग वक्र और कुल आपूर्ति की व्याख्या कर सकें।
- निवेश, मुद्रास्फीति, और बेरोजगारी का वर्णन कर सकें।

16.1 प्रस्तावना

इस इकाई में कुल माँग, कुल आपूर्ति, निवेश, मुद्रास्फीति और बेरोजगारी का विश्लेषण और स्पष्टीकरण प्राप्त होगा जिससे जे.एम.कीन्स के द्वारा प्रतिपादित सामान्य सिद्धान्त के अभिन्न अंग प्राप्त होगा। कीन्स का अर्थशास्त्र एक उत्कृष्ट अर्थशास्त्र की वास्तविकता को तोड़ने हेतु प्रतिनिधित्व करता है जो कि मुक्त व्यापार और आर्थिक क्षेत्र में सरकार की गैर हस्तक्षेप के स्तंभों पर आधारित है। तथापि, कीन्स का दृष्टिकोण प्राचीन विचार धारा से पूर्णतः अप्रभावित नहीं है। कीन्स के दृष्टिकोण में भी प्रतिस्पर्धा की धारणा होने की उत्कृष्ट विशेषता है।

16.2 प्रभावी माँग

जे.एम. कीन्स द्वारा अवधारित प्रभावी मांग से तात्पर्य है रोजगार के बहुत से स्तरों पर वस्तुओं और सेवाओं की पूर्व मांग का होना । रोजगार के विभिन्न स्तर कुल मांग के स्तर का प्रतिनिधित्व करते हैं। किन्तु रोजागर का एक स्तर यह भी हो सकता है जहां कुल माँग कार्य और कुल आपूर्ति कार्य के प्रतिच्छेदन को प्रभावी मांग के बिंदु के रूप में माना जा सकता है। खरीदने की केवल इच्छा होना और अलग–अलग क्षमताओं और खरीद के लिये इच्छा होने के बीच में अन्तर स्थापित करने का कार्य प्रभावी मांग करता है, और इस तरह रोजगार की सीमा और आयतन निर्धारित करने में अधिक वैध होता है। प्रभावी मांग में

सम्मिलित है, (1) उपभोग मंग और (2) निवेश मांग । जब किसान उपभोक्ताओं के लिये वस्तुओं की मांग पूर्ति करते हैं, वस्तुओं से तात्पर्य पूंजीगत वस्तुओं की मांग से है। चूंकि रोजगार प्रभावी मांग से संचालित होता है, यह स्पष्ट है कि समुचित प्रभावी मांग की कमी के कारण बेरोजगारी की स्थिति उत्पन्न होती है और यदि बेरोजगारी की समस्या का सुलझाया जाना है, तो उसका एकमात्र समाधान है प्रभावी मांग में वृद्धि करना। दूसरी ओर, प्रभावी मांग को दो कारकों द्वारा निर्धारित किया जाता है– कुल मांग कारक (ADF) और कुल आपूर्ति कारक (ASF) । आप जानते हैं कि मार्शेलियन दृष्टिकोण के अनुसार मांग और आपूर्ति को बाजार बल के संपर्क के द्वारा निर्धारित किया गया है। कीनियन दृष्टिकोण यह धारित करता है कि प्रभावी मांग एक कुल मांग और कुल आपूर्ति द्वारा निर्धारित की जाती है।

16.2.1 कुल माँग कारक :–

कुल मांग कारक विभिन्न धनराशियों की एक अनुसूची है जो समस्त उद्यमी इस आशा के साथ अर्थव्यवस्था एक साथ रखते हैं कि उनके उत्पादन की बिक्री से रोजगार के विभिन्न स्तरों पर होगी। नीचे दी गयी आकृति से आपको आभास होगा कि कुल मांग वक्र कैसे काम करता है।

आकृति 17.1 में, रोजगार को OX धुरी में दिखाया गया है, जबकि OY धुरी पावती दिखाती है। रोजगार में वृद्धि के साथ, बिक्री से प्राप्तियों में भी वृद्धि हुई है। अकृति से यह भी स्पष्ट है कि AD ऊपर की ओर तेजी बढ़ रही है, किन्तु बाद में यह उस गति से नहीं बढ़ रहा है जितना कि रोजगार जो कि एक निष्चित स्तर के आगे तक पहुंच जाता है । ऐसा होता है क्योंकि जब रोजगार धीमा होता है तो समुदाय की आर्थिक स्थिति इतनी दयनीय हो जाती है कि यह अपने द्वारा अर्जित सारी आय खर्च कर देता है और कुछ भी बचत नहीं करते ।

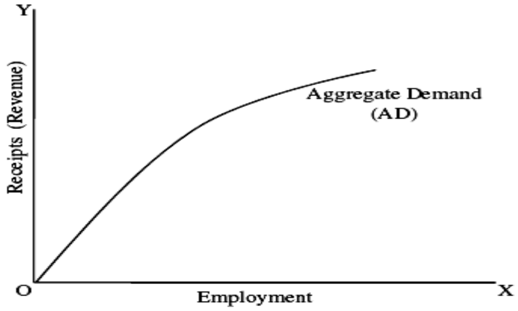

आकृति 16.1

16.2.2 कुल आपूर्ति :

अकेले रोजगार से कुछ उत्पन्न नहीं किया जा सकता, इसके लिये अन्य कारकों जैसे भूमि, पूंजी, कच्चा माल आदि के सहयोग की आवश्यकता होती है। इन सभी कारकों को उनके सहयोग के लिये उद्यमी द्वारा भुगतान किया जाना होता है। जब किसी भी संख्या में पुरूषों को नियोजित किया जाता है, तो उन पुरूषों द्वारा उत्पादन में आयी कुल लागत ही कुल आपूत्रि मूल्य कहलाता है। इस तरह यदि अधिक श्रमिक नियुक्त किये जाते हैं, अतिरिक्त पावती (धन) की भी अपेक्षा की जानी चाहिये। तब, कुल आपूर्ति वक्र दाहिनी ओर ऊपर की तरफ

मुड़ेगा । अतः AS वक्र वस्तु और कारक (विशेषतः मजदूर) बाजार दोनों की स्थितियों को प्रतिबिंबित करता है। नीचे दी हुयी आकृति इस स्थिति को दर्शाती है।

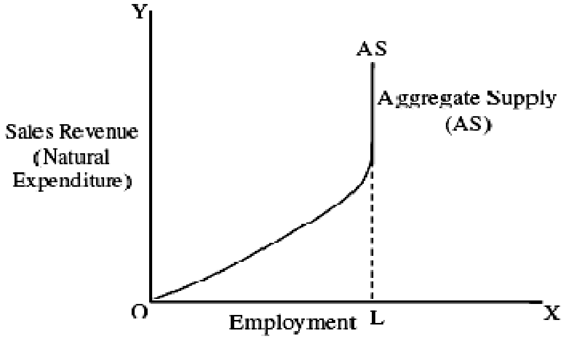

आकृति 16.2

आकृति 16.2 में, OX धुरी पर रोजगार को दर्शाया गया है जबकि OY बिक्री से प्राप्त पावती या राष्ट्रीय व्यय को दर्शाता है। आकृति से यह स्पष्ट होता है कि AS वक्र भी AD वक्र की तरह बढ़त ले रही है। इस प्रकार यह स्पष्ट है कि जब बिक्री से राजस्व शून्य है, उत्पादन और रोजगार दोनों ही शून्य हो जायेंगे। जैसे जैसे बिक्री से राजस्व में वृद्धि होती है। उत्पादन और रोजगार दोनों में भी वृद्धि हो जायेगी। इससे यह स्पष्ट होता है कि रोजगार और बिक्री से प्राप्त होने वाला राजस्व दोनों ही एक ही दिषा में चलते है। कुछ विशिष्ट मामलों में AS वक्र अर्ध्वाधक वक्र हो सकता है । किन्तु व्यावहारिकता में यह ऊपर की ओर सीधी बढ़ती है। AS की इस प्रक्रिया का भौतिक कारण यह है कि प्रौद्योगिकी मैं सुधार आर संसाधनों के संचय के कारण संभावित सकल घरेलू उत्पाद (जीडीपी) समय के साथ बढ़ेगी और परिणामस्वरूप AS वक्र ऊपर की तरफ बढ़ जायेगा।

आकृति से यह स्पष्ट हो जायेगा कि प्रारंभ में AS वक्र धीरे–धीरे बढ़ता है, कारण है, उत्पादन की कीमत तीव्रगति से नहीं बढ़ती है किन्तु जैसे ही बिक्री के राजस्व में वृद्धि होती है, परिणामस्वरूप रोजगार में वृद्धि होती है, परिणामस्वरूप रोजगार में वृद्धि होती है और इससे यह स्थिति उत्पन्न होती है कि कोई भी मजदूर बेरोजगार नहीं रह जाता है। अब इस स्थिति के बाद, रोजगार नहीं बढ़ेगा, लेकिन बिक्री का राजसव लगातार बढ़ रहा है और तब AS वक्र ऊर्ध्वाधर आकार ले लेगा। आकृति 16.2 में एक बार OL संख्या के मजदूरों को रोजगार मिला है, AS वक्र ऊर्ध्वाकर रूप में चलना शुरू करती है। यद्यपि बिक्री राजस्व जैसे राष्ट्रीय व्यय और रोजगार को एक साथ अनुपात गिरने की संभावना है, जिसमें वे भिन्न हो सकते हैं, अनिवार्यतः समान नहीं हो सकते हैं इसलिये, इसका अर्थ यह हुआ कि AS की कार्यप्रणाली जो प्राकृतिक व्यय के स्तर पर नियोजित श्रम की संख्या से संबंधित है, जिसे गैर–रेखा चित्र होने की अधिक संभावना है, इसे आंकड़े में दिखाया गया है।

16.2.3 अर्थव्यवस्था का संतुलन :–

रोजगार का स्तर कुल आपूर्ति वक्र के साथ कुल मांग वक्र के प्रतिच्छेदन पर स्थापित होता है। इसका तात्पर्य यह है कि इन दोनों वक्रों के मिलने का स्थान ही संतुलन की स्थिति कहलाती है जैसे एक बिन्दु पर AD= AS । यह

प्रभावी मांग का भी बिंदु है। अब यदि, रोजगार के किसी विशिष्ट स्तर पर, उद्यमियों को यह लगता है कि धन प्राप्ति (पावती) कीमत से कम है, वह उत्पादन बंद कर देंगे और कुछ विषिष्ट मजदूरों को रोजगार देने से मना कर सकेगा। इसका आशय यह है कि जब तक लागत पावती के मुकाबले कम रहती है, अर्थव्यवस्था में रोजगार तब तक बढ़ेगा जब तक कि दोनों ही बराबर न हो जाएं। किसी भी मांमले में जब लागत पावती के मुकाबले अधिक होती है, कोई भी नियोजक कामगारों को रोजगार नहीं देगा। अब नीचे दी गयी आकृति के माध्यम से समझ सकते हैं।

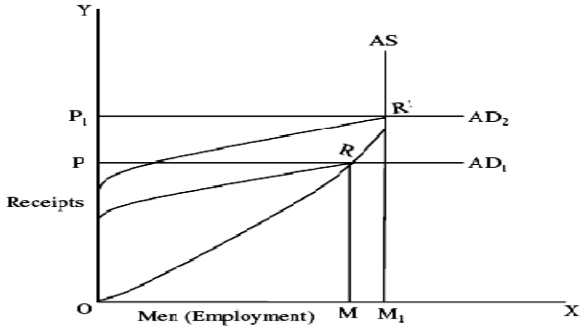

आकृति 17.3

आकृति 16.3 में कवेल एक कुल आपूर्ति वक्र है किन्तु कुल मांग वक्र दो हैं AD_1 और AD_2 अर्थव्यवस्था OP पर उत्पादकों की अपेक्षित पावती के समान है और रोजगार OM पर समान अवस्था में है। चूंकि OM_1 पुरूष (मजदूर) हैं जो काम करना चाहते हैं, इस स्थिति में MN_1 का रोजगार है। इस मामले में, यद्यपि संतुलित लोग नौकरी से बाहर है। अब OM_1 पुरूष को ही रोजगार मिल सकता है यदि कुल मांग OP_1 होने की उम्मीद है। AD_2 वक्र वह स्थिति दिखाता है जहां नियोक्ता हर उस व्यक्ति के माध्यम से पर्याप्त पैसा प्राप्त करना चाहते हैं जिनहें उन्होंने काम दिया है। यहाँ OM_1 नियोजित पुरूष हैं और OP_1 पैसा फर्मों के द्वारा प्राप्त (कमाया) यिका गया है। जैसा कि आकृति दर्शाती है, OM_1 के अलावा कहीं कोई रोजगार नहीं होगा, चाहे कीसी भी स्तर पर पावती (लाभ) बढ जाये। ऐसा इसलिए क्योंकि AS वक्र एक निश्चित स्तर के बाद उर्ध्वाधर है । IM_1 जो कि संतुलन का बिन्दु है।

16.3 निवेश

निवेश बचत या अलग प्रकार की खपत से संबंधित है। अर्थव्यवस्था के बहुत सारे क्षेत्रों में निवेश संलिप्त है, जैसे व्यवसाय प्रबंधन और वित्त चाहे वह घर के लिये हो, फर्म के लिये हो या सरकार के लिये। अटकलों से बचने के लिये एक निवेश को या तो सीधे पर्याप्त संपाविश्वक प्रतिज्ञा द्वारा समर्थित होना चाहिये या तीसरे पक्षकार माध्यम से समायोजित पर्याप्त संपदा द्वारा बीमा किया जाना चाहिये । समपाश्विक समर्थित एक अच्छी तरह से विश्लेषण की गयी ऋण राषि जो कि तत्काल मूल्य से अधिक, उसको निवेश माना जा सकता है। एक वित्तीय संलेख जो कि तीसरे पक्षकार की संपदा की प्रतिज्ञा से बीमाकृत है, इसी तरह किसी सरकारी ऐजेंसी द्वारा बीमाकृत वित्तीय संस्थान में जमा राशि को एक निवेश माना जा सकता है। आर्थिक सिद्धान्त या समष्टि अर्थशास्त्र में, निवेश वह राशि है,

जिससे समय के अनुसार प्रति इकाई वस्तुओं की खरीदी की जाती है, किन्तु उनका उपयोग नहीं किया जाता है और भविष्य में उत्पादन के लिये इनका उपयोग किया जाता है (जैसे पूंजी)। रेल, कारखाने, या सड़क का निर्माण इसके उदाहरण है। अतिरिक्त स्कूली शिक्षा की लागत या नौकरी के दौरान प्रशिक्षण मानव पूंजी के अन्तर्गत आते हैं। इन्वेंट्री निवेश माल की सूची का संग्रह है। यह सकारात्मक यो नकारात्मक हो सकता है, राष्ट्रीय आय और उत्पादन की गणना में, ''सकल निवेश'' (चर 1 से प्रतिनिधित्व) भी सकल घरेलू उत्पाद का ही अंग है, सूत्र में भी दिया गया है, जीडीपी = C+1 + G +NX, यहा C खपत है, G सरकारी खर्च है और NX कुल निर्यात है। अतः निवेश वह सब कुछ है जो खपत, सरकारी व्यय और शुद्ध निर्यात के बाद कुल व्यय जो कि घटाया जा चुका है (जैसे = 1= जीडीपी.= सी – जी– एनएक्स)

गैर आवासीय निवेश (जैसे नये कारखाने) और आवासीय निवेश (नया वार) । को बनाने के लिये इन्वेंट्री (सूची) निवेश के साथ जुड़ते हैं। शुद्ध निवेश सकल निवेश से मूल्य ह्रास काट लेता है। शुद्ध निश्चित निवेश प्रति वर्ष पूंजीगत स्टॉक में शुद्ध वृद्धि का मूल्य है। समय की अवधि (प्रतिवर्ष) में व्यय के रूप में निश्चित निवेश पूंजी नहीं है। निवेश का सामयिक आयाम एक प्रवाह बनाता है। इसके विपरीत, पूंजी एक वह शेयर है जो समय पर (31 दिसंबर) एक बिन्दु पर शुद्ध निवेश संचति करता हैं । निवेश को अक्सर संबंध द्वरा दिये गये -1=f (y]r) आय और व्याज दरों के कार्य के रूप में तैयार किया जाता है। आय में बढ़ोत्तरी से अधिक निवेश को बढ़ावा मिलता है, जबकि बढ़ी हुयी ब्याज दर से निवेश हतोत्साहित हो सकता है क्योंकि धन उधार लेना बहुत मंहगा पड़ता है। भले ही कोई फर्म निवेश में अपनी राशि का उपयोग करने का विकल्प चुनती है, तो ब्याज दर उन निधियों को निवेश करने की एक पूंजीगत लागत का प्रतिनिधित्व करती है, न कि ब्याज के लिये राशि बांटने का ।

16.4 मुद्रा स्फीति

समयावधि में एक अर्थव्यवस्था में वस्तुओं और सेवाओं की कीमतों के सामान्य स्तर में वृद्धि के रूप में मुद्रास्फीति को परिभाषित किया जा सकता है। जब कीमतों का सामान्य स्तर बढ़ जाता है, मुद्रा की प्रत्येक इकाई कुछ वस्तुएँ एवं सेवाएं खरीदती हैं। परिणामस्वरूप मद्रास्फीति विनिमय के आन्तरित माध्यम और अर्थव्यवस्था में खाते की इकाई में वास्तविक मूल्य के पैसे की हानि क्रय शक्ति में क्षरण को दर्शाती है। समय के साथ सामान्य मूल्य सूचकांक में वार्षिक प्रतिशत में बदलाव, ही मुद्रास्फीति का मुख्य कारण मुद्रास्फीति दर है। अर्थव्यवस्था पर पड़ने वाले मुद्रास्फीति के प्रभाव सकारात्मक या नकारात्मक कुछ भी हो सकते है। मुद्रास्फीति पर पड़ने वाले नकारात्मक प्रभाव में सम्मिलित है धन और अन्य मुद्रा संबंधी वस्तु वस्तुओं की वास्तविक कीमत में गिरावट होना, भविष्य की मुद्रास्फीति के संदर्भ में अनिष्चितता होना जिससे निवेश में और बचत करने में हतोत्साहित हो सकते हैं, यदि मुद्रास्फति की गति अधिक तीव्र है तो वस्तुओं की कमी प्रारंभ हो जाती है उपभोक्ताओं के रूप में जमा खोरी के बढ़ जाने से भविष्य में कीमतों के बढ़ जाने की भी संभावना रहती है। सकारात्मक प्रभाव से तात्पर्य है कि व्यावसायिक बैंक साधारण ब्याज दर पर समायोजन करेंगे, और अनार्थिक पूंजी परियोजनाओं में विनिवेश को प्रोत्साहित करेंगे।

साधारणतया अर्थशास्त्री इस बात से सहमत हैं कि मुद्रास्फीति की बढ़ती दरें या बेलगाम मुद्रास्फीति का मुख्य कारण धन आपूर्ति की अत्यधिक बढ़ोत्तरी का होना है। जिन पहलुओं पर मुद्रास्फीति की दर मध्यम से कम की गयी है, वे भिन्न है। वस्तुओं और सेवाओं की वास्तविक मांग में उतार चढ़ाव के लिये या कमी के दौरान उपलब्ध आपूर्ति में परिवर्तन के लिये, साथ ही साथ पैसे की आपूर्ति में वृद्धि के लिये, कम या मध्यम मुद्रास्फीति को जिम्मेदार ठहराया जा सकता है। हालांकि, आम सहमति यह है कि आर्थिक वृद्धि दर की तुलना में मुद्रा आपूर्ति में तेजी से वृद्धि दीर्घकालिक मुद्रास्फीति का कारण है। आज, अधिकांश अर्थशास्त्री निम्न और धीमी मुद्रास्फीति दर को पक्षधर हैं। कम (शून्य का नकारात्मक का विरोध) मुद्रास्फीति आर्थिक मंदी की गंभीरता को कम कर देती, श्रम बाजार को मंदी के दौरान भी अधिक तेजी से समायोजित करने हेतु सक्षम बनाती है और जोखिम को इतना कम कर देता है कि एक तरलता जाल अर्थव्यवस्था को स्थिर करने से मौद्रिक नीति को रोकता है। मुद्रास्फीति की दर को कम और स्थिर रखने का कार्य औपचारिक रूप से धन अधिकारियों को दिया जाता है । साधारणतया, यह मौद्रिक अधिकारी केन्द्रीय बैंक हैं जो ब्याज दर स्थापित करके, खुला बाजार के क्रियान्वयन के ओर बैंकों की आरक्षित आवश्यकताओं की व्यवस्था के माध्यम से मौद्रिक नीति पर नियंत्रण स्थापित करते है । मुद्रास्फीति से संबंधित अन्य आर्थिक अवधारणाओं में सम्मिलित है– सामान्य कीमतों में गिरावट आता, विस्फीति– मुद्रास्फीति की दर में कमी, अति प्रवाह वृद्धि– मुद्रास्फीति का चक्कर नियंत्रण से बाहर होना, मुद्रास्फीतिजनित में दी– मुद्रास्फीति का संयोजन, धीमा आर्थिक विकास और अधिक बेरोजगारी, और पुनः मुद्रास्फीति–अपस्फीति के दबाबों का विरोध करने के लिये कीमतों के सामान्य स्तर में वृद्धि करने का प्रयास करना।

जब कीमतों का सामान्य स्तर बढ़ जाता है, प्रत्येक मौद्रिक इकाई कुछ वस्तुएं एवं सेवाएं खरीदती है। मद्रुास्पीति का प्रभाव अर्थव्यवस्था में समान रूप से वितरित नहीं है, और इस तरह परिणाम स्वरूप कुछ छिपी हुयी कीमतों और धन की क्रयशक्ति में इस गिरावट से अन्य लोगों को लाभ भी सम्मिलित होता है। उदाहरण के लिये, मुद्रास्फीति से उधारदाताओं या जमाकर्ता जो ऋण या जमाराशियों पर ब्याज की निष्चित दर का भुगतान करते हैं उनकी ब्याज आय से क्रयशक्ति खो जाएगी, जबकि उधारकर्ताओं को लाभ मिलेगा। नकद परिसंपत्तियों वाले व्यक्तियों या संस्थानों को उनके खातों की क्रयषक्ति में गिरावट का अनुभव होगा। श्रमिकों और पेंशन धारकों की भुगतान में वृद्धि विशेष रूप से निश्चित भुगतान वाले लोगों के लिये अक्सर मुद्रास्फीति के पीछे–पीछे होती है। कीमतों के स्तर (मुद्रास्फीति) में वृद्धि धन की वास्तविक उपयोगिता (क्रियाशील मुद्रा) को खत्म कर देती है और अन्तर्निहित मौद्रिक प्रकृति के साथ अन्य वस्तुओं को भी खत्म कर देती है। देनदार जो ब्याज की निश्चित सामान्य दर पर उधार देते हैं, वह देखेंगे कि जैसे ही मुद्रास्फीति दर बढ़ती है वास्तविक ब्याज दर में कटौती हो जाती है। ऋण पर वास्तविक ब्याज सामान्य ब्याज मुद्रास्फीति को कम कर देता है।

जब तक कि नाममात्र ब्याज दर और मुद्रास्फीति की दर छोटी है, इस सूत्र R=N-1 के उत्तर सही अनुमानित होते हैं। सही समीकरण है r = n/i जहां r, n और i को अनुपात के रूप में दर्शित हैं (उदा. + 20 प्रतिशत क`लिये

1.2, – 20 प्रतिशत के लिये 0.8)। उदाहरण के तौर पर, जब मुद्रास्फीति दर 3 प्रतिशत है, ऋण नाममात्र ब्याज दर 5 प्रतिशत होगी। मुद्रास्फीति दर में असंभावित वृद्धि से वास्तविक ब्यजा दर घट जायेगी। बैंक और अन्य देनदार मुद्रास्फीति की दर के साथ व्यवस्था जमाते हैं, यह व्यवस्था या तो निश्चित ब्याज दर ऋण के प्रीतियम की जोखिम को कम करके या अनुकूलतम दर पर ऋण देकर की जाती है। उच्च या अप्रत्याशित मुद्रास्फीति दरें संपूर्ण अर्थव्यवस्था के लिये घातक है। इससे बाजार में अक्षमताएं आती हैं और कंपनियों के लिये बजट या दीर्घावधि योजना बनाना दुरूह हो जाता है। मद्रुास्फीति उत्पादकता पर एक रेखा खींच सकती है क्योंकि कंपनियाँ मुद्राओं की मुद्रास्फीति से मुनाफा और घाटे पर ध्यान केन्द्रित करने के लिये उत्पादों और सेवाओं से संसाधनों को दूर करने के लिये मजबूर है। धन की भविष्य की क्रय शक्ति के बारे में अनिश्चितता विनियोग और बचत को हतोत्साहित करती है। और मुद्रास्फीति छिपी हुई कर वृद्धि को लागू कर सकती है क्योंकि बहुत अधिक आय करदाताओं को उच्च आय कर दर में डाल देते हैं जब तक कि टैक्स कोष्ठक ने मुद्रास्फीति को अनुक्रमित नहीं किया। उच्च मुद्रास्फीति के कारण क्रयशक्ति निश्चित साधारण आय में पुनर्वितरित हो जाती है। जैसे कि कुछ पेंशनधारी जिनकी पेंशन मूल्य स्तर पर अनुक्रमित नहीं है, उन लोगों की परिवर्तनीय आय जिनकी कमाई मुद्रास्फीति के साथ बेहतर ढंग से चलती रहती है। क्रयशक्ति का पुनर्वितरण अन्तर्राष्ट्रीय व्यापारिक भागीदार के मध्य भी उत्पन्न होता है। जहाँ निश्चित विनिमय दर लागू होते है, एक अर्थव्यवस्था की तुलना में दूसरी अर्थव्यवस्था में मुद्रास्फीति पहली अर्थव्यवस्था के निर्यात को अधिक मँहगा बना देती है और इसका असर व्यापार के संतुलन पर पड़ता है। अनिश्चित मुद्रास्फीति की वजह से मुद्रा विनिमय कीकतों में वृद्धि अस्थिरता से वयापार पर नकारात्मक प्रभाव भी पड़ सकता है। मुद्रास्फीति के तीन मुख्य प्रकार हैं, रावर्ट जे. गॉर्डन इन्हें 'त्रिकोणीय प्रारूप'' नाम दिया हैः–

(अ) मुद्रास्फीति की मांग निजी और सरकारी खर्चों में बढ़ोत्तरी की वज़ह से कुल मांग में बढ़ोत्तरी के कारण हुयी है। मांग मुद्रास्फीति आर्थिक विकास की उच्च दर के लिये रचनात्मक है, क्योंकि अतिरिक्त मांग और अनुकूल बाजार की स्थितियाँ निवेश और विस्तार को प्रोत्साहित करती हैं।

(ब) मूल्य–बढ़ोत्तरी मुद्रास्फीति को ''आपूर्ति आघात मुद्रास्फीति'' कहा जाता है, यह कुल आपूर्ति (संभावित उत्पादन) में गिरावट के कारण होती है। यह स्थिति प्राकृतिक आपदाओं, या उत्पादन की कीमतों में वृद्धि के कारण भी होती है। उदाहरण के लिये, तेज आपूर्ति में अचानक गिरावट, बढ़ती तेल की कीमतों में वृद्धि के कारण मूलय बढ़ोत्तरी मुद्रास्फीति हो सकती है। जिन उत्पादकों के लिये तेल उनकी लागतों का एक हिस्सा है, तब यह बढ़ती कीमतों के रूप में उपभोक्ताओं को हस्तांतरित हो सकता है। एक और उदाहरण अप्रत्याशित रूप से उच्च बीमा के नुकसान से उत्पन्न होता है यह नुकसान या तो वैध (आपदा) या धोखाधड़ी (जो मंदी के दौर में विशेष रूप से प्रचलित हो सकता है) के कारण होता है।

(स) अन्तर्निहित मुद्रास्फीति अनुकूली अपेक्षाओं से प्रेरित होती है और प्रायः मूल्य/मजदूरी चक्र से जुड़ी होती हैं। इसमें श्रमिकों को अपनी मदजूरी की

कीमतों (मुद्रा स्फीति की दर से ऊपर) के साथ रखने की कोशिश करनी पड़ती है और कंपनियाँ इन उच्च श्रम लागतों को अपने उपभोक्ताओं को उच्च मूल्य के रूप में दे रही हैं, एक दुष्चक्र के लिये अग्रणी है। अन्तर्निहित मुद्रास्फीति अतीत की घटनाओं को प्रतिबिंबित करती है और इसलिये उत्तरजीवी मुद्रास्फीति के रूप में देखा जा सकता है। मांग का सिद्धान्त बताता है कि जब भी अर्थव्यवस्था की माँग बढ़ती है, तब अर्थव्यवस्था की क्षमता के मुकाबले मुद्रास्फीति की दर बढ़ जाती है (इसका संभावित उत्पादन) अतः कोई भी कारक जो कुल मांग को बढ़ाता है, वह मुद्रास्फीति का कारण बन सकती है। तथापित, लंबी अवधि में, अर्थव्यवस्था की वास्तविक विकास दर की तुलना में संचालन में धन की मात्रा में तेजी से बढ़कर कुल मांग उत्पादक क्षमता के ऊपर रखी जा सकती है।

मुद्रास्फीति को मापने में मुद्दे :—

किसी अर्थव्यवस्था में मुद्रास्फीति को मापने के लिये वस्तुओं और सेवाओं के सामान्य सेट पर मामूली कीमतों में अंतर को बदलने के लिये, और उन कीमतों में बदलाव को अलग करने का उद्देश्य होता है, जो कि मात्रा, गुणवत्ता या प्रदर्शन जैसे मूल्य में परिवर्तन से उत्पन्न होता है। उदाहरण के लिये, यदि 10 पैसिलों की कीमत एक वर्ष के दौरान 90 से 100 रूपये तक बदलती है गुणवत्ता में कोई परिवर्तन नहीं होता है तो यह मूल्य अंतर मुद्रास्फीति को दर्शाता है। हालांकि, एकल मूल्य परिवर्तन, समग्र अर्थव्यवस्था में सामान्य मुद्रास्फीति का प्रतिनिधित्व नहींकरेगा। समग्र मुद्रास्फीति को मापने के लिये, प्रतिनिधि वस्तुओं और सेवाओं की बड़ी ''टोकरी'' के मूल्य में परिवर्तन को मापा जाता है। सूचकांक का यही उद्देश्य है, जो कि बहुत सी वस्तुओं और सेवाओं की ''टोकरी'' संयुक्त मूल्य है। टोकरी में वस्तुओं की भारित औसत कीमतों का योग संयुक्त मूल्य है। एक भारित मूल्य की गणना एक मद की इकाई मूल्य उन वस्तुओं की संख्या तक बढ़ाकर की जाती है, जो औसत उपभोक्ता की खरीददारियाँ है। वैयक्ति इकाई मूल्य के प्रभाव को मापने का आवश्यक साधन भारित कीमत है जो कि अर्थव्यवस्था की समग्र मुद्रास्फीति में परिवर्तन लाता है। उदाहरण के लिये, उपभोक्ता मूल्य सूचकांक, विशिष्ट वस्तुओं और सेवाओं पर विचित्र उपभोक्ताओं द्वारा किये जाने वाले समग्र व्यय के अनुपात को सुनिश्चित करने के लिये घरों द्वारा किये गये सर्वेक्षण में एकत्रित आंकड़ों का उपभोग करता है, और उसी अनुपात में उन वस्तुओं की औसत कीमतों पर जोर देता है। जो भारतीय औसत मूल्य समग्र कीमतों की संयुक्त गणना है। समय के साथ मूल्य परिवर्तन को बेहतर ढंग से संबोधित करने के लिये, अनुक्रमणका आमतौर पर आधार वर्ष मूल्य चुनते हैं और इसे 100 का मान प्रदान करते है। बाद के वर्षों में सूचकांक की कीमतें तब आधार वर्ष की कीमत के संबंध में व्यक्त की जाती हैं। जब विभिन्न काल चक्रों के लिये मुद्रास्फीति मानकों की तुलना की जा रही हो तो आधार प्रभाव को भी ध्यान में रखा जाना चाहिये । मुद्रास्फीति उपाय अक्सर समय समय पर परिवर्तित होते रहते हैं, या तो टोकरी में वस्तुओं के संबंधित भार के लिये या वर्तमान में वस्तुओं और सेवाओं की तुलना अतीत से करने पर यह उपाय संशोधित होते रहते है। समय के साथ, सामान्य उपभोक्ताओं द्वारा खरीदे गये सामानों और सेवाओं में परिवर्तनों को प्रतिबिंबित करने के लिये चयनित वस्तुओं और सेवाओं के प्रकार के लिये समायोजन किया जाता है। नये उत्पाद बाजार में आ सकते हैं, पुराने उत्पाद

गायब हो सकते हैं, विद्यमान उत्पादों की गुणवत्ता में परिवर्तन हो सकता है। उपभोक्ताओं की वरीयता बदल सकती है। वस्तुओं और सेवाओं के दोनों प्रकार जो ''टोकरी'' में सम्मिलित है और मुद्रास्फीति के उपायों में इस्तेमाल किये जाने वाले भारित मूल्य समय के साथ बदलते हैं ताकि बदलते बाजार के साथ तालमेल बनाए रख सकतें। मुद्रास्फीति के सदस्यों को आमतौर पर अपेक्षित चक्रीय लागत की सीमाओं को अलग करने के लिये समायोजित किया जाता है। उदाहरण स्वरूप, ठंड के महीनों में ग्रहताप लागतों के बढ़ने की संभावना रहती है, और मौसमी समायोजन अक्सर प्रयोग में लाया जाता है जब मुद्रास्फीति को मापने के लिये ऊर्जा या ईंधन की मांग में चक्रीय स्पाइक की भरपाई की जाती है। मुद्रास्फीति के सदस्यों को औसत या अन्यथा सांख्यिकीय तकनीकों के अधीन किया जा सकता है ताकि व्यक्तिगत मूल्यों की सांख्यिकीय कोलाहल और अस्थिरता को दूर किया जा सके। मुद्रास्फीति को ध्यान में रखते हुये, आर्थिक संस्थान केवल कुछ प्रकार की कीमतों या विशेष सूचकांकों पर ध्यान केन्द्रित कर सकते हैं, जैसे मुख्य मुद्रास्फीति सूचकांक, जो केन्द्रीय बैंको द्वारा मौद्रिक नीति तैयार करने के लिये उपयोग किया जाता है। अधिकांश मुद्रास्फीति सूचकांक चयनित मूल्य परिवर्तनों की भारित औसत से गणना की जाती है। यह अनिवार्य रूप से विरूपण का परिचय देता है और वास्तविक मुद्रास्फीति दर क्या है, इस बारे में वैध विवादों का कारण बन सकता है। गणना में उपलब्ध परिवर्तित कीमतों और इसके बाद औसत मूल्यों को सम्मिलित करके इस समस्या से उबरा जा सकता है।

16.5 बेरोजगारी

अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन द्वारा परिभाषित बेरोजगारी (या बिल नौकरी के) उत्पन्न होती है जब व्यक्ति बिना काम (नौकरी) के रहते हैं और उन्होंने पिछले चार हफ्तों के भीतर सक्रिय रूप से काम की मांग की है। बेरोजगारी की दर इसकी व्यापकता का एक उपाय है और यह बेरोजगार व्यक्तियों की संख्या को विभाजित करके व्यक्तियों के वर्तमान श्रम बल के प्रतिशत के रूप में गणना की जाती है। ये सिद्वान्त श्रम बाजार पर बाहर से लगाये गये हस्तक्षेपों के खिलाफ तर्क देते हैं, जैसे कि निस्तारण, न्यूनतम, मजदूरी कानून, कर और अन्य नियम जो कि श्रमिकों की भर्ती को हतोत्साहित करते है। कीनिसियन अर्थशास्त्रीय बेरोजगारी की चक्रीय प्रकृति पर जोर देते हैं और हस्तक्षेप का अनुसमर्थन करते हैं, यह दावा करता है कि मंदी के दौरान बेरोजगारी कम हो जायेगी । यह सिद्वान्त आवर्ती आपूर्ति की दहशत पर केन्द्रित है जो अचानक वस्तुओं और सेवाओं की कुल मांग को कम करता है और मजदूरों की मांग भी कम कर देता है। कीनीशियन प्रारूप मजदूरों की मांग में वृद्धि हेतु तैयार, सरकारी हस्तक्षेप का समर्थन करता है, इसमें वित्तीय प्रोत्साहन, सार्वजनिक रूप से वित्त पोषित, नौकरी और विस्तारित मौद्रिक नीतियाँ सम्मिलित है। कीन्स से अर्द्धशताब्दी पहले आये जौर्जिस्ट ने भी चक्रीय प्रकृति पर ही ध्यान दिया बल्कि भूमि में परिकल्पना की भूमिका पर ध्यान केन्द्रित किया जो आर्थिक किराये को दबा देती है। अर्थशास्त्रीय गतिविधि किराये नामक बुलबुले में निरंतर नहीं रखी जा सकती हैं क्योंकि अधिकतर किराया या तो मजदूरी से (मजदूरी के रूप में) या ब्याज (पूंजी के लाभ) से चुकाया जाता है। एक बार जब अटकलों की व्यवस्था से बाहर निकल जाते हैं

तो भूमि अटकलों का चक्र शुरू होता है। अतः जॉर्ज के भूमि निरंतरता को बंद करने के लिये भूमि कीमत के कर की और श्रम ओर पूंजी के कराधान को कम करने की वकालत की। जॉर्ज ने भूमि राष्ट्रीयकरण और मार्क्सवादी सिद्धान्त का विरोध किया। मार्क्सवाद ने स्वामी और मजदूरों के मध्य संबंधों पर ध्यान केन्द्रित किया, जिनके विषय में यक दावा करते हैं कि नौकरियों और उच्च मजदूरी के लिये एक निरंतर संघर्ष में मालिकों के बीच एक–दूसरे के खिलाफ गहरी खाई है। इस संघर्ष द्वारा उत्पादित बेरोजगारी को मालिकों के लिये मजदूरी की लागत को कम करके व्यवस्था को लाभ पहुंचाने वाला कहा जाता है। मार्क्सवादियों के लिये बेरोजगारी के कारण और समाधान के लिये पूंजीवाद को समाप्त करने की आवश्यकता है और समाजवाद या साम्यवाद की ओर स्थानांतरित होने की आवश्यकता है।

बेरोजगारी के इन तीन विशिष्ट सिद्धान्तों के अतिरिक्त बेरोजगारी की कुछ और श्रेणियां हैं जो कि आर्थिक प्रणाली क भीतर बेरोजगारी के प्रभाव को और अधिक सटीक रूप से प्रदर्शित करने के लिये उपयोग किया जाता है। बेरोजगारी के मुख्य प्रकारों में संरचनात्मक बेरोजगारी सम्मिलित हैं जो कि अर्थव्यवस्था में संरचनात्मक समस्याओं पर केन्द्रित होता है और श्रम बाजार में अन्तर्निहित अक्षमताओं को उजागर करता है, आवश्यकत कौशल से परिपूर्ण मजदूरों की माँग और आपूर्ति के मध्य तारतम्य का न होना भी सम्मिलित है। हानिकारक तकनीकों और वैश्वीकरण से संबंधित कारणों एवं निदानों पर संरचनात्मक व तर्क अधिक जोर देते हैं। प्रत्येक वयक्ति के स्वयं के कार्य के मूल्यांकन के आधार पर काम करने के लिये स्वैच्छिक निर्णयों पर अपमानजनक अनाचार का ध्यान केन्द्रित करता है और यह कि वर्तमान मजदूरी दर के साथ–साथ तुलनात्मक नौकरी खोजने के लिये समय–समय पर प्रयास करने की आवश्यकता है। व्यावहारिक अर्थशास्त्री निर्णय लेने में व्यक्तिगत पूर्वाग्रहों को उच्चता देते हैं और अक्सर अस्थिर मजदूरी और दक्षता मजदूरी से संबंधित समस्याओं और समाधानों को सम्मिलित करते हैं।

बेरोजगारी की मापः– राष्ट्रीय सांख्यिकीय एजेन्सियाँ बहुत सारे मार्गों के द्वारा बेरोजगारी की माप करते हैं। यह अन्तर बेरोजगारी आंकड़ों की अन्तर्राष्ट्रीय तुलना की वैधता को सीमित कर सकते हैं। कुछ हद तक इन अंतरों के बावजूद राष्ट्रीय स्तर की एजेंसिया अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन द्वारा दी गयी बेरोजगारी की परिभाषा को तेजी से अपना रहे है। अन्तर्राष्ट्रीय तुलना की सुविधा के लिये, कुछ संगठन जैसे ओ.ई.सी.डी. यूरोस्टेट और अन्तर्राष्ट्रीय श्रम तुलना कार्यक्रम, देशभर में तुलनात्मकता के लिये बेरोजगारी के आंकड़ों के साथ समायोजन करते है। यद्यपि बहुत से लोग बेरोजगार व्यक्तियों की परवाह करते हैं, अर्थशास्त्री बेरोजगारी दर पर केन्द्रित होते है। यह आबादी के सापेक्ष श्रम बल में आबादी में बढ़ोत्तरी के कारण नियोजित लोगों की संख्या में सामान्य वृद्धि के लिये सुधार करता है। बेरोजगारी दर को प्रतिशत के रूप में दिखाया जाता है और इसकी गणना इस प्रकार की जाती हैः–

$$\text{बेरोजगारी दर} = \frac{\text{बेरोजगार मजदूर}}{\text{कुल श्रम बल}}$$

जैसा कि अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन द्वारा परिभाषित किया गया, ''बेरोजगार श्रमिक'' वे हैं जो वर्तमान में काम नहीं कर रहे हैं, लेकिन वे काम करने के लिये तैयार हैं और काम करने में सक्षम कहैं, वर्तमान में काम करने योग्य हैं, और सक्रिय रूप से कार्य करने के लिये खोज की है। जो व्यक्ति सक्रिय रूप से नौकरी की तालश कर रहे हैं, उन्हें नौकरी के साक्षात्कार हेतु नियोक्ता के संपर्क में रहना होगा, नौकरी देने वाली एजेन्सियों से संपर्क साधना होगा, अपना बायोडाटा भेजना होगा, आवेदन पत्र जमा करने होंगे, विज्ञापनों पर प्रतिक्रिया देनी होंगी, और प्रारंभ के चार सप्ताहों में नौकरी खोजने के अन्य साधनों का भी उपयोग करना चाहिये । विज्ञापनों पर केवल नज़र डालना और उस पर प्रतिक्रिया सवरूप आगे कोई कार्यवाही न करने को नौकरी खोजना नहीं माना जायेगा। चूंकि सभी बेरोजगारियाँ ''खुली'' नहीं हो सकती और सरकारी ऐजेन्सियों द्वारा गिनती भी नहीं की जा सकती, बेरोजगारी पर आधिकारिक आंकड़े सटीक नहीं हो सकते। अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन में बेरोजगारी दर की गणना के चार विभिन्न तरीकों की व्याख्या कीः–

(1) श्रम बल नमूना सर्वेक्षण बेरोजगारी दर की गणना का सबसे पसंदीदा तरीका है क्योंकि वे सबसे व्यापक परिणाम देते हैं और विभिन्न समूह श्रेणियों जैसे कि वंश और लिंग के आधार पर बेरोजगारी की गणना में सक्षम बनाता है। यह तरीका अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर सर्वाधिक तुलनीय है।

(2) अन्य तीन तरीकों में एक या अन्य तरीके से सूचनाओं के संयोजन के द्वारा अधीकारिक अनुमान निर्धारित है। श्रम सर्वेक्षण के पक्ष में इस पद्धति का उपयोग घट रहा है।

(3) बेरोजगारी लाभ जैसे सामाजिक बीमा आंकड़े कुल श्रमिक बल का प्रतिनिधित्व करने वाले व्यक्तियों की संख्या के आधार पर, बीमाकृत व्यक्त्यिों की संख्या जो लाभ प्राप्त कर रहे हैं, की गणना की जाती है। व्यक्ति के काम मिलने से पहले लाभों की समाप्ति के कारण इस तरीके की घोर आलोचना की गयी।

(4) रोजगार कार्यालय के आंकड़े बहुत कम प्रभावशील है क्योंकि यह कवेल उन बेरोजगार व्यक्यिों का मासिक आंकड़ा प्रस्तुत करता है जो रोजगार कार्यालय में आते है। इस तरीके से अन्तर्गत वह बेरोजगार आते हैं जो अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन के द्वारा दी गयी परिभाषा के अनुसार बेरोजगार नहीं है।

आर्थिक उछाल की प्रारंभिक अवस्था में, अक्सर बेरोजगारी बढ़ती जाती है। ऐसा इसलिये क्योंकि लोग श्रम बाजार में उन्नति के कारण इससे जुड़ जाते हैं, किन्तु जब उन्हें अपनी स्थिति प्राप्त नहीं हो जाती, उन्हें बेरोजगार ही माना जाता है। इसी तरह मंदी के दौर में, बेरोजगारी दर श्रम बल छोड़ने वाले व्यक्तियों द्वारा संचालित होती है तथ अन्यथा श्रम बल से छूट प्राप्त होती है, जैसे – स्वनियोजित ।

16.6 सारांश

कुल मिलाकर निश्चित समय और कीमत के स्तर पर अर्थव्यवस्था में वस्तुओं और सेवाओं के लिये कुल मांग ही समग्र मांग कहलाती है और वस्तुओं और सेवाओं की कुल आपूर्ति समग्र आपूर्ति कहलाती है जो कि एक निश्चित अवधि के दौरान बिक्री पर राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था योजना हेतु दृढ़ है। व्यवसाय प्रबंधन और वित्त जैसे परिवारों, फार्मे या सरकारों के लिये, अर्थव्यवस्था के कई

क्षेत्रों में निवेश सम्मिलित है। एक समय अन्तराल पर अर्थव्यवस्था में वस्तुओं आर सेवाओं की कीमतों के सामान्य स्तर में वृद्धि मुद्रास्फीति कहलाती है। बेरोजगारी तब उत्पन्न होती है जब व्यक्तियों के पास नौकरी नहीं होती है और उन्होंने पिछले चार सप्ताहों के दौरान काम की खोज की है।

16.7 शब्दावली

प्रभावी मांगः से तात्पर्य है रोजगार के बहुत से स्तरों पर वस्तुओं और सेवाओं की पूर्व मांग का होना ।

मुद्रास्फीतिः से तात्पर्य समयावधि में एक अर्थव्यवस्था में वस्तुओं और सेवाओं की कीमतों के सामान्य स्तर में होने वाली ।

बेरोजगारीः जब व्यक्ति बिना काम (नौकरी) के रहते हैं ।

16.8 बोध प्रश्न

(अ) रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिएः—

1. प्रभावी मांग में खपत की माँग और ——————— शामिल है।
2 कुल मांग वक्र शुरूआत में तेजी से बढ़ता है, लेकिन ————— वृद्धि नहीं करती है।
3. मुद्रास्फीति का प्रभाव —————————— लोगों के बीच वितरित किया जाता है।
4 अधिकांश मुद्रास्फीति सूचकांक की ————— से गणना की जाती है।
5 मालिकों और ————— के बीच संबंधों के आस—पास मार्क्सवाद केन्द्रित है।

(ब) सत्य या असत्य :—

1. वास्तविक अभ्यास में कुल आपूर्ति वक्र ढलान बायें से ऊपर की और बढ़ते है।
2 समय की अवधि में व्यय के रूप में निश्चित निवेश पूंजी है।
3 एक लंबे समय से चलने वाली मुद्रास्फीति आर्थिक रूप से कम होने की दर से तेजी से धन आपूर्ति की वजह से होती है।
4 अर्थशास्त्रीयों के विचार में, बेरोजगारी की दर मापने का सटीक प्राचल (पैरामीटर) बेरोजगार लोगों की संख्या की अपेक्षा बेरोजगारों की मात्रा मापना हैं

16.9 बोध प्रश्नों के उत्तर

(अ) (1) निवेश मांग (2) एक ही गति से (3) समान रुप से (4) भारित औसत (5) श्रमिकों

(ब) (1) गलत, (2) गलत (3) सही (4) सही

16.10 स्वपरख प्रश्न

1. समग्र मांग और समग्र आपूर्ति की व्याख्या कीजिए।
2 विनियोग (निवेश) से आप क्या समझते हैं ? व्याख्या कीजिए।
3 बेरोजगारी को परिभाषित कीजिए। इसके अवगुणों की चर्चा कीजिए।
4 मुद्रास्फीति के सकारात्मक और नकारात्मक प्रभावों की चर्चा कीजिए।
5 उन मार्गों की चर्चा कीजिए जिनके माध्यम से बेरोजगारी को मापा जा सकता है।

16.11 संदर्भित पुस्तकें

1. Dillard Dudley – The Economic of John Maynere Keynes, 1960.
2. Edward Shaprio, Macroeconomic Analysis (1960).
3. Klein, Lawrence, R., The Keynesian Revolution, (1956).
4. Musgrave, R.A., The Theory of Public Finance, (1959).
5. Norman, P. Keiser, Macro-Economics, (1960).
6. Robinson, Mrs. Joan, Introduction to the Theory of Employment, (1960).
7. Jhingan, M.L. Advanced Economic Theory, Vrinda Publications (P) Ltd., New Delhi.

इकाई 17 राष्ट्रीय आय

इकाई की रूपरेखा

17.1 प्रस्तावना

17.2 परिभाषा

17.3 राष्ट्रीय आय की रूपरेखा

17.3.1 बाजार मूल्य पर संकल राष्ट्रीय उत्पाद (GDP MP)

17.3.2 बाजार मूल्य पर सकल राष्ट्रीय उत्पाद (GNP MP)

17.3.3 बाजार मूल्य पर शुद्ध राष्ट्रीय उत्पाद (NNPmp)

17.3.4 बाजार मूल्य शुद्ध घरेलू उत्पादन (NDP_{MP})

17.3.5 शुद्ध घरेलू आय या साधन लागत पर शुद्ध घरेलू उत्पाद (NDP_{FC})

17.3.6 साधन लागत पर सकल घरेलू उत्पाद या सकल घरेलू आय (GDP_{FC})

17.3.7 साधन लागत पर शुद्ध राष्ट्रीय उत्पाद या राष्ट्रीय आय (NNP_{FC})

17.3.8 साधन लागत पर सकल राष्ट्रीय उत्पाद या सकल राष्ट्रीय आय (GNP_{FC})

17.3.9 निजी आय

17.3.10 व्यक्तिगत आय

17.3.11 व्यक्तिगत प्रयोज्य आय

17.4 राष्ट्रीय आय के विभिन्न तत्वों के मध्य संबंध

17.5 राष्ट्रीय आय का मापन

17.5.1 आय विधि

17.5.2 उत्पाद विधियाँ या मूल्यवर्द्धन विधि

17.5.3 व्यय विधि

17.6 राष्ट्रीय आय की गणना में कठिनाइयाँ

17.7 प्रति व्यक्ति आय या उत्पादन

17.8 साराँश

17.9 शब्दावली

17.10 बोध प्रश्न

17.11 बोध प्रश्नों के उत्तर

17.12 स्वपरख प्रश्न

11.13 सन्दर्भ पुस्तकें

उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप इस योग्य हो सकेंगे कि –

- राष्ट्रीय आय के अर्थं की व्याख्या कर सकें।
- राष्ट्रीय आय के ढाँचा की व्याख्या कर सकें।
- राष्ट्रीय आय की गणना कर सकें।

17.1 प्रस्तावना

किसी राष्ट्र की आर्थिक गतिविधियों की माप का आधार राष्ट्रीय आय होती हैं। यह किसी राष्ट्र की आर्थिक प्रगति के मूल संकेतकों में से एक है। अन्य बातोंके समान रहने पर, उच्च राष्ट्रीय आय से आशय अर्थव्यवस्था के घरेलू उपभोक्ताओं तथा व्यक्तियों के जीवन स्तर में वृद्धि तथा आर्थिक गतिविधियों के उच्च स्तर पर होने से है।

17.2 परिभाषा

किसी वर्ष के दौरान किसी राष्ट्र में उत्पादन के साधनो–श्रम, पूँजी, भूमि तथा साहसी के मालिकों द्वारा अर्जित आय–मजदूरी, ब्याज, किराया तथा लाभ के योग को राष्ट्रीय आय कहते हैं। अतः किसी अर्थव्यवसथा की आर्थिक गतिविधियों के स्तर के मापन की दो भिन्न विधियाँ है– राष्ट्रीय आय तथा राष्ट्रीय उत्पाद। राष्ट्रीय आय, उत्पादन के साधनों के नियोक्ताओं के द्वारा आर्जित कुल आयों का मापन करती है जबकि राष्ट्रीय उत्पाद, उत्पादन के साधनों के नियोक्ताओं द्वारा इन साधनों के उपयोग से उत्पादित वस्तुओं तथा सेवाओं के बाजार मूल्य की गणना की जाती है।

17.3 राष्ट्रीय आय की रूपरेखा

यह भाग राष्ट्रीय उत्पाद के ढाँचा तथा मापन पर केन्द्रित है परन्तु विषय सामग्री को ठीक प्रकार से समझने के लिये निम्न अवधाराओं की समझ आवश्यक हैः–

17.3.1 बाजार मूल्य पर संकल राष्ट्रीय उत्पाद (GDP MP)

किसी राष्ट्र में उपलब्ध संसाधनों द्वारा सम्पूर्ण वर्ष के दौरान उत्पादित अन्तिम वस्तुओं तथा सेवाओं के मूल्य को सकल घरेलू उत्पाद कहते हैं। अन्य शब्दों में बाजार मूल्य पर सकल घरेलू उत्पाद से आशय एक वित्तीय वर्ष के दौरान देश की घरेलू सेवाओं के बाजार मूल्य से है। इसके अन्तर्गत देश के निवासियों तथा अनिवासियों द्वारा देश की घरेलू सीमाओं के अन्तर्गत उत्पादित, वस्तुओं व सेवाओं का बाजार मूल्य आता है।

सकल घरेलू उत्पाद के मूल्य की गणना करने के लिये उतपादित वस्तुओं व सेवाओं की मात्रा की उसके कीमत से गुणा करते हैं–

$$GDP = PxQ$$

GDP = सकल राष्ट्रीय आय

P = बाजार कीमत

Q = दिये गये वर्ष में उत्पादित वस्तुओं व सेवाओं की मात्रा

यह ध्यातव्य है कि सकल घरेलू आय की गणना में अन्तिम वस्तुओं व सेवाओं के बाजार मूल्य को लिया जाता है, मध्यवर्ती वस्तुओं तथा सेवाओं की नहीं, क्योंकि मध्यवर्ती वस्तुओं व सेवाओं का मूल्य, अन्तिम वस्तुओं व सेवाओं के मूल्य में दर्शित होता है।

17.3.2 बाजार मूल्य पर सकल राष्ट्रीय उत्पाद (GNP MP)

बाजार मूल्य पर सकल राष्ट्रीय उत्पाद से आशय एक देश के सामान्य निवासियों द्वारा उत्पादित अन्तिम वस्तुओं व सेवाओं के बाजार मूल्य से है, चाहे ऐसा उत्पादन देश की सीमाओं में हो या विदेश में हो।

यह बाजार, मूल्य पर सकल घरेलू उत्पाद के सभी तत्वों के साथ विदेश में शुद्ध साधन आय को सम्मिलित करता है। देश के निवासियों द्वारा विदेश में अर्जित साधन आय तथा देश को सीमाओं के अन्तर्गत अनिवासियों द्वारा दी गयी साधन सेवाओं के लिये किये गये भुगतान के अन्तर को शुद्ध साधन आय कहते हैं।

बाजार मूल्य पर सकल राष्ट्रीय उत्पाद = बाजार मूल्य पर सकल घरेलू उत्पाद + विदेश से शुद्ध साधन आय।

शुद्ध साधन आय धनात्मक तथा ऋणात्मक दोनों हो सकती है। यदि राष्ट्रीय उत्पाद, घरेलू उत्पाद से अधिक है, तो यह धनात्मक, तथा यदि राष्ट्रीय उत्पाद, घरेलू उत्पाद से कम है तो यह ऋणात्मक होगा।

17.3.3 बाजार मूल्य पर शुद्ध राष्ट्रीय उत्पाद (NNPmp) :

बाजार मूल्य पर शुद्ध राष्ट्रीय उत्पाद देश की घरेलू सीमा मे सामान्य निवासियों द्वारा उत्पादित नयी अंतिम वस्तुओं तथा सेवाओं के मूल्य तथा विदेश में उस वित्तीय वर्ष में पूँजीगत वस्तुओं के प्रतिस्थापन के बाद भी गणना करता है। कुछ पूँजीगत वस्तुओं को उत्पादन प्रक्रिया से प्राकृतिक क्षय, दुघटना, या नयी तकनीक आने के कारण हटा लिया जाता है। इन पूँजीगत वसतुओं के प्रतिस्थापन की लागत को पूँजी उपभोग भत्ता या ह्रास कहते हैं।

17.3.4 बाजार मूल्य शुद्ध घरेलू उत्पादन (NDP_{MP})

बाजार मूल्य पर शुद्ध घरेलू उत्पाद, एक वित्तीय वर्ष में देश की घरेलू सीमा में उत्पादित अन्तिम वस्तुओं तथा सेवाओं के बाजार मूल्य तथा स्थायी पूँजी के उपभोग का अन्तर है।

बाजार मूल्य पर शुद्ध घरेलू उत्पाद (NDP_{MP}) = उत्पादित अन्तिम वस्तुओं तथा सेवाओं का वर्तमान मूल्य – ह्रास या पूँजी उपभोग।

17.3.5 शुद्ध घरेलू आय या साधन लागत पर शुद्ध घरेलू उत्पाद (NDP_{FC})

उत्पादन के साधनों द्वारा उत्पादन प्रक्रिया में उनके योगदान के लिये किये गये भुगतान को साधन लगात तथा उत्पादन क परिणाम को साधन लागत पर उत्पाद कहते हैं। साधन लागत पर शुद्ध घरेलू उत्पाद को शुद्ध घरेलू आय कहते हैं। शुद्ध घरेलू, किसी वर्ष में अर्थव्यवस्था में अन्तिम वस्तुओं तथा सेवाओं में कुल उत्पादन करने के लिये, उत्पादन के कुल साधनों के आपूर्तिकर्ताओं द्वारा अर्जित आय की गणना की जाती है।

अतः साधन लागत पर शुद्ध घरेलू उत्पाद या शुद्ध घरेलू आय में देश की घरेलू सीमाओं में मजदूरी या कर्मचारियों को क्षतिपूर्ति, किराया, ब्याज, लाभ या संचालनात्मक आधिक्य तथा मिश्रित आय को शामिल करते हैं।

17.3.6 साधन लागत पर सकल घरेलू उत्पाद या सकल घरेलू आय (GDP_{FC}) :

साधन लागत पर सकल घरेलू उत्पाद या सकल घरेलू आय एक वित्तीय वर्ष में उत्पादन के साधनों द्वारा अर्जित मिश्रत आय कर्मचारियां की क्षतिपूर्ति संचालन से लाभ तथा हास्य या स्थायी पूँजी के उपभोग का योग है।

पीटरसन के अनुसार ''साधन लागत पर सकल घरेलू उत्पाद एक वित्तीय वर्ष में देश की घरेलू सीमाओं में सामान्य निवासियों द्वारा अर्जित

मजदूरी, किराया, ब्याज व लाभ तथा पूँजी के उपभोग का योग है।''

साधन लागत पर सकल घरेलू उत्पाद = मजदूरी + किराया + ब्याज + लाभ + पूँजी का उपभोग।

शुद्ध राष्ट्रीय उत्पाद (NNP) :

NNP = GNP - Depreciation

शुद्ध राष्ट्रीय उत्पाद = सकल राष्ट्रीय उत्पाद – ह्रास

बाजार मूल्य पर शुद्ध राष्ट्रीय उत्पाद (NNP_{MP}) : बाजार मूल्यों पर शुद्ध राष्ट्रीय उत्पाद से आशय देश में एक वर्ष के दौरान उत्पादित अंतिम वस्तुओं तथा सेवाओं के मूल्यांकित बाजार मूल्य से है। बाजार मूल्यों पर सकल राष्ट्रीय उत्पाद में से ह्रास को घटाने पर बाजार मूल्य पर शुद्ध राष्ट्रीय उत्पाद प्राप्त होता है।

$NNP_{MP} = GNP_{MP}$ - Depreciation

17.3.7 साधन लागत पर शुद्ध राष्ट्रीय उत्पाद या राष्ट्रीय आय (NNP_{FC}) :

उत्पाद के साधनों द्वारा अर्जित ब्याज, मजदूरी, किराया व लाभ तथा विदेश से अर्जित शुद्ध साधन आय के योग को साधन लागत पर शुद्ध राष्ट्रीय उत्पाद कहते हैं। इसे राष्ट्रीय आय भी कहा जाता है। अन्य शब्दों में साधन लागत पर शुद्ध घरेलू उत्पाद तथा विदेश से शुद्ध साधन आय के योग को साधन लागत पर शुद्ध राष्ट्रीय उत्पाद कहते हैं।

शुद्ध राष्ट्रीय आय या साधन लागत पर शुद्ध राष्ट्रीय उत्पाद, साधन लागत पर शुद्ध घरेलू उत्पाद (कर्मचारियों की क्षतिपूर्ति संचालन से आधिक्य + मिश्रित आय) तथा विदेश से शुद्ध साधन आय के कुल योग के बराबर होता है।

साधन लागत पर शुद्ध राष्ट्रीय उत्पाद या राष्ट्रीय आय = साधन लागत पर शुद्ध घरेलू उत्पाद (किराया + मजदूरी + ब्याज + लाभ) + विदेश से शुद्ध साधन आय।

17.3.8 साधन लागत पर सकल राष्ट्रीय उत्पाद या सकल राष्ट्रीय आय (GNP_{FC}) :

साधन लागत पर सकल राष्ट्रीय उत्पाद को सकल राष्ट्रीय आय भी कहते हैं। कर्मचारियों को क्षतिपूर्ति, संचालन से आधिक्य, मिश्रित आय, द्वारा तथा विदेश से शुद्ध साधन आय के योग को साधन लागत पर सकल राष्ट्रीय उत्पाद कहलाता है। साधन लागत पर सकल राष्ट्रीय उत्पाद या सकल राष्ट्रीय आय = मजदूरी + किराया + ब्याज+ ह्रास + विदेशी से शुद्ध साधन आय।

निजी क्षेत्र द्वारा उपार्जित शुद्ध घरेलू उत्पाद से साधन आय = साधन लागत पर शुद्ध घरेलू उत्पाद – सरकार द्वारा अर्जित उद्यमिता तथा सम्पत्ति से आय – गैर विभागीय संगठन की बचत।

17.3.9 निजी आय :

निजी व्यक्तियों द्वारा किसी श्रोत से अर्जित आय, निजी आय कहलाती है। इसे, साधन लागत पर शुद्ध राष्ट्रीय उत्पाद में सामयोजन, वृद्धि जेसे पेन्शन, बेरोजगारी भत्ते, सामाजिक सुरक्षा लाभ, दान, उपहार तथा घुड़दौड़ से लाभ को विदेश से भेजना व लोक ऋण पर ब्याज द्वारा अज्रित किया जाता

है। कटौती में सरकारी विभागों की आय, लोक प्रतिष्ठानों का आधिक्य तथा सामाजिक सुरक्षा योजना जैसे प्राविडेण्ट फण्ड, जीवन बीमा आदि में कर्मचारी का योगदान सम्मिलित करते हैं।

अतः निजी आय = राष्ट्रीय आय (NNP_{FC}) हस्तान्तरण भुगतान + लोक ऋण पर ब्याज 7 सामाजिक सुरक्षा – लोक उपक्रमों में लाभ तथा आधिक्य।

17.3.10 व्यक्तिगत आय :

सभी श्रोतों से घरेलू व्यक्तियों द्वारा प्राप्त सभी वर्तमान आयों के योग की व्यक्तिगत आय कहते हैं।

अतः व्यक्तिगत आय = राष्ट्रीय आय – सामाजिक सुरक्षा योजना में अंशदान – निगम कर – निगम के रोके गये लाभ + हस्तान्तरण भुगतान + लोक ऋण पर ब्याज।

17.3.11 व्यक्तिगत प्रयोज्य आयः

प्रयोज्य आय परिवारों की वह कुल आय है जिसे वह व्यक्तिगत कर को घटाने के बाद घर खर्च या बचाने के लिए उपयोग कर सकते हैं । व्यक्तिगत आय वह निजी आय है जो कर और
सरकारी प्रशासनिक विभागों की विविध प्राप्तियां (शुल्क और जुर्माना) को घटाने के बाद की राशि है । यह वह राशि है जिसे एक परिवार खर्च कर सकता हैं या जैसे चाहे उसका उपयोग कर सकता हैं।

प्रयोज्य आय परिवारों की क्रय शक्ति का संकेत है। व्यक्तिगत प्रयोज्य आय का या तो उपभोग किया जाता है या बचाया जाता है, इसलिए,

व्यक्तिगत प्रयोज्य आय = उपभोग + बचत

इस प्रकार,

प्रयोज्य आय = व्यक्तिगत आय – प्रत्यक्ष कर (आय कर और संपत्ति कर)– सरकार की विविध प्राप्तियां प्रशासनिक विभाग (व्यक्तियों द्वारा दिए गए शुल्क और जुर्माना)

17.4 राष्ट्रीय आय के विभिन्न तत्वों के मध्य संबंध

= घरेलू सीमा के अन्दर उत्पादित अन्तिम वस्तुओं व सेवाओं का बाजार मूल्य

\+ विदेश से शुद्ध साधन आय

= **2 बाजार मूल्य पर सकल राष्ट्रीय उत्पाद**

– स्थायी पूँजी पर ह्रास या उपभोग

= **3 बाजार मूल्य पर शुद्ध राष्ट्रीय उत्पाद**

– विदेश से शुद्ध साधन आय

= **4 बाजार मूल्य पर शुद्ध घरेलू उत्पाद**

– अप्रत्यक्ष कर

\+ अनुदान

= **5 घरेलूआय या साधन लागत पर शुद्ध घरेलू उत्पादन**

\+ ह्रास

= **6 साधन लागत पर सकल घरेलू उत्पाद**

\+ विदेश से शुद्ध साधन आय

= **7 सकल राष्ट्रीय आय या साधन लागत पर सकल राष्ट्रीय उत्पाद**
– ह्रास
= **8 राष्ट्रीय आय या साधन लागत पर शुद्ध राष्ट्रीय उत्पाद**
– सरकार की सम्पत्ति तथा उद्यमिता आय
– गैर विभागीय संगइन की बचत
– विदेश से शुद्ध साधन आय
= **9 निजी क्षेत्र द्वारा अर्जित शुद्ध घरेलू उत्पाद से साधन आय**
+ राष्ट्रीय ऋण पर ब्याज
+ सरकार से प्राप्त शुद्ध वर्तमान हसान्तरण भुगतान
+ विदेश से शुद्ध वर्तमान हसतान्तरण भुगतान
+ विदेश से शुद्ध साधन आय
= **10 निजी आय (Private Income)**
– निगम कर–निगमो की बचत (घटाइये विदेशी कम्पनी की रोकी गयी शुद्ध आय)
= **11 व्यक्तिगत आय (Individual Income)**
– प्रत्यक्ष कर–सरकार के प्रशासनिक विभागों की विविध प्राप्तियाँ जैसे– शुल्क, जुर्माना
= **12. व्यक्तिगत प्रयोज्य (Disposable) आय**
= घरेलू उपभोग + घरेलू बचत

व्यक्तिगत प्रयोज्य आय = उपभोग + बचत। अतः प्रयोजय आय = व्यक्तिगत आय – प्रत्यक्ष कर (आय कर व सम्पत्ति कर) – सरकार के प्रशासनिक विभागों की विविध प्राप्तियाँ (व्यक्तियों द्वारा भुगतान की गयी फीस तथा जुर्माना।

17.5 राष्ट्रीय आय का मापन

राष्ट्रीय उत्पाद की संरचना तथा मापन एक दूसरे से संबंधित अवधारणायें है। वास्तव में दोनों को एक–दूसरे से पृथक नही किया जा सकता है। राष्ट्रीय उत्पाद के मापन का आशय राष्ट्रीय उत्पाद की संरचना में वृद्धि से है। राष्ट्रीय उत्पाद की संरचना से आशय राष्ट्रीय उत्पाद निर्मित करने वाले तत्वों से है। यह राष्ट्रीय उत्पादन के मापन की विधि के चुनाव पर निर्भर करता है, उदाहरण के लिये, यदि उतपाद या मूल्य वर्द्धन विधि का प्रयोग करते हैं, तो राष्ट्रीय उत्पाद के ढाँचे आशय अर्थव्यवस्था के विभिन्न क्षेत्रों में उत्पादित वस्तुओं तथा सेवाओं के मूल्य या मूल्यवर्द्धन से होता है। इसका आशय अर्थव्यवस्था में उत्पादित वस्तुओं तथा सेवाओं के स्वभाव के अध्ययन से भी है। यदि राष्ट्रीय उत्पाद का अनुमान, आय विधि का प्रयोग करके किया गया है तो राष्ट्रीय उत्पाद की संरचना एक तरफ मजदूरी के सापेक्षिक महत्व को प्रदर्शित करेगी वही दूसरी ओर संचालन से आधिक्य (किराया, ब्याज तथा लाभ) को प्रकट करेगी। यदि व्यय विधि का प्रयोग किया जाता है तो राष्ट्रीय उत्पाद की संरचना अर्थव्यवस्था में विभिन्न प्रकार के व्ययों के महत्व को प्रकट करेगी, मुख्य रूप से उपभोग व्यय या विनियोग व्यय या राष्ट्रीय उत्पाद की संरचना यह प्रदर्शित करेगी कि इसका कितना भाग वर्तमान उपभोग के लिये उपयोग किया गया है तथा कितना भाग भविष्य के विनियोग के लिये रखा

गया है। अतः राष्ट्रीय उत्पाद की संरचना का अध्ययन, राष्ट्रीय उत्पाद के मापन को प्रदर्शित करता है। इस इकाई का केन्द्रीयकरण राष्ट्रीय आय के मापन पर है, राष्ट्रीय आय के अन्तर्गत आर्थिक गतिविधियो – उत्पादन, वितरण तथा व्यय के चक्रीय प्रवाह को सम्मिलित करते हैं। राष्ट्रीय आय के मापन के लिये संयुक्त राष्ट्र द्वारा तीन विधियाँ विकसित की गयी है जो निम्न है–

17.5.1 आय विधि :

आय विधि वह विधि है, जिसमें राष्ट्रीय आय की गणना, उत्पादन के मूलभूत साधनों जैसे– भूमि, भवन, पूँजी, साहस को मजदूरी, किराया, ब्याज तथा लाभ के रूप में किये भुगतान पक्ष से की जाती है। इन साधन आय को (क) मजदूरी तथा वेतन (ख) किराये से आय (ग) ब्याज (घ) निगमीय लाभ तथा (5) गैर निगमीय साहसी या स्वरोजगार आय या मिश्रित आय के रूप मे वर्गीकृत किया जा सकता है। अतः साधन आय के मुख्य आय निम्न है–

1. **वेतन तथा मजदूरी या कर्मचारियों को भुगतान** : अन्य के लिये कार्य करने के बदले में अर्जित आय को वेतन या मजदूरी कहलाती है। दूसरे के लिये कार्य करने के बदले में प्राप्त आय को 'कर्मचारियों को क्षतिपूर्ति' भी कहा जाता है। अतः कर्मचारियों की क्षतिपूर्ति मे (1) वेतन तथा मजदूरी, बोनस, कमीशन तथा महँगाई भत्ता (2) अन्य प्रकार का भुगतान जैसे मुक्त आवास, वेशभूषा तथा चिकित्सा सुविधा (3) सामाजिक सुरक्षा उपायों के लिये नियोक्ता का योगदान (4) अवकाश प्राप्त व्यक्तियों का पेन्शन।

2. **किराये की आय** : किराये की आय वह आय है जो भूमि या भवन के स्वामित्व के फलस्वरूप प्राप्त होती है। इसमें भूमि या भवन के स्वामी, अन्य व्यक्ति को निश्चित समय के लिय भूमि या भवन के उपयोग की अनुमति देसकर उससे आय प्राप्त करते हैं, जो किराया कहलाती है। कुछ सम्पत्तियों जैसे बस, ट्रैक्टर या मशीनरी को भी अन्य व्यक्तियों को निश्चित समय के लिये प्रयोग हेतु देकर आय प्राप्त करते हैं जिसे किराये की आय माना जाता है। यह ध्यान देने योग्य है कि स्वयं के रहने के मकान के किराये को आरोपित Imputed किराया माना जाता है तथा वह किराये से आय का भाग होती है। इसलिये राष्ट्रीय आय में जोड़ा जाता है। इसमें कापीराइट, पेटेन्ट तथा प्राकृतिक संसाधनों जैसे खदान के प्रयोग से प्राप्त रायल्टी को भी जोड़ा जाता है।

3. **ब्याज** : बैंक जमाओं, फर्मों को ऋण तथा विविध विनियोग पर अर्जित आय को ब्याज कहा जाता है। राष्ट्रीय आय में मात्र शुद्ध आय को सम्मिलित किया जाता हैं यह ऋण वित्तीय पूँजी के प्रयोग के बदले में व्यवसाय द्वारा भुगतान किये गये ब्याज तथा ब्याज भुगतान के मध्य अन्तर होता है। सरकार तथा उपभोकता द्वारा भुगतान किये गये ब्याज को राष्ट्रीय में नही जोड़ा जाता है क्योंकि इन्हें, वर्तमान आर्थिक उत्पादन के लिये भुगतान नही माना जाता है।

4. **लाभ** : उद्यमिता के लिये प्राप्त आय को लाभ कहा जाता है। साहसी या निगम अपने संगठन के सम्पूर्ण लाभ को वितरित नही करते हैं बल्कि वे लाभ के कुछ भाग को ही वितरित (लाभाँश) करते हैं तथा कुछ भाग कम्पनियो के निगमीय बचत के रूप में अवितरित रहता है, जबकि कुछ लाभ सरकार को निगम कर के रूप में जाता है।

5. **मिश्रित आय** : गैर निगमित प्रतिष्ठानों या स्वरोजगार द्वारा उत्पन्न लाभों जैसे चिकित्सक, इंजीनियर आदि के योग को मिश्रित आय कहा जाता है, मिश्रित आय में कार्य से आय के साथ–साथ सम्पत्ति तथा उद्यमिता से आय को सम्मिलित किया जाता है। मिश्रित आय उन व्यक्तियों द्वारा उपार्जित की जाती है जो गृहस्वामी के रूप में साधन सेवा प्रदान करते हैं तथा उत्पादक के रूप में वस्तुओं तथा सेवाओं के उत्पादन के लिये अपने साधन सेवाओं को उपयोग करते हैं। ये स्वरोजगार प्राप्त व्यक्ति होते हैं तथा स्वरोजगार आय अर्जित करते हैं जिसमें मजदूरी, किराया, ब्याज तथा लाभ को सम्मिलित किया जाता है। शुद्ध घरेलू आय का मापन उपरोक्त प्रकार की आयों का योग करके किया जाता है।

6. **विदेश से प्राप्त शुद्ध साधन आय** : देश की सीमा में साधन सेवाओं को प्रदान करने के लिये विदेश से प्राप्त आय तथा अनिवासियों द्वारा दी गयी साधन सेवाओं के लिये भुगतान की गयी आय के अन्तर को विदेश से युद्ध साधन आय कहा जाता है। राष्ट्रीय आय का मापन विदेश से शुद्ध साधन आय मे शुद्ध घरेलू आय को जोड़कर किया जाता है।

राष्ट्रीय आय = कर्मचारियों को क्षतिपूर्ति + संचालन से आधिक्य (किराया + ब्याज + लाभ) + मिश्रित आय + विदेश से शुद्ध साधन आय।

17.5.2 उत्पाद विधियाँ या मूल्यवर्द्धन विधि :

उत्पाद विधि वह विधि है जिसमें किसी लेखांकन वर्ष में देश की घरेलू सीमाओं में प्रत्येक उत्पादन करने वाली इकाइयों/प्रतिष्ठानों के योगदान के अनुमान द्वारा राष्ट्रीय आय का मापन किया जाता है। इसे मूल्यवर्द्धन विधि, औद्योगिक मूल विधि या शुद्ध उत्पाद विधि भी कहा जाता है। इस विधि के अनुसार राष्ट्रीय आय का अनुमान एक लेखॉकन वर्ष में अर्थव्यवस्था द्वारा उत्पादित अन्तिम वस्तुओं तथा सेवाओं के बाजार मूल्य को ज्ञात करके लगाया जाता है। प्रतिष्ठान के विक्रय को अन्तिम विक्रय या अन्तिम वस्तुओं तथा सेवाओं के विक्रय माना जाता हैं उदाहरण के लिये एक किसान एक टन गेहूँ का उत्पादन करता है तथा उसे आटा मिल में 400 रूपये में बेचता है। इसमें जहाँ तक किसान की बात है गेहूँ का विक्रय अंतिम विक्रय होगा तथा उससे वह 400/– रू0 प्राप्त करेगा। यह कृषक गेहूँ की खेती पर कोई व्यय नहीं करता है तो 400/– उसका योगदान हो जायेगा। आटे की मिल द्वारा गेहूँ क्रय मध्यवर्ती उत्पाद है। वह गेहूँ को आटे में परिवर्तित करके उसे 600/– रू0 में रोटी बनाने वाले को विक्रय करती है। आटे की मिल आटे को अन्तिम उत्पाद मानती है जबकि रोटी बनाने वाला इसे मध्यवर्ती उत्पाद के रूप में प्रयोग कर इसकी रोटी बनाता है तथा इसे दुकानदार को 800/– रू0 में बेच देता है। दुकानदार इसे (रोटी) को 900/– रू0 में बेचता है।

अतः उत्पाद का मूल्य रू0 400+रू0 600+रू0 800+रू0 900 = 2700 रूपये।

मूल्य वर्धन क्या है?

मूल्य वर्धन उत्पाद के मूल्य का उत्पादन प्रक्रिया में उपयोग किये गये मध्यवर्ती उत्पादों तथा सेवाओं के मूल्य पर आधिक्य से होता है।

अतः पिछले उदाहरण में कृषक का वर्हित मूल्य 400/– रू0 है, आटे

की मिल का रू0 600–400 = 200 रू0 तथा रोटी बनाने वाले का रू0 800–600 = 200 रू0 है। दुकानदार रोटी को 900–800 = 100 मे बेचता है। यह उत्पादन की विभिन्न चरणों में वर्द्धित मूल्य का योग या रोटियों में बाजार मूल्य जो अन्तिम उत्पाद है, के बराबर होता है। इससे दोहरी गणना की समस्या का समाधान होता है, इसीलिये इस विधि का प्रयोग राष्ट्रीय आय के अनुमान में किया जाता है।

मूल्यवर्द्धन = उत्पाद का मूल्य – मध्यवर्ती वस्तुओं की लागत

17.5.3 व्यय विधि

व्यय विधि वह विधि है जिसमें एक लेखांकन वर्ष के दौरान बाजार मूल्य पर सकल घरेलू उत्पाद पर अन्तिम व्यय का मापन किया जाता है। इसे आय डिसपोजल विधि या उपभोग विनियोग विधि भी कहते हैं। यह विधि घरेलू उत्पाद पर व्यय या अन्तिम व्यय की गणना करती है।

इस विधि में, एक लेखांकन वर्ष में देश की घरेलू सीमाओं में वस्तुओ तथा सेवाओं के उत्पादन में हुये सम्पूर्ण व्यय को जोड़ा जाता है। सविधा के लिये इन्हें चार वर्गों मे बांटते हैं।

अन्तिम व्यय के तत्व (अवयव) के रूप में राष्ट्रीय उत्पाद का ढाँचा :

1. **वित्तीय उपभोग व्यय** : इसमें निम्न दो तत्व को शामिल किया जाता है।

(i) **निजी अन्तिम उपभोग व्यय** : निजी अन्तिम उपभोग व्यय के मापन के लिये, क्षय शील वस्तुओं, अर्द्धक्षयशील वस्तुओं, क्षय न होने वाली वस्तुओं के अन्तिम विक्रय की मात्रा तथा घरेलू उपभोक्ताओं को सेवाओं एवं घरेलू उपभोक्ताओ की सेवा देने वाले गैर लाभकारी संस्थाओं से कीमत का गुणा करते हैं। उसमें से घरेलू बाजार में अनिवासी घरेलू द्वारा प्रत्यक्ष क्रय घटा दिया जाता है तथा विदेश में निवास घरेलू द्वारा प्रत्यक्ष क्रय को जोड़ देते हैं। इसके परिणामस्वरूप आने वाली राशि निजी व्यय आयेगी। स्वयं के उपभोग हेतु उत्पादन भी अन्तिम उपभोग का भाग है।

(ii) **सरकारी अन्तिम उपभोग व्यय** : इसके मापन के लिये (क) फुटकर मूल्यों से प्रतिष्ठान द्वारा सरकार को विक्रय की कुल मात्रा से गुणा करते हैं (ख) इसमें कर्मचारियों को क्षतिपूर्ति को जोड़ा जाता है। (ग) विदेशी क्रय को भी इसमे जोड़ा जाता है।

(iii) **सकल घरेलू पूँजी निर्माण** : यह निम्न प्रकार के विनियोग को शामिल करता है:–

क. **सकल घरेलू स्थायी पूँजी निर्माण** : इससे निम्न दो विनियोगों को सम्मिलित करते हैं:–

निर्माण पर व्यय : इसके मापन हेतु निर्माण में प्रयुक्त सामग्री की मात्रा जैसे– स्टील, सीमेण्ट, ईंट तथा श्रम की बिल्डर द्वारा भुगतान की गयी कीमत से गुणा कर देते हैं। इससे ढंग से निकाले गये व्यय को उत्पाद प्रवाह अवधारणा कहते हैं। निर्माण व्यय में निम्न को शामिल करते हैं:– (i) स्थायी पूँजीगत सम्पत्तियों का उत्पादन (ii) घरेलू उपभोक्ताओं द्वारा कार्य घर का

(iii) निर्माण स्थल पर कार्य प्रगति पर (work in progress) (iv) पूँजीगत सुधार जैसे पुराने भवन में बड़ा बदलाव।

मशीन तथा संयंत्र पर अंतिम व्यय : इसकी गणना दो प्रकार से की जाती है– (i) उनकी अन्तिम विक्रय की मात्रा X बाजार में प्रचलित फुटकर कीमत (ii) उत्पाद प्रवाह अवधारणा से जिसमें पहले वर्तमान वर्ष में मशीनरी तथा संयंत्र की मात्रा ज्ञात करते हैं तथा इसका गुणा क्रेताओं द्वारा भुगतान की गयी कीमतों से करते हैं। दोनों ही विधियों में समान योग आता है।

(ख) रहतिये के परिवर्तन पर किया गया व्यय : इसका मापन निम्न प्रकार करते हैं– भौतिक परितर्वन की मात्रा x रहतिये का बाजार मूल्यं आज (GNP) सकल राष्ट्रीय उत्पाद में किसी भी उतपाद को जोड़ सकते हैं जिसका उत्पादन तो हुआ है परन्तु इस वर्ष विक्रय नही हुआ है।

2. **शुद्ध निर्यात** : अन्त में, शुद्ध निर्यात (निर्यात–आयात) का मूल्य ज्ञात करते है। यह निर्यातित वस्तुओं व सेवाओं तथा आयातित वस्तुओं व सेवाओं के मूल्यों के मध्य अन्तर होता है। एक देश द्वारा निर्यातों का उत्पादन, उसके उत्पादन के साधनों द्वारा होता है। इसमें तथ्य यह है कि विदेश में विक्रय किया गया उत्पादन द्वारा उत्पादन के साधनों को भुगतान किया जाने वाले पारिश्रमिक नही प्रभावित नी होता है। इसका कारण यह हे कि निर्यातों का मूल्य राष्ट्रीय आय का भाग होता है। इसके विपरीत तर्क दिया जाता है कि राष्ट्रीय आय में घरेलू निवासियों द्वारा आयातो पर किये गये व्यय की क्यों नही शामिल किया जाता है। ऐसे ब्याज, विदेश में उत्पादन के साधनों की पारिश्रमिक देते हैं। देश के कुल उत्पादन के अधिक दिखाने से बचने के लिये आयातों के मूल्य को घटाया जाता है। यदि कुल आयात का मूल्य, निर्यात से अधिक है या शुद्ध निर्यात ऋणात्मक है तो उसे सकल राष्ट्रीय व्यय का अनुमान लगाते समय घटा दिया जायेगां इसके विपरीत स्थिति अर्थात शुद्ध निर्यात धनात्मक होने पर राष्ट्रीय आय की गणना में उसे जोड़ दिया जायेगा।

अतः बाजार मूल्य पर सकल घरेलू उत्पाद = निजी अन्तिम उपभोग व्यय + सरकारी अन्तिम उपभोग व्यय + सकल धरेलू पूँजी निर्माण (सकल स्थिर पूँजी + रहतिये में परिवर्तन) + शुद्ध निर्यात (निर्यात–आयात)

बाजार मूल्य पर सकल घरेलू उतपाद का निर्धारण उपरोक्त (i), (ii) तथा (iii) के योग द्वारा होता है। राष्ट्रीय आय या साधन लागत पर शुद्ध राष्ट्रीय उत्पाद ज्ञात करने के लिये बाजार मूल्य पर शुद्ध राष्ट्रीय उतपाद में से शुद्ध अप्रत्यक्ष करों तथा ह्रास को घटा देते हैं।

17.6 राष्ट्रीय आय के मापन में कठिनाईयाँ

सही राष्ट्रीय आय का अनुमान लगाने में कई कठिनाईयाँ आती है। यह कइिनाईयाँ अवधारणात्मक होने के साथ व्यवहारिक भी होती है जो निम्न है–

1. **अवधारणात्मक कठिनाईयाँ** : राष्ट्रीय आय के मापन में आने वाली अन्तिम कठिनाईयाँ निम्न हैः–

(i) अन्तिम तथा मध्यवर्ती वस्तुओं में अन्तर : जैसा कि आप जानते हैं कि राष्ट्रीय आय में मात्र अन्तिम वस्तुओं तथा सेवाओं को ही जोड़ा जाता है, परन्तु कई बार यह जानना कठिन होता है कि कौन वस्तु अन्तिम

है तथा कौन मध्यवर्ती। ऐसा इसलिए होता है कि क्योंकि एक ही वस्तु दिये गये स्थान पर अन्तिम होती है, जबकि अन्य स्थान पर मध्यवर्ती हो जाती है। उदाहरण के लिये कार्यालय में कागज के रूप में एक अन्तिम वस्तु है जबकि किताब मे मध्यवर्ती है।

(ii) **कीमत में परिवर्तन** : वस्तुओं के मूल्यों में लगातार परिवर्तन से राष्ट्रीय आय का मापन अस्थिर हो जाता है। उत्पादन प्रक्रिया के दौरान वस्तु का मूल्य निश्चित होता है, जबकि बाजार में विक्रय पर उसका भिन्न मूल्य होता है। इससे राष्ट्रीय आय के मापन में कठिनाई आती है।

(iii) **बिना भुगतान की सेवायें** : सामान्यतः राष्ट्रीय आय में मुद्रा में मापनीय सेवायें ही जोड़ी जाती हैं। अन्य शब्दों में, जिनका भुगतान किया जाता है। परन्तु वास्तविक जीवन में कई सेवायें मुद्रा में मापनीय नही होती है। उदाहरण कालेज में व्याख्यान के लिये प्रवक्ता को भुगतान होता है परन्तु अपने घर स्वयं के बच्चों को व्याख्यान के लिये कोई भुगतान नही होता है।

(iv) **दोहरी गणना** : कई बार राष्ट्रीय आय की गणना के समय दोहरी गणना की समस्या का सामना करना पड़ता है। ऐसी दोहरी गणना से बढ़ी हुयी राष्ट्रीय आय का गलत अनुमान होता है। इस समस्या से छुटकारा पाने के लिये राष्ट्रीय आय का गलत अनुमान होता है। इस समस्या से छुटकारा पाने के लिये राष्ट्रीय आय के अनुमान के समय सिर्फ अन्तिम वस्तुओं की ही गणना की जानी चाहिये।

(v) **विदेशी कम्पनियों की आय** : देश में बड़ी मात्रा में व्यवसाय विदेशी कम्पनी द्वारा किया जा रहा है। इनके संबंध में राष्ट्रीय आय की गणना में यह समस्या आती है कि इन कम्पनियों की आय का एक भाग इनमें मूल देय में लाभांश के रूप में जाता है तथा दूसरा उस देश में रहता है, जहाँ व्यवसाय कर रही है। ऐसी स्थिति में किस राशि को लिया जाय, यह एक समस्या है।

2. **व्यवहारिक समस्यायें** :

राष्ट्रीय आय में अनुमान लगाने में आने वाली व्यवहारिक समस्यायें निम्न है, जो अधिकतर अविकसित देशों में पायी जाती हैः—

(i) **वस्तु विनिमय प्रणाली का अस्तित्व में रहना** : अल्पविकसित देशों के पिछड़े क्षेत्रों में वस्तु विनियम प्रणाली का अस्तित्व बना हुआ है, जिसमें वस्तुओं व सेवाओ का भुगतान में प्रयोग किया जाता है। ऐसी स्थिति में राष्ट्रीय आय का सही अनुमान लगाना कठिन होता है।

(ii) **अविश्वसनीय सॉख्यिकी** : अल्पविकसित देशों में निरक्षरता अधिक होने के कारण उतपादन तथा व्ययों आदि के कोई लेखा नही होता है। इससे राष्ट्रीय आय का अनुमान लगाया कठिन हो जाता है। आय कर आदि बचाने के लिये उत्पादक गलत आकड़े प्रस्तुत करते है जिससे राष्ट्रीय आय का अनुमान संदेहास्पद हो जाता है।

(iii) **पेशेवर वर्गीकरण का अभाव** : अल्पविकसित देशों में पेशे का स्पष्ट वर्गीकरण नही किया जाता है। अपने जीविकोपार्जन के लिये व्यक्ति

एक से अधिक पेशों में संलग्न रहते हैं। उदाहरण के लिये सूखे के समय कृषि श्रमिक शहरों में काम के लिये जाते है जिससे यह अनुमान लगाना कठिन होता है कितनी आय कृषि से हुयी तथा कितनी गैर कृषि आय अर्जित की गयी।

(iv) **स्व–उपभोग के लिए उत्पादन** : कृषि प्रधान विकासशील देशों जैसे भारत में कृषि उतपादन का बड़ा हिस्सा स्वयं के उपभोग में प्रयोग होता है जिसका लेखा कहीं नही होता है। इसे राष्ट्रीय आय में न जोड़ने के कारण इसका सही मापन कठिन हो जाता है।

17.7 प्रति व्यक्ति आय या उत्पादन

आर्थिक रूप से सबसे महत्वपूर्ण मापन प्रति व्यक्ति आय है। यह एक वर्ष में देश की जनता की औसत आय होती है यह देश की जनसंख्या तथा राष्ट्रीय आय में अनुपात होता है।

प्रति व्यक्ति आय = राष्ट्रीय आय / जनसंख्या

चूँकि (GNP) सकल राष्ट्रीय उत्पाद, कुल उत्पादन के आकार का मापन करती है, इसलिये वह देश अर्थव्यवस्था में व्यक्तियों के जीवन स्तर में परिवर्तन की गलत प्रस्तुत कर सकता है। उदाहरण के लिये सकल राष्ट्रीय उत्पाद (GNP) में महत्वपूर्ण वृद्धि के बाद भी जनसंख्या में भी तीव्र वृद्धि होने पर प्रति व्यक्ति जीवन स्तर सापेक्षिक रूप से या तो स्थिर होगा या कम होगा। अतः आर्थिक कल्याण के अधिक उपयुक्त मापन वास्तविक प्रति व्यक्ति आय में वृद्धि ही है।

17.8 साराँश

एक वर्ष में देश के द्वारा वर्तमान में उत्पादित अन्तिम वस्तुओं तथा सेवाओ का कुल बाजार मूल्य, को राष्ट्रीय उत्पाद कहते हैं। जब कोई उत्पादन करता है तो उसे आय प्राप्त होती है। अतः उत्पादन के प्रत्येक प्रवाह के लिये साधन आय का बराबर प्रवाह होता है। एक वर्ष में राष्ट्रीय उत्पाद के उत्पादन के लिये उत्पादन के साधन के स्वामियों द्वारा अर्जित आय का कुल योग, राष्ट्रीय आय कहलाता है। भारत में राष्ट्रीय आय का मापन आय विधि, मूल्य वर्धन विधि तथा व्यय विधि द्वारा किया जाता है। राष्ट्रीय आय का अनुमान लगाने में कई अवधारणात्मक तथा व्यवहारिक समस्याओं का सामना करना पड़ता है।

17.9 शब्दावली

राष्ट्रीय आय : किसी वर्ष के दौरान किसी राष्ट्र में उत्पादन के साधनो–श्रम, पूँजी, भूमि तथा साहसी के मालिकों द्वारा अर्जित आय–मजदूरी, ब्याज, किराया तथा लाभ के योग को राष्ट्रीय आय कहते हैं।

साधन लागत पर शुद्ध राष्ट्रीय उत्पाद : उत्पाद के साधनों द्वारा अर्जित ब्याज, मजदूरी, किराया व लाभ तथा विदेश से अर्जित शुद्ध साधन आय का योग ।

व्यक्तिगत आय: सभी श्रोतों से घरेलू व्यक्तियों द्वारा प्राप्त सभी वर्तमान आयों का योग ।

लाभ : उद्यमिता के लिये प्राप्त आय ।

17.10 बोध प्रश्न

(क) खाली स्थान भरो–

1. .... पर शुद्ध राष्ट्रीय उत्पाद, राष्ट्रीय आय कहलाता है।
2. उत्पादित वस्तुओं तथा सेवाओं की मात्रा में ....से गुणा करने पर सकल घरेलू उत्पाद (GDP) आता है।
3. उत्पादन के लिये उत्पादन के साधनों के भुगतान को ....कहते हैं।
4. राष्ट्रीय आय के मूल्य वर्धन विधि के द्वारा ....से छुटकारा मिलता है।
5. राष्ट्रीय आय के अनुमान की आय विधि को .... भी कहते हैं।
6. राष्ट्रीय आय में मात्र.................ब्याज को सम्मिलित किया जाता है।

(ख) सही या गलत

1. स्व उपभोग के लिये उत्पादन, निजी कोष उपभोग व्यय का भाग नहीं है।
2. सकल राष्ट्रीय व्यय के अनुमान लगाने में ऋणात्मक शुद्ध निर्यात को घटाते हैं।
3. प्रति व्यक्ति आय, देश की जनसंख्या तथा राष्ट्रीय आय का अनुपात है।

(ग) सही समूह बनाये–

राष्ट्रीय आय =

1. उपभोग तथा बचत
2. उपभोग तथा उत्पाद
3. उपभोग तथा विनियोग
4. बचत तथा विनियोग

(घ) सही मिलान कीजिये–

I	II
(i) भूमि	क. मजदूरी
(ii) पूँजी	ख. किराया
(iii) स्थापना	ग. लाभ
(iv) उद्यमिता	घ. ब्याज

17.11 बोध प्रश्नों के उत्तर

(क) 1. साधन लागत 2. उनके मूल्य 3. साधन लागत 4. दोहरी गणना, 5. साधन भुगतान विधि 6. शुद्ध

(ख) 1. गलत, 2. सही, 3. सही

(ग) (i)

(घ) (i-ख), (ii-घ), (iii-क), (iv-ग)

17.12 स्वपरख प्रश्न

(क) लघु उत्तरीय प्रश्न–

1. सकल राष्ट्रीय उत्पाद (GNP) तथा शुद्ध राष्ट्रीय उत्पाद (NNP) में अन्तर करें।
2. हस्तान्तरण आय की व्याख्या करें।

3. सकल घरेलू उत्पाद (GDP) क्या है?

(ख) दीर्घ उत्तरीय प्रश्न :

1. राष्ट्रीय आय की परिभाषा दीजिये तथा उसके अनुमान की आय तथा व्यय विधि को समझाइये।
2. व्यक्तिगत आय तथा प्रयोज्य (Disposable) आय के गणना की विधि की व्याख्या कीजिये।
3. राष्ट्रीय आय की गणना में कौन सी कठिनाईयाँ आती है? विस्तार से विवेचन कीजिये।

17.13 सन्दर्भ पुस्तकें

1. दिलार्द डूडले– द इकोनामिक ऑफ जान मेयर्स कीन्स, 1960
2. एडवर्ड शाप्रियो– मैक्रो इकोनामिक एनालिसिस (1960)
3. हैन्सन, एल्विन एच0ए0 गाइड टू कीन्स (1933)
4. कीन्स, जे0एम0, जनरल थ्योरी ऑफ इम्पलायमेण्ट, इन्टरेस्ट एण्ड मनी (1936)
5. झिगन, एम0एल0, एडवान्स इकोनामिक थ्योरी, वृन्दा पब्लिकेशनस (प्रा0) लिमिटेड, नई दिल्ली।

इकाई 18 उपभोग फलन और उसके निर्धारक तत्व

इकाई की रूपरेखा

18.1 प्रस्तावना
18.2 उपभोग फलन
18.3 उपभोग के प्रवृति की विशेषता
18.4 उपभोग फलन की तकनीकी विशेषता
18.5 बचत फलन और बचत की प्रवृति
18.6 उपभोग के प्रवृति के निर्धारक तत्व
18.7 उपभोग का मनोवैज्ञानिक नियम
18.8 उपभोग की प्रवृत्ति को बढ़ाने के उपाय
18.9 चक्रीय तथा चिरकालिक उपभोग फलन
18.10 सारांश
18.11 शब्दावली
18.12 बोध प्रश्न
18.13 बोध प्रश्नों के उत्तर
18.14 स्वपरख प्रश्न
18.15 सन्दर्भ पुस्तकें

उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप इस योग्य हो सकेंगे कि –

- उपभोग फलन व बचत फलन की व्याख्या कर सकें।
- उपभोग के प्रवृति की विशेषताओं की व्याख्या कर सकें।
- उपभोग के प्रवृति के निर्धारकों का वर्णन कर सकें।
- उपभोग के मनोवैज्ञानिक नियम तथा इसके निहितार्थ का वर्णन कर सकें।

18.1 प्रस्तावना

कीन्स के आय तथा रोजगार के सिद्धान्त में उपभोग तथा निवेश समग्र मांग के महत्वपूर्ण घटक है। राष्ट्रीय आय का वह भाग जो व्यक्तियों द्वारा अपनी आवश्यकता को संन्तुष्टि प्रदान करने वाले वस्तुओं तथा सेवाओं के खरीदने पर जो व्यय करता है वह समग्र उपयोग व्यय या उपभोग कहा जाता है। उपभोग व्यय, आय, कीमत स्तर तथा प्रदर्शन प्रभाव आदि जैसे कारको पर निर्भर करता है। जबकि आय उपभोग को प्रभावित करने वाले कारकों में महत्वपूर्ण कारक है। अतः कीन्स की राय यह है कि किसी अर्थव्यवस्था का कुल उपभोग व्यय आय पर निर्भर करता है या उपभोग को आय का फलन कहा जा सकता है। उपभोग फलन का अध्ययन समग्र उपभोग व्यय तथा राष्ट्रीय आय के बीच पारस्परिक सम्बन्ध व्यक्त करता है।

18.2 उपभोग फलन

उपभोग फलन या उपभोग की प्रवृति वह अनुसूची को बताती है जो विभिन्न आय के स्तर पर तथा विभिन्न उपभोग के स्तर के सम्बन्ध को व्यक्त करता है। यह मांग के अनुसूची की तरह काम करता है जैसे विभिन्न कीमतों पर मांग की वस्तु मात्रा को व्यक्त करता है। उसी प्रकार उपभोग फलन भी लोगों द्वारा विभिन्न आय के स्तर पर अपभोग पर व्यय को बताती है। यह निम्नलिखित समीकरण के रूप में व्यक्त किया जात सकता है।

$$C = f(y)$$

जहां; C उपभोग, आय (y) का फलन f है। यहां f आय तथा उपभोग के बीच फलनात्मक सम्बन्ध को व्यक्त करता है। यदि आप आय एक उपभोक्ता के उपभोग

की प्रवृति को पता लगा पाते हैं तो उपभोक्ता के एक दिये हुए आय स्तर पर वह कितना उपभोग पर व्यय करेगा, आसानी से सीख जायेंगे। उपभोग फलन उपभोग तथा उपभोग के निर्धारक जैसे आय, बचत व्याज दर, अप्रत्याशित लाभ तथा हानि के बीच फलनात्मक सम्बन्ध को व्यक्त करता है । इसे आगे दिये गये चित्र के माध्यम से व्याख्या करेंगें।

सारणी 18.1: उपभोग की प्रवृति (करोड़ रूपये में)

आय (Y)	उपभोग (C)	बचत (S)
6	10	&10
100	100	0
200	190	10
300	200	20
400	370	30
500	460	40

सारणी 18.1 में दिखाया गया है जब आय शून्य है तो उपभोग पर होने वाला व्यय 10 करोड़ रूपये है। यह व्यय पिछली समयावधि में बचत की गई आय या उधारी की आय पर निर्भर करेगा। जब आय बढ़कर 100 करोड़ रूपये हो गई तो इसलिए बचत शून्य है। सारणी यह भी दर्शाती है कि जब आय बढ़ती है तो दोनो उपभोग व्यय तथा बचत भी बढ़ती है। किन्तु उपभोग व्यय आय बढ़ने के दर से कम बढ़ती है।

चित्र 18.1 में OX अक्ष पर आय तथा OY अक्ष पर बचत तथा उपभोग को दिखाया गया है। AS समग्र पूर्ति वक्र है। जो 45^0 कोण के एक सीधी रेखा के सहारे दिया गया है। यह रेखा अर्थव्यवस्था के समग्र आय ताि समग्र व्यय को प्रदर्शित करता है। CC वक्र समग्र उपभोग वक्र तथा SS बचत वक्र है। उपभोग वक्र का ढाल स्थिर है, जो आय के विभिन्न स्तरों पर उपभोग की सीमान्त प्रवृति स्थिर है। उपभोग वक्र मूल विन्दु से शुरू नहीं होता है। ऐसा इसलिए है क्योंकि जब आय शून्य है तो उपभोग व्यय 10 करोड़ है। जैसे कि सारणी 18.1 में दिखाया गया है। उपभोग वक्र बायें से दायें ऊपर उठता हुआ होता है। जो यह बताता है जैसे–जैसे आय बढ़ती है तो उपभोग में भी वृद्धि होगी। P विन्दु पर आय तथा व्यय बराबर है क्योंकि उपयोग वक्र को काट रही है। और इस विन्दु पर वचत शून्य होगी। इसलिए M विन्दु पर बचत वक्र OX अक्ष को स्पर्श कर रही है। बिन्दु P को छोड़कर, समग्र पूर्ति वक्र उपभोग वक्र के उपर है। इसका मतलब यह है कि उपभोग व्यय आय से ज्यादा है। अतः बचत ऋणात्मक है। जो यह व्याख्या करता है कि क्यों बचत वक्र OX अक्ष के नीचे से आती है जबकि आय OM स्तर पर है। बचत वक्र का SM भाग ऋणात्मक बचत को प्रदर्शित करता है। बिन्दु P के दाहिनी ओर उपभोग वक्र (CC) समग्र पूर्ति वक्र (AS) के नीचे हैख जो यह बताता है कि उपभोग व्यय आय से कम है। अन्य शब्दों में बचत धनात्मक है। MS’ भाग बचत वक्र (SS) का धनात्मक बचत को प्रदर्शित करता है।

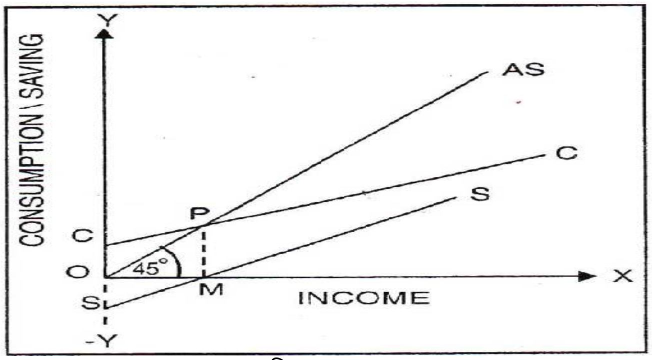

चित्र 18.1

उपभोग वक्र के विभिन्न रूप

उपभोग वक्र के विभिन्न रूपों को निम्नलिखित प्रकार से चर्चा करेगें।

18.2.1 रैखिक उपभोग वक्र जो मूल बिन्दु से शुरू नहीं होती हैः

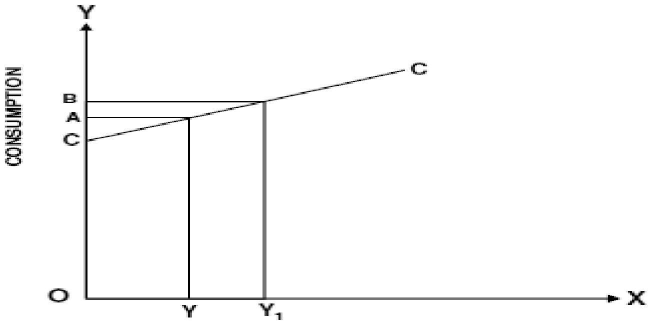

चित्र 18.2

चित्र 18.2 में उपभोग वक्र को रैखिक दिखाया गया है जो मूल बिन्दु शून्य से शुरू नहीं होता है। जो यह दिखाता है कि जब उपभोक्ता की आय शून्य है तो उपभोक्ता OC मात्रा के बराबर उपभोग कर रहा है।

$$C = C_0 + bY$$

यहां C_0 स्वायत उपभोग है जो आय शून्रू होने पर भी उपभोग की इतनी मात्रा हो। b उपभोग की सीमान्त प्रवृति या उपभोग वक्र (CC) के ढ़ाल को बताता है। उपभोग की आय में परिवर्तन के परिणाम स्वरूप उपभोग की सीमान्त प्रवृति में परिवर्तन के अनुपात को बताता है।

$$MPC = \frac{\Delta C}{\Delta Y}$$

उपभोग वक्र यह प्रदर्शित करता है कि जब आय OY से OY_1 बढ़ जाती है तो उपभोग पर होने वाला व्यय बढ़कर OA से OB हो जता है। किन्तु उपभोग वक्र में AB के बराबर वृद्धि होती है। जबकि उपभोग की सीमान्त प्रवृति स्थिर है। जो उपभोग के औसत प्रवृति के बराबर नहीं है। उपभोग की औसत प्रवृति कुल आय में उपभोग का अनुपात है।

$$APC = \frac{C}{Y}$$

उपभोग की औसत प्रवृति घट रही है किन्तु APC>MPC से। यह उपभोग वक्र अल्पकाल में पाया जाता है।

18.2.2 रैखिक उपभोग वक्र जो मूल बिन्दु से शुरू होता हैः

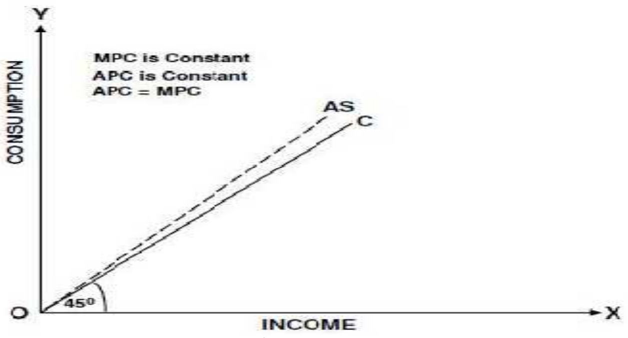

चित्र 18.3

चित्र 18.3 में उपभोग वक्र बिन्दु शून्य से प्रारम्भ होता है। जो यह प्रदर्शित करता है कि आय में कमी या वृद्धि उसी अनुपात में उपभोग में कमी या वृद्धि होता है। जब आय शून्य है तो उपभोग पर व्यय शून्य है । अर्थात् $c = by$ यहां उपभोग की सीमान्त प्रवृति स्थिर हे। OC उभोग वक्र उपभोग की सीमान्त प्रवृति तथा औसत उपभोग की प्रवृति एक दूसरे के बराबर हैं। (MPC =APC) अर्थात् औसत उपभोग की प्रवृति स्थिर है। इस प्रकार का उपभोग वक्र दीर्घकाल में पाया जाता है।

18.2.3 गैर–रैखिक उपभोग वक्र

जैसा कि चित्र 18.4 में दिखाया गया है कि उपभोग वक्र गैर–रैखिक भी हो सकता है। इस चित्र में AC एक गैर–रैखिक उपभोग वक्र है तथा BS एक गैर–रैखिक बचत वक्र है। इस स्थिति में सीमान्त उपभोग की प्रवृति स्थिर नहीं है। जो आय बढ़ने के साथ–2 गिरती जा रही है। कीन्स इस तरह के उपभोग वक्र के होन का समर्थन किया है किन्तु कीन्स के अनुयायी केवल रैखिक उपभोग वक्र को हीं मानते हैं। गैर उपभोग वक्र मूल बिन्दु O से शुरू नहीं होती है। जो अल्पकाल में पाया जाता है।

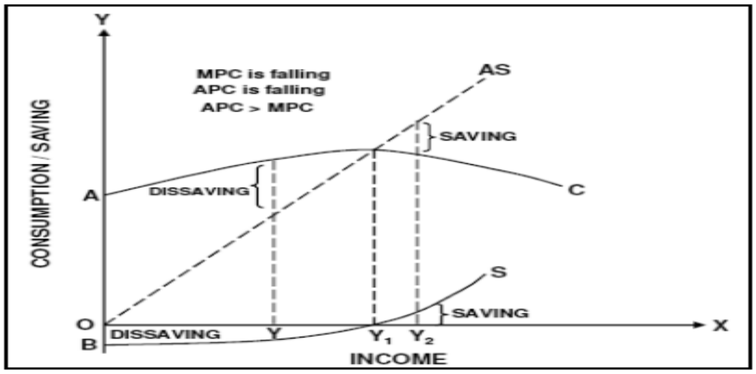

चित्र 18.4

18.3 उपभोग के प्रवत्ति की विशेषता

उपभोग के प्रवृत्ति की विशेषताएं निम्नलिखित है।

1. **मनौवैज्ञानिक अवधारणाः** उपभोग के प्रवृत्ति एक मनोवैज्ञानिक अवधारणा हे। यह बहुत से व्यक्तिपरक कारक जैसे लोगों की आदत तथा स्वाद आदि के द्वारा प्रभावित होता है। ये कारक अल्पकाल में स्थिर रहते है। इस कारण उपभोक्ता की प्रवृत्ति अल्पकाल में स्थिर रहती है।
2. **असमान उपभोग की प्रवृत्तिः** एक गरीब व्यक्ति की उपभोग की प्रवृत्ति अमीर व्यक्ति के उपभोग की प्रवृति के तुलना में अधिक होता है। इसका कारण स्पष्ट है क्योंकि गरीब व्यक्ति अपनी सम्पूर्ण आय को उपभोग पर व्यय

करता है। जबकि धनी व्यक्ति अपनी आय का कुछ ही भाग उपभोग पर व्यय करता है।

3. **आय व रोजगार उपभोग की प्रवृति पर निर्भर करता हैः** उपभोग की प्रवृति आय तथा रोजगार से प्रत्यक्ष रूप से सम्बन्धित है। उपभोग की प्रवृति बढ़ने का आशय कुल उपभोग में वृद्धि हो रहा है। जिसके परिणाम स्वरूप आय तथा रोजगार में वृद्धि होगा। ठीक उसी प्रकार उपभोग की प्रवृति का गिरना मतलब कुल उपभोग में कमी आ रही है जिसके परिणामस्वरूप आय तथा रोजगार में कमी होगा।

4. **अल्पकाल में उपभोगः** अल्पकाल में उपभोग व्यय स्वायत्त निवेश तथा सीमान्त उपभोग की प्रवृत्ति पर निर्भर करता है। स्वायत्त निवेश का आशय यह है कि आय शून्रू होने पर भी व्यक्ति कुछ न कुछ उपभोग करता है रहेगा। अतः

$$C = C_0 + bY$$

आप इस समीकरण को पहले से जानते हैं C–उपभोग व्यय, C_0–स्वायत्त उपभोग तथा b–सीमान्त उपभोग की प्रवृत्ति एवं Y आय है। इस समीकरण के आधार पर आप पाते है कि उपभोग में वृद्धि आय में वृद्धि की तुलना में कम होती है। अतः उपभोग की प्रवृत्ति आय बढ़ने के साथ–2 घटती जाती है।

5. **दीर्घकालीन उपभोग फलनः** दीर्घकाल में उपभोग पूर्णरूप से सीमान्त उपभोग की प्रवृत्ति पर निर्भर करता है। यह इसलिए क्योंकि दीर्घकाल में कोई व्यक्ति बिना आय के खर्च नहीं करेगा। इसलिए दीर्घकाल में कोई स्वायत्त उपभोग नहीं होता है। अतः

$$C = C_0 + bY$$

दीर्घकाल में आय को वृद्धि के साथ उपभोग की प्रवृत्ति में गिरावट नहीं होती है। अतः स्थिर रहता है।

18.4 उपभोग फलन की तकनीकी विशेषता

उपभोग फलन उपभोग की प्रवृत्ति निम्नलिखित दो प्रकार का होता है।

(क) औसत उपभोग की प्रवृत्ति

माना कि भारत की 2011 में राष्ट्रीय आय 1000 करोड़ रूपये थी। इसमे से 800 करोड़ रूपये उपभोग पर खर्च हुआ। इसका मतलब भारत में $(\frac{800}{1000} \times 100) =$ 80% आय उपभोग पर खर्च करते है। जो औसत उपभोग की प्रवृत्ति कहा जाता है। इस प्रकार कुल उपभोग व्यय तथा कुल आय के अनुपात को औसत उपभोग की प्रवृत्ति कहा जाता है। यह व्यक्तियों के द्वारा अपनी आय का उपभोग पर व्यय की व्याख्या करता है।

औसत उपभोग की प्रवृत्ति को निम्नलिखित सूत्र की सहायता से बताया जा सकता है:

औसत उपभोग की प्रवृत्ति (APC) = उपभोग (C)÷ आय (Y)

उदाहरणार्थ यदि आय (1000 करोड़) का 800 करोड़ उपभोग पर व्यय किया गया तो औसत उपभोग की प्रवृत्ति $(\frac{800}{1000}) =$ 0.8 इकाई होगी। यह निम्नलिखित सारणी के माध्यम से व्यक्त किया जा सकता है।

आय (करोड़ रू. में)	उपभोग व्यय (करोड़ रू. में)	$APC = \frac{C}{Y}$

		(औसत उपभोग की प्रवृति)
100	80	$(\frac{80}{100}) = 0.8$
200	120	$(\frac{120}{200}) = 0.6$

उपरोक्त सारणी से स्पष्ट है कि औसत उपभोग की प्रवृत्ति, कुल उपभोग व्यय को कुल आय से भाग देकर ज्ञात किया जा सकता है। चित्र 18.5 के माध्यम से औसत उपभोग की प्रवृत्ति को ज्ञात किया जा सकता है। इस चित्र में आय को OX क्षैतिज अक्ष पर प्रदर्शित किया गया है। एवं OY उदग्र अक्ष पर उपभोग को दिखाया गया है। CC उपभोग वक्र है। यह वक्र बिन्दु A पर APC = $\frac{C}{Y} = \frac{80}{100} = 0.8$ को दिखाती है तथा बिन्दु B पर APC = $(\frac{120}{200}) = 0.6$ को दिखाती है। जैसे वक्र का ढ़ाल ऊपर की ओर जाता है औसत उपभोग की प्रवृत्ति गिरने लगती है।

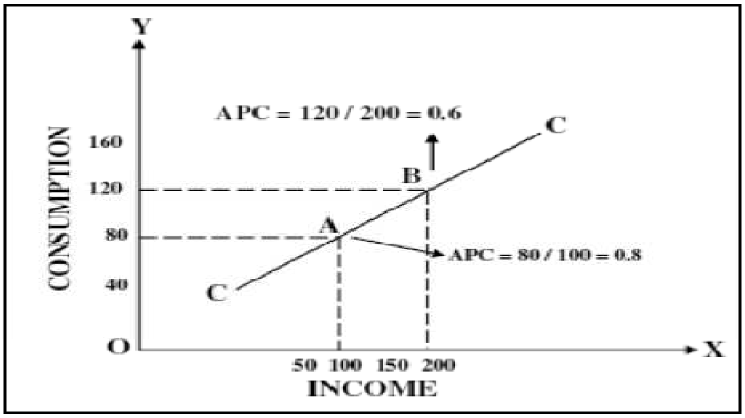

चित्र 18.5

(ख) सीमान्त उपभोग की प्रवृत्ति

माना भारत की राष्ट्रीय आय 1000 करोड़ रूपये से बढ़कर 1200 करोड़ रूपये हो गई है तथा उपभोग व्यय 800 करोड़ से बढ़कर 900 करोड़ रूपये हो गई। तो आय में 200 करोड़ रूपये परिवर्तन के परिणामस्वरूप उपभोग में 100 करोड़ रूपये का परिवर्तन हुआ इसको सीमान्त उपभोग की प्रवृत्ति कहा जता है। यह भारत का सीमान्त उपभोग की प्रवृत्ति 100/200 = 0.5 इकाई होगी।

इसलिए सीमान्त उपभोग की प्रवृत्ति उपभोग व्यय में परिवर्तन को आय में परिवर्तन से भाग देकर ज्ञात किया जा सकता है। अतः सीमान्त उपभोग की प्रवृत्ति को निम्न लिखित सुत्र की सहायता से ज्ञान किया जा सकता है।

सीमान्त उपभोग की प्रवृत्ति (MPC) = उपभोग (ΔC)÷ आय (ΔY)

उदाहरण के लिए, यदि आय 100 करोड़ से बढ़कर 200 करोड़ हो जाये तो आय में कुल परिवर्तन 100 करोड़ रूपये (200–100 करोड़ रूपये) होगा। आय में परिवर्तन से उपभोग में परिवर्तन 80 करोड़ रू. से बढ़कर 120 करोड़ रू. हो गया। अतः उपभोग में परिवर्तन 40 करोड़ रू. (120–80 करोड़ रू.) = 40 करोड़ रूपये का होगा।

अतः

$$MPC = \frac{\Delta C}{\Delta Y} = \frac{40}{100} = 0.4 \text{ इकाई।}$$

सारणी 18.3 तथा चित्र 18.6 की सहायता से सीमान्त उपभोग की प्रवृत्ति की अवधारणा की व्याख्या की जा सकती है।

आय (करोड़ रू. में)	ΔY	उपभोग व्यय (करोड़ रू. में)	ΔC	$MPC = \frac{\Delta C}{\Delta Y}$ (सीमान्त उपभोग की प्रवृति)
100	0	80	0	0
200	200—100 = 100	120	120 — 80 = 40	$(\frac{40}{100}) = 0.4$
300	300 — 200 = 100	150	150—120 = 30	$(\frac{30}{100}) = 0.3$

चित्र 18.6 में OX अक्ष पर आय तथा OY अक्ष पर उपभोग को दिखाया गया है। सीमान्त उपभोग की प्रवृत्ति को बिन्दु A पर दिखाया गया है।

$$MPC = \frac{\Delta C}{\Delta Y} = \frac{40}{100} = 0.4 \text{ इकाई।}$$

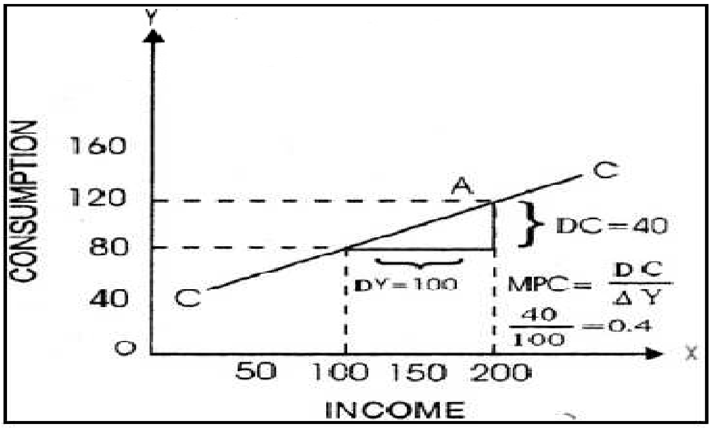

चित्र 18.6

सीमान्त उपभोग की प्रवृत्ति के गुण/विशेषताएं

सीमान्त उपभोग की प्रवृत्ति की अवधारण के निम्नलिखित विशेषताएं हैः

1. **यह हमेशा धनात्मक होती हैः** सीमान्त उपभोग की प्रवृत्ति हमेशा धनात्मक होती है। इसका अर्थ यह है कि आय में वृद्धि के साथ उपभोग व्यय में अवश्य वृद्धि होगी। यह कभी संभव नहीं होगा कि आय में वृद्धि उपभोग व्यय में कमी लाये।
2. **सामान्यतया शून्य से अधिक तथा एक से कम होगाः** सीमान्त उपभोग की प्रवृत्ति सामान्यतया शून्य से अधिक तथा एक से कम होता है। क्योंकि आय में वृद्धि कुछ न कुछ उपभोग में वृद्धि जरूर लायेगा। यद्यपि आय का बढ़ा हुआ भाग उपभोग पर व्यय करेगा।

   सम्पूर्ण आय उपभोग पर नहीं व्यय करेगा। अतः सीमान्त उपभोग की प्रवृत्ति एक बराबर नहीं होगी अतः 1 से कम होगा। अतः निम्नलिखित समीकरण की सहायता से व्यक्त किया जा सकता है।

$$\frac{\Delta C}{\Delta Y} > 0; \qquad \frac{\Delta C}{\Delta Y} < 1$$

यह कुछ इस तरह से पढ़ा जायेगा कि सीमान्त उपभोग की प्रवृत्ति ($\frac{\Delta C}{\Delta Y}$ >0) शून्य से अधिक है किन्तु ($\frac{\Delta C}{\Delta Y}$ <1) एक से कम होगी।

3. **गरीब वर्ग की सीमान्त उपभोग की प्रवृत्ति अधिक होगीः** धनी वर्ग के अपेक्षा गरीब वर्ग की सीमान्त उपभो की प्रवृत्ति अधिक होती है। क्योंकि गरीब वर्ग की आय कम है और अपनी बढ़ी हुई आय का अधिक भाग उपभोग पर व्यय करेगा। ठीक इसी प्रकार अल्पविकसित देशों में विकसित देशों की अपेक्षा सीमान्त उपभोग की प्रवृत्ति अधिक होगी।
4. **दीर्घकाल में सीमान्त उपभोग की प्रवृत्ति स्थिर होगीः** दीर्घकाल में सीमान्त उपभोग की प्रवृत्ति स्थिर रहेगी। अर्थात इसका आशय यह है कि दीर्घकाल में आय में परिवर्तन जिस अनुपात में होगा ठीक उसी अनुपात में उपभोग में भी परिवर्तन होगा।
5. **अल्पकाल में सीमान्त उपभोग की प्रवृत्ति गिरती हुई होती हैः** अल्पकाल में आय में बढ़ने के साथ सीमान्त उपभोग की प्रवृत्ति में गिरावट होगी। इसका आशय यह है कि अल्पकाल में जिस अनुपात में आय में वृद्धि होती है उससे कम अनुपात में उपभोग में वृद्धि होगी।
6. **असामान्य स्थिति में सीमान्त उपभोग की प्रवृत्ति एक से अधिक होगीः** जो गरीब है तथा आय बहुत कम है किन्तु उपभोग पर व्यय आय से अधिक है तो इस स्थिति सीमान्त उपभोग की प्रवृति का मान ($MPC = \frac{\Delta C}{\Delta Y}$ >1) एक से अधिक होगाा, जो उधार लेकर उपभोग करता है।

18.5 बचत फलन और बचत की प्रवृत्ति

उपभोग की प्रवृत्त की तरह एक अन्य अवधारणा बचत की प्रवृत्ति है। बचत की प्रवृत्ति विभिन्न आय के स्तरों पर आय तथा बचत के बीच सम्बन्ध को दिखाता है। कीन्स के अनुसार, बचत भी आय फलन है। आय बढ़ने के साथ–साथ बचत में वृद्धि होती है। आय के घटने के साथ बचत भी घटती जाती है। अर्थात् बचत आय का लोच होती है।

S = f (Y),   S = बचत
F = फलन
Y = आय

पीटरसन के अनुसार, ''बचत फलन तथा बचत की प्रवृत्ति आय के विभिन्न स्तरों पर बचत की गई मात्रा को प्रदर्शित करती है।''

(अ) औसत बचत की प्रवृत्ति प्रकार

उपभोग के प्रवृत्ति की तरह, बचत के प्रवृत्ति के भी दो प्रकार हैः

1. **औसत बचत की प्रवृत्तिः** एक दिये हुये आय स्तर पर बचत तथा आय के अनुसार को औसत बचत की प्रवृत्ति में व्यक्त करते है। जो,

औसत बचत की प्रवृति = बचत / आय

आय या तो उपभोग में प्रयोग होगा या फिर बचत होगा अतः

$$Y = C + S$$
$$\frac{C}{Y} + \frac{S}{Y} = 1,$$
$$APC + APS = 1$$

बचत / आय + उपभोग / आय = 1

या, औसत उपभोग की प्रवृत्ति + औसत बचत की प्रवृत्ति = 1, होगा।

ठस यह साफ तौर पर स्पष्ट होती है कि आय के प्रत्येक स्तर पर औसत उपभोग की प्रवृत्ति (MPC) तथा औसत बचत की प्रवृत्ति (APC) का समग्र 1 होगा। माना औसत उपभोग की प्रवृत्ति 0.8 है जो औसत बचत की प्रवृत्ति (APC), 0.2 होगी।

$$APC + APS = 0.8 + 0.2 = 1$$

नोटः– नकारात्मक बचत उस स्थिति को बताता है जब उपभोग आय से अधिक हो जाती है। Y = C + S, प्रायः S– तब नकारात्मक होगा जब C >Y हो। यह तब होता है जब न्यूनतम उपभोग स्तर आय से अधिक होता है।

2. **सीमान्त बचत की प्रवृत्तिः** सीमान्त बचत की प्रवृत्ति, आय में परिवर्तन से बचत में परिवर्तन को बताती है। जो,

सीमान्त बचत की प्रवृत्ति = बचत में परिवर्तन/आप में परिवर्तन $(MPC) = \frac{\Delta C}{\Delta Y}$

(ब) सीमान्त उपभोग की प्रवृत्ति (MPC) तथा सीमान्त बचत की प्रवृत्ति (MPS)

सीमान्त उपभोग की प्रवृत्ति एक से कम होती है। इसका आशय है कि आय का वह भाग जो उपभोग पर व्यय नहीं होता वह बचत क बराबर होता है। इस प्रकार, सीमान्त उपभोग की प्रवृत्ति तथा सीमान्त बचत की प्रवृत्ति का समग्र योग एक के बराबर होगा।

या, $MPC + MPS = 0.7 + 0.3 = 1$

सीमान्त उपभोग की प्रवृत्ति + सीमान्त बचत की प्रवृत्ति = 1।

या, 1 – सीमान्त उपभोग की प्रवृत्ति = सीमान्त बचत की प्रवृत्ति

या, $1 - \; + \frac{\Delta S}{\Delta Y} = \frac{\Delta C}{\Delta Y}$

या, $1 - \; + \frac{\Delta C}{\Delta Y} = \frac{\Delta S}{\Delta Y}$

यदि आय में 1/2 के बराबर वृद्धि होती है तो उपभोग पर व्यय की सीमान्त उपभोग की प्रवृत्ति 1/2 होगी।

इस प्रकार, MPS = 1 – MPC = 1 - 0.5 = 0.5

(स) औसत उपभोग की प्रवृत्ति तथा औसत बचत की प्रवृत्ति के बीच सम्बन्ध

निम्नलिखित सम्बन्ध APC + APS = 1को दिखाते हैं। जैसा कि आप जानते हैं कि

C + S = Y (आय या तो उपभोग होगा या बचत होगा)

स्मीकरण में Y से दोनों पक्षों से भाग देने पर, आप पायेगें,

$$\frac{C}{Y} + \frac{S}{Y} = \frac{Y}{Y},$$

$$APC + APS = 1$$

18.6 उपभोग के प्रवृत्ति के निर्धारक

उपभोग की प्रवृत्ति को व्यापक रूप से वर्गीकृत किया जा सकता हैः

1 व्यक्तिपरक कारक

व्यक्तिपरक कारक वे कारक है जो मानवीय प्रकृति के मनोवैज्ञानिक गुण तथा सामाजिक प्रणाली तथा समाजाकि संस्थाओं से सम्बन्धित हैं। ये कारक उन परिस्थितियों से सम्बन्धित है जो व्यक्ति तथा व्यापारिक संस्थाओं से कम उपभोग तथा अधिक बचत पर कार्य करती है। ये कारक उपभोक्त वक्र के ढ़ाल तथा स्थिति को निर्धारित करता है। ये निर्धारक दो भागों में विभाजित होते हैं।

(क) व्यक्तिगत कारकः निम्नलिखित कारक किसी व्यक्ति के उपभोग तथा बचत को प्रभवित करता हैः

1. **दूरदृष्टिः** भविष्य अनिश्चित है। अतः व्यक्ति अपनी प्रत्याशित आवश्यकताओं की ध्यान में रखकर बचत को उपहार के रूप में संग्रहित करता है। यह बचत उपभोग के हिस्से में से हीं किया जाता है।
2. **आर्थिक स्वतंत्रताः** कुछ व्यक्ति कम खर्च करते हैं तथा अधिक वचत करते हैं ऐसा इस लिए क्योंकि वे अन्य वित्तीय स्त्रोंतो पर निर्भर नहीं है।
3. **भविष्य में आय बढ़ने की सम्भावनाः** लोग कम उपभोग करते हैं तथा अधिक बचत करते हैं जिसे वे भविष्य में निवेश करके अपनी सम्पत्तियों में विस्तार करते हैं। या उधार दे कर व्याज कमाते हैं।
4. **व्यावसायिक उद्देश्यः** नये व्यापार शुरू करने के उद्देश्य से लोग कम व्यय तथा अधिक बचत प्रारम्भ कर देते हैं।
5. **अच्छे भविष्य के लिएः** लोग अपने बच्चों के अच्छे भविष्य के लिए अधिक बचत की बढ़ावा देते हैं।
6. **दरिद्रताः** कुछ लोग प्रकृति से कंजूस होते हैं, अतः वे कम उपभोग की अपेक्षा अधिक बचत को बढ़ावा देते है।
7. **सामाज में स्थितिः** वर्तमान विश्व में मनुष्य का जीवन स्तर उसकी सम्पत्तियों द्वारा निर्धारित होता है और मनुष्य अपनी सम्पत्तियों में वृद्धि करता है, जिसके कारण अधिक बचत करेगी तथा कम व्यय करेगा।
8. **ऐतिहाती उद्देश्यः** मानव अपनी भविष्य की अनिश्चिताओं को देख कर अधिक बचत को बढ़ावा देगा और उपभोग कम करेगें।

(ख) व्यापारिक कारक

व्यापारिक कारक बचत तथा उपभोग को प्रभावित करने वाले कारक निम्नलिखित हैं:

1. **व्यापार का विस्तारः** व्यापारी अपने व्यापार के बिस्तार करने के लिए बचत करक पूंजी संवर्धन के माध्यम अपने व्यापार विस्तार करेगा।
2. **तरलता अधिमानः** भविष्य की सम्भावनाओं को ध्यान में रखकर व्यापारिक फर्म अपने सम्पति को नगद के रूप में रखती है तथा वे उपभोग को कम करते हैं।
3. **वित्तीय सावधानीः** एक समझदार व्यापारी घिसावट से निपटने के लिए तथा मशीनों के मरम्मत के लिए कुछ रूपयों को बचत के रूप में रखता है।
4. **आधुनिकीकरणः** व्यापारिक फर्म नये मशीनों को प्रयोग में लाने के लिए बचतों को बढ़ावा देती है। जो पुराने मशीनों के स्थान पर लाये जाते हैं।

अल्पकाल में, मनोवैज्ञानिक कारक स्थिर रहते हैं। जैसा कि कीन्स महसूस किया कि मानवीय प्रकृति के वे मनोवैज्ञानिक गुण तथा वे सामाजिक प्रथा व संस्थाएं जो अपरिवर्तनीय है जो असामान्य स्थिति तथा क्रान्तिकारी परिस्थितियों में अल्पकाल में भी वस्तुओं को उपभोग में परिवर्तन का अनुभव किया जाता है।

(ग) वस्तुनिष्ठ कारक

आपत्ति कारकों के कारण उपभोग की प्रवृत्ति उपभोग वक्र में कमी या अधिकता को बताती है। अन्य शब्दों में उपभोग वक्र में परिवर्तन होगा।

1. **जब मौद्रिक आय में परिवर्तन होः** जब आय बढ़ती है तो उपभोग भी बढ़ता है तथा जब आय घटती है तो उपभोग भी घटता है। जबकि उपभोग में वृद्धि की प्रवृत्ति आय में वृद्धि की तुलना में कम होती है। इस कारण

व्यक्ति की न्यूनतम आवश्यकताओं की पूर्ति होने की स्थिति के बाद जो आय बचती है वह बचत करता है।

2. **वास्तविक आय में परिवर्तनः** जब वस्तुओं की कीमतें गिरती है तो मौद्रिक मूल्य में वृद्धि हो जाती है। अन्य शब्दों में उसकी वास्तविक आय बढ़ जाती है। इसके परिणामस्वरूप वे अपनी उपभोग पर अधिक खर्च करने लगते है। जब वस्तुओं की कीमतें बढ़ती है तो उसकी मौद्रिक मूल्य में कमी दर्ज होती है। अन्य शब्दों में वास्तविक आय घट जाती है। इसके परिणामस्वरूप उसका उपभोग पर खर्च कम हो जाता है।
3. **आय के वितरण में परिवर्तनः** आय के वितरण में परिवर्तन भी उपभोग की प्रवृत्ति को प्रभावित करता है। यदि आय का वितरण समान है तो उपभोग की प्रवृत्ति अधिक होगी। उसी प्रकार यदि आय का वितरण असमान है तो उपभोग की प्रवृत्ति में कमी होगी तथा धनी व्यक्तियों के पास राष्ट्रीय आय का अधिक बड़ा भाग होगा। अतः धनी व्यक्तियों की अपेक्षा गरीब व्यक्ति की उपभोग की प्रवृत्ति अधिक होगी।
4. **अप्रत्याशित लाभ व हानिः** अप्रत्याशित लाभ में वृद्धि के परिणामस्वरूप उपभोग की प्रवृत्ति में वृद्धि होगा तथा अप्रत्याशित हानि से उपभोग की प्रवृत्ति में कमी होगा।
5. **निगम की वित्तीय नीतियांः** निगम की वित्तीय नीतियां भी उपभोग की प्रवृत्ति को प्रभावित करती है। यदि निगम अपने लाभ को शेयरधारकों के बीच बराबर बांटने की नीति बनाती है तो उपभोग की प्रवृत्ति में वृद्धि होगी। ठीक उसी प्रकार यदि अपने लाभ नहीं बांटती है तथा उसके अपने पास आय के रूप में संग्रह करती है तो शेयर धारक को हानि होगी जो उपभोग की प्रवृत्ति को घटायेगी।
6. **प्रत्याशा में परिवर्तनः** व्यक्तियों का भविष्य के सन्दर्भ में प्रत्याशा भी उपभोग की प्रवृत्ति को प्रभावित करती है। यदि व्यक्ति भविष्य में युद्ध होने की सम्भावना या भविष्य में वस्तु की मात्रा में कमी की सम्भावना को देखना है तो वह वस्तुओं का संग्रह शुरू कर देता है, जो वर्तमान समय की उपभोग की प्रवृत्ति को बढ़ा देती है।
7. **राजकोषीय नीतियांः** यदि सरकार प्रगतिशील कर प्रणाली या बड़े पैमाने पर सामाजिक सुरक्षा योजनाओं में व्यय करने वाली राजकोषीय नीति बनाती है तो आय की वितरण समान रूप से होगा जो अधिक उपभोग की प्रवृत्ति में वृद्धि होगी।
8. **ब्याज दर में परिवर्तनः** ब्याज की दर में परिवर्तन उपभोग की प्रवृत्ति को प्रभावित करता है। किन्तु यह नहीं कहा जा सकता है कि उपभोग की प्रवृत्ति में कमी या वृद्धि हो रही है। यह सम्भव है कि जब ब्याज दर में वृद्धि व्यक्तियों को अधिक बचत के लिए प्रोत्साहित करती है तथा कम उपभोग को बताता हैं। ब्याज दर में कमी बचत को हतोत्साहित तथा उपभोग को प्रोत्साहित करता है। ठीक उसी प्रकार यदि आय स्थिर है तो ब्याज द अधिक बचत को प्रोत्साहित करेगी एवं उपभोग को हतोत्साहित करेगी। जब ब्याज की दर कम होती है तो लोग कम बचत करेगें तथा अधिक उपभोग करेगें जब अधिक उपभोग होगा तो ब्याज दर अधिक

होगी, तो यह बताता है कि ब्याज की दर में परिवर्तन उपभोग की प्रवृत्ति को प्रभावित करेगी।

9. **मजदूरीः** परम्परागत अर्थशास्त्रियों के अनुसार मजदूरी में कटौती अर्थिक उपभोग की प्रवृत्ति को बढ़ावा देगी। उनके कथन के अनुसार मजदूरी में कमी कीमत में कमी लायेगा जो उपभोग की प्रवृत्ति को बढ़ायेगी। किन्तु कीन्स के अनुसार, मजदूरी कटौती का सिद्धान्त एक फर्म के मजदूरों के लिए सहीं हो सकता है। किन्तु सम्पूर्ण अर्थव्यवस्था पर इसका लाभ होगना उत्पादन में कमी लायेगा। इस कथन के अनुसार मजदूरी में कटौती उपभोग की प्रवृत्ति में कमी लायेगा। मजदूरी कटौती के सन्दर्भ में श्रमिकों की आय तथा गरीबों की आय में कमी होगी तथा आय का वितरण धनी वर्ग के पक्ष में जायेगा जिसकी उपभोग की प्रवृत्ति कम हैं। इसके परिणाम स्वरूप उपभोग की प्रवृत्ति में कमी आयेगी।

10. **तरल सम्पत्तियांः** नव परम्परागत अर्थशास्त्रियों मुख्यतः पीगू के अनुसार जब कीमत गिरती है तो तरल सम्पत्तियों जैस (नगद, बचत खाता, सरकारी बॉण्ड तथा शेयर) का वास्तविक मूल्य बढ़ता है। इस प्रकार, वह आर्थिक खर्च करेगा जो अधिक उपभोग की प्रवृत्ति को बढ़ाता है। इसे पीगू प्रभाव या वास्तविक शेष प्रभाव कहते हैं। आधूनिक अर्थशास्त्र प्रमुखताः कीन्स ने इसकी आलोचना किया है।

    कीन्स के अनुसार (1) अधिकांश लोगों के पास न तो नगद मुद्रा होती है और न हीं बैंक जमाएं। (2) यहां तक यह भी मानते है कि लोगों के पास नगद शेष होगा जो उपभोग पर व्यय करेगा। अतः वह कम व्यय करेगा यह स्पष्टरूप से नहीं कहा जा सकता है कि उपभोग की प्रवृत्ति में वृद्धि करेगा। जैसा पीगू ने कहां था ठीक उसका उल्टा है।

11. **समाजिक सुरक्षा एवं जीवन बीमाः** अपने जीवन को सुरक्षित करने के लिए लोग अपनी आय का एक हिस्सा भविष्य निधि में लगाते है या जीवन बीमा के प्रीमियम की किस्तों के भुगतान में लगाते हैं। इस से उनके उपभोग की प्रवृत्ति घटती है।

12. **नये वस्तुओं के प्रति आकर्षणः** जब कोई नई वस्तु बाजार में आती है लोग इसे भारी मात्रा में क्रय करते हैं। नई वस्तु का बाजार में आना इसका प्रदर्शन प्रभाव ही है जिसके कारण उपभोग की प्रवृत्ति बढ़ती है।

13. **साख एवं किस्त सुविधाएंः** यदि लोग वस्तुओं के क्रय के लिए साख और किस्त जैसे सुविधाएं प्राप्त कर पाये जो उनके उपभोग की सीमान्त प्रवृत्ति बढ़ जायेगी क्योंकि वे खरीद सम्बन्धी कार्य कर पायेगें।

14. **भविष्य के आय के सम्बन्ध प्रत्याशाः** यदि लोग वस्तुओं के क्रय के लिए साख और किस्त जैसे सुविधाएं प्राप्त कर पाये जो उनके उपभोग की सीमान्त प्रवृति बढ़ जायेगी क्योंकि वे खरीद सम्बन्धी कार्य कर पायेगें। उपभोग की प्रवृति भविष्य की आय की प्रत्याशा पर भी निर्भर करेगें। यदि लोग भविष्य में अधिक आय की आशा करते हैं तब वे अपने वर्तमान आय का अधिक हिस्सा को व्यय करेगें तथा कल हिस्से को बचायेगें। जो उनके उपभोग के प्रवृत्ति को बढ़ा देती है। उसी प्रकार यदि वे भविष्य में कम आय की आशा करते हे तो उनके उपभोग की प्रवृत्ति में कमी आये भी।

15. **वस्तुओं की उपलब्धताः** यदि कुछ वस्तुओं की पूर्ति नियंत्रित कर दी जाये तो लोग उन वस्तुओं की स्थिर मात्रा से अधिक उपभोग नहीं कर सकते है। अधिक उपभोग की सम्भावना नियंत्रित हो जायेगी तथा उपभोग की प्रवृत्ति घटेगी। ठीक इसी प्रकार यदि नये उत्पाद प्रर्याप्त मात्रा में उपलब्ध है तो उपभोग की प्रवृत्ति बढ़ने की होती है।
16. **यातायात के साधनों का विकासः** उपभोग की प्रवृत्ति यातायात के साधनों के विकास से भी प्रभावित होता है। जब वस्तुएं एवं सेवाएं देश के प्रत्येक भाग वे उपलब्ध हो तो उपभोग की प्रवृत्ति में भी वृद्धि बाध्यकारी हो जाती है।
17. **टिकाउ उपभोग वस्तुओं का स्टॉकः** जब लोगों के पास टिकाउ उपभोग वस्तओं जैसे रेफ्रीजेरेटर, कूलर, एयर कंडीसनर, टेलीविजन सेट इत्यादि का स्टॉक हो तो वे और टिकाउ वस्तु को प्राप्त करने का प्रयास नहीं करेगें। अतः उपभोग की प्रवृत्ति गिर जायेगी।
18. **फैशन और रूचि में परिवर्तनः** लोगों के फैशन और रूचि में परिवर्तन भी उपभोग की प्रवृत्ति परिवर्तित करता है। ऐसा फैशन जो प्रमुख रूप से प्रचलित हो उपभोग की प्रवृति को बढ़ा देता है।
19. **जनसंख्या में परिवर्तनः** जनसंख्या मं वृद्धि का अर्थ समग्र मांग में वृद्धि के परिणामस्वरूप उपभोग की प्रवृत्ति में वृद्धि हाती है। जनसंख्या की संरचना में परिवर्तन भी उपभोग फलन को प्रभावित करता है। यदि युवा व्यक्तियों की संख्या मं बूजूर्गों की अपेक्षा वृद्धि होती है तो उपभोग की प्रवृत्ति बढ़ जायेगी।
20. **स्थिर और परिवर्तनशील आयः** ऐसा देखा गया है कि ऐसे लोग (कृषक) जिनकी आय परिवर्तनशील होती है कि उपभोग की प्रवृति स्थिर आय वाले से कम होती है।

18.7 उपभोग का मनोवैज्ञानिक नियम

कीन्स द्वारा प्रतिपदित समग्र उपभोग एवं आय के बीच सम्बन्ध को उपभोग का मूलभूत (मनोवैज्ञानिक) नियम कहते हैं। इस नियम के अनुसार जब आय बढ़ती है, तो उपभोग भी बढ़ता है, परन्तु आय में हुई वृद्धि की अपेक्षाकृत कम तेजी से। कीन्स के शब्दों में, ''समुदाय की मनोवृत्ति ऐसी होती है कि जब समग्र वास्तविक आय बढ़ती है तो समग्र उपभोग भी बढ़ती है, परन्तु उतना नहीं जितना आय।''

1 मान्यतायें

कीन्स का उपभोग का मनोवैज्ञानिक नियम निम्न तीन मान्यताओं पर आधारित हैः

1. मनोवैज्ञानिक एवं सस्थानिक दशाओं में कोई परिवर्तन नहीं होता है। इसका आशय यह है कि आय में होने वाले परिवर्तन को छोड़कर मनोवैज्ञानिक तथा संस्थानिक दशाओं जैसे कि जनसंख्या, लोगों की आदतें, रूचि, फैशल, रीति–रिवाज, आय वितरण की प्रक्रिया आदि में कोई परिवर्तन नहीं होता है।
2. सामान्य दशायें वृद्धिमान है। इसका अर्थ है कि युद्ध या शीत युद्ध, अभिवृद्धि राजनीतिक अस्थिरिता, क्रान्ति का खतरा नही हैं। दूसरे शब्दों में यह नियम केवल सामान्य दशाओं में हीं लागू होता है।
3. अहस्तक्षेप की नीति पर आधारित एं समृद्ध पूंजीवादी अर्थव्यवस्था है। यह नियम स्वतंत्र एवं समृद्ध अर्थव्यवस्थाओं में लागू होता है। इसका अर्थ है

कि यह नियम समाजवादी या अल्पविकसित अर्थव्यवस्थाओं में ठीक प्रकार से लागू नही होता है। एक मुक्त अर्थव्यवस्था में लोग अपनी आवश्यकताओं एवं आकाक्षाओं के अनुसर वस्तुओं का उपभोग कर सकते है। आर्थिक क्रिया–कलापों में सरकारी हस्तक्षेप नहीं होता है।

2 नियम की व्याख्या

इस नियम की व्याख्या आग दी गई सारणी 18.4 एवं रेखाचित्र 18.7 द्वारा किया गया है।

आय (Y) (करोड़ रू. में)	उपभोग (C) (करोड़ रू. में)	बचत (S) (करोड़ रू. में)
0	50	–50
50	75	–25
100	100	0
150	125	25
200	150	50
250	175	75
300	200	100
350	225	125

उपरोक्त सारण से स्पष्ट है कि उपभोग में होने वाली आनुपातिक वृद्धि आय में होने वाली आनुपातिक वृद्धि से कम है। प्रारम्भ में जब आय बहुत कम है तो उपभोक्ता अपने उपभोग व्यय को पूर्व में की गई बचतों या ऋणों के माध्यम से पुरा करता है। बाद में आप को यह स्पष्ट होगा कि उपभोग में वृद्धि घटती हुई दर से होती है।

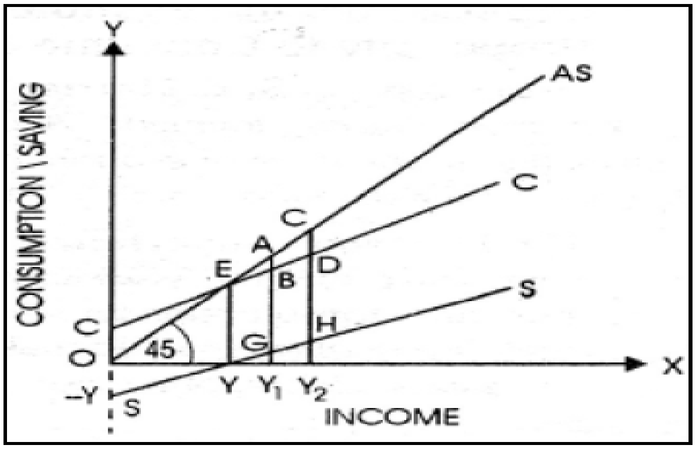

चित्र 18.7

रेखाचित्र 18.7 में आय को OX अक्ष तथा उपभोग/बचत को OY अक्ष पर दर्शाया गया है। CC उपभोग वक्र तथा SS बचत वक्र को प्रदर्शित करते हैं। AS समग्र पूर्ति वक्र है। जब आय शून्य है, तब उपभोग शून्य से अधिक है, अर्थात् OC, जबकि बचत नकारात्मक है। जब आय का स्तर OY हो जाता है तो उपभोग आय के बराबर हो जाता है और इसलिए बचत शून्य हो जाती है। इसी प्रकार जब आय बढ़कर OY_1 हो जाती हैं, तब उपभोग BY_1 तथा बचत GY_1 हो जाती है। जैसे हीं आय आगे बढ़कर पुनः; OY_2 के स्तर को प्राप्त करती है, उपभोग व्यय भी बढ़कर DY_2 तथा बचत HY_2 हो (CD) हो जाती है। इससे स्पष्ट है कि उपभोग

में होने वाली वृद्धि आय में होने वाली वृद्धि (आनुपातिक) से कम है। परिणामस्वरूप बचत बढ़ती जाती है।

3 नियम के तर्कवाक्य (प्रस्ताव)

रेखाचित्र एवं सारणी से यह बात प्रमाणित होती है कि उपभोग के मनोवैज्ञानिक नियक के तीन तर्क वाक्य हैः

1. बढ़ी हुई समग्र आय, समग्र उपभोग को बढ़ती है, लेकिन कम मात्रा में। जब समग्र आय बढ़ती है तो समग्र उपभोग भी बढ़ा है लेकिन उपभोग में हुई वृद्धि आय की अपेक्षाकृत कम होती है। कारण यह है कि जब लोगों की मूलभूत आश्यकताओं पूरी हो जाती है, तो अतिरिक्त आय कम उपभोग को आकर्षित करती है। परिणामस्वरूप अधिक आय का परिणाम कम उपभोग तथा अधिक बचत होता है।
2. बढ़ी हुई आय उपभोग तथा बचत के बीच बँट जाती है। यह तर्क वाक्य पहले वाले पर हीं आधारित है, जब समग्र आय बढ़ती है तो उपभोग में वृद्धि आय में वृद्धि के अनुपात से कम होती है। आय का वह हिस्सा जो व्यय नहीं किया जाता बचत कहलाता है। इसलिए यह व्यय जाता है कि आय में होने वाली वृद्धि उपभोग और बचत में बढ़ जाती है।
3. यह असंभव है कि समग्र आय में होने वाली कोई वृद्धि पहले की अपेक्षाकृत उपभोग या बचत में कमी लाये। इसका अर्थ है कि समग्र आय में होने वाली वृद्धि उपभोग एवं बचत में वृद्धि लायेगी। यह असंभव है कि जब आय बढ़ जाती है, तो बचत एवं उपभोग कम हो जाये।

कीन्स के नियम के तीनों तक वाक्यों मे से पहला सबसे महत्पूर्ण एवं मूलभूत है। अन्य दो तक वाक्य इसके स्वाभाविक परिणाम है।

उपभोग फलन का महत्व

निम्न जानकारी आपको उपभोग फलन की सार्थकता के बारे में अनुमान प्रदान करेगें:

1. **निवेश का रणनीतिक महत्वः** यह नियम एक अर्थव्यवस्था में निवेश के रणनीतिक सार्थकता की व्याख्या करता है। जैसा कि आप जानते हैं, आय व रोजगार निवेश पर निर्भर करता है। अल्पकाल में उपभोग स्थिर रहता है, अतः रोजगार बढ़ने के लिए आवश्यक है कि निवेश में वृद्धि लाई जाये। अर्थव्यवस्था में आय एवं व्यय के बीच के अन्तर को बराबर निवेश किया जाना बहुत हीं आवश्यक है, अन्यथा, मांग कम ही होती जायेगी और बेरोजगारी पूरी अर्थव्यवस्था में फैल जायेगी।
2. **सामान्य से अधिक उत्पादन एवं बेरोजगारी की संभावनाः** इस नियम के अनुसार समग्र आय में वृद्धि के साथ उपभोग व्यय में उतनी वृद्धि नहीं होती, जितनी आय में होती हैं। इसका अर्थ है कि अर्थव्यवस्था में कुछ वस्तुएं ऐसी होती है, जिनके लिए कोई क्रेता नहीं होता है। उपभोग की सीमान्त प्रवृति का 1 से कम होना यह भी स्पष्ट करता है कि अर्थव्यवस्था में उत्पादित किया गया कुल निर्गत खरीदा नहीं जा सकता है। अतः अधिक उत्पादन की सदैव संभावना बनी रहती है। सामान्यतः अधिक उत्पादन आगे सामान्य बेरोजगारी का कारण बनता है।
3. **'से' के बाजार नियम का खण्डनः** कीन्स के उपभोग का मनोवैज्ञानिक नियम 'से' के बाजार नियम का खण्डल करता है। से के अनुसार, ''पूर्ति

अपनी मांग का सृजन स्वयं कर लेती है।'' दूसरे शब्दों में उपभोग की सीमान्त प्रवृति 1 के बराबर होती है, परन्तु उपभोग के मनोवैज्ञानिक नियम के अनुसार उपभोग की सीमान्त प्रवृति का मान 1 से कम होता है अर्थात उपभोग के लिए मांग में वृद्धि उस अनुपात में नहीं होती है, जिस अनुपात में आय या पूर्ति में वृद्धि होती है। इसलिए यह आवश्यक नहीं कि समग्र मांग सदैव समग्र पूर्ति के बराबर हो।

4. **पूंजी की सीमान्त दक्षता में कमीः** यह नियम पूंजी की घटती सीमान्त दक्षता के परिकल्पना को भी व्यक्त करता है। जब निवेश में वृद्धि होती है, तो आय एवं उत्पादन में भी वृद्धि होती है, लेकिन लोग अपने उपभोग में वृद्धि उस अनुपात में नहीं करते, जिस अनुपात में आय में वृद्धि होती है। परिणामस्वरूप समग्र मांग में कमी आती है। समग्र मांग में आई कमी उत्पादकों के न बिके हुये उत्पादों को, उत्पादकों को कम कीमत पर बेचने हेतु मजबूर करती है, यह भविष्य की प्रतयाशित लाभदेयता में कमी लाती है, जो आगे पूंजी की सीमान्त दक्षता में कमी का कारण बनता है।

5. **कम रोजगार (बेरोजगारी के साथ) संतुलनः** उपभोग का मनोवैज्ञानिक नियम कम रोजगार के साथ संतुलन के संभावनाा की भी व्याख्या करता है। कम रोजगार के साथ संतुलन का अर्थ कि एक ऐसी स्थिति जिसमें पूर्णरोजगार के स्तर पर पहुंचने के पहले हीं समग्र मांग समग्र पूर्ति के बराबर हो जाती है। ऐसा तब होता है, जब समग्र मांग में की होने की प्रवृति के साथ यह पूर्णरोजगार से कम स्तर पर समग्र पूर्ति के बराबर होती है। समग्र मांग में कमी के दो कारण हैः (अ) पूंजी की सीमान्त दक्षता में कमी के कारण निवेश में कमी आना एवं (ब) उपभोग उसी अनुपात में नहीं बढ़ता जिस अनुपात में आय बढ़ती है।

   गिरते हुये निवेश एवं उपभोग का परिणाम यह होता है कि समग्र मांग पूर्णरोजगार स्तर से महले ही समग्र पूर्ति के बराबर हो जाती है।

6. **अधिक बचत अन्तरालः** यह नियम विकसित अर्थव्यवस्थओं में पाये जाने वाले अधिक बचत अंतराल की भी व्याख्या करता है। इन अर्थव्यवस्थाओं में आय तेजी से बढ़ती है, परन्तु उपभोग में होने वाली वृद्धि आये में होने वाली वृद्धि की तुलना में कम होती है। अतः बचत का संचय होता जाता है। अधिक तेजी से बढ़ती बचत का परिणाम यह होता है कि समग्र मांग समग्र पूर्ति से कम रह जाती है, कीन्स के अनुसार अत्याधिक बचत अवसाद एवं बेरोजगारी लाता है।

7. **व्यापार चक्रो के मोड बिन्दुः** इस नियम के आधार पर आप व्यापार चक्रों के मोड़ बिन्दुओं की व्याख्या कर सकते हैं। जब व्यापार चक्र अपनी उच्चतम सीमा पर पहुंचता है तो आय उच्चतम होती है, पर उपभोग कम रह जाता है, परिणामस्वरूप वस्तुओं के लिए मांग कम हो जाती है और व्यापार चक्र नीचे की ओर मुड़ जाता है। जब यह न्यूनतम सीमा पर पहुंचता हैतो आयम में अत्याधिक कमी आ जाती है, पर लोग अपने पूर्व जीवन स्तर को बनाये रखने का हर संभव प्रयास करते हैं, इस कारण से उपभोग में उतनी कमी नही आती जितनी आय में कमी होती हैं। मांग में

एक न्यूनतम स्तर से ज्यादा कमी नहीं आ सकती, जिससे व्यापार चक्र उपर की ओर मुड़ जाता है।

8. **सतत् गतिहीनताः** यह नियम सतत् गतिहीनता के नियम की भी व्याख्या करता है। इस नियम के अनुसार उपभोग व्यय आय में होने वाली वृद्धि से कम बढ़ता है, परिणामस्वरूप बचत तेजी से बढ़ता है। एक समय ऐसा आता है, जब उद्यमियों के लिये अत्याधिक बचत का निवेश करने के लिए प्रयाप्त संभावनायें नहीं नजर आती है। निवेश की दृष्टि से अर्थव्यवस्था संतृप्त बिन्दु पर पहुंच जाती है। जब कोई भी निवेश हनी होगा तो अर्थव्यवस्था में रोजगार के स्तर को बनाये नहीं रखा जा सकेगा। यह स्थिति सतत् गतिहीनता की स्थिति कही जाती है।

9. **सरकारी हस्तक्षेपः**यह नियम अहस्तक्षेप की नीति का भी खण्डल करता है, क्योंकि उपभोग आय से कम होता जाता है, इसलिए अर्थव्यवस्था में स्वतः समायोजन संभव नहीं हो पाता। अवसाद या अभिवृद्धि की दशा में सरकारी हस्तक्षेप अति आवश्यक हो जाता है।

10. **आय सृजन की अद्वितीय प्रक्रियाः** उपभोग की सीमान्त प्रवृति का दृष्टिकोण आय सृजन की प्रक्रिया का मूल वाहक होता है। अर्थव्यवस्था में एक प्रारम्भि निवेश के परिणामस्वरूप आय में वृद्धि होती है तो निवेश में हुई वृद्धि की तुलना में कई गुना अधिक होता है। इसे गुण कहा जाता है। गुणक की धारणा उपभोग की सीमान्त प्रवृत्ति पर आधारित है, अर्थात्

$$K = \frac{1}{1-MPC}$$

जहां, K = गुणक

उपभोग की सीमान्त प्रवृत्ति (MPC) जितना अधिक होगी, गुणक का मान उतना ही अधिक होगा अर्थात् आय में उतनी वृद्धि होगी। आप यह जानते ही है कि उपभोग की सीमान्त प्रवृत्ति का मान 1 से कम होता है, परिणामस्वरूप आय सृजन की प्रक्रिया सतत् नहीं होती है। जब प्रारंम्भि निवेश होता है, तो चूंकि इसमें रिसाव होते हैं, इसलिए आय उतनी तेजी से नहीं बढ़ती जितना तेजी से बढ़ सकती थी। यदि उपभोग की सीमान्त प्रवृति 1 के बराबर हो तो आय सृजन की प्रक्रिया सतत् होगी, जिसका परिणाम यह होगा कि अर्थव्यवस्था बढ़ कर पूर्णरोजगार स्तर तक पहुंच जायेगी और उससे आगे बढ़कर बिस्फोटक स्थिति में पहुंच जायेगी।

11. **निवेश का प्रेरित होनाः** इस नियम के अनुसार विकासशील देशों में उपभोग की सीमान्त प्रवृति अधिक होती है, इसलिए इन देशों में निवेश की आपार संभावनाएं है। यह कोई आश्चर्य की बात नही कि इन देशों में निवेश की पर्याप्त संभावनाएं है।

18.8 उपभोग की प्रवृत्ति को बढ़ाने के उपाय

आय एंव रोजगार बढ़ाने के लिए यह भी आवश्यक है कि उपभोग की प्रवृति को बढ़ाया जाये। कीन्स के शब्दों में, ''यद्यपि पूंजी की सीमान्त दक्षता में लगातार कमी के परिप्रेक्ष्य में सामाजिक रूप से उद्देशित नियंत्रित निवेश की दर के साथ उपभोग की प्रवृति को बढ़ाने के लिए मुझे सभी प्रकार के नीतियों का समर्थन करना चाहिए।''

उपभोग की प्रवृति को बढ़ाने के निम्न उपाय हैः

1. **आय कस पुर्नवितरणः** चूंकि उपभोग की प्रवृत्ति निर्धन वर्ग में धनी वर्ग की तुलना मं अधिक होता है। परिणामस्वरूप यदि आय का पुर्नवितरण इस प्रकार हो कि धनी व्यक्ति की आय का कुछ हिस्सा गरीबों को हस्तांतरित कर दिया जाये, तो उपभोग की सीमान्त प्रवृति बढऋ जायेगी।
2. **सामाजिक सुरक्षाः** लोग अपनी वर्तमान आय का कुछ भाग/हिस्सा वृद्धावस्था के लिए या बेरोजगारी के समय जीवन यापन के लिए या बीमारी के दौरान चिकित्सा के लिए बचाते हैं। यदि सरकार या कोई अन्य सामाजिक संस्था लोगों को बेरोजगारी भत्ता, वृद्धावस्था पेंशन या सामाजिक बीमा सुविधायें उपलब्ध करती है, तो उनके उपभोग की सीमान्त प्रवृति बढ़ जायेगी। प्रो. कुरिहारा के शब्दों में, ''समृद्ध औद्योगिक देशों में एक बढ़ती हुई मान्यता है कि अधिक उपभोग या कम बचत वाली अर्थव्यवस्था को प्राप्त करने के लिए व्यापक सामाजिक सुरक्षा प्रणाली की आवश्यकता है। एक सामाजिक सुरक्षा कार्यक्रम सभी समृद्ध पूंजीवादी देशों में सामान्य बचत विरोधाभास के समाधान के रूप में समझी जाती है।
3. **साख सुविधायें:** यदि लोग टिकाउ उपभोक्ता वस्तुओं जैसे कार, टीवी, एयर कंडीशन इत्यादि को खरीदने के लिए साख सुविधायें प्राप्त कर पाये तो उनके उपभोग की सीमान्त प्रवृति को बढ़ाया जा सकता है।
4. **रोजगार नीति/मजदूरी नीतिः** सार्थक रोजगार नीति को अपनाकर सीमान्त उपभोग की प्रवृति को बढ़ाया जा सकता है। इस उपाय को दो परिप्रेक्ष्य में अध्ययन की आवश्यकता हैः (क) अल्पावधि एवं दीर्घावधि। अल्पावधि मं यदि मजदूरी बढायी जाती है, तो यह संभव है कि उपभोग एक बार के लिए बढ़ जाने पर उपभोग की प्रवृत्ति नही बढ़ेगी। ऐसा इसलिए है, क्योंकि अल्पकाल में श्रमिक की उत्पादकता नहीं बढ़ती है, परिणामस्वरूप बढ़ी हुई मजदूरी उत्पादन की लागत को बढ़ा देती है और जिससे उत्पादक कम श्रमिकों को रोजगार में लेगा। इस प्रकार बेरोजगारी बढ़ेगी और उपभोग की प्रवृति बढ़ेगी, लेकिन दीर्घकाल में बढ़ी हुई मजदूरी के साथ सीमान्त उत्पादकता भी बढ़ जाती है बौर इसलिए यह न तो उत्पादन की लागत को बढ़ती है और न हीं उद्यमियों के लाभ में कमी लाती है। इस प्रकार आय एवं रोजगार में कमी नहीं आयेगी। दीर्घकाला में परिणामस्वरूप ऐसी रोजगार नीति अपनाई जानी चाहिए, जो आय का हस्तांतरण गैरश्रमिक वर्ग से श्रमिक वर्ग की ओर करे। ऐसा अधिक प्रगतिशील करों को लगाकर किया जा सकता है। परिणामस्वरूप उपभोग की सीमान्त प्रवृति बढ़ जायेगी।
5. **जनसंख्या में वृद्धिः** जनसंख्या मं वृद्धि के साथ सभी वस्तुओं के मांग में वृद्धि होती है। फलस्वरूप उपभोग की प्रवृति में भी वृद्धि होगी।
6. **प्रदर्शन प्रभावः** प्रदर्शन प्रभाव के अन्तर्गत भी उपभेग की प्रवृति बढ़ती है। जब निर्धन वर्ग के लोग समान वस्तुओं का उपभोग करना प्रारम्भ करते हैं, जैसा कि अमीर वर्ग के लोगों द्वारा किया जाता है तो वे अपनी आय के बड़े भाग पर अटकलें लगाते हैं, जिसके कारण उपभोग की प्रवृति बढ़ती है। इस प्रकार मीडिया के माध्यम से प्रदर्शन प्रभाव डाला जाता है।

7. **शहरीकरण एवं उपनिवेशवादः** शहरी लोगों के उपभोग की प्रवृत्ति ग्रामीण लोगों के उपभोग की प्रवृत्ति से उच्च होती है, क्योंकि शहरी क्षेत्र में विशिष्ट उपभोग के कई अवसर होते हैं। इस प्रकार शहरीकरण एवं उपनिवेशवाद द्वारा उपभोग की प्रवृति को बढ़ाया जा सकता है।
8. **विज्ञापनः** आधूनिक समय में विज्ञापन एवं प्रचार को उपभोग प्रवृति को बढ़ने का एक प्रमुख साधन माना जाता है। यदि विज्ञापन पर व्यय एक संगठित तरीके से किया जाता है, तो यह उपभोग की प्रवृति को बढ़ावा देगा। आधूनिक समय में उद्योगपति अपने उत्पादों के विज्ञापन और प्रचार पर बड़ी मात्रा में खर्च करते हैं, इसके परिणामस्वरूप उपभोक्ता को नई वस्तुओं की जानकारी होती है, और वे उसकी वस्तु का क्रय करते हैं। इस प्रकार यह उपभोग की प्रवृति को अनुकूलतम रूप से प्रभावित करता है।
9. **परिवहन के साधनः** यदि परिवहन के अच्छे/सस्ते साधनों का विकास हो तो वस्तुओं को एक स्थान से दूसरे स्थान पर सरलता स`ले जाया जा सकता है, इससे वस्तुओं के कीमतों में कमी आती है, परिणामस्वरूप उपभोग की प्रवृति में वृद्धि होती है।

18.9 चक्रीय तथा चिरकालिक उपभोग फलन

उपभोग का मनोवैज्ञानिक नियम यह कता है कि जब आय में वृद्धि होता है तो उपभोग में भी वृद्धि होता है। पर उपभोग की वृद्धि दर आय की वृद्धि दर से कम होता है। अर्थात् आय में वृद्धि के कारण सीमान्त तथा औसत उपभोग की प्रवृत्ति कम होती है। इस नियम की सत्यता की जांच के लिए अर्थशास्त्रियों ने उपभोग तथा आय के अल्पकाल तथा दीर्घकाल के आंकड़ों का प्रयोग किया है। तथ्यपरक आंकड़ों के आधार पर उन्होंने यह साबित किया कि अल्पकाल में यह सत्य है पर दीर्घकाल में इसकी उपभोगिता बहुत ही कम है। अन्य शब्दों में, दीर्घकाल में आय मं वृद्धि सीमान्त तथा औसत उपभोग की प्रवृत्ति को कम नही करता है। उपभोग की प्रवृत्ति के वास्तविक प्रकृति को जानने के लिए हमें अल्पकाल व दीर्घकाल दोनों उपभोग फलन के अध्ययन की आवश्यकता है।

(अ) **चक्रीय उपभोग फलनः** श्रद्धीय कीन्स ने केवल अल्पकालीन उपभोग फल का हीं प्रतिपादन किया था। उनके अनुसार अल्पकाल में आय एवं उपभोग के मध्य निम्नलिखित सम्बन्ध पाया जाता है–

1. **आय एवं उपभोग के बीच कोई आनुपातिक सम्बन्ध नहीं पाया जाता हैः** कीन्स मानते थे कि उपभोग मं होने वाला परिवर्तन आय में होने वाले परिवर्तन के समान अनुपात मे नहीं होता है। एक सीमा तक उपभोग व्यय आय से अधिक होता है। इसके बाद यह आय के बराबर हो जाता है और उसके भी बाद जब आप बढ़ती जाती है तो उपभोग–व्यय में कमी आती जाती है। इसे निम्नलिखित बीजगणितीय समीकरण के माध्यम से समझा जा सकता हैः

$$C = C_0 + bY$$

माना कि,

$C_0 =$ 100 करोड़ रूपये, $b =$ 0.5 और $Y =$ 100 करोड़ रूपये।

$$C = 100 + 100 \times 0.5 = 150 \text{ करोड़ रूपये।}$$

अब यदि आय में चार गुणा वृद्धि हो जाए तो ($Y =$ 400 करोड़ रूपये) तब,

$$C = 100 + 400 \times 0.5 = 300 \text{ करोड़ रूपये।}$$

इसका अर्थ है कि उपभोग में होने वाली वृद्धि आय में होने वाली वृद्धि की तुलना मं कम है । रेखाचित्र 19.2 में CC उपभोग वक्र अल्पकालीन उपभोग फलन को प्रदर्शित करता है।

2. **उपभोग की सीमान्त प्रवृति एवं औसत उपभोग प्रवृति घटते हुये होते हैं:** उपभोग फलन की दूसरी विशेषता यह है कि जैसे–जैसे आय बढ़ती जाती है उपभोग की सीमान्त प्रवृति एवं उपभोग की औसत प्रवृति कम होती जाती है।
3. **औसत उपभोग की प्रवृति का मान उपभोग की सीमान्त प्रवृति से अधिक होता है:** अल्पकालीन उपभोग–फलन की तीसरी विशेषता यह है कि उपभोग की औसत प्रवृति का मान उपभोग की सीमान्त प्रवृति की तुलना में अधिक होता है अर्थात् APC > MPC।

   कई अर्थशास्त्रियों जैसे कि टॉबिन, स्मीथिज आदि ने 1929 से 1940 तक की अल्प–अवधि से सम्बन्धित आय एवं उपभोग के आंकड़ों को संकलित किया है। ये आंकड़े कीन्स के इस दृष्टिकोण की अल्पकालीन उपभोग फलन गैर–अनुपातिक होता है, पुष्टि करते हैं।

(ब) **सतत् उपभोग फलन:** 100 वर्ष या उससे भी अधिक अवधि में आय एवं उपभोग के सम्बन्ध को दीर्घकालीन या सतत् उपभोग–फलन कहा जाता है। प्रो. कुजनेट्स, ड्यूसेबेरी, फ्रीडमैन आदि अर्थशास्त्रियों ने आय एवं उपभोग के दीर्घकालीन आंकड़ों के आधार पर यह निष्कर्ष निकाला कि दीर्घकाल में आय एवं उपभोग के बीच का सम्बन्ध आनुपातिक होता है।

सतत् या दीर्घकालीन उपभोग–फलन की निम्न विशेषताएं हैः

1. **आय एवं उपभोग के मध्य आनुपातिक सम्बन्ध:** दीर्घकाल में, आय एवं उपभोग के बीच आनुपातिक सम्बन्ध पाया जाता है। इसका अर्थ है कि दीर्घकाल में उपभोग में होने वाला परिवर्तन आय में होने वाले परिवर्तन से समानुपाती होता है। इसे एक समीकरण के रूप में निम्न प्रकार व्यक्त किया जा सकता है–

   $$C = bY$$

   इसका अर्थ है कि दीर्घकाल में कोई भी स्वायत उपभोग नहीं होता। आय एवं उपभोग के मध्य स्थिर सम्बन्ध पाया जाता है और यह उपभोग की सीमान्त प्रवृति द्वारा निर्देशित होता है। $b = MPC$ ।

   माना कि, $b = 0.5$ और $Y = 100$ करोड़ रूपये, तो
   $C = 0.5 \times 100 = 50$ करोड़ रूपये।
   यदि आय 4 गुणा बढ़ जाय ($Y = 100$ करोड़ रूपये) तो उपभोग भी 4 गुणा बढ़ जायेगा अर्थात् अब $C = 0.5 \times 100 = 50$ करोड़ रूपये। चार गुनी आय में वृद्धि उपयोग में भी चार गुणा वृद्धि लाती है। रेखाचित्र 19.3 में CC उपभोग वक्र दीर्घकालीन उपभोग फलन को प्रदर्शित करता है।
2. **उपभोग की औसत प्रवृत्ति और सीमान्त उपभोग की प्रवृत्ति स्थिर:** दीर्घकालीन औसत उपभोग की प्रवृति तथा सीमान्त उपभोग की प्रवृति का मान स्थिर बना रहता है। आय में वृद्धि होने पर इनमें कमी नहीं आती है।
3. **औसत उपभोग की प्रवृति एवं उपभोग की सीमान्त प्रवृति बराबर होते हैं:** दीर्घकाल मं औसत उपभोग की प्रवृति तथा सीमान्त उपभोग की प्रवृति का मान बराबर होता है, अर्थात् APC = MPC।

(स) **उपभोग की प्रवृति की आलोचनाः** कीन्स के उपभोग की प्रवृति सम्बन्धी दृष्टिकोण की आधूनिक अर्थशास्त्रियों जैसे– हट, हैजलिट आदि द्वारा निम्नलिखित आधारों पर बड़ी कड़ी आलोचना की गई हैः

1. **'प्रवृति' शब्द का प्रयोग उचित नहींः** प्रवृति का अर्थ तो केवल 'झुकाव' होता है परन्तु कीन्स इसका प्रयोग आय के एक हिस्से के रूप में करते हैं। साथ हीं उपभोग की प्रवृति आय के एक दिये स्तर के साथ कुल उपभोग–व्यय की मात्रा को नहीं प्रदर्शित करता है। आय के उस हिस्से को जो पूंजीगत वस्तुओं पर व्यय होती है, उपभोग में नहीं शामिल किया गया।
2. **सामान्य सत्यः** कीन्स का कहना है कि गरीब लोगों की उपभोग की प्रवृति धनी लोगों की तुलना में अधिक होती है। इसमें कोई नई बात नही है। यह तो सभी जानेत है कम आय के कारण गरीब अपनी पूरी आय उपभोग पर हीं व्यय कर देते हैं जबकि धनी वर्ग अधिक आय के कारण अपनी पूरी आय उपभोग पर व्यय नहीं करते हैं।
3. **अवास्तविकः** हैजलिट ने यह भी सिद्ध किया कि यह सिद्धान्त परीक्षओं पर सत्य नहीं ठहरता है। उन्होंने इस बात की पुष्टि अमेरिका के 1944–1955 तक की अवधि से सम्बन्धित आय, उपभोग एवं बचत सम्बन्धी आंकड़ों के आधार पर की आय के बढ़ने के बावजूद बचत में वृद्धि के स्थान पर कमी आई।
4. **सतत् नहींः** इस नियम की आलोचना प्रायः इस आधार पर भी की जाती है कि यह केवल एक अल्पकालीन नियम है। दीर्घकालीन अवधि में मनोवैज्ञानिक एवं संस्थानात्मक कारकों में भी परिवर्तन होता है। इस तरह यह नियम सतत् या दीर्घकाल में सत्य नहीं है।
5. **यह एक धोखा हैः** हैजलिट इस नियम को एक धोखा मानते है। गणितीय समीकरण के रूप में व्यक्त करने से इसकी शुद्धता नहीं व्यक्त होती है। यह एक अस्पष्ट दृष्टिकोण है।

संक्षेप में, हैजलिट द्वारा की गई आलोचनाओं के बावजूद आधूनिक अर्थशास्त्री यह कहते हैं कि उपभोग फलन का दृष्टिकोणा कीन्सवादी–अर्थशास्त्र का सबसे महत्वपूर्ण प्राचल है, मान्यताा प्रदान की। यही वह दृष्टिकोण है जिसके माध्यम से कीन्स ने इस वास्तविकता को कि उपभोग व्यय उस अनुपात में नहीं बढ़ता है जिस अनुपात में आय; का उजागर किया। उपभोग एवं आय के मध्य इस सम्बन्ध के कारण प्रभावी मांग में कमी आती जायेगी (जैसे–जैसे आय बढ़ती जायेगी)। प्रभावी मांग में कमी किसी देश में बेरोजगारी का मुख्य कारण हे। इसलिए किसी देश में पूर्ण रोजगार की स्थिति को बनाये रखने के लिए यह आवश्यक है कि उपभोग की प्रवृति में कमी नहीं आने देना चाहिए। यदि उपभोग की प्रवृति में कमी आती भी है तो इसे निवेश में वृद्धि के द्वारा प्रति–संतुलित करनी चाहिए।

18.10 सारांश

उपभोग एवं निवेश समग्र मांग के दो महत्वपूर्ण घटक हैं। मुद्रा की वह मात्रा जिसे लोग राष्ट्रीय आय के एक भाग के रूप में वस्तुओं एवं सेवाओं के क्रयक पर व्यय करते हैं, समग्र उपभोग व्यय अथवा उपभोग कही जाती है। उपभोग व्यय विभिन्न कारकों या चरों जैसे कि आय, कीमत स्तर, प्रदर्शन–प्रभाव आदि पर निर्भर करता है। फिर भी आय उपभोग को प्रभावित करने वाला सबसे

महत्वपूर्ण चर है। गार्डनर एक्ले के अनुसार, ''यदि हम सम्पूर्ण इतिहास का अवलोकन करे तो यह स्पष्ट है कि उपभोग में उच्चावचन आय के अनुपाती होता है।'' इसका मुख्य कारण यह है कि दीर्घकाल में मनोवैज्ञानिक एवं संस्थागत कारकों में परिवर्तन आता रहता है। अल्पकालीन एंव दीर्घकालीन उपभोग की प्रवृति के बीच सबसे महत्वपूर्ण अन्तर यह है कि दीर्घकाल में सीमान्त एवं औस उपभोग की प्रवृति के बीच सबसे महत्वपूर्ण अन्तर यह है कि दीर्घकाल में सीमान्त एवं औसत उपभोग की प्रवृति एक दूसरे के बराबर होती है अर्थात् औसत उपभोग की प्रवृति = सीमान्त उपभोग की प्रवृति। परिणामस्वरूप दीर्घकाल में आय के सभी स्तरों पर लोगों की प्रवृति इसके एक निश्चित अनुपात को उपभोग करने की होती है। जबकि अल्पकाल में सीमान्त उपभोग की प्रवृति औसत उपभोग की प्रवृति से कम होती है। इस प्रकार जब आय बढ़ती है तो औसत उपभोग की प्रवृति घटती जाती है।

18.11 शब्दावली

उपभोग फलनः यह उस अनुसूची को बताती है जो विभिन्न आय के स्तर पर तथा विभिन्न उपभोग के स्तर के सम्बन्ध को व्यक्त करता है।

व्यक्तिपरक कारकः वे कारक है जो मानवीय प्रकृति के मनोवैज्ञानिक गुण तथा सामाजिक प्रणाली तथा समाजाकि संस्थाओं से सम्बन्धित हैं।

18.12 बोध प्रश्न

(अ) रिक्त स्थानों को भरें

1. उपभोग की प्रवृत्ति उसकी सूची विभिन्न स्तर पर आय और .... के बीच सम्बन्ध को प्रदर्शित करता है।
2. मांग फलन C = f (Y) में f .... को प्रदर्शित करता है।
3. उपभोग की सीमान्त प्रवत्ति सामान्यतया .... से बड़ा होता है।
4. उपभोग का मनोवैज्ञानिक नियम यह मानता है कि जब समग्र आय बढ़ता है तो उपभोग में वृद्धि आय में वृद्धि से .... होता है।
5. .... लोगों को टिकाउ वस्तु के उपभोग के लिए प्रेरित करता है।
6. दीर्घकाल मं कोई भी .... ।

(ब) सत्य या असत्य

1. औसत उपभोग की प्रवृत्ति उपभोग और कुल आय का अनुपात है।
2. धनी वर्ग के उपभोग की प्रवृत्ति गरीब वर्ग से अधिक होती है।
3. व्यापारी लोग व्यापार के विस्तार के लिए मुद्रा की बचत तथा संग्रह करते हैं।
4. उपभोग का मनोवैज्ञानिक नियम केवल सामान्य परिस्थितियों में लागू होता है।
5. श्रम की उत्पादकता अल्पकाल में बढ़ती है।
6. एक निश्चित सीमा तक उपभोग व्यय आय से कम होता है।

18.13 बोध प्रश्नों के उत्तर

(अ) 1. उपभोग का विभिन्न स्तर, 2. उपभोग और आये के बीच फलनात्मक सम्बंध, 3. शून्य, 4. समानुपातिक, 5. साख सुविधायें

(ब) 1. सत्य, 2. असत्य, 3. सत्य, 4. सत्य, 5. असत्य, 6. सत्य।

18.14 स्वपरख प्रश्न

1. उपभोग फलन से आप क्या समझते हैं ? इसके मुख्य विशेषताओं को बतायें।
2. सीमान्त उपभोग की प्रवृत्ति एवं औसत उपभोग की प्रवृत्ति के बीच अन्तर को बतायें। उन कारकों की चर्चा करे जो उपभोग की प्रवृत्ति को दर्शाता है।
3. कीन्स के उपभोग के मनोवैज्ञानिक नियम की चर्चा करें तथा समष्टि आर्थिक विश्लेषण मं इसकी महत्त्व को बतायें।
4. औसत उपभोग की प्रवृत्ति एवं सीमान्त उपभोग की प्रवृत्ति के बीच सम्बन्ध की व्याख्या करें। उपभोग की सीमान्त प्रवृत्ति सामान्यतया नीचे गिरता हुआ क्यों होता है ?
5. सीमान्त उपभोग की प्रवत्ति की आवधारणा की चर्चा करें। आय मं वृद्धि के साथ उपभोग की सीमान्त प्रवृत्ति में क्या अन्तर है ?
6. उपभोग फलन की अवधारण को गणीतय उदाहरणों से समझाइये। यह गुणक से किस प्रकार संबंधित है ?

18.15 सन्दर्भ पुस्तकें

1. Mehta, P.L., Managerial Economics – Analysis, Problem and Cases, Sultan Chand & Sons, New Delhi.
2. H.L. Ahuja, Business Economics Micro- S. Chand & Co. Ltd., New Delhi, 1999.
3. S.K., Mishra and V.K. Puri, Advanced Microeconomic Theory, Himalaya Publishing House, Mumbai, 2001.
4. Drucker, Peter F., Practice of Management, Heinemann: London.
5. Reddin, W.J. Effective Management by Objectives. Tata McGraw Hill, New Delhi.
6. Seo K.K. Managerial Economics, Surjeet Publications, Delhi, 1938.
7. Dillard Dudley – The Economic of John Maynere Keynes, 1960.
8. Edward Shaprio, Macroeconomic Analysis (1960).
9. Hansen, Alvian H., A Guide to Keynes, (1953).
10. Keynes, J. M., General Theory of Employment, Interest and Money, (1936).
11. Jhingan, M. L. Advanced Economic Theory, Vrinda Publications (P) Ltd., New Delhi.

*****

इकाई 19 निवेश फलन एवं IS-LM रूपरेखा

इकाई की रूपरेखा

19.1 प्रस्तावना
19.2 निवेश का अर्थ
19.3 निवेश का वर्गीकरण
19.4 निवेश की प्रवृति
19.5 निवेश की प्रवृति के प्रकार
19.6 निवेश के निर्धारक
19.7 निवेश फलन
19.8 IS-LM रूपरेखा
19.9 सामान्य सन्तुलन
19.10 सारांश
19.11 शब्दावली
19.12 बोध प्रश्न
19.13 बोध प्रश्नों के उत्तर
19.14 स्वपरख प्रश्न
19.15 सन्दर्भ पुस्तकें

उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप इस योग्य हो सकेंगे कि –

- निवेश का अर्थ की व्याख्या कर सकें।
- निवेश का वर्गीकरण कर सकें।
- निवेश के निर्धारक की पहचान कर सकें।
- IS-LM के प्रारूप को समझ सकें।

19.1 प्रस्तावना

प्रत्येक अर्थव्यवस्था में आर्थिक विकास और पूर्ण रोजगार के उद्देश्य को प्राप्त करने क लिए निवेश एक महत्वपूर्ण भूमिका अदा करता है। निवेश में वृद्धि का परिणाम ने केवल समग्र मांग में वृद्धि करती है बल्कि समग्र पूर्ति में भी वृद्धि लाती है। इस तरह से निवेश अर्थव्यवस्था में वर्तमान वृद्धि को दर्शाती है। इस इकाई के अन्तर्गत निवेश के विभिन्न आयाम के विश्लेषण के साथ हिक्स और हेन्सन द्वारा प्रतिपादित IS-LM मॉडल का अध्ययन करेगें।

19.2 निवेश का अर्थ

सामान्यतया निवेश का अर्थ विभिन्न प्रकार के शेयर तथा स्टॉक का क्रय आथ्र पूंजी जनित क्रियाकलापों जिससे आय प्राप्त होती है, जबकि कीन्स ने निवेश शब्द का प्रयोग विशेष रूप में किया और उनके अनुसार, एक व्यक्ति अपने संसाधनों को दो प्रकार से निवेश करता है।

(1) वह मौजूदा कम्पनी या पुरानी कम्पनी के शेयर या स्टॉक खरीदना चाहता है।

(2) वह अपने सम्पति का निवेश नई मशीन खरीदने के लिए नये फैक्ट्री भवन के लिए, नये कम्पनी के प्रचार करने के लिए आदि में करेगा।

इस तरह से प्रथम प्रकार का निवेश का हल रोजगार पर कोई प्रभाव नहीं डालेगा। इस तरह यह निवेश केवल स्वामित्व के बदलने को जाहिर करता है। इसका सामाजिक दृष्टि से कोई महत्व नहीं है। मान लिजिए राम के पास एक कम्पनी के 100000 मूल्य का शेयर है। यदि मोहन राम से सारे शेयर खरीद लेता तो इसका आशय यह है कि निवेश मोहन के लिए होगा। किन्तु इस प्रकार शेयर का स्थानान्तरण समाज के कुल निवेश में कोई परिवर्तन नहीं होगा। वितीय निवेश किसी प्रकार का उत्पाद क्षमता का निर्माण नहीं करता है। यह केवल वितीय व्यवहार होता है। अन्य शब्दों में, अर्थव्यवस्था में पूंजी स्टॉक में कोई वृद्वि नहीं करेगा। कीन्सी इस प्रकार के निवेश को केवल वितीय निवेश मानते है।

द्वितीय प्रकार के निवेश को कीन्स वास्तविक निवेश मानते हैं। वास्तविक निवेश का आशय इस प्रकार के निवेश को नये फैक्ट्री की स्थापना या नय उद्यम के स्थापना को मानते हैं। इस प्रकार के निवेश का परिणाम कुल निवेश से अर्थव्यवस्था की कुल पूंजी स्टॉक में वृद्वि लाती है। जो रोजगार में वृद्वि करती है। जबकि कीन्सीयन अर्थशास्त्र में निवेश शब्द का आशय वास्तविक निवेश से है, जो यह बताता है कि पूंजी सम्पति में वृद्धि के परिणाम स्वरूप कुल रोजगार में वृद्धि हो रही है। निवेश वह व्यय है जो वास्तविक पूंजी का निर्माण करती है। यह तीन प्रकार के तथ्यों को समाहित करती है।

(1) नये मशीन का निर्माण करना तथा नये पूंजी उपकरण का निर्माण करना।
(2) नये भवन का निर्माण करना।
(3) स्टॉक में वृद्धि करना।

19.3 निवेश का वर्गीकरण

निवेश को निम्न प्रकार से विभाजित किया जा सकता है।

(1) अर्थशास्त्र की दृष्टि से निवेश को दो प्रकार से विभाजित किया जाता है।

- **प्रेरित निवेशः** प्रेरित निवेश वह निवेश है जो आय तथा लाभ क हिस्से से संचालित होता है। खर्च और कीमत ऐसी राशि है जो प्रेरित निवेश को प्रोत्साहित करती है तथा मजदूरी लाभ को प्रभावित करती ह। प्रेरित निवेश बढ़ने का आशय यह है कि आय और लाभ के हिस्से में वृद्धि की सम्भावना पाई जाती है और घटने के साथ आय और लाभ में घटने की प्रवृति पाई जाती है। वास्तव में जब आय बढ़ती है तो उपभोग मांग में वृद्धि होती है जो प्रेरित निवेश को बढ़ावा देती है। प्रेरित निवेश को चित्र संख्या 19.1 में व्यक्त किया गया है। इस चित्र में आय को ox क्षैतिज अक्ष पर तथा निवेश को oy उर्ध्वाधर अक्ष पर दर्शाया गया है। निवेश वक्र के धनात्मक ढ़ाल होने का आशय यह है कि निवेश में वृद्धि होने से आय एवं लाभ में वृद्धि दर्ज की जाती है। कुरीहारा के अनुसार, आय के न्यूनतम स्तर पर निवेश नकारात्मक हो सकता है। जो चित्र ox अक्ष के नीचे का हिस्सा प्रदर्शित करता है।

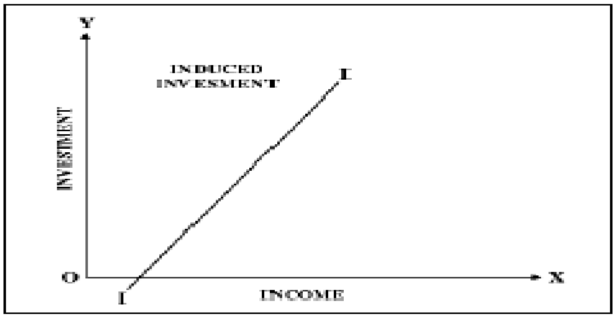

चित्र 19.1

➤ **स्वायत निवेशः** स्वायत निवेश वह निवेश है जो आय या उत्पादन के स्तर से स्वतंत्र होती है। यह आय के द्वारा नहीं प्रेरित होता है। यह वह निवेश को बताता है जो बाह्य कारको द्वारा जैसे नवप्रवर्तन, अविष्कार, जनसंख्या वृद्धि और श्रमबल, अनुसंधान, सामाजिक और विधि संस्थाएं, मौसम परिवर्तन, युद्ध और क्रान्ति आदि के द्धारा या मन्दी के स्थिति में प्रभावी मांग में वृद्धि और वेरोजगारी के द्वारा प्रभावित होती है। चित्र 19.2 में स्वायत निवेश की अवधारणा को OX के समानान्तर क्षेतिज रेखा I I के द्वारा दिखाया गया है। जो यह बताता है कि निवेश में कोई परिवर्तन नहीं होगा चाहे आय में कितनी परिवर्तन हो जाये। जो O I के द्वारा चित्र में दिखाया गया है। कीन्स ने अपने रोजगार के सिद्धान्त में स्वायत निवेश की वकालत की है।

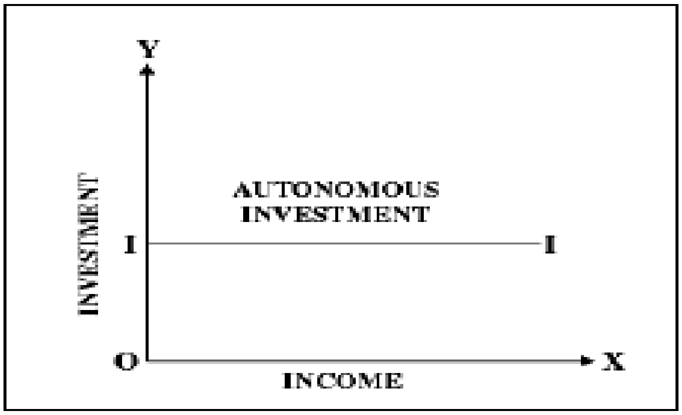

चित्र 19.2

(2) स्वामित्व के आधार पर निवेश को निम्नलिखित प्रकार से बांटा गया हैः

❖ **निजी निवेशः** निजी निवेश का आशय है कि वह निवेश जिसका मुख्य उद्देश्य लाभ अर्जित करना रहता है तथा यह व्यक्तिगत लाभ में वृद्धि करता है इसे प्रेरित निवेश के नाम से जाना जाता है।

❖ **सार्वजिनक निवेशः** वह निवेश जो किसी देश के केन्द्रीय, राज्यकीय, और स्थानीय सरकार द्वारा किया जाता है। इस प्रकार के निवेश का मुख्य उद्देश्य लोगों के कल्याण को ध्यान में रखकर, देश की सुरक्षा को ध्यान में रखकर तथा आर्थिक विकास के लिए किया जाता है। इसका मुख्य उद्देश्य लाभा अर्जित करना नहीं होता है।

(3) मौजूदा पूंजी स्टाक में परिवर्तन के परिणाम स्वरूप जो निवेश में बदलाव के आधार पर इसको दो भागों में विभाजित किया जाता हैः

- **सकल निवेशः** एक दिये हुये समय में किसी अर्थव्यवस्था में पूंजीगत वस्तुओं पर जो कुल निवेश किया जाता है वह कुल निवेश कहलाता है। यह दो प्रकार के निवेश को समाहित करता है।

क. शुद्ध निवेश एवं ख. प्रतिस्थापित निवेश

अर्थात्

कुल निवेश = शुद्ध निवेश + प्रतिस्थापित निवेश।

जब पूंजीगत वस्तुएं जैसे मशीन, उपकरण आदि का लगातार प्रयोग होता है तो उसमें घिसावट आती है जिसके परिणामस्वरूप मौजूदा पूंजी स्टॉक में कमी आती है। जब मौजूदा पूंजी को बनायें रखने के लिए पूंजीगत वस्तुओं पर जो निवेश किया जाता है वह प्रतिस्थापित निवेश कहा जाता है। पीट्रसन के शब्दों में, प्रतिस्थापन निवेश वह निवेश है जो पूंजी स्टॉक की अखण्ड बनाये रखने के लिए किया जाता है। पूंजी स्टॉक में वृद्धि तब होगी जब कुल निवेश प्रतिस्थापन निवेश से अधिक होता है।

- **शुद्ध निवेशः** शुद्ध निवेश वह निवेश है जो पूंजी स्टॉक में वृद्धि करता है। पीट्रसन के शब्दों में शुद्ध निवेश है जो अर्थव्यवस्था के वास्तविक पूंजी सम्पति में जो उत्पादक क्षमता के साथ वृद्धि होती है। कुल निवेश तथा प्रतिस्थापन निवेश को घटाने पर शुद्ध निवेश प्राप्त होता है।

शुद्ध निवेश = सकल निवेश – प्रतिस्थापन निवेश

निवेश के उद्देश्य की दृष्टि से इसे निम्नलिखित तरीके से बांटा जा सकता है।

1. **अभीष्ट या नियोजित निवेशः** जब साहसी एक दिये हुये उद्देश्य को प्राप्त करने के लिए एक निश्चित योजना के तहत् जो निवेश करता है उसे अभीष्ट या नियोजित निवेश कहते हैं। इसे वांछित निवेश भी कहा जाता है। वांछित निवेश वह निवेश है जो निवेशक द्वारा अपने लाभ को नियोजित तरीके से बढ़ाने के लिये किया जाता है। इस प्रकार के निवेश को बढ़ाने के निम्नलिखित कारण है।
   - जब निवेशक द्वारा अपने लाभ को अधिकतम करने के उद्देश्य से निवेश किया जाता है तो वांछित निवेश कहा जाता है तथा निवेश किये जाने से मांग में वृद्धि होगी।
   - इस प्रकार का निवेश उत्पादन की लागत को कम करता है। पूंजी निवेश की सहायता से उद्योग में अच्छे प्रकार के मशीन को लगाया जाता है जो उद्योग में उत्पादन की लागत को कम करती है। इसी कारण, इसे लागत केन्द्रित निवेश कहा जाता है।
   - जब किसी देश की सरकार रोजगार या आर्थिक संवृद्धि को ध्यान में रखकर या उद्देश्य प्राप्त करने के लिए जो निवेश की योजना बनाती है उसे ऐच्छिक निवेश कहा जाता है।
2. **अनभिप्रेत या वास्तविक या अनैच्छिक या अविचारित निवेशः** अविचारित निवेश वह निवेश है जो निवेश द्वारा अनैच्छिक रूप से किया जाता है। अक्सर जब मांग में अचानक कमी आती है तो साहसी के पास वस्तुओं

का स्टॉक इक्ट्ठा होने लगता है। इस इक्ट्ठे स्टॉक को साहसी अपने योजना के अनुसार या वह अपने इच्छानुसार निवेश करेगा। इसी कारण इसे अनभिप्रेत निवेश कहलाता है। साहसी के द्वारा जो वास्तविक निवेशे किया जाता है तो वास्तविक निवेश कहा जाता है।

19.4 निवेश की प्रवृति

निवेश आय से सम्बन्धित होता है। सामान्यतया, अगर निवेश में वृद्धि की जाती है तो आय में वृद्धि होती है और अगर कमी होती है तो आय में कमी होती है। निवेश की प्रवृति कल निवेश तथा कल आय का अनुपात होता है। जिसे निम्नलिखित समीकरण के रूप में व्यक्त किया जा सकता है।

$$PI = \frac{I}{Y}$$

PI = निवेश की प्रवृति

I = निवेश

Y = आय

निवेश की प्रवृति विभिन्न आय के स्तरों पर किये गये निवेश की सूची प्रदर्शित करता है।

19.5 निवेश की प्रवृति के प्रकार

निवेश की प्रवृति को दो भागों में विभाजित किया जा सकता हैः

1. **औसत निवेश की प्रवृतिः** औसत निवेश की प्रवृति कुल आय तथा कुल निवेश का अनुपात होता है। इसे निम्नलिखित समीकरण के रूप में व्यक्त किया जा सकता हैः–

$$PI = \frac{I}{Y}$$

API = औसत निवेश की प्रवृति

I = निवेश

Y = आय

उदाहरण के लिए यदि किसी देश की कुल आय 20 करोड़ रूपये हो तथा कुल निवेश 5 करोड़ हो तो औसत निवेश की प्रवृति होगीः

$$PI = \frac{I}{Y} \rightarrow API = \frac{5}{20} = 0.25 \text{ इकाई}$$

अतः उस देश का कुल औसत निवेश 0.25 के बराबर होगा।

2. **सीमान्त निवेश की प्रवृतिः** सीमान्त निवेश की प्रवृति कुल निवेश में परिवर्तन तथा कुल आय में परिवर्तन का अनुपात है।

$$MPI = \frac{\Delta I}{\Delta Y}$$

उदाहरण के लिए यदि आय में 10 करोड़ रू. की परिवर्तन हो जिसके परिणामस्वरूप कुल निवेश में 5 करोड़ का परिवर्तन हो तो सीमान्त निवेश की प्रवृति होगीः

$$MPI = \frac{\Delta I}{\Delta Y} \rightarrow MPI = \frac{5}{10} = 0.5$$

अतः सीमान्त निवेश की प्रवृति 0.5 होगा।

19.6 निवेश के निर्धारक

नये पूंजीगत सम्पतियों का निवेश इस बात पर निर्भर करता है कि नये निवेश से प्राप्ति की दर क्या है? नये निवेश की दर ब्याज के दर के कम या अधिक होने पर निर्भर करता है। यदि प्रत्याशित दर ब्याज की दर से ज्यादा है तो नये सम्पति को अर्जित करने को प्रेरित करेगी। इस प्रकार, बाजार ब्याज की दर, प्रत्याशित प्राप्ति की दर तथा पूंजीगत सम्पति की लागत निवेश जनित निर्णय को प्रभावित करने वाले कारक माने जाते हैं। कीन्स ने इन सभी कारकों को पूंजी की सीमान्त दक्षता कहा है। इस प्रकार के निर्धारक को दो भागों में बांटा जाता है।

1. पूंजी की सीमान्त दक्षता

पूंजी की सीमान्त दक्षता प्रत्याशित लाभ में एक अतिरिक्त पूंजी इकाई लगाने पर जो वृद्धि होती है उसको बतलाता है। यह दो कारकों पर निर्भर करता है।

- **प्रत्याशित लाभः** पूंजीगत वस्तु जैसे मशीन की प्रत्याशित लाभ उस मशीन के जीवन भर प्रयोग से प्राप्त शुद्ध आय होता है। शुद्ध आय को मापने के क्रम मे मशीन की वार्षिक उत्पादन में से लागत को घटा दिया जाता है। कुल प्रत्याशित लाभ मशीन के जीवन भर के प्रत्येक वर्ष की कुल आय होती है।
- **पूर्ति कीमतः** पूर्ति कीमत वह कीमत है जो मशीन की लागत होती है किन्तु मौजूदा मशीन की लागत को नहीं बल्कि नये मशीन की लागत को बताता है। इसे मशीन की प्रतिस्थापन लागत कहा जाता है।

प्रत्याशित लाभ में से पूर्ति कीमत को घटाकर पूंजी की सीमान्त दक्षता का पता लगाया जाता है। किसी दिये हुए समय में पूर्ति कीमत स्थिर रहती है। अतः पूंजी की सीमान्त दक्षता प्रत्याशित लाभ से प्रभावित होती है जो कि अनिश्चित होता है। यह इसलिए अनिश्चित होता है क्योंकि अल्पकाल एवं दीर्घकाल की प्रत्याशा पर निर्भर करता है। अस्थायी होने के अलावा पूंजी की सीमान्त दक्षता लोगों के मानसिक प्रवृति पर भी निर्भर करता है। इसका यह कारण है कि व्यापार चक्र का नियमित होना होता है। यदि उच्चावच की धारा आशावाी काल में है। तो पूंजी की सीमान्त दक्षता उंची होगी। इसके परिणामस्वरूप निवेश की प्रकृति उंची होगी। बल्कि, यदि निराशावादी व्याप्त होता है तो पूंजी की सीमान्त दक्षता कम होगी जो निवेश की आत्मा में करता है। यह सामान्यतया मन्दी की स्थिति में होता है। प्रायः यदि ब्याज की दर कम है तो यह निवेश को नहीं प्रोत्साहित करती है। वास्तव में पूंजी की सीमान्त दक्षता में ब्याज दर का कमी होना प्रभावित नहीं करता है। कीन्स ने पूंजी की सीमान्त दक्षता में कमी की ब्याख्या करते हुए कहा है कि ''विकसित देशों में पाश्चात्य प्रकृति निष्क्रिय पूंजी की सीमान्त दक्षता को सुस्पष्ट करता है।'' इसके कारण इन देशों में निष्क्रिष्ता के कारण यदि निवेश को लगातार बढ़ाया जाये तो पूंजी की सीमान्त दक्षता शून्य हो जाती है।

2. ब्याज दर

यदि मुद्रा को निवेश के लिए बैंकों से उधार लिया जाता है तो उस पर ब्याज अदा करना पड़ता है। वास्तव में यदि निवेशक अपनी मुद्रा को वह सरकारी प्रतिभूतियां बॉण्ड खरीदने में प्रयोग करें तो उसे इन सभी पर कुछ निर्धारित ब्याज प्राप्त होगा। किन्तु वह अपने मुद्रा को इन सभी क्रियाकलाप में न करके ब्याज को त्याग देता है। अन्य शब्दों में ब्याज एक निवेशित मुद्रा की लागत है। कीन्स के

अनुसार ब्याज के दर का निर्धारण मुद्रा की पूर्ति द्वारा तथा मुद्रा की मांग अर्थात् तरलता अधिमान द्वारा निर्धारित होता है। अल्पकाल में मुद्रा की कीमत को स्थिर माना जाता है। अतः ब्याज की दर कीन्स के अनुसार मुद्रा की मांग द्वारा निर्धारित होता है। उनके अनुसार ब्याज तरलता मांग का पुरस्कार है। उंची ब्याज दर लोगों के अधिक तरलता की कुशाग्रता को प्रदर्शित करता है। जबकि तरलता अधिमान भी ब्याज क दर को प्रभावित करता है। अधिक तरलता अधिमान अधिक ब्याज की दर को तथा कम तरलता अधिमान कम ब्याज की दर को प्रदर्शित करता हे। अन्य बातें समान रहने पर ब्याज की दर कम या ज्यादा होगी तो मुद्रा की पूर्ति अधिक और कम होगगी। प्रत्येक साहसी नया निवेश करते समय पूंजी की सीमान्त दक्षता या लाभ की दर ब्याज के दर के बराबर हो। यदि प्रत्याशित लाभ ज्यादा हो तो साहसी नये निवेश की ओर प्रोत्साहित होगा। वास्तव में यदि ब्याज की दर प्रत्याशित लाभ से ज्यादा हो तो निवेश को प्रोत्साहन नही मिलेगा। प्रेरित निवेश को निम्नलिखित समीकरणों द्वारा समझाया गया है।

1. MEC > r (निवेश प्रोत्साहन)
2. MEC < r (कोई निवेश प्रोत्साहन नहीं)
3. MEC = r (ब्रेक इवेन प्वांट या बिना लाभ–हानि के निवेश)

MEC = पूंजी की सीमान्त दक्षता एवं r = ब्याज दर

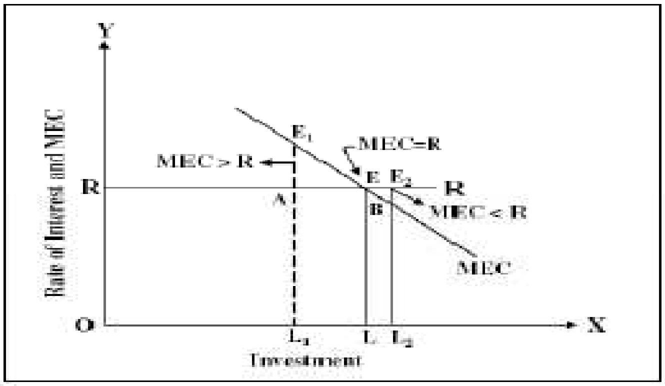

चित्र संख्या 19.3

चित्र 19.3 में निवेश ox अक्ष पर तथा पूंजी की सीमान्त दक्षता को oy अक्ष पर दर्शाया गया है। RR वक्र ब्याज की दर को तथा MEC वक्र पूंजी की सीमान्त दक्षता को प्रदर्शित करता है। माना ब्याज की दर स्थिर है। चित्र में RR वक्र स्थिर ब्याज दर को प्रदर्शित करता है। जब OL_1 निवेश किया जाता है। तब MEC (E_1L_1) ब्याज दर AL_1 से अधिक है। अतः निवेश को प्रोत्साहन मिलेगा। जब निवेश बढ़कर OL हो जाता है तो इस दशा में MEC वक्र बिन्दु RR वक्र को बिन्दु E पर काटती है अर्थात MEC = OR। इस बिन्दु के बाद निवेश में कोई प्रोत्साहन नहीं मिलेगा। यदि किसी कारण वश निवेश बढ़कर OL_2 हो जाता है तो MEC (BL_2) ब्याज की दर (E_2L_2) से कम होगा। अतः निवेशक को हानि होगी।

यहां पर एक प्रासंगिक प्रश्न यह उत्पन्न होता है कि पूंजी की सीमान्त दक्षता तथा ब्याज दर का निवेश पर अधिक प्रभाव पड़ता है इसी सन्दर्भ में कीन्स या कीन्सोतर अर्थशास्त्रीय जैसे–हिक्स, हैन्सन आदि ने अपने स्वतंत्र विचार व्यक्त

किये हैं। आप यह निष्कर्ष निकाल सकते हैं कि 1. ब्याज दर दिये होन पर अधिक मात्रा होगी, 2. पूंजी की सीमान्त दक्षता दिये होने पर तथा कम ब्याज दर पर अधिक मात्रा में निवेश होगा।

19.7 निवेश फलन

निवेश फलन उसके विभिन्न निर्धारक तथा निवेश के बीच फलनात्मक सम्बन्ध व्यक्त करता है। पीट्रसन के अनुसार एक पूंजीवादी अर्थव्यवस्था में निवेश निम्नलिखित कारको पर निर्भर करता है।

(i) **उच्च तकनीकी तथा नवप्रवर्तनः** तकनीकि परिवर्तन नये निवेश की प्रोत्साहित करती है। उदाहरण के लिए पिछले कई वर्षों में कृषि और उद्योग क्षेत्र में श्रम बचतकारी तथा पूंजी बचतकारी मशीनों का प्रयोग तथा विकास अधिक निवेश को प्रोत्साहित कर रहा है। यह प्रत्यक्ष रूप से देखने को मिलता है कि नये अविष्कार निवेश को अधिक प्रोत्साहित करते है। इसी प्रकार, नवप्रवर्तन जैसे, मोटरबाइक, फोन, स्कूटर, टेलीविजन, रेफ्रिजरेटर आदि निवेश के क्षेत्र में अधिक रूप से सक्रिय रहे हैं। प्रो. मैककॉनेल के अनुसार ''अधिक नवप्रवर्तन की दर अधिक निवेश को प्रोत्साहित करती है।''

(ii) **प्राकृतिक संसाधनों की खोजः** नये प्राकृतिक संसाधनों की खोज जैसे खनिज, पेट्रोल आदि निवेश की बढ़ाते हैं। नये प्राकृतिक संसाधनों की खोज से आकर्षित होकर अधिक से अधिक इस क्षेत्र में निवेश करेंगें।

(iii) **सरकारी नीतियांः** निवेश सरकार की राजकोषीय नीतियों तथा मौद्रिक नीतिय से भी प्रभावित होती है। अगर सरकार सस्ती मौद्रिक नीति लाती है तो अधिक निवेश बढ़ेगा। बल्कि जब सरकार महंगी मौद्रिक नीति लाती है तो निवेश में कमी होगी। जो सस्ते ऋण महंगा कर देगी। निवेश सरकार की नीति जैसे कराधान नीति, व्यय नीति आदि से प्रभावित होती है। कर व्यापार लागत का एक हिस्सा होती है। यदि करों की संख्या अधिक है तो प्रत्याशित लाभ में कमी आयेगी। ठीक उसी प्रकार अगर कर की दर कम है तो निवेश प्रोत्साहित होगा। जब सरकार किसी नये प्रोजेक्ट की शुरूआत करती है, तो उसमें अधिक मात्रा में पूंजी लगाती है जो निवेश व्यय को बढ़ाती है।

(iv) **विदेश व्यापारः** यदि किसी देश का विदेशी व्यापार बढ़ रहा है तो वह अधिक निवेश को प्रोत्साहित करेगी जो एक सकारात्मक निवेश को बढ़ायेगी। ठीक उसी प्रकार अगर विदेशी व्यापार में कमी होगी तो निवेश पर नकारात्मक प्रभाव डालेगी।

(v) **राजनैतिक वातावरणः** यदि किसी देश का राजनैतिक वातारण आन्तरिक व वाह्य क्षेत्रों में शान्ति की अधिक बढ़ावा देती है तो उस देश के निवेश पर सकारात्मक प्रभाव डालेगी। उसी प्रकार किसी देश में अशान्ति का माहौल, लचर कानून व्यवस्था है तो वह निवेश पर नकारात्मक प्रभाव डालेगी जो निवेश को घटायेगी।

(vi) **प्रत्याशाएंः** व्यापार जनित निवेश प्रत्याशित लाभ पर निर्भर करता है। पूंजीगत वस्तुएं टिकाउ होती है। अतः किसी निवेश का प्रत्याशित लाभ उस पूंजी से उत्पादित वस्तुओं के बिक्रय पर निर्भर करता है। यदि किसी

देश की मौजूदा व्यापारिक स्थिति बहुत अच्छी है तो व्यापारिक समुदाय आशावादी होगा जो अधिक निवेश को प्रोत्साहित करेगा। उसी प्रकार यदि व्यापारिक स्थिति खराब है तो व्यापारिक समुदाय निराशावादी होगा जो निवेश को हतोत्साहित करेगा।

(vii) **जनसंख्या वृद्धि की दरः** यदि किसी देश की जनसंख्या अधिक तेजी से बढ़ रही है तो नये घर, स्कूल, लोक सेवायें, सड़क, उपभोग की वस्तुओं की अधिक आवश्यकता होगी। बढ़ती हुई जनसंख्या अधिक श्रम पूर्ति को बढ़ायेगी, जिसके परिणामस्वरूप में कमी आयेगी तो निवेशित पूंजी की प्रत्याशित लाभ को बढ़ायेगी।

(viii) **सीमावर्ती का विस्तारः** अधिक तेजी से जनसंख्या में वृद्धि होगी तो नये क्षेत्रों का विस्तार होगा तो इन क्षेत्रों में नये घर की जरूरत के तथा परिवहन के लिए सार्वजनिक तथा निजी निवेश को बढ़ावा मिलेगा।

(ix) **कीमत स्तरः** निवेश, अर्थव्यवस्था की चल रहीं कीमतों पर निर्भर करता है। यदि अर्थव्यवस्था में कीमत स्तर में वृद्धि होगी तो निवेशक की प्रत्याशित लाभ में बढ़ोतरी होगी तो नये निवेश की अधिक संभावना होगी। उसी प्रकार अगर कीमत स्तर में कमी हो जो निवेश की प्रत्याशित लाभ में कमी आयेगी जो निवेश की संभावना को कम करेगा।

(x) **बाजार की संरचनाः** बाजार की संरचना से आशय बाजार में प्रतियोगिता की प्रकृति पाये जाने से हैं। यदि बाजार में किसी वस्तु के अधिक उत्पादक है तो वे परस्पर प्रतियोगिता करेगे, वे नये मशीन के प्रयोग तथा नवीनतम तकनीकी के प्रयोग से अपनी उत्पादन की लागत को कम करना चाहेगें, ताकि वे अधिक लाभ कमा सके। इसके परिणाम स्वरूप, निवेश में वृद्वि होगी। यदि बाजार में एकाधिकारी की स्थिति है तो वह अपनी पुरानी मशीन से उत्पादन करेगी जिसकी उत्पादन की लागत होगी जो नये निवेश को हतोत्साहित करेगी।

(xi) **वित की उपलब्धताः** निवेश वित की उपलब्धता पर भी निर्भर करेगा। फर्म के विता के मुख्यतः दो प्रकार के होंगें।

1. आन्तरिक स्त्रोत एवं 2. बाहय स्त्रोत

यदि एक फर्म के पास आरक्षित निधि, अवितरित लाभ आदि के रूप में उपलब्ध है तो वह अधिक निवेश करने में सक्ष्म है। अतः आन्तरिक स्त्रोंत, प्रचुर मात्रा में उपलब्ध है तो निवेश पर अधिक सकारात्मक प्रभाव पड़ेगा। जबकि बाहय स्त्रोत प्रर्याप्त रूप में उपलब्ध तो प्रायः निवेश में वृद्धि होगी।

(xii) **श्रमिक बाजार की स्थितियांः** श्रमिक बाजार की स्थितियां भी निवेश पर प्रभाव डालेगी। यदि श्रम बाजार मं कुशल श्रमिक उपलब्ध है तो निवेश पर सकारात्मक प्रभाव डालेगा। यदि श्रमिक और कर्मचारी के बीच परस्पर शिष्ट रिस्ते पाये जाते है तो उद्योग में निवेश की मात्रा में वृद्धि होगी।

(xiii) **वर्तमान पूंजीगत वस्तुओं का भण्डारणः** किसी भी अर्थव्यवस्था में पूंजीगत वस्तुओं की वर्तमान भण्डारण निवेश के पर्यारण पर सकारामक प्रभाव डालती है। यदि अर्थव्यवस्था में पूंजीगत वस्तुओं का भण्डारण अधिक क्षमता के साथ है तो वहां पर बहुत कम मात्रा में निवेश होगा। इसी तरह

यदि मौजूदा पूंजी भण्डारण अपर्याप्त है तो निवेश की अधिक सम्भावना होगी।

(xiv) **समग्र मांगः** यदि समग्र मांग में लगातार वृद्धि हो रही है तो वह निवेश को प्रोत्साहित करेगी।

19.8 IS-LM रूपरेखा

IS-LM मॉडल को हिक्स हैन्सन आकृति के नाम से जाना जाता है। जो किसी अर्थव्यवस्था पर ब्याज दर तथा आय स्तर के सन्तुलन को प्रदर्शित करता है। IS शब्द निवेश और बचत की संभावना को प्रदर्शित करता है, जो वस्तु बाजार के संन्तुलन को दिखाता है। जबकि LM शब्द में (L) मुद्रा की मांग तथा (M) मुद्रा की पूर्ति के समानता को प्रदर्शित करता है। जो मुद्रा बाजार के सन्तुलन को दिखाता है।

IS वक्र की उत्पति

बचत आय की बीच तुलनात्मक सम्बन्ध होता है। इसे निम्नलिखित तरीके से व्यक्त किया जा सकता है।

S = f (Y) ----------------(I)

और निवेश तथा ब्याज दर के बीच घटता हुआ फलनात्मक सम्बन्ध होता है।

I = f (r) ----------------(II)

समीकरण (I) एवं (II) से

S = I

IS सूची ब्याज दर तथा आय स्तर के बीच उस संयोग को प्रदर्शित करता है जहां निवेश बचत की समानता अर्थव्यवस्था के वस्तु बाजार को सन्तुलन में रखता है। निम्नलिखित चित्र की सहायता से वक्र की उत्पति को समझाया गया है।

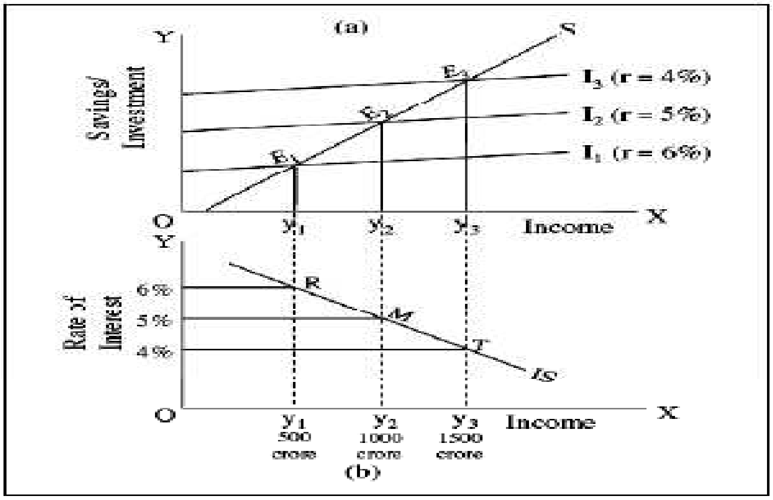

चित्र 19.4

चित्र संख्या 19.4 के प्रथम भाग A में S वक्र को बचत तथा आय के बीच एक स्थिर अनुपात में प्रदर्शित किया गया है। कीन्सियन मान्यता के अनुसार ब्याज दर का बचत पर नाममात्र का प्रभाव होता है। इसलिए बचत वक्र बढ़ती आय के साथ बढ़ती बचत को प्रदर्शित करता है। जबकि निवेश ब्याज के दर तथा आय के स्तर के उपर निर्भर करता है। ब्याज दर दिये होने पर आय के स्तर के साथ निवेश की मात्रा बढ़ती है। आप देख सकते हैं कि S प्रतिशत ब्याज की दर पर निवेश

वक्र I_2 है। यदि ब्याज दर घटकर 4 प्रतिशत हो जाती है तो निवेश वक्र उपर की ओर खिसकर I_3 हो जाता है। घटती हुई ब्याज दर निवेश को अधिक प्रोत्साहित करते हुए पूंजी की सीमान्त दक्षता को बराबर कर देती है। यदि ब्याज की दर 6 प्रतिशत हो तो निवेश वक्र I_1 होगा। चित्र के द्वितीय भाग यानि B में IS वक्र वक्र ब्याज के विभिन्न दरों पर आय के स्तर को प्रदर्शित करता है जो बचत तथा निवेश के बराबर स्तर को प्रदर्शित करता है। ब्याज की दर को OY अक्ष पर दिखाया गया है जबकि OX–अक्ष पर आय के स्तर को दिखाया गया है। आप देख सकते हैं कि 6 प्रतिशत ब्याज की दर पर S वक्र I_1 वक्र का E_1 बिन्दु पर काटती है जो OX_1 मात्रा के बराबर आय को प्रदर्शित करता है। आय के स्तर (500 करोड़) से एक बिन्दुओं की रेखा खींची जाय तो 6 प्रतिशत ब्याज की दर पर बिन्दु R पर नीचे की ओर काटेगी 5 प्रतिशत ब्याज की दर पर वक्र S, वक्र I को बिन्दु E_1 पर काटती है जो OY_2 आय के स्तर को निर्धारित करती है। बिन्दु M पर 5 प्रतिशत ब्याज की दर पर एक हजार करोड़ के आय को प्रदर्शित ब्याज की दर पर एक हजार करोड़ के आय को प्रदर्शित करता है। बिन्दु T पर नीचे की ओर बचत और निवेश को चार प्रतिशत ब्याज की दर पर प्रदर्शित करती है। बिन्दु RTM को एक सीधी रेखा में मिलाने पर हमे IS वक्र प्राप्त होता है। जो बायें से दायें नीचे की ओर गिरती हुई होती है जो आय तथा ब्याज की दर के बीच नकारात्मक सम्बन्ध को प्रदर्शित करती है।

LM वक्र की उत्पति

LM सूची आय के स्तर और ब्याज दर के उन संयोगों को प्रदर्शित करता है जहां मुद्रा की मांग (L), मुद्रा की पूर्ति (M) समान है। LM वक्र कीन्स के तरलता अधिमान के सिद्धान्त पर आधारित है। चित्र संख्या 20.5 के प्रथम भाग यानि A, 2000 करोड़ आय तरलता अधिमान वक्र L_1Y_1 के द्वारा मुद्रा की मांग को प्रदर्शित करता है। बिन्दु E_1 जहां L_1Y_1 वक्र MQ को काटती है जो एक सीधी रेखा के रूप में मिलाने पर Y_1 से उपर और K के उपर मिलाने पर एक रेखा प्राप्त होती है। बिन्दु N तथा T भी इसी प्रकार निर्धारित करते हैं। बिन्दु K और T को मिलाने पर एक रेखा प्राप्त होती है जिसे LM रेखा रेखा कहा जाता है।

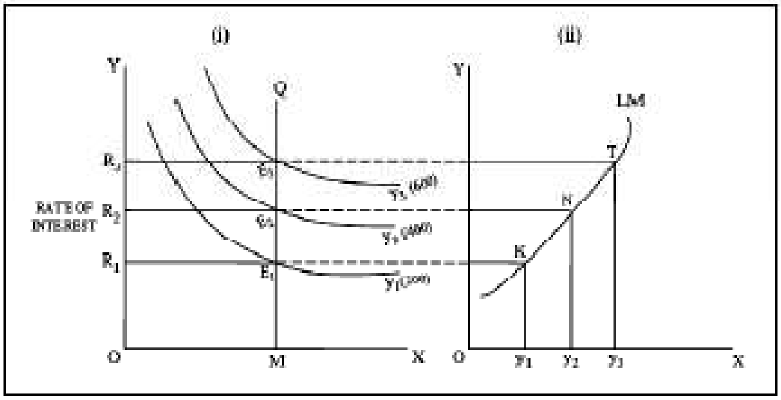

चित्र संख्या 19.5

19.9 सामान्य सन्तुलन

वस्तु बाजार तथा मुद्रा बाजार को निम्नलिखित वक्र के द्वारा दर्शाया गया है।

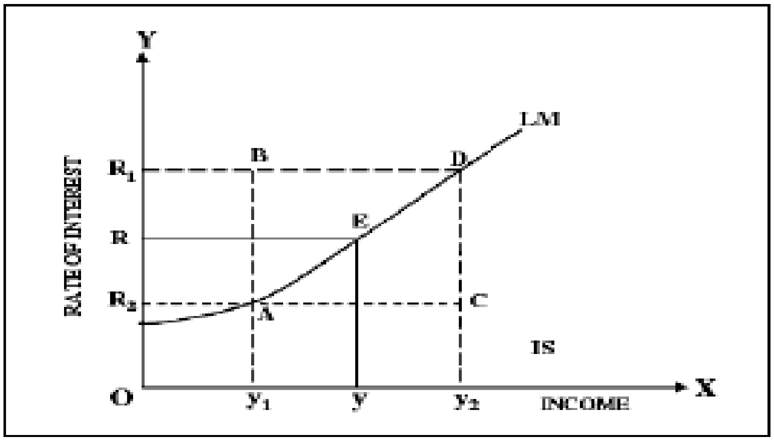

चित्र 20.6

आप चित्र संख्या 19.6 में यह देख सकते हैं कि जब मुद्रा बाजार Y_1 बिन्दु पर सन्तुलन में है तो OY_1 आय का स्तर तथा R_2 ब्याज दर को प्रदर्शित करता है। वस्तु बाजार तब तक सन्तुलन में नहीं है जब तक R_2 से नीचे ब्याज दर है। वस्तु बाजार Y_1 आय स्तर पर Y_1 उंची ब्याज दर बिन्दु B पर सन्तुलन में है। बिन्दु A पर बचत के उपर अधिक क्षमता का निवेश करने पर बिन्दु A से IS वक्र बायीं ओर खिसक जायेगा। सन्तुलन मं है। बचत निवेश की अधिक क्षमता वस्तुओं की मांग आधिक्य बढ़ने के कारण आय में वृद्धि को प्रदर्शित करता है। जबकि बढ़ती ब्याज दर निवेश को बढ़ाती है तथा बढ़ते आय का स्तर बचत को प्रोत्साहित करता है। बचत और निवेश बिन्दु E पर बराबर है जहां पर वस्तु बाजार तथा मुद्रा बाजार सन्तुलन में है।

$$S = I \rightarrow IS = LM$$

19.10 सारांश

सामान्यतः निवेश का आशय विभिन्न प्रकार की शेयर तथा भण्डारण का क्रय और पूंजी जनित क्रियाकलापों जिससे आय प्राप्त होता है। निवेश को दो भागों में विभाजित किया जाता है। प्रथम वास्तविक निवेश या नियोजित निवेश, प्रेरित निवेश, स्वायत निवेश, निजी निवेश, कुल निवेश आदि भागों में विभाजित किया जाता है। प्रेरित निवेश सार्वजनिक एवं निजी क्षेत्र के बहुत सारे कारकों से प्रभावित होता है।

19.11 शब्दावली

प्रेरित निवेशः वह निवेश है जो आय तथा लाभ क हिस्से से संचालित होता है।
स्वायत निवेशः वह निवेश है जो आय या उत्पादन के स्तर से स्वतंत्र होती है। यह आय के द्वारा नहीं प्रेरित होता है।
सार्वजिनक निवेशः वह निवेश जो किसी देश के केन्द्रीय, राज्यकीय, और स्थानीय सरकार द्वारा किया जाता है।

19.12 बोध प्रश्न

(अ) रिक्त स्थानों को भरें

1. निवेश बढ़ता है जब .... बढ़ता है।

2. निवेश जो आय द्वारा प्रभावित होता है .... कहलाता है।
3. नियोजित निवेश साहसी द्वारा .... बनाया जाता है।
4. पूर्ति कीमत को .... भी कहते हैं।
5. जब सरकार साख .... करती है, तो निवेश कम हो जाता है।
6. निवेश ब्याज दर तथा .... पर निर्भर करता है।
7. ऐसी परिस्थिति जिसमें निवेश, बचत के बराबर हो जाता है .... जाना जाता है।

(ब) सत्य या असत्य

1. प्रतिस्थापित निवेश से समग्र निवेश की अधिकता पूंजी स्टॉक में वृद्धि को बताता है।
2. निवेश की प्रवृति समग्र उपभोग तथा समग्र आय के बीच का अनुपात है।
3. पूंजी के एक या अधिक इकाई के उपभोग से प्रत्याशित प्रवति को दर्शाता है।
4. कर की कम दर निवेश को बढ़ावा देता है।
5. तरलता मौद्रिक बाजार की संस्थिति को प्रदर्शित करता है।
6. कीन्स की मान्यता क अनुसार बचत पर ब्याज द का महत्वपूर्ण प्रभाव है।

19.13 बोध प्रश्नों के उत्तर

(अ) 1. आय, 2. स्वायत्त, 3. ऐच्छिक, 4. संविदा, 5. आय का स्तर, 6. सामान्य संन्तुलन।

(ब) 1. सत्य, 2. असत्य, 3. सत्य, 4. सत्य, 5. सत्य, 6. असत्य।

19.14 स्वपरख प्रश्न

1. निवेश से आप क्या समझते हैं। उन कारकों का विश्लेषण कीजिए जो निवेश की प्रेरणा को नियंत्रित करती है।
2. स्वायत्त निवेश और प्रेरित निवेश में अन्तर स्पष्ट करें। उन कारकों की चर्चा करें जो एक पूंजीवादी अर्थव्यवस्था में निवेश को प्रेरित करती है।
3. निवेश की प्रेरणा से आप क्या समझते हैं। अर्थव्यवस्था मं निजि निवेश को बढ़ाने वाली विधियों को बतायें।
4. सार्वजनिक तथ निजि निवेश में अन्तर बतायें। यह कैसे बढ़ाया जा सकता है।

19.15 सन्दर्भ पुस्तकें

1. Dillard Dudley – The Economic of John Maynere Keynes, 1960.
2. Edward Shaprio, Macroeconomic Analysis (1960).
3. Hansen, Alvian H., A Guide to Keynes, (1953).
4. Keynes, J.M., General Theory of Employment, Interest andMoney, (1936).
5. Jhingan, M.L. Advanced Economic Theory, Vrinda Publications (P) Ltd., New Delhi.

*****

इकाई 20 सूचना का अर्थशास्त्र

इकाई की रूपरेखा

20.1 प्रस्तावना
20.2 आंकड़े एवं सूचना
20.3 सूचना के प्रकार
20.4 सूचना एक संसाधन के रूप में
20.5 सूचनाओं का प्रयोग
20.6 ई–वाणिज्य
20.7 सारांश
20.8 शब्दावली
20.9 बोध प्रश्न
20.10 बोध प्रश्नों के उत्तर
2011 स्वपरख प्रश्न
20.12 सन्दर्भ पुस्तकें

उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप इस योग्य हो सकेंगे कि –

- सूचना के अर्थशास्त्र की अवधारणा की समझ सकें।
- सूचना के अर्थशास्त्र के प्रकार तथा प्रकृति को जान सकें।
- सूचना एक संसाधन के रूप में सार्थकता की व्याख्या कर सकें।
- ई–वाणिज्य को समझ सकें।

20.1 प्रस्तावना

हम अपने रोजमर्रा के जीवन मे साधारणतया सूचना शब्द का प्रयोग, खासकर के प्रबन्धकीय निर्णय के सम्बन्ध में लेते हैं। सूचना मानव के मस्तिष्क का बुद्धिमता पूर्ण व्यवहार का निर्माण करती है। इसके पास निम्नलिखित विशेषता हैः

1. यह ज्ञान को नवीनीकरण करता है।
2. यह अनिश्चितताओं में कमी लाता है।
3. यह तत्व के प्रस्तुतीकरण में सुधार लाता है।
4. यह निर्णय लेने की क्षमता में सहायता करता है।

इन सभी विशेषताओं के मिले जुले असर के कारण सूचना की गुणवता अच्छी या बुरी हो सकती है। सूचना भौतिक तत्वों के प्रतिनिधि का कार्य करती है। यह एक उत्पाद, एक सेवा या एक पूंजी संसाधन हो सकती है। इसलिए डेविड और ओल्सन परिभाषित करते हैं कि ''सूचना वह आंकड़ा है जो प्राप्त करने वालों के निर्णय को परिष्कृत करता है और वास्तविक या वर्तमान में देखा जाने वाला या भविष्य में निर्णय या चित्रों या आवाज को प्रदर्शित करने वाला गुण या निर्णय बताता है।

20.2 आंकड़े एवं सूचना

सूचना तब निरर्थक हो जाता है जब सम्पर्क स्थापित नहीं होता है और वह विज्ञान जो संचार व्यवस्था की चर्चा करता है तथा परीक्षण करता है तो वह सूचना प्रणाली MIS (Management Information Systme) के नाम से जाना

जाता है। सूचना प्रबन्धन प्रणाली MIS उपलब्ध सूचना को प्रसारित करता है तथा इस रिपोर्ट को विभिन्न रिसीवर व प्राप्तकर्ता के पास भेजता है। तथा जिसका रिसीवर के द्वारा डिकोड व अर्थ लगाया जाता है। एक खराब गुणवता वाली सूचना विभिन्न कारकों के कारण असमंजस व भ्रम की स्थिति पैदा करती है जो एक शोर या कोताहल के बराबर होता है। सूचना तब अधिक मूल्यावान वस्तु हो जाती है जब प्रबन्धक द्वारा व्यापार को प्रभावी रूप से नियोजित तथा नियंत्रण करना होता है। जिसका प्रकार कच्चा माल उत्पादन प्रणाली का विषय सामग्री है उसी प्रकार आंकड़ा भी प्रबन्धन प्रणाली का विषय वस्तु है।

आंकड़ा वह कच्चा माल है जो सूचना के प्रयोग में संचालित होता है। 'डेटा' शब्द, 'डेल्टम' शब्द का बहुवचन है। यह अधूरे तथ्य तथा अधूरे निरीक्षण को परिभाषित करता है तथा विशिष्ट रूप से भौतिक प्रतीपमान एवं व्यापारिक लेन देन को बनाना है। उदाहरण के लिए, एक मशीनरी तंत्र को बेचने पर या ऑटोमोबाईल के बेचने पर उस घटना क्रम को उल्लेखित करते हुए बहुत सारे आंकड़ों का निर्माण होता है। इनका मापन एक प्रतीक के रूप में जैसे–अंक, शब्द आदि को कोड के रूप में वर्णमाला के रूप में मिले जुले रूप में तथा अन्य गुणों के रूप में प्रदर्शित किया जाता है। यह विभिन्न रूपों में जैसे अंकीय रूप में, शब्दों में, अवाजों या ध्वनि के रूप में तथा चित्रों के रूप में लिया जाता है। आंकड़े तथ्यों के समूहों को प्रदर्शित करता है जो असंगठित रूपों में होता है किन्तु संगठित रूपों में इसका उपयोग सूचना के लिए किया जाता है। आंकड़ा और सूचना शब्द हमारे दैनिक जीवन से आता है। जो प्रायः आदान–प्रदान होता रहता है। दिनांक, भार, कीमतें, लागत, बेचे गये मदों की संख्या, कर्मचारी, नाम, उत्पाद आदि आंकड़ें कुछ प्रमुख उदाहरण है।

सूचना

सूचना आंकड़ों का सार्थक एवं परिष्कृत रूप है। जैसा कि उपर वर्णित है आंकड़ों और सूचनाओं का आदान प्रदान किया जाता है। अंकड़े संसाधनों का वह परिष्कृत रूप है जो प्रक्रिया में लाने के बाद सूचना उत्पाद के रूप में कार्य करता है। सूचनाओं को अन्तिम प्रयोगकर्ता के लिए सार्थक एवं परिष्कृत रूप मं परिभाषित किया जाता है। आंकड़े तब तक उपयोगी नहीं होती है जब तक मूल्य बर्धन प्रक्रिया, जहांः

1. इसका रूप समग्र, संगठित और सुसज्जित होती है।
2. इसका विषय वस्तु विश्लेषित और परिभाषित है।
3. यह मानवीय प्रयो के लिए सुव्यवस्थित विषय वस्तु के रूप में रखा जाता है।

सूचना परिष्कृत आंकड़ों एवं ऐसे सन्दर्भ में रखा जाता है जो विशिष्ट अन्तिम प्रयोग कर्ता को उसका मूल्य देता है।

आंकड़ों का परिष्करण

तथ्यों को सार्थक सूचनाओं में बदलने की प्रक्रिया आंकड़ों का परिष्करण कहलाता है। इसे सामान्यतया सूचनाओं का परिष्करण कहा जाता है। यह आंकड़ों के परिष्करण को अधिक प्रयोग में लाने के लिए तथा सार्थक बनाने के लिए इसका प्रयोग किया जाता है। इसलिए इसे सूचनाओं में बदलता है।

आंकड़ों का परिष्करण बनाम् सूचनाओं का परिष्करण

आंकड़ों का परिष्करण सुव्यवस्थित कियावनय को बताता है तो आंकड़ों को सूचनाओं में बदल देता है। जबकि सूचनाओं का परिष्करण, संख्या वाचक परिष्करण की परम्परागत, अवधारणा तथा अल्फाबेट आंकड़े एवं विषय वस्तु का परिष्करण, चित्र तथा ध्वनि आदि दोनों अवधारणाओं को बताता है। सूचनाओं का परिष्करण यह बताता है कि उत्पादित सूचनाओं का उत्पादन प्रयोगकर्ता के लिए परिष्कृत प्रक्रिया पर केन्द्रित होना चाहिए।

सूचनाओं का प्रबन्धन

सूचना प्रबन्धन नियंत्रण समस्या न केवल अन्तर्राष्ट्रीय संस्थाओं के द्वारा बल्कि छोटे संस्थाओं के द्वारा भी समस्या का सामना किया जा रहा है जो सूचनाओं के प्रबन्धन की समस्या अनुभव कर रही है। जैसे ही सूचनाओं के प्रबन्धन की समस्या बढ़ती है वैसे हीं सूचना प्रौद्योगिकी संस्थाओं को निर्णय सहायक प्रणाली, विशेतज्ञ प्रणाली, कृत्रिम बुद्धिमता, लेन–देन प्रक्रिया प्रणाली, दूर संचार प्रणाली, यंत्र चालित कार्यालीय व्यवस्था, इलेक्ट्रौनिक पत्र, नेवर्किंग आंकड़े सम्बन्धी प्रबन्धन प्रणाली जैसे तंत्र को उपलब्ध कराती है।

इस सूचना प्रौद्योगिकी का प्रसरण जबरदस्त ढंग से प्रभावी नहीं हो सकती है जब तक प्रबन्धनक सामान्य रूप रेखा बनाने का कौशल, कियान्वयन तथा सूचना प्रणाली के प्रबन्धन को समझ नहीं जाता।

सूचनाओं की प्रकृति

जटिल सूचना प्रणाली के समझने की उसके सामान्य गुण के कारण तथा सूचनाओं को स्पष्ट रूप से समझने की किया से शुरू होता है। सूचना की संस्थाओं के स्वभाव को देखा जाता है किन्तु यह आंकड़ों के भले भांति एवं सटीक समझने से हो सकता है। कभी–कभी आंकड़ा और सूचना बदल दिये जाते हैं। किन्तु शब्दावली का प्रयोग दोनों की अलग–अलग स्थिति को बताता है। आंकड़ों को कच्चे स्त्रोत बिखरा हुआ तथ्य तथा अविश्लेषित तत्य समझा जाता है। सूचना आंकड़ों का वह समूह है जो रिसीवर के समक्ष प्रस्तुत करने पर समझने का रास्ता प्राप्त होता है। आंकड़े वह कच्चा स्त्रोत है जिससे सूचनाओं का निर्धारण होता है। यह प्रबन्धक के लिए आवश्यक है कि उतर बनाये क्योंकि जब आंकड़ों का दबाव बढ़ता है तो एक रत्ती भर उपयोगी सूचनाओं का उत्पादन नहीं होता है।

प्रबन्धक और सूचना

प्रबन्धक को प्रभावी निर्णय लेने के सम्बन्ध में सूचनाओं की आवश्यकता होती है न की आंकड़ों की। प्रत्येक प्रबन्धक के पास आंकड़ों तथा सूचनाओं की भरमार होती है। जो कभी भी सूचनाओं के अति भार से प्रभावित होता है। प्रबन्धक आंकड़ां को सूचनाओं से मिलाने के लिए निम्न कार्य करता हैः

1. इसका आगे के प्रयोग के लिए भण्डारण करता है।
2. अन्य लोगों में इसे फैला देता है।
3. तत्काल प्रयोग के लिए रखता है।
4. इसे छोड़ देता है।

20.3 सूचना के प्रकार

सूचनाओं को निम्नलिखित प्रकार से बांटा जाता हैः

1. **कियात्मक बनाम् गैर कियात्मक सूचनाएंः** वह सूचना जो किया करने के लिए प्रेरित करता है उसे कियात्मक सूचना कहते हैं। वह सूचना जो केवल स्थिति को बताता है वह गैर कियात्मक सूचना कहते हैं। उदाहरण के लिए, एक रिपोर्ट यह बताती है कि भण्डारण नहीं है और सूझाव देता है कि खरीदने की वह कियात्मक सूचना है किन्तु एक रिपोर्ट में भण्डार के लेन–देन की किया को दिखाता है वह गैर–कियात्मक सूचना है।
2. **आवर्ती बनाम् गैर–आवृर्ती सूचनाः** वह सूचना जो नियमित अन्तराल का निर्माण करती है उसे आवर्ती सूचना कहते हैं, जिसमें नियतकालिक बिक्री रिपोर्ट, भण्डारण सारणी, बाकी रकम का परीक्षण आदि को सम्मिलित किया जाता है। वे सूचनाएं जिसका निर्माण नियतिकालिक नहीं होता है वे गैर–आवर्ती सूचनाएं कहलाती है। जिसमें बाजार अनुसंधान और–गैर वितीय विश्लेषण आदि को शामिल किया जाता है।
3. **आन्तरिक बनाम् बाहय् सूचनाएंः** वे सूचनाएं जो संस्था के आन्तरिक स्त्रोतों से उत्पन्न होती है वे आन्तरिक सूचनाएं कहलाती है। जबकि वे सूचनाएं जो सरकारी रिपोर्ट, औद्योगिक सर्वे आदि के माध्यम से उप्पन्न होती है वे बाह्य सूचनाएं कहलाती है।

   कियात्मक सूचना, आवर्ती सूचना और आन्तरिक सूचना आदि संगणककृत का प्रमुख क्षेत्र है और जो प्रभावी रूप से सूचना प्रबन्धन प्रणाली में सहभागी होती है। कियात्मक सूचना में समय और शुद्वता प्रमुख है। आन्तरिक एवं बाह्य सूचनाओं का मिला जूला परिवर्तन, प्रबन्धन निर्णय के स्तर पर निर्भर करता है। उच्च प्रबन्धन स्तर पर आन्तरिक सूचना में बहुत दबाव रहता है।

   सूचनाओं का इस्तेमाल के आधार पर निम्नलिखित भागों में बांटा जाता है।

सूचना आयोजन

एक निश्चितता, मानदण्ड और विशिष्टता का प्रयोग किसी योजना के कियाकलाप में होता है। अतः इस प्रकार की सूचनाओं को आयोजित सूचना कहा जाता है। समय प्रमाणिक, कियात्मक या संचालित मान तथा प्रारूप मान आदि आयोजित सूचना के प्रमुख उदाहरण है।

नियंत्रित सूचना

प्रतिवेदन के द्वारा कियाकलाप के स्तर का रचनातंत्र के माध्यम से जानकारी देना नियंत्रित सूचना कहलाता है। वे सूचनाएं जब उद्देश्य को विचलित करती है तो यह निर्णय या प्रकिया को नियंत्रित करने के लिए प्रेरित करती है।

आयोजित सूचना और नियंत्रित सूचना में अन्तर

1. आयोजित सूचनाएं संस्था को श्रेणीवार बांटती है और कुछ श्रेणी के बारे में सूचनाएं उपलब्ध कराती हैं या सम्पूर्ण संस्था के बारे में सूचना उपलब्ध कराती है।
2. आयोजित सूचना एक लम्बे समयावधि को बताता है तथा नियंत्रित सूचना एक अल्प समयावधि से सम्बन्धित है। जो एक महीने में बदलता रहता है।
3. आयोजित सूचना के लिए प्रारूप और प्रतिरूप दोनों मुख्य रूप से आवश्यक है। किन्तु नियंत्रित सूचना के लिए अन्तिम जानकारी आवश्यक है।

4. आयोजित सूचना के सन्दर्भ में योजना के प्रारूप एवं प्रतिरूप के द्वारा दिया निर्देशित करता है। जबकि नियंत्रित सूचनाएं प्रबन्धकी अन्वेशण में विचलन को सही करने के लिए होती है।

20.4 सूचना एक संसाधन के रूप में

सूचनाएं निर्णय निर्धारण के सन्दर्भ में महत्वपूर्ण तथ्य उपलब्ध कराती है। यह प्रबन्धक को परिचालन एवं कूटनीतिक दोनों में प्रवद्ध बनाती है। यह एक सूक्ष्म संसाधन है क्योंकि यहः

1. यह निर्णय निर्धारण में सहायता करती है।
2. अनिश्चितताओं को कम करती है।
3. यह ज्ञान के स्तर को नवीनकृत करती है।
4. संस्था के साख में वृद्धि करती है।

सूचना के अधिग्रहण, भण्डारण तथा परम्मत कराने के लिए लागत आती है। यह एक संसाधन के रूप में लिया जाता है। और इसका मूल्य लाभ के अन्तर पर निर्भर करता है जो कि उसके लागत तथा प्रयोग का परिणाम होता है। यदि अन्तर धनात्मक है तो आर्थिक रूप में सूचना का अधिग्रहण न्यायहित में होगा।

सूचना की लागत एवं उपयोगिता

जहां एक सूचना एवं संसाधन के रूप में लागत समाहित रहती है वहीं दूसरी ओर संस्थाओं के लिए उपयोगिता का सृजन करती है। अगर सूचना का मान धनात्मक होगा तो सूचना की कुल लागत, सूचना की कुल उपयोगिता से कम होगी। ठीक उसी प्रकार अगर सूचना की लागत अधिक हो तो सूचना का मान ऋणात्मक होगा। इस प्रकार संस्थाएं इन सूचना का प्रयोग करके अपनी प्रत्याशित लाभ को धनात्मक बनाती है।

सूचना की लागत

निम्नलिखित तीन प्रकार से सूचनाओं की लागत को व्यक्त करते हैं।

1. आंकड़ों के अधिग्रहण की लागत।
2. आंकड़ों की भण्डारण और मरम्मत की लागत।
3. अभिगम आंकड़ों की लागत।

सूचनाओं की उपयोगिता

सूचनाओं का मूल्य और उपयोगिता निम्नलिखित विशेषताओं पर निर्भर करती है।

1. गुणवता।
2. सामयिकता।
3. पूरकता।
4. प्रासंगिकता।

सूचना की गुणवता सटीक या वास्तविकता को प्रदर्शित करती है। सूचना की गुणवता एवं शुद्धता, जो सामान्य रूप से कार्य करने में सहायक होती है। यदि प्रबन्धक को सूचना प्रणाली में गलती मिलती है तो वह उसका प्रयोग में बचेगा और मूल्यगत निर्णय निर्धारण की प्रक्रिया को सीमित करती है।

सूचना की गुणवता का मापन कठिन है। अगर किसी प्रयागकर्ता से सूचना की गुणवता के बारे में पुछा जाये तो वह कहेगा इसका निर्धारण करिये क्योंकि इसका

मापन कठिन है। और प्रयोगकर्ता से तब पूछना चाहिए जब उपलब्ध सूचना उसे संतुष्ट करती है।

रोमन आर. एन्ड्रूस के अनुसार, सूचनाओं को उसकी उपयोगिता के आधार पर मूल्यांकन करना चाहिए। चार उपयोगिताएं है जो निम्नलिखित प्रकार की है।

1. **शिष्ट उपयोगिताः** निर्णय निर्धारक की आवश्यकतानुसार, उपयोगिता की नजदीकी तथा शिष्ट मिलान ही शिष्ट उपयोगिता है जिसका मान अधिक होगा।
2. **स्थानिक उपयोगिताः** यदि यह आसानी से प्राप्त किया जा सकता है तो सूचना के पास अधिक मान होगा।
3. **सामयिक उपयोगिताः** यदि सूचना की आवश्यकता पर सूचना की उपलब्धता हो तो इसका मान अधिक होगा।
4. **स्वामित्व उपयोगिताः** सूचना का स्वामी अपनी मान से प्रभावित होता है जो संख्या में सूचना के प्रवाह को अन्य के पास जाने से रोकती है।

सामयिकता का आशय यह है कि सूचना की जब आवश्यकता हो तब उपलब्ध है। अधिकतर प्रबन्धक परिवर्तन के वातावरण में गत्यात्मक नवीनीकृत मांग तथा प्रचलित सूचना के आधार पर कार्य करते हैं। संगणकीय सूचना प्रणी में कम समय में सूचना को एकत्र करना, छोटा करना, विश्लेषण, भण्डारण, पुनः प्राप्त करना तथा सूचनाओं को बड़े पैमाने पर प्रसारित करना आदि होता है।

सूचनाओं की पूरकता का आशय है कि इसका विस्तार सभी जगहों पर हैं। वह सूचना पूर्ण होती है जो मूल्य समस्याओं को समाहित करते हुए निर्णय निर्धारण की स्थिति बिना किसी संकट के प्रर्याप्त सहायता उपलब्ध कराती है। सूचनाओं की पूरकता निश्चित हीं विकसित तथा मरम्मत करने में खर्चीली होगी। सूचनाओं की उपलब्धता में अधिक देखभाल होगी। क्योंकि अधिक सूचना की आवश्यकता नहीं होती है। अधिक खर्चीली होने के कारण और अधिक सूचना उपलब्ध होने के कारण प्राप्त कर्ता को सूचनाओं की अधिकता का भार वहन करना पड़ता है।

प्रासंगिकता

सूचना की प्रासंगिकता प्रबन्धक को उचित निर्णय निर्धारण की क्षमता में विस्तार करता है। बाहरी सूचनाएं निर्णय निर्धारक को कार्य के उद्देश्य से विचलित करती है तथा सूचनाओं का अधिक दबाव होना निर्णय निर्धारण को अधिक निराश बनाती है जिससे वह निर्णय निर्धारण की प्रक्रिया को ठीक से नहीं संचालित कर पाता है। प्रासंगिक सूचनाएं समस्य को दूर करती है। निर्णय निर्धारक की क्षमता तथा प्राप्तकर्ता को जिम्मेदारियों से सम्बद्ध करता है।

प्रभावी सूचना प्रणाली का मापदण्ड

जब सूचना अच्छी गुणवता वाली होती है तो है वह अच्छी गुणवता वाली कार्य का निर्धारण करती है। यह निष्पक्षता, वैद्यता, विश्वसनीयता, संगतता और आयु के मापदण्ड को पूरा करती है। प्रयोगकर्ता इन सूचनाओं को विभिन्न रूपों में प्रयोग करता है। जिसको नियंत्रित करना कठिन होता है। उपर्युक्त मापदण्डों के आधार पर सूचना को विकसित किया जाता है। अन्तिम प्रयोग कर्ताओं के लिए सूचनाओं का बर्हिगमन सम्मानित अपवाद को सन्तुष्ट करता है।

निष्पक्षता

सूचनाओं की निष्पक्षता यह बताती है कि आंकड़ों के साथ कोई पक्षता नहीं हो रही है तथा बिना किसी तोड़ मरोड़ के एकत्रित किया जा रहा है। यदि आंकड़ों का एकत्रीकरण पूर्व निर्धारित पूर्वाग्रह के उद्देश्य से या किसी विशेष सन्दर्भ में एकत्रित किया गया है तो यह पक्षपात का`जन्म देती है।

वैद्यता

सूचनाओं की वैद्यता सूचनाओं के उद्देश्य से सम्बन्धित है। अन्य शब्दों में यह एक प्रश्न का उत्तर है। क्या जिन सूचनाओं को एकत्रित किया गया है वे निर्णय निर्धारण के उद्देश्य से सम्बन्धित है?

सूचनाओं का प्रयोग किस प्रकार से हो रहा है यह उसक वैद्यता पर निभर करता है। जबकि सूचनायें अलग–अलग समानता के लिए नहीं हो तो वे सूचनाएं एक विशिष्ट स्थिति में अवैध हो जाती है।

उदाहरण के लिए, यदि उत्पादित वस्तु की गुणवता लगातार घट रही है तो इसका आशय है कि खराब गुणवता के चयन होने के कारण हो रहा है। तब गुणवता को खराब करने वाल सम्भावित कारकों की पहचान करके उसे दूर किया जाना चाहिए। गुणवता का प्रमुख कार्य कच्चे माल की उत्पादन प्रक्रिया उसमे लगे गुणवता यंत्र के निर्धारण का मापन तथा व्यक्तियों की गुणवता को नियंत्रित करने की प्रवृति होती है जबकि कच्चा माल तथा उत्पादन की प्रक्रिया की बात करती है तो तब यह सूचना प्रयोग नहीं होती है। अतः आवश्यक गुणवता के निर्णय करने में सभी सूचना अवैध हो जाती है।

विश्वसनीयता

यह प्रस्तुतीकरण तथा शुद्धता की व्याख्या से सम्बन्धित है। उदाहरण के लिए, यदि संस्थाओं के द्वारा बाजार के विशिष्ट भाग में उत्पाद की लोकप्रियता के सूचनाओं को एकत्रित करती है। प्रतिदर्श के आकार तथा प्रतिदर्श के चयन की विधि सूचनाओं की विश्वसनीयता पर निर्धारित होती है। यदि आंकड़ों का एकत्रीकरण सही स्त्रोतों से नही होता है तो वह विश्वसनीयता को प्रभावित करती है।

संगतता

यदि आंकड़ों का प्रतिरूप, सही समय के सम्बन्ध में संगत नहीं होती ह तो वे सूचनाएं असंगत हो जाती है। जबकि सूचनाओं के संगतता के आधार पर या आकृति के आकार से सम्बन्धित होती है। उदाहरण के लिए आप पिछले 12 महीने के उत्पादित भाषाओं की सूचना को एक निश्चित उत्पादन मानदण्ड के आधार पर किया है तो वह 12 महीनों में फैक्ट्री के परिवर्तित उत्पादन कार्य तथा 12 महीनों के उत्पादित आंकड़ों के तुलना में असंगतता पाई जाती है। प्रत्येक महीने के उत्पादित आंकड़ों का विवेकशील प्रयोग से संगतता लाई जा सकती है। नियमित रूप से सूचनाओं की उपलब्धता की संगतता को बनाये रखती है।

आयु या उम्र

यदि सूचनायें पुरानी है तो वर्तमान समय के लिए उपयोगी नहीं होगी। प्रयोगकर्ता के लिए प्रचलित सूचनाओं में अन्तर प्रमुख है। यदि सूचना पुरानी है तो वर्तमान समय में उपयोगी नहीं होगी अर्थात् ज्ञान के नवीनीकरण तथा अनिश्चितता की कमी आदि में आयु सम्बंधित होता है।

इन सभी मापदण्डों को बनाये रखने के लिए बहुत सारी समस्याओं का सामना करना पड़ता है। ये समस्याएं प्रबन्धन के संचालन के स्त्रोतों के आंकड़ों की प्रक्रिया में तथा इस प्रणाली में संस्थाओं को सामाना करना पड़ता है। इस सभी उच्च मापदण्डों को बनाये रखने में बिफलता निर्णय निर्धारण को प्रभावित करती है।

20.5 सूचनाओं का प्रयोग

सूचनाओं के आन्तरिक तथा बाह्य दोनों रूपों में भण्डार अधिग्रहण तथा अधिगम के रूप में बहुत उपयोगी होती है। इन सभी को संस्थान में आन्तरिक रूप में निम्नलिखित रूपों में प्रयोग किया जाता है।

संस्थाओं में सूचनाओं को प्रयोगकर्ता व उपभोक्ता

1. **लेखाकंनः** लाभ हानि से सम्बन्धित आंकड़ों, भुगतान, निबन्धन, धनापूर्ति, विस्तृत सूची में नियंत्रित, आवंटित खर्चों से सम्बन्धित आंकड़ों का निर्माण की नवीनकृत करती रहती है। प्रासंगिक सूचनाओं के आधार पर प्रबन्धन द्वारा नये निवेश के कार्य प्रारूपों पर, फर्मों की वर्तमान स्थिति तथा खर्चों के नियंत्रण का निर्धारण करती है। इकाई प्रबन्धक प्रासंगिक सूचनाओं के आधार पर माल तथा श्रम और प्रति इकाई लागत बताता है। विक्रय प्रबन्धक विभिन्न उत्पादों के अतिरिक्त राशि की सम्भावितों को जानने के लिए उत्सुक रहता है।
2. **वितः** वितीय विभाग उधारीकरण, निधिकरण, आवश्यक तरलता से सम्बन्धित कार्य को पूरा करती है। जो पूंजी सरंचना, बकाया, अंशधारकों की संख्या, लीवरेज का अंश, डेविट के तिथियों की परिपक्वता, कोषागार भण्डार सम्बन्धित आंकड़ों को उपलब्ध कराता है। मुख्य ब्याज दर, पूंजी तथा प्रत्येक बाजार से सम्बन्धित आंकड़ों को लगातार नवीनकरण करता रहता है। बड़े प्रबन्धन कम्पनीयां अपने बकाये अंशधारकों से सम्बन्धित कल्याण के लिए सम्बधित आंकड़ो का प्रयोग करती है।
3. **कर्मचारी विभागः** सेवा अनुबन्ध कर्मचारी को मिलने वाली मुफ्त सुविधा, प्रतिघंटा। मासिक दर, सेवा में अधिक उम्र और अभिक्षमता आदि कर्मचारी विभाग के प्रमुख कर्तव्य है। उदाहरण के लिए वर्तमान में कार्य करने वाले कर्मचारी तथा सदस्यों के सामयिक कुल वेतन भगतान का विभाजन इस विभाग द्वारा किया जाता है। इकाई प्रबन्ध के इस प्रकार के आंकड़ों के रिपोर्ट को साप्ताहिक प्राप्त करता है। सूचनाओं के आधार पर प्रबन्धन कम्पनी पूर्णकालिक तथा अल्पकालिक कर्मचारी की पहचान करता है। पर्यवेक्षक के रिपोर्ट के आधार पर पुरूष कर्मचारी की संख्या तथा महिला कर्मचारी की संख्या का सटीक पहचान होती है।
4. **सार्वजिनक सम्बन्धः** सार्वजनिक विभागीय संस्था के आन्तरिक तथा शेष विश्व के सम्बधों में पुल का कार्य करती है। संघीय अनुबंध, समझौता, छात्रवृति, शैक्षणिक सहभागिता और सेवाओं से सम्बन्धित समुदाय आदि से सम्बन्धित प्रमुख आकड़ें को सार्वजनिक सम्बन्ध विभाग द्वारा तैयार किया जाता है।

5. **विक्रय विभागः** विक्रय विभाग का मुख्य कार्य सृजित आय की गणना करना तथा अधिक विक्रय के सम्बन्ध में तथा विक्रय नियंत्रण के सम्बन्ध में निर्णय लेता है। प्रदर्शन क्षमता के रिपोर्ट के आधार पर विक्रय विभाग प्रादेशिक सूचनाएं एवं संभावित विक्रय की वास्तविक विक्रय सम्बन्धी आंकड़ें को अलग करता है। विक्रय प्रबंधक के द्वारा प्रत्येक सीमावर्ती क्षेत्र में नियतकाल विक्रय विश्लेषण के आधार प्रत्येक उत्पाद की अतिरक्त राशि का निर्धारण करता है। प्रबन्धक द्वारा सूचना के दिये होने पर जो भविष्य के लिए निर्धारित है उनसे विचलन की स्थिति में सूचना के आधार पर अन्तरों को स्पष्ट करता है। वितीय विभाग इस विभाग से प्रत्येक दिन के आंकड़ों को, जो मुद्रा तथा क्रेडिट विक्रय से सम्बन्धित है उसे प्राप्त करता है।
6. **बाजार अनुसंधानः** बाजार अनुसंधान विभाग में फर्म की संभावित सूचना उपभोक्ता सम्बन्धी सूचना एवं प्रतियोगी पर्यावरण सम्बन्धी सूचना को अलग करता है। कम्पनी प्रबंधन द्वारा बाजार की कूटनीतिक चाल तथा प्रतिरूप सम्बन्धी सूचना को उपलब्ध कराता है। इस व्याख्या के सम्बन्ध में एक निर्माता द्वारा सॉफ्टवेर प्रारूप के द्वारा प्रयोगकर्ता को हार्डवेर निर्माता की सूचना देता है। यदि सम्भावित विक्रय फर्म की योग्यता प्रमुख होती है जब यह भविष्यवाणी विफल हो तो बाजार शोध आधार कुटिनीतिक चाल में परिवर्तन करते हुए फर्म अपने उत्पाद के विक्रय को बढ़ाती है।
7. **उत्पादन विभागः** इस विभाग द्वारा उपयोगिता सम्बन्धी सूचना, स्थापित मशीन की संख्या, उपकरणों की संख्या आदि सूचनाएं उपलब्ध कराता है। इकाई प्रबन्धक को सामूहिक रिपोर्ट उसकी इकाई में उत्पादन स्तर सम्बन्धी सूचना उपलब्ध कराती है। उत्पादन विभाग का प्रमुख कार्य निर्माण की लागत को नियंत्रित करना होता है। तथा श्रमिकों के भौतिक प्रवाह की सूचना तथा प्रति व्यक्ति लागत को बनाये रखने के लिए यह विभाग करता है। सूचनाओं के आधार पर उत्पादन विभाग इनपुट कारकों को इसमें शामिल करता है या फिर बनी हुई अन्तिम वस्तु को शामिल करता है। सामूहिक रिपोर्ट के आधार यह विभाग इकाई द्वारा उत्पादित वस्तुओं की संख्या तथा उत्पादन समूह में गुणवता का ध्यान में रखने वाले प्रतिदर्श के आकार की सूचना को उपलब्ध कराता है।
8. **क्रय विभागः** क्रय विभाग द्वारा कच्चे माल सम्बन्धी प्रवाह तथा मशीनी उपकरण जैसी स्थिर सूचनाओं को उपलब्ध कराता है। क्रय विभाग किसी क्षेत्र में विक्रय की जाने वाले स्त्रोतों, अनुकूलीय निविदा, डिलवरी की शर्तें तथा बट्टे सम्बन्धी सूचनाओं को एकत्रित करने से सम्बन्धी सूचनाओं को व्यवस्थित करता है। गोदाम का मालिक विक्रय तथा कच्चे माल आदि सम्बन्धी ग्रहण की सूचना उपलब्ध कराता है।

संगठन के बाहर सूचनाओं के प्रयोगकर्ता व उपभोक्ता

बहुत से बाहरी सूचनाओं के प्रयोगकर्ता से व्यापार से सम्बन्धी आंकड़ों का प्रयोग करते हैं।

1. **सरकारः** सरकार समय–समय पर आयकर कर विभाग से सम्बन्धित प्रतिवेदन तथा अन्य कार्यकारी विभाग से सम्बन्धी रिपोर्ट को प्राप्त करता है।
2. **अंकेक्षक या लेखा परीक्षकः** फर्म की वितीय जानकारी सम्बन्धी सूचना को एक बाहर लेखा परीक्षक या सरकार द्वारा मान्यता प्राप्त अंकेक्षक द्वारा सूचना को निर्धारण करने की जानकारी होती है। अपने विवेचना के आधार पर बहुत सारे सूचना को उपलब्ध कराना है। खाता प्राप्य, खाता लेखा देय, छोटा मोटा नकद बाउचर, अनुसूची ह्रास तथा विस्तृत सूची विश्लेषण शीट आदि जो लेखा परीक्षक के आवश्यकता को संतुष्ट करता है।
3. **अंशधारक एवं भावी निवेशकः** उत्कृष्ट अंशधारक तथा भावी निवेशक जो अंतरिक तथा वार्षिक कमाई की, कीमत अनुपात सम्बन्धी दर आरम्भ को बनाये रखने वाली कमाई तथा भविष्य विस्तार सम्बन्धी सूचनाओं के आधार पर संख्या में निवेश करने में रूचि लेता है। जो निवेशक, आय निर्धारण एवं सम्पति का मूल्यकरण आदि जैसी निवेश निर्णय में मददगार साबित होती है।
4. **ग्राहक या उपभोक्ताः** एक ग्राहक उस फर्म के बारे में व्यापार सम्बन्धी विभिन्न सूचनाओं को एकत्रित करता है, जिस फर्म से वह व्यापार करता है। उदाहरण के लिए एक हवाई जहाज यात्री जो जहाज के समय तथा फलाईट्स के प्रकार को जानने सम्बन्धी भुगतान तथा जहाज के पहुंचने से सम्बन्धित सूचना को जानने की कोशिश करता है एक बैंक में खाता धारक एक दिये हुए समय में उसकी पैसे पर मिलने वाले ब्याज सम्बन्धी सूचनाओं को एकत्रित करता है। एक ऑटो मोबाईल खरीददार उस ऑटोमोबाईल के विशेष फीचर तथा वांरटी की अवधि तथा सुरक्षा के बारे में सूचना एकत्रित करता है।

20.6 ई–वाणिज्य

ई–वाणिज्य वस्तुओं के क्रय तथा विक्रय के बार में वर्णन करता है। ई–वाणिज्य आज के समय में अदभूत इन्टरनेट प्रणाली एवं वेब तकनीकी की सहायता से ऑनलाईल सम्पूर्ण वाणिज्य क्षेत्र, प्रारूप विकसित करना, बाजारीकरण, डिलवेरी सेवा तथा वस्तुओं के भुगतान को समाहित किय हुए हैं। कुछ इन्टरनेट वाणिज्य एप्लीकेशन अपने ग्राहकों को अपने ऑर्डर की वर्तमान स्थिति व पता पर पहुंचाने जैसी विशेष सुविधा उपलब्ध कराती है। अपने एजेन्टों के माध्यम से वह निर्धारित स्थान पर वस्तु पंहुचाने के बाद उस वस्तु कीमत को एकत्र करता है। जो ग्राहक को डिलवरी प्रणाली के लिए प्रोत्साहित करता है।

ई–वाणिज्य प्रकिया मॉडल को चार तरीके तथा चार भागों में देखा जा सकता है।

- **बी. से बी.** – व्यापारिक संगठन से व्यापार
- **बी. से सी.** – व्यापारिक संगठन से ग्राहक
- **सी. से बी.** – ग्राहक से व्यापारिक संगठन
- **सी. से सी.** – ग्राहक से ग्राहक।

व्यापारिक संगठन से ग्राहक मॉडल में व्यापारिक संगठन अपने उत्पादों के बारे में विडियो क्लिप की सहायता से, वस्तु के विशेष आकार तथा ग्राहकों के इतिहास

की सूचना को बेवसाइट्स की मदद से उपलब्ध कराती है। कम्पनी अपनी नये ग्राहकों को नये आकर्षित करने के लिए वस्तु के कीमत एवं पहुंचाने की तिथि आदि को करता है।

व्यापारिक संगठन से व्यापार मॉडल में क्रेता विक्रता दोनों व्यापारिक संगठन होते हैं। वे तकनीकी लेन देन तथा वाणिज्यक सूचना वेबसाईट्स तथा पोर्टल के माध्यम से करती है।

जब **मॉडल, व्यापारिक संगठन से ग्राहक** के तरह कार्य करते हैं तो **व्यापारिक संगठन से व्यापार मॉडल** अधिक उच्च तकनीकी सर्वर का प्रयोग करती है जो क्रेता के अप्लीकेशन सर्वर के माध्यम से व्यापारिक लेन–देन की सूचना उपलब्ध कराता है। स्वयंचालित उद्योग अपने उत्पादन कार्यक्रम तथा उपलब्ध स्टॉक की पूर्ति की सूचना की उपलब्धता के लिए इस मॉडल का प्रयोग करते हैं।

ग्राहक से व्यापारिक संगठन मॉडल में ग्राहक वेबसाइट्स तथा सर्वर के माध्यम से लॉग–इन करके खरीद फरोक्त करता है। इन्टरनेट वाणिज्य एप्लीकेशन के माध्यम से अपने उत्पाद की सूचना सर्वर पर उपलब्ध कराती है।

20.7 सारांश

सूचना विज्ञान की वह शाखा जो सामूहिक रूप से आर्थिक क्रियाकलापों को प्रभावित करती है, वह सूचना का अर्थशास्त्र कहलाती है। सूचना का अर्थशास्त्र आर्थिक क्रिया सम्बन्धी सूचना उपलब्ध कराती है। हमने इस इकाई में किसी देश में कीमत की सूचना, बाजार की सूचना, आदि की अवधारणा तथा प्रकृति जो आर्थिक सूचना के गुण को प्रदर्शित करती है, का अध्ययन किया।

20.8 शब्दावली

आंकड़ा: वह कच्चा माल है जो सूचना के प्रयोग में संचालित होता है।

परिष्करण: तथ्यों को सार्थक सूचनाओं में बदलने की प्रक्रिया आंकड़ों का परिष्करण कहलाता है।

आवर्ती सूचना: वह सूचना जो नियमित अन्तराल का निर्माण करती है उसे आवर्ती सूचना कहते हैं।

20.9 बोध प्रश्न

(अ) रिक्त स्थानों को भरें

1. आंकड़े प्रबंधन व्यवस्था के .... है।
2. एक सूचना जो किसी एक परिस्थिति में प्रेरित की जाती है .... है।
3. औद्योगिक सर्वेक्षण के द्वारा सृजित की गई सूचना को .... कहते हैं।
4. पूर्वाग्रह से प्रेषित आंकड़े को .... सूचना कहते हैं।
5. विभाग साख बिक्री से सम्बन्धित सूचना .... से प्राप्त करते हैं।
6. ई–कॉमर्स में, जो मॉडल उपभोक्ता को व्यापारिक संगठन से जोड़ता है .... कहलाता है।

(ब) सत्य असत्य

1. जब आंकड़े प्रोसेसेड होती है तब सूचना का रूप लेती है।

2. प्रबंधन निर्णय लेने के लिए सूचना से अधिक आंकडों को महत्व देते हैं।
3. ऐसी सूचना जो लगातार सृजित होती है गैर आवृति सूचना कहलाती है।
4. ऐसी सूचना जो लक्ष्य से विचलन को प्रदर्शित करती है, नियंत्रित सचूना कहलाती है।
5. उपयोगिता उसके लागत से अधिक हो तो पे ऑफ ऋणात्मक होगा।
6. एक लेखा परीक्षक किसी एक उद्देश्य के लिए सूचना चाहते हैं।

20.10 बोध प्रश्नों के उत्तर

(अ) 1. वस्तु, 2. अप्रतिक्रिया प्रतिवेदन, 3. बाह्य सूचना, 4. आंशिक, 5. लेखाकंन, 6. स से ब मॉडल।

(ब) 1. सत्य, 2. असत्य, 3. असत्य, 4. सत्य, 5. असत्य, 6. असत्य।

20.11 स्वपरख प्रश्न

1. आंकड़े एवं सूचना मं अन्तर स्पष्ट करें।
2. सूचना के विभिन्न प्रकार की व्याख्या करें।
3. सूचना की विशेषता को संशोधन के रूप में बतायें।
4. प्रभावशाली सूचना व्यवस्था के मापदण्ड क्या है?
5. ई–वाणिज्य से आप क्या समझते हैं?

20.12 सन्दर्भ पुस्तकें

1. Desai, Ashok, V., Technology Absorption in Indian Industry, New Delhi, Wiley Eastern, 1998.
2. Lall, Sanjaya, Technology Development and Export Performance in LDCs: Leading Engineering and Chemical Firms in India, Review of World Economics, Vol. 122(1), pp. 80, 1996.

*****

इकाई 21 प्रौद्योगिकी परिवर्तन, उत्पादकता एवं भूमंडलीय अर्थशास्त्र

इकाई की रूपरेखा

21.1 प्रस्तावना
21.2 प्रौद्योगिकी परिवर्तन एवं आर्थिक विकास
21.3 प्रौद्योगिकी एवं उत्पादकता
21.4 भारतीय अर्थव्यवस्था में प्रौद्योगिकी परिवर्तन
21.5 वैश्विक स्तर पर प्रौद्योगिकी हेतु प्रतियोगिता
21.6 प्रौद्योगिकी परिवर्तन–वैश्विक दृष्टिकोण
21.7 सारांश
21.8 शब्दावली
21.9 बोध प्रश्न
21.10 बोध प्रश्नों के उत्तर
21.11 स्वपरख प्रश्न
21.12 सन्दर्भ पुस्तकें

उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप इस योग्य हो सकेंगे कि –

- प्रौद्योगिकी परिवर्तन के बारे में ज्ञान प्राप्त कर सकें।
- भारतीय अर्थव्यवस्था मे प्रौद्योगिकी परिवर्तन के महत्व और भूमिका को समझ सकें।
- भारत में क्षेत्रीय उत्पादकता परिवर्तन के बारे में ज्ञान प्राप्त कर सकें।
- प्रौद्योगिकी परिवर्तन के वैश्विक दृष्टिकोण से अवगत हो सकें।

21.1 प्रस्तावना

प्रौद्योगिकी विकास का एक अनिवार्य साधन है। परिवर्तन के वाहक के रूप में, पूरे विश्व में इस पर विशेष ध्यान केन्द्रित किया जाता है। प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष एवं तात्कालिक या स्थायी रूप में प्रौद्योगिकी परिवर्त आर्थिक एवं सामाजिक जीवन के हर पहलू को प्रभावित करता है। यद्यपि कि औद्योगिक क्षेत्र पर इसका सीधा एवं तात्कालिक प्रभाव पड़ता है।

लम्बे समय से सामाजिक वैज्ञानिकों ने प्रौद्योगिकी को आर्थिक एवं सामाजिक परिवर्तन के एक साधन के रूप में चिन्हित किया है। मानव के अस्तित्व एवं विकास में यह सदैव सहायक रहा है, यह बात और है कि इसका स्वरूप और योगदान परिवर्तनों के दौर से गुजरा है। संकुचित रूप में प्रौद्योगिकी शब्द का अर्थ उत्पादन में लगाये गये मशीनों एवं औंजारों से होता है। इस अर्थ में प्रौद्योगिकी विकास के कई स्तर है, जैसे–मशीनीकरण, मानवशक्ति के स्थान पर मशीनों का प्रयोग, बाहुबल एवं मानवीय कुशलता के सहायक के रूप में हाथ से बने उपकरणों का प्रयोग एवं एक सत्त और संलग्न क्रिया के रूप में विद्यूतीय एवं अन्य साधन जैसे स्वचालन आदि का प्रयोग। विस्तृत अर्थ में प्रौद्योगिकी के अन्तर्गत ऐसे ज्ञान और विचारों की बात की जाती है, जो विकास में सहायक होते है और ऐसे मशीनों एवं उपकरणों के प्रयोग को सफल बनाते हैं। यद्यपि प्रौद्योगिकी के अन्य दृष्टिकोण भी हैं, जो सामाजिक प्रौद्योगिकी तंत्र के अन्तर्गत सांस्कृतिक, मनोवैज्ञानिक और सामाजिक पहलू को भी ध्यान में रखते हैं।

प्रौद्योगिकी परिवर्तन एक नये उत्पादन काला के निर्माण की मात्रा के समकक्ष होता है, जो आगत–निर्गन सम्बन्ध में तकनीकि स्तर के महत्वपूर्ण भूमिका पर बल देता है। तकनीक के एक दिये गये स्तर के साथ उपलब्ध साधनों के

प्रयोग के द्वारा प्राप्त उत्पादन इसकी उच्चतम सीमा है। इस प्रकार तकनीक का उद्देश्य उत्पादकता को बढ़ाना है। भौतिक अवस्था, प्रबंधकीय कौशल (ज्ञान), श्रम कुशलता आदि में ऐसे सभी परिवर्तन जो प्रयासों के प्रतिफल को कई गुणा बढ़ा देते हैं, को सम्मिलित रूप में तकनीकि परिवर्तन के रूप में व्यक्त किया जाता है। इस अर्थ में तकनीक मशीनों एवं उपकरणों से बढ़कर है और साथ ही इसका उद्देश्य पूंजी और श्रम के बीच सम्बन्ध को स्थापित करना होता है। तकनीक उत्पादन की एक ऐसी उपशाखा है, जो शीघ्रता में किसी कर्म के निर्माण अर्थात उत्पकालिकन दृष्टिकोण नहीं है, बल्कि यह एक दीर्घकालीन दृष्टिकोण है।

21.2 प्रौद्योगिकी परिवर्तन एवं आर्थिक विकास

विकास के मंत्र के रूप में तकनीक प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप में आर्थिक एवं सामाजिक जीवन के सभी पहलुओं को प्रभावित करता है। संकुचित अर्थ में तकनीक से आशय–स्थिर पूंजी, एवं मशीनीकरण से होता है। विस्तृत अर्थ में तकनीक समाज के ज्ञान का वह भण्डार है, जिसका प्रयोग औद्योगिक क्षेत्र भौतिक एवं सामाजिक सिद्वान्तों के आधार पर करता है, यह ज्ञान का वह भण्डार है, जो सिद्वान्तों को उत्पादन में प्रयोग करता है, यह वह ज्ञान है जो दिन–प्रतिदिन उत्पादन की क्रियाओं से सम्बन्धित होता है। सामाजिक एवं सांस्कृतिक कारक जो इस प्रकार के ज्ञान के विकास के लिए आवश्यक होते हैं, को भी विस्तृत अर्थ में तकनीक के दृष्टिकोण में सम्मिलित किया जाता है।

किसी दिये गये समय बिन्दु से सम्बन्धित तकनीक उत्पादन की वह उच्चतम सीमा निर्धारित करती है, जिसे साधनों की एक दिये हुये मात्रा के प्रयोग के द्वारा उत्पादित किया जा सकता है। तकनीक के स्तर में कोई भी परिवर्तन केवल प्राप्त किये जा सकने वाले उत्पादन की उच्चतम सीमा को हीं बढ़ाता है। तकनीक में कोई भी परिवर्तन उत्पादन की एक दी गई मात्रा को नई विधि के प्रयोग के द्वारा उत्पादित करने के रूप में हो सकता है, संगठन, विपणन एवं प्रबंध की नयी तकनीक के रूप में होता है। इस प्रकार आर्थिक विकास की प्रक्रिया में तकनीक के महत्वपूर्ण भूमिका के अध्ययन में व्यक्ति को समयोपरि तकनीक के स्तर में परिवर्तन की माप को भी ध्यान में रखता होता है।

प्रायः संगठन, विपणन एवं प्रबंधन की तकनीक में परिवर्तन, श्रमिकों की कुशलता में परिवर्तन आदि को ध्यान में रखना एवं कठिन समस्या है। इस प्रकार तकनीकि परिवर्तन को मापने के संदर्भ में कुछ अप्रत्यक्ष विधियों की आवश्यकता पड़ती है। श्रम के उत्पादकता की वृद्धि दर तकनीकि परिवर्तन की एक ऐसी ही माप है। यद्यपि इसका तात्कालिक एवं बार–बार प्रयोग किया जाता है, परन्तु यह एक अप्रत्यक्ष माप है, क्योंकि तकनीकि परिवर्तन के परिणामस्वरूप केवल श्रमिकों की उत्पादकता हीं नहीं बढ़ती बल्कि अन्य चरों पर भी इसका प्रभाव पड़ता है। तकनीक का एक अन्य माप कुल उत्पादकता सूचकांक है, जो श्रम एवं पूंजी आगतों में परिवर्तन तथा उत्पादन की मात्रा के बीच सम्बन्ध स्थापित करता है। यद्यपि यह तकनीक परिवर्तन की एक उत्तम माप है, परन्तु इसमें कुछ कमियां है, जिसे नजरअंदाज नहीं किया जा सकता, जैसे–तकनीकी परिवर्तन की यह माप इस मान्यता पर आधारित है कि साधनों की सीमान्त उत्पादकता में कोई भी परिवर्तन केवल तकनीकि परिवर्तन के कारण होता है, साधनों की सीमान्त उत्पादकता $\frac{MP\ of\ Labour}{MP\ of\ Capital}$ का अनुपात स्थिर रहता है और साधनों की सीमान्त उत्पादकता साधनों की मात्रा में परिवर्तन के प्रति स्वतंत्र रहती है। कुछ अर्थशात्रियों ने तकनीकि परिवर्तन को मापने की प्रगतिशील विधियों के निर्माण का भी प्रयास किया है, जो उत्पादन फलन की प्रकृति, समयोपरि इसका विर्वतन आदि जैसी सरल मान्यताओं पर आधारित है। कुछ अर्थशास्त्री यह मानते हैं, कि

तकनीक परिवर्तन असमावेशित होता है, जबकि कुछ यह मानते है कि तकनीकि परिवर्तन पूंजी में समावेशी होता है अर्थात पूंजी की उत्पादकता को बढ़ता है।

गैर–समावेशी तकनीकी परिवर्तन में बेहतर तरीके और संगठन शामिल है, जो पुराने और नये पूंजी दोनों की दक्षता में सुधार करता है। गैर–समावेशीत प्रौद्योगिकीय परिवर्तन की धारणा इस तथ्य की उपेक्षा करती है कि है कि तकनीकी परिवर्तन में कोई बदलाव नये उपकरणों में अवश्य होना चाहिए अगर उनका उपयोग किया जाये। दूसरी ओर उपलब्ध आंकड़ो के आधार पर पूंजीगत समावेशित तकनीकी परिवर्तनों से असमावेशित तकनीकी प्रगति को विभेदित कर पाना असंभव है। तकनीकी परिवर्तन के इन उपायों से जुड़े कुछ अन्य समस्याएं भी है, ये उपाय अक्सर मानते है कि पैमाने की मित्तव्ययीताएं और तकनीकी प्रगति तटस्थ है।

साथ हीं आगतोंए एवं निर्गतों को मापने में भी समस्या आती है। इसके अलावा, गुणवता परिवर्तन को आगतों एवं निर्गतों के लिए समायोजित करना मुश्किल है। यद्यपि तकनीकी परिवर्तनों के माप से जुड़ी समस्याओं को दूर करना कठिन है, लेकिन भारतीय विनिर्माण उद्योगों में तकनीकी उपयोग की स्थिति और प्रौद्योगिकीय परिवर्तन की सीमा के बारे में कुद विचार करना आवश्यक है। डा. सुहलास चट्टोपध्याय के मुताबिक एक समय पर भारतीय विनिर्माण उद्योग में प्रयोग की जाने वाली तकनीक की स्थिति के बारे में पहले हाथ का ज्ञान पूंजी की तीव्रता से परिभाषित किया जा सकता है या संयंत्र, यंत्र और प्रति कामगार उपकरण पूंजी की तीब्रता और यांत्रिकता दोनों की बजह से पूंजी से जुड़ी हुई तकनीक का उल्लेख है और हमें लगभग असमावेशित प्रौद्योगिकी की स्थिति के बारे में कोई जानकारी नही दी है। इस सीमा के बावजूद पूंजी की तीव्रता और मशीनीकरण की कोटि उपयोगी मार्गदर्शक है।

21.3 प्रौद्योगिकी एवं उत्पादकता

उत्पादकता प्रायः दीर्घकालिक आर्थिक संभावनाओं का सबसे निकटतम देखे गये सूचक है। बढ़ती उत्पादकता जीवित रहने के मानक में संभावित स्थायी वृद्धि को बनाने की कुंजी है।

प्रौद्योगिकी में परिवर्तन उत्पादकता में स्थायी वृद्धि का स्त्रोत है, लेकिन कई क्षणिक कारक, दोनो वास्तविक और मापित उत्पादकता को प्रभावित कर सकते है, उदाहरण के लिए श्रमिक अधिक मांग के दौरान अधिक काम कर सकते हैं और फर्मे अपनी पूंजी परिसम्पतियों को अतिरिक्त घण्टे चलाकर गहनता से प्रयोग कर सकती है, इस तरह दोनों हीं साधन श्रम एवं पूंजी के मापित उत्पादकता को वास्तविक तकनीकी प्रगति की तुलना में अधिक बढ़ा सकते हैं। इस प्रकार उच्च मांग की भविष्य के दौरान उत्पादकता बढ़ाई जा सकती है, क्योंकि फर्मे अल्पकाल में पैमाने के बढ़ते हुए प्रतिफल से लाभान्वित होती है, परन्तु इसका प्रभाव अस्थाई होता है और दीर्घकालीन तकनीकि परिवर्तन के मापन के समय इसे छोड़ा जा सकता है।

21.4 भारतीय अर्थव्यवस्था में प्रौद्योगिकी परिवर्तन

यद्यपि भारत एक श्रम प्रधान देश है तथापि कृषि, खाद्य उत्पाद, लकड़ी के उत्पाद, कागज एवं लुग्दी, खनन एवं उत्खनन जैसे श्रम प्रधान उद्योगों से सम्बन्धित क्षेत्रों ने साधनों की कुल उत्पादकता में उतनी वृद्धि नहीं कर पाये हैं, जितना को इलेक्ट्रॉनिक उद्योग जैसे कुछ उद्योगों ने पूंजी प्रधान तकनीक का प्रयोग करके साधनों की कुल उत्पादकता में वृद्धि की है।

ऐसा देखा गया है कि कुशल तकनीक के द्वारा एक दिये हुए उत्पादन के स्तर को पहले की अपेक्षाकृत कम साधनों के प्रयोग के द्वारा हीं उत्पादित किया जा सकता है, परन्तु जब साधनों की कीमत बहुत अधिक होती है और जब इनके प्रयोग में

कमी आतिी है, तो इसके परिणामस्वरूप उत्पादन की लागत भी बढ़ जाती है उत्पादकता में सुधार सामान्य नवप्रवर्तन के कारण आता है और भारत के संदर्भ में कृषि, खाद्य उत्पाद एवं पेय पदार्थों से सम्बन्धित क्रिया –कलापो में साधनों की लागते वर्ष प्रति वर्ष घटती गई है। आधूनिकीकरण के कारण ऊर्जा लागतों में कमी आती है, फिर भी हाल–फिलहाल की प्रवृतियों से स्पष्ट होता है, कि इधनों की कीमतों में लगातार वृद्धि हुई है, जिसके कारण ऊर्जा लागतों में कमी का लाभ नहीं मिल पाया। भारत में परिवहन, थोक व्यापार एवं खुदरा व्यापार जैसे क्षेत्र, इससे सम्बन्धित समस्याओं से मुख्य रूप से ग्रसित है।

21.5 वैश्विक स्तर पर प्रौद्योगिकी हेतु प्रतियोगिता

तकनीक के विकास से यह आशा की जाती है कि यह समाज के आवश्यक कल्याण को प्रोत्साहित करेगा। ऐतिहासिक रूप से तकनीक में होने वाले परिवर्तन सम्पूर्ण विश्व में आय एवं रोजगार के वितरण पर महत्वपूर्ण प्रभाव डालते हैं, यद्यपि सूचना तकनीक के क्षेत्र में होने वाली क्रान्ति के परिणामस्वरूप लगातार बढ़ते हुए रोजगार की मांग के समक्ष अप्रर्याप्त रोजगार के अवसर उत्पन्न हो रहे हैं। रोजगार अवसरों की आवश्यकता एवं उनकी उपलब्धता के बीच का अन्तर बढ़ता जा रहा है और यह अन्तर तभी कम किया जा सकता है, जब दीर्घकाल में उत्पादन में लगातार वृद्धि हो। इसके अलावा सूचना तकनीकी में सुधार पूंजी की में सुधार पूंजी की उत्पादकता में वृद्धि करेगा एवं कच्चे माल एवं आगतों के प्रयोग में कुशलता लायेगा, परिणामस्वरूप उत्पादन की क्षमता और प्लान्ट के आकार में विस्तार होगा, फलस्वरूप नये रोजगार का सृजन होगा, लेकिन ये रोजगार अवसर उन्हीं लोगो को उपलब्ध होगें जो तकनीकी रूप से दक्ष एवं कुशल होगें, परन्तु इनकी संख्या कुल रोजगार के मांग की तुलना में बहुत कम है।

तकनीकी परिवर्तन की प्रक्रिया विशेष रूप से बड़े आयात से सम्बन्धित होती है, जैसे कि विकासशील देशों में पारम्परिक समुदायों का विखण्डन, श्रमिकों का विस्थापन, विश्व के हर क्षेत्र में बड़े पैमाने पर प्रवास और आर्थिक एवं सामाजिक वातावरण में क्रान्ति कुछ संदर्भो में ऐसा प्रतीत होता है कि आद्योगिकरण के परिणामस्वरू‌प शुरूआती अनुभवों से काम सीखा जा सकता है। यद्यपि विकासशील देशों को प्रायः औद्योगिकृत देशो से तकनीकी लाभ होता है, परन्तु इसके क्रियान्वयन एवं इसके लाभों का वितरण असमान रहा है।

इसके अलावा विकासशील देशों के पास सामान्यतः अपने अतिरिक्त श्रमिकों या विस्थापित श्रमिकों को दूसरे देश में भेजने के लिए कोई सुरक्षा दीवार नहीं है और न ही विकासशील देशों के पास कोई सुरक्षा दीवार है कि वे अपने अतिरिक्त उत्पादन को स्वीकार करने हेतु अन्य देशों को मना पाये।

नई तकनीकी क्रान्ति के परिणामस्वरूप अन्तर्राष्ट्रीय आय के वितरण में भी परिवर्तन होगा, इन सब से भी अधिक वर्तमान युग की आद्योगिक क्रान्ति, वैज्ञानिक ज्ञान में उतरोन्तर एवं विकास से सम्बन्धित कार्य पहले से ही औद्योगिककृत देशों में किये जाते है, विकासशील देशों को उनके एवं औद्योगिक देशों में बीच लगातार बढ़ते तकनीकी के कारण लगातार हानि ही उठनी पड़ेगी। सामान्यतः यह तर्क प्रस्तुत किया जाता है कि निकट भविष्य में उच्च औद्योगिकृत देश ही अपने विकसित अधोसंरचना से नई तकनीक का क्रियान्वयन के पूर्ण क्षमता के प्रयोग से लाभान्वित हो पायेगें। नई तकनीक का क्रियान्वयन कैसे, कहा और वास्तव में कौर करेगा इस संदर्भ में भिन्न–भिन्न मत मिलते है। यह भी आशा की जाती है कि घटती हुई श्रम लागतों से बढ़ते हुए अन्तर्राट्रीय श्रम–विभाजन विश्व के निर्धनतम क्षेत्रों की और औद्योगिकीकरण को लगातार आगे बढ़ायेगा।

21.6 प्रौद्योगिकी परिवर्तन–वैश्विक दृष्टिकोण

विश्व स्तर पर, स्थिति यह है कि श्रम उत्पादकता को बढ़ाने का प्रयास करते हुए विश्व अर्थव्यवस्था रोजगार के लिए बुरी तरह प्रतिस्पर्धा कर रही है। यह इसके चेहरे पर एक भयावह स्थिति दिखाई देता है, हालाकि आर्थिक सिद्धान्त यह सिखाता है कि यह वैश्विक कल्याण के क्षेत्र में सुधार की ओर बढ़ रहा सकता है। यद्यपि इतिहास इस आशावाद को लम्बे समय तक सामान्य रूप से उचित ठहराने के लिए दिखाता है, वितरण और संक्रमणकालीन परिणाम जटिल और असमान हो सकते हैं, जो विस्तृत तरीके से दोनो में विशेष रूप से नवाचार शुरू किये जाते हैं और अत्यधिक संबधपरक विश्व आर्थिक प्रणाली के आधार पर होते हैं।

नई प्रौद्योगिकियों के प्रभाव का मूल्यांकन करने के लिए अधिकांश प्रयास क्षेत्रीय या राष्ट्रीय स्तर पर रहे हैं। उदाहरण के लिए, हम एक विशेष गतिविधि (जैसे–कपड़ा उत्पादन) के स्थानान्तरण या किसी विशेष क्षेत्र में रोजगार पर समग्र प्रभाव के स्थानान्तरण पर नई तकनीक के प्रभाव को ध्यान में रखते हैं। इस तरह के विस्तृत अध्ययन अत्यंत मूल्यवान है लेकिन तकनीकिकी परिवर्तन के माध्यमिक और अप्रत्यक्ष प्रभावों के लिए खाते में नहीं है। आधुनिक विश्व अर्थव्यवस्था के बीच में जहां कहीं भी, या जिस भी क्षेत्र में, नई प्रौद्योगिकियां पेश की जाती है, शेष विश्व अर्थव्यवस्था उसके प्रभावों से अछूता नहीं रहती है। उदाहरण के लिए जापान मे मोटर वाहन उत्पादन में नवाचार, अमीर उत्तरी अमेरिका एवं निर्धन एशिया के मोटर उद्योग को प्रभावित करता है। देशों के भीतर सभी क्षेत्रों में इंटरैक्शन भी होते है और अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर श्रम हेतु प्रतिस्पर्धा होती है, विशेष रूप से वित्त हेतु। इसका आशय यह है कि एक क्षेत्र में नवचार सिद्धान्त रूप में दूनिया भर में हर दूसरे क्षेत्र में उत्पादन, रोजगार और आय को प्रभावित कर सकता है, विकास पर तकनीकी परिवर्तन के प्रभावों के संदर्भ में ध्यान से विचार किया जाना चाहिए। आर्थिक सिद्धान्त का सुझाव है कि निरंतर तकनीकि परिवर्तन के माध्यम से, लम्बे समय तक चने वाली आर्थिक वृद्धि जनसंख्या के विकास की दर से अधिक हो सकती है। ''आधूनिकीकरण'' के लिए यह इच्छा नई प्रौद्योगिकियों को गले लगाने के लिए वर्तमान भीड़ के पीछे के तर्क का हिस्सा है। लेकिन सिद्धान्त यह भी दिखाता है कि तकनीकी परिवर्तन के विस्थापन के लिए अनिवार्य श्रम की पूर्ति केवल तब होती है जब सभी विद्यमान श्रम मौजूदा प्रौद्योगिकी के साथ पूरी तरह से नियोजित होते है। स्पष्ट रूप से यह दूनिया में बड़े पैमाने पर नहीं है, क्योंकि अधिकांश विकासशील देशों में बड़े पैमाने पर बेरोजगारी और रोजगार के तहत एवं पिछले वर्षों में बेरोजगारी कई औद्योगिक देशों में भी बढ़ी है। दूनिया में बड़े पैमाने पर तर्क संदिग्ध है। विद्यमान या अधिक श्रमिक गइन तकनीकों का प्रसार मुख्य रूप से अल्पावधि और स्थानीय लाभों की तलाश करने वाले वैश्विक कल्याण के लिए अधिक से अधिक सहायता प्रदान कर सकता है।

इस तरह की टिप्पणियां आम तौर पर नई तकनीक को वैश्विक दौड़ में आने वाले क्षेत्रों के लिए अपील नहीं कर रही है। लेकिन निश्चित रूप से कुछ विकासशील देशों के संबंध में प्रश्न पूछे जा सकते है, श्वासकर कि वैश्विक बेरोजगारी की समस्या को हल करने के लिए नई तकनीक का बेहतर इस्तेमाल किया जा सकता है।

तकनीकी नवाचार की नई लहर ने विश्व को बाजार में बदल दिया है और विशेष रूप से अन्तर्राष्ट्रीय उत्पादन प्रणाली विकसित की गई है, जिसके माध्यम से वित्त एवं तकनीकी जानकारी के तेजी से विकास का जाना जा सकता है। आज, दूनिया के राष्ट्रों की सरकार एक–दूसरे पर अपने संसाधनों को कम करने, कल्याणकारी उपायों को रद्ध करने, करों के बोझ को स्थानान्तरित करने, एवं आयातों के खिलाफ टैरिफों के लिए उद्योगों को नवाचार करने या निर्यात करने के लिए कुछ उपाय तैयार किये गये है, जो प्रतियोगिता के विरूद्ध उद्योगों को असफल बनाने के प्रयास है। सामाजिक एवं बाजार अर्थव्यवस्थाओं ने नवाचार और प्रतिस्पर्धा के

महत्व पर अन्तर्राष्ट्रीय और घरेलू बाजारों की भूमिका के साथ, अधिक जारे दिया है।

ऐतिहासिक रूप से, सफलता के कारण तकनीकी परिवर्तन की नई लहरें आम तौर पर ''निर्दयता'' का परिणाम रही है। आज भी अनुसंधान और विकास, आर्थिक सफलता, वैज्ञानिक प्रयासों एवं प्रौद्योगिकियों के व्यवसायिक शोषण के बीच कुछ स्पष्ट लिंक हैं। वैज्ञानिक खोज एवं नवाचार अतीत की तुलना में एक बहुत अधिक निदेर्शित प्रक्रिया है एवं समझ के स्तर को भी बढ़ाता रहा है। इस प्रकार यह उम्मीद करना उचित होगा कि अप्रत्यक्ष तकनीकी प्रगति के अवांटित परिणामों को समझना एवं उनके क्रियान्वयन को आसान बनाकर आर्थिक विकास के लक्ष्यों को प्राप्त किया जाये।

21.7 सारांश

तकनीक समस्या हल करने की एक प्रक्रिया है। यह लोगों की परिस्थितियों से जुड़ी समस्याओं को हल करने तथा लोगों के जीवन की गुणवत्त के सुरक्षा एवं संरक्षण से सम्बन्धित है। तकनीकी में परिवर्तन वस्तुओं, सेवाओं, जीवन शैली तथा जीवन स्तर में परिवर्तन लाता है। इलेक्ट्रॉनिक्स, दूरसंचार एवं सूचना प्रौद्योगिकी के क्षेत्र से जुड़े कुछ नये उत्पादों ने व्यापारिक उद्यमों के प्रबंधन को महत्वपूर्ण रूप से प्रभावित किया है। तकनीकी परिवर्तन, किसी अर्थव्यवस्था की उत्पादकता में महत्वपूर्ण निर्णायक भूमिका निभाता है।

21.8 शब्दावली

तकनीकी: तकनीक विकास का एक अनिवार्य साधन है। परिवर्तन के बाधक के रूप में, सम्पूर्ण विश्व में इस पर विशेष ध्यान केन्द्रित किया जाता है। प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष एवं तात्कालिक या स्थायी रूप में तकनीकी परिवर्तन आर्थिक एवं सामाजिक जीवन के हर पहलू को प्रभावित करता है। हालाकि, औद्योगिक क्षेत्र पर इसका सीधा एवं तत्काल प्रभाव पड़ता है।

तकनीकी परिवर्तनः तकनीकी परिवर्तन एक नये उत्पादन फलन के निर्माण की मात्रा के बराबर होता है, जो आगत–निर्गत सम्बन्ध में तकनीकी स्तर के महत्वपूर्ण भूमिका पर बल देता है। भौमिक अवस्था, प्रबंधकीय कौशल (ज्ञात), श्रम कुशलता आदि में ऐसे सभी परिवर्तन जो प्रयासों के प्रतिफल को कई गुना बढ़ा देते हैं, को सम्मिलित रूप में तकनीकी परिवर्तन के रूप में व्यक्त किया जाता है। इस अर्थ में तकनीकी परिवर्तन के रूप में व्यक्त किया जाता है। इस अर्थ में तकनीकी मशीनों एवं उपकरणों से बढकर है, और साथ हीं इसका उद्देश्य पूंजी और श्रम के बीच सम्बन्ध को स्थापित करना होता है। तकनीक उत्पादन की एक ऐसी उपशाखा है, जो शीघ्रता में किसी फर्म के निर्माण अर्थात अल्पकालिन दृष्टिकोण नहीं है, बल्कि यह एक दीर्घकालिन दृष्टिकोण है।

उत्पादकताः उत्पादकता प्रायः दीर्घकालिक आर्थिक संभावनाओं का सबसे निकटतम देखे गये सूचक है। बढ़ती उत्पादकता जीवित रहने के मानक में संभावित स्थायी वृद्धि को बनाने की कुंजी है।

21.9 बोध प्रश्न

(अ) रिक्त स्थानों को भरें

1. तकनीकी परिवर्तन का अर्थ नई .... को स्थापित करना है।
2. सूचना तकनीकी में प्रगति के लिए .... श्रमिक की आवश्यकता है।
3. आधूनिक काल का औद्योगिक क्रान्ति .... वैज्ञानिक ज्ञान पर आधारित है।

(ब) सत्य या असत्य

1. उस उत्पाद को प्राप्त करने के लिए जो अधिक मात्रा में आगत को लगाने पर प्राप्त होता है, बेहतर तकनीकी आगत की आवश्यकता होती है।
2. नये तकनीकी के उपयोग तथा फायदे विश्व के सभी देशों में बराबरी में आवंटित है।
3. विश्व के एक क्षेत्र में नवप्रवर्तन अन्य क्षेत्रों को भी प्रभावित करता है।

21.10 बोध प्रश्नों के उत्तर

(अ) 1. उत्पादन फलन, 2. कौशल, 3. संचयी अग्रिम।

(ब) 1. सत्य, 2. असत्य, 3. सत्य।

21.11 स्वपरख प्रश्न

1. तकनीकी परिवर्तन से आप क्या समझते हैं ?
2. उत्पादकता वृद्धि में तकनीकि परिवर्तन की भूमिका की व्याख्या करें।
3. भारतीय अर्थव्यवस्था में तकनीकी परिवर्तन पर टिप्पणी लिखें।
4. तकनीकि के वैश्विक उपागम की चर्चा करें।

21.12 सन्दर्भ पुस्तकें

1. Chandrashekhar, C.P., Aspects of Growth and Structural Change in Indian Economy, Economic and Political Weekly, Special Number, Nov., 1998.
2. Das, Gupta, Ajit K., Agriculture and Economic Development in India, New Delhi, Associated Publishing House, 1993.
3. Government of india, economic survey (annual)
4. Desai, Ashok, V., Technology Absorption in Indian Industry, New Delhi, Wiley Eastern, 1998.
5. Indian Economic Review (Delhi school of economics).
6. Indian Economic Journal (Indian economic association)
7. Khatehkate, Deen, National Economic Policy in India, Salvetor, Demonic, ed. Hand book of Comparative Economic Policies, Vol.,1, National Economic Policies, Greenwood press, pp.231-75,1991.
8. Rajkumar, Sen and Biswajit, Chetterjee, Indian Economy Agenda for the 21st Century, Deep and Deep Publication, New, Delhi, 2002.
9. A.N. Agrawal, Indian Economy, Problems Of Development And Planning, Wiley Eastern Limited, New, Delhi,2002
10. Planning Commission, Government Five Year Plan.
11. Bhalla, G.S ed., Economic Liberalization and Indian Agriculture,
12. Institution for Studies in Industrial Development, New Delhi 1994.
13. Lall, Sanjaya, technology Development and Export Performance in LDCs: Leading Engineering and Chemical Firms in IIndia, Review of World Economics, Vol. 122(1), pp.80-1996.

*****

इकाई 22 नवप्रवर्तन एवं प्रौद्योगिकी

इकाई की रूपरेखा

22.1 प्रस्तावना
22.2 नवप्रवर्तन का अर्थ
22.3 नवप्रवर्तन के तत्व
22.4 नवप्रवर्तन की श्रेणी
22.5 नवप्रवर्तन का सिद्धान्त
22.6 प्रौद्योगिकी
22.7 प्रौद्योगिकीय नवप्रवर्तन प्रणाली
22.8 समाहार करें
22.9 सारांश
22.10 शब्दावली
22.11 बोध प्रश्न
22.12 बोध प्रश्नों के उत्तर
22.13 स्वपरख प्रश्न
22.14 सन्दर्भ पुस्तकें

उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप इस योग्य हो सकेंगे कि –

- नवाचार की अवधारणा का सीख सकें।
- नवाचार की अवधारणा को जान सकें।
- प्रौद्योगिकी के अर्थ और दायरे को समझ सकें।
- प्रौद्योगिकीय नवाचर के लिए प्रणाली दृष्टिकोण को समझ सकें।

22.1 प्रस्तावना

नवप्रवर्तन प्रत्येक विकसित अर्थव्यवस्था कि एक ऐसी अन्तर्निहित विशेषता है कि एक देश की क्षमता में वृद्धि कर समृद्धि के उच्चतम स्तर को प्राप्त करने में समर्थ बनाती है, इस रूप में नवप्रवर्तन आर्थिक संवृद्धि के महत्वपूर्ण चरों में से एक है। नवपवर्तन एवं प्रौद्योगिकी दोनों हीं एक–दूसरे से अन्र्तसम्बन्धित क्षेत्र है जो व्यक्तियों के एक नये वर्ग– उद्यमी द्वारा विचारों एवं धन के प्रवाह के माध्यम से पारस्परिक लाभ को बढ़ाने की संभावनाएं जनित करता है। जहां प्रौद्योगिकी के अन्तर्गत गुणवतापूर्ण व्यावसायिक प्रशिक्षण तथा कौशल विकास को शामिल किया जाता है, वहीं नवप्रवर्तन/नवाचार नएं एवं सुधरे हुए विचारों तथा उद्यमिता के माध्यम से व्यापारिक मूल्य सृजित करने से सम्बन्धित है। प्रौद्योगिकी उद्यमिता तथा नवाचार का मूल है, फिर भी किसी अर्थव्यवस्था की प्रतियोगितात्मक संवृद्धि के लिए प्रौद्योगिकी एवं नवाचार दोनों हीं आवश्यक है। इस इकाई में प्रौद्योगिकी और नवप्रवर्तन/नवाचार के आधारभूत तत्वों के बारे में बताया जायेगा।

22.2 नवाचार का अर्थ

नवाचार किसी वस्तु या सेवा मं नए विचारों क सृजन तथा रूपान्तरण की प्रकिया है। नवाचार के फलस्वरूप उन मूल्यों का सृजन होता है, जिसके लिए

उपभोक्ता भुगतान करने को तैयार रहता है। इस प्रकार नवाचार भौतिक या अभौतिक वस्तु मं मूल्य–सृजन के माध्यम से क्रयशक्ति का सृजन करता है, वस्तु में क्रयशक्ति का सृजन इस नवाचार की प्रक्रिया का अन्तिम परिणाम है। नवाचसर से सम्बन्धित क्रयशक्ति के सृजन की क्षमता वास्तव मं एक संसाधन का सृजन है। पीटर एफ. ड्रकर के शब्दों में, ''किसी अर्थव्यवस्था में क्रयशक्ति से बढ़कर कोई दूसरा संसाधन नहीं हैं, परन्तु स्वंय क्रयशक्ति किसी नवप्रवर्तनवादी उद्यम का सृजन है।''

इस प्रकार नवाचार वर्तमान संसाधनों से मूल्यों के सृजन में सूचना, कल्पना या विचार तथा पहल का योजनावद्ध एवं सूनियोजित अनुप्रयोग है। ऐसा उपयोगी वस्तुओं में नएं विचारों के सृजन तथा रूपान्तरण की प्रक्रिया के माध्यम से होगा।

22.3 नवप्रवर्तन के तत्व

नवप्रवर्तन के विकास की प्रक्रिया के अन्तर्गत निम्नलिखित तीन तत्व हैंः–

1. **परिवर्तन की आवश्यकताओं की पहचान करनाः** यह परिवर्तन हीं है जो सदैव किसी 'नये एवं मौलिक' के प्रग्रहण के लिए अवसर प्रदान करता है और यह बाजार या समाज को पुराने से नये की ओर अग्रसर करता है। पीटर एफ ड्रकर ने सही अवलोकन किया है कि ''इस पकार चरणवद्ध नवप्रवर्तन में परिवर्तन के लिए संगठित एवं उद्देश्यपूर्ण खोज शामिल होती है और अवसरों के चरणवद्ध विश्लेषण में इस प्रकार के परिवर्तन आर्थिक एवं सामाजिक नवाचार के लिए अवसर प्रदान करते हैं।'' वह आगे कहते हैं कि नवप्रवर्तन के सम्बन्ध में अनुशासन या सावधानी बरतना एक नैदानिक सावधान हैः परिवर्तन के क्षेत्रों का चरणवद्ध परीक्षण जो कठिनता से उद्यमितापूर्ण अवसरों को प्रदान करते हैं।
2. **प्रतियोगी व्यक्तियों का विकास करनाः** नवप्रवर्तन की प्रक्रिया में अगला कदम उतम विचारों को उपयोगी परिणामों में परिवर्तित करने से सम्बन्धित है। यह परिवर्तन किसी नई वस्तु या सेवा में मूल्य–सजन के रूप में होात हे जिसके लिए उपभोक्ता/ग्राहक भुगतान करता है। नये विचारों को उपयोगी परिणामों मं बदलने के लिए ऐसे प्रतियोगी लोगों की आवश्यकता होती है जिनके पास आवश्यक प्रौद्योगिकी/तकनीकी को प्रयोग करने का कौशल और ज्ञान हो।

   आवश्यक प्रौद्योगिकीय प्रतिदद्विता नवाचार के प्रकार के अनुसार परिवर्तित होती रहती है। विकासीय नवप्रवर्तन तकनीक या प्रक्रिया में कई बढ़ते हुए सुधारों के द्वारा लाया जाता है जबकि क्रान्तिकारी नवप्रवर्तन की स्थिति में तकनीकी विकास शिल्प–ज्ञान के स्तर के अनुरूप बहुत ही जटिल होता है।
3. **वित्तीय सहयोग की वचनबद्धताः** नवाचार के लिए आवश्यक धन के निवेश की आवश्यकता होती है जिससे नवप्रवर्तनवादी अवसरों को सृजित करने वाले परिवर्तनों का लया जा सके। विकासवादी नवप्रवर्तन में नवप्रवर्तन की प्रक्रिया प्रारम्भ करने के लिए आवश्यक वित्तीय सहयोग का आकार क्रान्तिकारी नवप्रवर्तन लाने के लिए आवश्यक वित्तीय सहयोग की तुलना में कम होता है।

नवप्रवर्तन की प्रक्रिया में उद्यमी की भूमिका के प्रकार

नवप्रवर्तन की प्रक्रिया में सामान्यतः संगठन के विभिन्न सतरों पर ऐसे लोग आवश्यक होते है जो निम्नलिखित तीन प्रकार की उद्यमिता–भूमिका निभाते हैं:

1. **उत्पाद क समर्थक/विजेता के रूप में:–** एक उत्पाद चैम्पियन ऐसा व्यक्ति होता है जो नए विचारों का सृजन करता है तथा इसे विभिन्न संगठनात्मक कठिनाईयों के सन्दर्भ में सहयोग देता है।
2. **प्रायोजक के रूप में:–** एक प्रायोजक वास्तव में विभाग का प्रबन्धक होता है जो विचारों के महत्व को पहचानता है, नवाचार को विकसित करने के लिए वित्त प्राप्त करने में सहयोग करता है तथा नवप्रवर्तन के क्रियान्वयन को प्रोत्साहन प्रदान करता है।
3. **वाद्य मण्डल के रूप में:–** यह प्रबनधन में बैठा कोई ऐसा उच्च्य व्यक्ति होता है जो नवाचार की आवश्यकता को धरातल पर लाता है, नवाचारी क्रियाओं के लिए वित्त उपलब्ध कराता है। प्रबन्धकों के बीच नये विचारों को प्रायोजित करने के लिए प्रोत्साहित करता है तथा उत्पाद के सृजक को असहयोगी कार्यकारियों से सुरक्षा प्रदान करता है।

   जब तक इन तीनों प्रकार की भूमिकाएं किसी संगठन में नहीं होगी, किसी बड़े नवाचार की संभावना कम होगी।

22.4 नवप्रवर्तन की श्रेणी

नवप्रवर्तन विकासवादी से क्रान्तिकारी अर्थात वर्धमान नवाचार से मौलिक नवाचार हो सकता है। किसी कम्पनी की क्षमता तथा उसके साथ रणनीति निम्नलिखित चार प्रकार के नवाचार की भूमिका निभा सकती हैः

1. **मुख्य व्यापार को सुधारने के रूप में:** इस प्रकार का नवप्रवर्तन वृद्धिमान नवप्रवर्तन पर आधारित होता है एवं जिसका विकास तेजी से एंव कम खर्च मं किया जा सकता है। इसमें सुविधायुक्त पैकेजिंग और एक हीं श्रेणी में प्रवाह सम्मिलित किया जाता है एवं यह प्रायः क्षेतिज वृद्धि रणनीति का एक हिस्सा होता है। इसकी संभावित कमी बाजार की अदूरदर्शिता है। इसका ध्यान मुख्यतः वर्तमान उत्पादों तथा उपभोक्ताओं पर हीं होता है।
2. **रणनीतिक लाभों का दोहन करना:** इस प्रकार का नवाचार वर्तमान ब्रांड और उत्पाद श्रेणी को वर्तमान क्षमता में बिना किसी महत्वपूर्ण परिवर्तन के नये उपभोक्ताओं एवं बाजारों तक ले जाने पर केन्द्रित होता है। इसका अर्थ है, प्रभावी क्षमता के द्वारा कम्पनी के वर्तमान रणनीति को आगे ले जाना है, जो मुख्यतः इन्हें संकेन्द्रीय विवधिकरण के माध्यम से बाजारों एवं उपभोक्ताओं को अधिक विस्तृत क्षेत्र ले जाता है। इसकी संभावित कमी यह है कि इसके अन्तर्गत अन्य प्रतियोगी भी सामान्य क्षमता के आधार पर नवाचार की क्रिया कर सकते हैं।
3. **नई क्षमताओं का सृजन करने में:** इस प्रकार का नवाचार उपभोक्ताओं के बढ़ते हुए संतुष्टि तथा ब्राण्ड या उत्पाद श्रेणी की ईमानदारी पर केन्द्रित होता है, ऐसा मुख्यतः रणनीतिक विस्तार के बिना किसी महत्वपूर्ण परिवर्तन को नहीं लाया जा सकता है। नई संगठनात्मक क्षमताओं के सृजन के द्वारा होने पर केन्द्रित होता है। कम्पनी नई प्रौद्योगिकीय

प्रतिभाओं या व्यवसाय का विकास कर सकती है या क्रय कर सकती है। फर्म के वर्तमान उपभोक्ताओं एवं बाजारों को अच्छी सेवा देने के लिए इसमें उर्ध्वाधर संवृद्धि रणनीति सम्मिलित होती है। इसकी संभावित कमी निवेश की लागत तथा कियान्वयन में लगने वाा समय है।

4. **कातिकारी परिवर्तन के सृजन में:** इस प्रकार का नवाचार उन भौतिक नवाचारों पर केन्द्रित होता है, जो वर्तमान उत्पाद श्रेणी या ब्राण्ड में रणनीतिक सीमा एवं क्षमता के रूप में महत्वपूर्ण परिवर्तन लाकर आगे बढ़ता है। इसका अर्थ नया व्यवसाय मॉडल एवं कम्पनी के लिए नये क्रान्तिकारी भविष्य को सकता है। इसकी संभावित कमी असफलता का उच्च जोखिम है।

22.5 नवप्रवर्तन का सिद्धान्त

पीटर एफ. ड्रकर, एक प्रसिद्ध प्रबंधन विशेषज्ञ, ने इसे निश्चित रूप से क्या करना पड़ता है एवं निश्चित रूप से क्या नहीं करना पड़ता है, के रूप में विहित करते है, जिसे वे प्रभावी नवाचार के सिद्धान्त के रूप में इंगित करते हैं क्या करना पड़ता है? का अर्थ है, ऐसे कार्य जो नवाचार लाने के लिए किये जाने चाहिए और इसके विपरीत भी है जो निम्नलिखित हैः—

नवाचार के लिए आवश्यक तत्व

पीटर एफ. ड्रकर के अनुसार नवाचार किया प्रारम्भ करते समय निम्न विन्दुओं को आवश्य ध्यान में रखना चाहिएः—

1. **उद्‌देश्यपूर्ण एवं चरणबद्धः** उद्‌देश्यपूर्ण एवं चरणवद्ध नवाचार का प्रारम्भ उन अवसरों के विश्लेषण के साथ होता है, जो नवाचारी उपक्रम के उत्पति है। नवाचार के अवसरो के विश्लेषण का आशय है, नवाचारवादी प्रयास के उपयुक्त साधन कि पहचान एवं परीक्षण करना है। नवाचारवादी अवसरों के साधन, जिस क्षेत्र में नवाचार करना है, जिसमें परिवर्तन के अनुसार बदलते रहते है। उदाहरण के लिए जनांकिकीय परिवर्तन सामाजिक क्षेत्र में नवाचार के लिए अच्छे अवसर के रूप में सिद्ध हो सकते है, परन्तु औद्योगिक अभिकल्पना के क्षेत्र में नवाचार के उपयुक्त साधन की खोज संगठित होना चाहिए एवं किसी रणनीतिक आधार पर की जानी चाहिए।
2. **नवाचार वैचारिक एवं अनुभवजन्य दोनोंः** सकल नवाचारी एक नवाचार के अवसरें पर विचर करते समय संया पर ध्यान देते हैं और उसी समय वे नवाचार का प्रयोग कने वालो के आधार पर उनकी आवश्यकताओं एवं प्रत्याशाओं को ध्यान रखते हुए ग्रहणशीलता की कोटि का अनुमान लगाने मं भी आवेशित होते है। नवाचार के लिए यह आवश्यक है कि सबसे पहले वह यह ध्यान रखे कि नया दृष्टिकोण उन लोगों की प्रत्याशाओं, जो इस उपयोग करेगें, के साथ उपयुक्त है कि नहीं।
3. **एक प्रभावी नवाचार साधारण होना चाहिएः** एक प्रभावी नवाचार साधारण होना चाहिए। इसे केवल एक ही बात पर ध्यान केन्द्रित करना चाहिए, अन्यथा इसमें भ्रम की स्थिति उत्पन्न होगी और ठीक तरह से कार्य नहीं कर पायेगा। इसे एक विशेष उद्‌देश्य जो एक महत्वपूर्ण परिणाम के रूप में उद्धृत होता है, के साथ सम्बन्धित होना चाहिए।

4. **''सोचो बड़ा, परन्तु शुरूआत छोटे स्तर पर करो''**– यह नवाचार का सबसे महत्वपूर्ण सिद्धान्त है। योजना महत्वकांक्षी होनी चाहिए, परन्तु शुरूआत, सीमित साधनों को एक छोटे बाजार पर केन्द्रि करते हुए छोटे रूप में की जानी चाहिए। प्रायः बड़े पैमाने पर नवाचार का कार्य प्रारम्भ करने के लिए अधिक समय एवं ख्याति संसाधनों की आवश्यकता होती है, परन्तु समय एवं एंसाधन दोनों हीं महत्वपूर्ण अवरोध के रूप में कार्य करते है।
5. **नवाचार को एक दिये गये माहौल में महत्वपूर्ण भूमिका अदा करने का उद्देष्य रखना चाहिए।** शुरूआत से ही नेतृत्व करने के लिए इसे कठिन परिश्रम करना चाहिए अन्यथा यह बाजार में स्वंय को स्थापित करने और बनाये रखने में समर्थ नहीं हो पायेगी।

ये नवाचार नहीं

नवाचार के अन्तर्गत निम्नलिखित को सम्मिलित नहीं किया जाना चाहिए–

1. **एक नवाचारक को चालाक एवं कपटी नहीं होना चाहिए।** अत्याधिक चालाकी दिखाकर पारदर्शिता नहे लाई जानी चाहिए। यदि चालाकी से अपनी अक्षमता को छुपा भी लिया गया, तो यह निश्चित है कि दीर्घकाल में ये सामने जरूर आयेगा। जो अन्तिम रूप में नवाचारवादी उपक्रम के असफल होने का कारण बन सकता है।
2. **नवाचार के लिए विभेदीकृत दृष्टिकोण नहीं अपनाना चाहिए।** नवाचारक का केवल एक ही बात पर अना ध्यान केन्द्रित करना चाहिए जो कवल उसके उद्देश्य से सम्बन्धित हो।
3. **नवाचारक को भविष्य की ओर नहीं देखना चाहिए।** नवाचारक को भविष्य की तुलना में वर्तमान की ओर अपना ध्यान केन्द्रित करना चाहिए। यद्यपि किसी नवाचार का प्रभाव दीर्घकालीक हो सकता है और इसके पूर्ण होने की अवधि भी पूर्ण हो सकती है, फिर भी इसका अनुप्रयोग वर्तमान में होना चाहिए।

नवाचार के लिए आवश्यक शर्ते

नवाचार के लिए निम्न तीन शर्ते हैंः

1. नवाचार एक ऐसा कार्य है, जिसके लिए उच्चकोटि के ज्ञान एवं अविष्कारिक चरित्र की आवश्यकता होती है। आवश्यक ज्ञान एवं पटूता के दिये हुये हाने पर नवाचार को कर्मठता, दृढ़ता एवं वचनबद्धता की उच्च आवश्यकता होती है। यदि ये तत्व अनुपस्थित है तो कोई भी ज्ञान या प्रतिभा इस उद्देश्य को पुरा नहीं कर पायेगी।
2. सफल होने के लिए नवाचार की अपनी क्षमता का विकास करना चाहिए। नवाचारवादी अवसरो के विस्तृत क्षेत्र के दिये होने पर नवाचार को उन अवसरों को चुनना चाहिए, जो नवाचार के ज्ञान, प्रतिभा तथा स्वभाव के दृष्टि से सबसे उपयुक्त हो।
3. नवाचार अर्थव्यवस्था एवं समाज पर एक प्रभाव है, जा विशेष रूप में उपभोक्ताओं/ग्राहकों एवं सामान्य रूप से लोगो के व्यवहार में परिवर्तन को व्यक्त करता है, अतः इसे बाजार केन्द्रित होना चाहिए।

22.6 प्रौद्योगिकी

इसका अर्थ एवं क्षेत्र

मेरियम वेबेस्टर शब्दकोष के अनुसार प्रौद्योगिकी शब्द से आशय मुख्यतः/मुख्य रूप से ''किसी विशेष क्षेत्र में ज्ञान का प्रायोगिक अनुप्रयोग है से जनित क्षमता है।'' प्रौद्योगिकी को विस्तृत अर्थ में किसी मूल्य को प्राप्त करने के लिए मानसिक एवं शारीरिक प्रत्यनों के अनुप्रयोग द्वारा सृजित ऐसे उपक्रमों के रूप में किया जा सकता है, जो भौतिक एवं अभौतिक दोनों हो सकते है। इस रूप में प्रौद्योगिकी से आशय वास्तविक दुनिया की समस्याओं को हल करने के लिए मशीनों एवं उपकरणां का प्रयोग हैं। मशीनों एवं उपकरणों का भौतिक होना आवश्यक नहीं है। अभौतिक प्रौद्योगिकी जैसे कि कम्प्यूटर सॉफटवेर एवं व्यवसाय प्रक्रिया तथा विधि में सुधार, अभौतिक तकनीक की श्रेणी में आते हैं।

प्रौद्योगिकी शब्द का प्रयोग तकनीकी के संग्रहण को व्यक्त करने के लिए भी किया जा सकता है। इस परिप्रेक्ष्य में यह वर्तमान मानवीय ज्ञान के उस स्तर को बताता है कि इच्छित वस्तुओं के उत्पादन, समस्याओं के समाधान, आवश्यकताओं को पूर्ण करना या इच्छाओं संतुष्ट करने कल संसाधनों को किस प्रकार सयुक्त किया जाये; इसके अन्तर्गत तकनीकी विधियां, कौशल, प्रक्रिया, तकनीक, उपकरण एवं अंतरीक्ष प्रौद्योगिकी या आर्युविज्ञान प्रौद्योगिकी, तब यह सम्बन्धित क्षेत्र के ज्ञान एवं उपकरणों की स्थिति को व्यक्त करता है। सिद्ध ज्ञान प्रौद्योगिकी की स्थिति मानवता को किसी भी क्षेत्र में उपलब्ध उच्च प्रौद्योगिकी को व्यक्त करता है। विस्तृत अर्थ में प्रौद्योगिकी वस्तुओं एवं सेवाओं के उत्पादन, दोहन एवं नमूनों, आदि के सम्बन्ध में विशिष्ट ज्ञान या उद्देश्यपूर्ण अनुप्रयोग है एवं साथ हीं प्रौद्योगिकी मानवीय क्रिया–कलापों के संगठन में समाज एवं इसके चारों ओर के क्षेत्र पर अपना प्रभाव डालता है।

प्रौद्योगिकी शब्द के अर्थ के उपरोक्त व्याख्या के आलोक में, इसके क्षेत्र को पांच निम्न श्रेणियों में विभाजित किया जा सकता है–

1. **वास्तविकः**– इसके अन्तर्गत रूपरेखा, मॉडल, ऑपरेशन मेनुअल तथा नमूने आते हैं।
2. **अवास्तविकः**– सलाहकारी संस्था, समस्या निराकरण, परीक्षण की विधियां आती है।
3. **उच्च–प्रौद्योगिकीः**– पूर्णरूप से यया लगभग पूर्णरूप से स्वचालित एवं वृद्धिमान प्रौद्योगिकी जो शक्तिशाली उपायों तथा तत्वों को कुशलता से प्रयोग करता है।
4. **मध्यवर्ती प्रौद्योगिकीः**– अर्द्धस्वचालित और आंशिक रूप से वृद्धिमान प्रौद्योगिकी, जो शुद्ध तत्वों तथा मध्यम स्तर के उपायों को कुशलता से प्रयोग करती है।
5. **निम्न–प्रौद्योगिकीः**– श्रम–गहन तकनीक जो केवल कमजोर उपायों तथा अपरिष्कृत या सकल तथ्वों को कुशलता से प्रयोग में लाती है।

विज्ञान, अभियांत्रिकी एवं प्रौद्योगिकी

विज्ञान, अभियांत्रिकी एवं प्रौद्योगिकी एवं प्रौद्योगिकी में सदैव अन्तर स्पष्ट नही होता है। विज्ञान किसी घटना का तकसंगत विवेचन या अध्ययन है जिसका उद्देश्य–प्रतिमान के विभिन्न तत्वों के मध्य औपचारिक तकनीक जैसे कि वैज्ञानिक विधि के प्रयोग के द्वारा चिरस्थायी सिद्धान्तों की खोज करना है। प्रौद्योगिकी

सामान्यतः विज्ञान का विशिष्ट उत्पाद, क्योंकि प्रौद्योगिकी आवश्यकताओं जैसे कि उपयोगिता, सुरक्षा एवं उपदेष्त को संतुष्ट करती है।

अभियांत्रिकी प्रणालियों एवं उपकरणों को बनाने एवं उनकी रूपरेखा तैयार केने के उद्‌देश्य केन्द्रित प्रक्रिया है, जो प्रायोगिक मानवीय साध्यों के लिए प्राकृतिक घटना के दोहन पर अपना ध्यान केन्द्रित करती है और जो कभी–कभी विज्ञान से तकनीक एवं परिणाम का भी प्रयोग करती है।

प्रौद्योगिकी का विकास किसी व्यवहारिक परिणाम को प्राप्त करने के लिए ज्ञान, जिसमें वैज्ञानिक अभियांत्रिकी, गणितीय, भाषायी एव ऐतिहासिक ज्ञान भी सम्मिलित है, के विभिन्न क्षेत्रों का एक स्थान पर इकट्ठा करता है।

प्रौद्योगिकी प्रायः विज्ञान एवं अभियांत्रिकी का परिणाम होता है, परन्तु प्रौद्योगिकी मानवीय क्रिया–कलापों के रूप में इन दोनों से पहले घटित होती है। उदाहरण के लिए विज्ञान पहले से उपलब्ध उपकरणों एवं ज्ञान के प्रयोग के द्वारा विद्युत चालकों में इलेक्ट्रॉन के प्रवाह का अध्ययन कर सकता है। तब इस प्राप्त नये ज्ञान का प्रयोग अभियांत्रिकाओं के द्वारा अर्द्धचालक कम्प्यूटर एवं अन्य उन्नत श्रेणी के प्रौद्योगिकी जैसे–नये उपकरणों एवं मशीनों का सृजन करेगें। इस अर्थ में वैज्ञानिक एवं अभियांत्रिकी दोनों हीं प्रौद्योगिकी के रूप में सुविचारित किये जा सकते हैं। प्रायः तीनों ही क्षेत्रों विशेषकर विज्ञान, अभियांत्रिकी एंव प्रौद्योगिकी को शोध एवं सदर्भ के उद्‌देश्य के लिए एक माना जाता है।

22.7 प्रौद्योगिकीय नवप्रवर्तन प्रणाली

तकनीकी नवाचार प्रणाली की अवधारणा एक विस्तृत सैद्धान्तिक स्कूल के एक भाग के रूप में सामने लाया गया था जिसे नवाचार प्रणाली दृष्टिकोण कहा जाता है। इस दृष्टिकोण के पीछे मुख्य विचार यह है कि तकनीकी परिवर्तन के निर्धारक न केवल व्यक्तिगत कार्यों में पाये जाते है और न ही केवल शोध संस्थानो में बल्कि विस्तृत सामाजिक संरचना, जिसमें फर्में एवं साथ हीं साथ शोध संस्थान सम्मिलित होते हैं, के रूप में भी पाये जाते है। 1980 के दशक से हीं नवाचार प्रणाली के अध्ययन तकनीकी परिवर्तन पर सामाजिक संरचनाओं के प्रभाव को तथा राष्ट्रों, क्षेत्रों या तकनीकी क्षेत्रों में अप्रत्यक्ष रूप से दीर्घकालीक आर्थिक संवृद्धि के प्रभाव को भी स्पष्ट करते रहे है।

तकनीकी नवाचार प्रणाली को साधारण वस्तुओं या सेवाओं के तुलना में ज्ञान के प्रवाह के संदर्भ में अधिक परिभाषित किया जाता है। इसके अन्तर्गत गतिशील ज्ञान एवं प्रतियोगी नेटवर्क को सम्मिलित किया जाता है। इसका अर्थ है कि तकनीकी नवाचार प्रणाली को इसके प्रणालीगत संघटकों या इसके प्रणालीगत क्रियाओं के रूप में विश्लेषित किया जा सकता है।

एक तकनीकी नवाचार प्रणाली के प्रणालीगत संघटक संरचना कहे जाते है। ये प्रणाली के स्थैतिक पहलू को प्रदर्शित करते है, क्योंकि ये समय के सापेक्ष स्थिर बने रहते है। प्रणालीगत संघटकों की तीन आधारभूत मुख्य संरचनायें इस प्रकार है।

1. **नायकः** इसके अन्तर्गत प्रौद्योगिकी में योगदान करने वाले संगठन आते हैं, जैसे कि स्वीकार करने वाला बनाने वाला या अप्रत्यक्ष रूप में वित प्रदान करने वाला और विनियामक आदि। ये तकनीकी नवाचार प्रणाली के नायक हीं है, जो वास्तव में अपने चयन एवं कार्यों से प्रौद्योगिकी का

सृजन, उपभोग और विस्तार करते है। तथा संबंधित कर्ताओं का विविधतापूर्ण होना बहुत लाभदायक होता है। उनकी विविधता एक क्षेत्र से दूसरे क्षेत्र या निजी कर्ताओं से सार्वजनिक कर्ताओं एवं प्रौद्योगिकी का विकास कने वाले से प्रौद्योगिकी को स्वीकार करने तक होता है। एक तकनीकी नवाचार प्रणाली का विकास इन सभी कर्ताओं के बीच अंतसम्बधों पर निर्भर करेगा। उदाहरणस्वरूप उद्यमी के लिए उसके व्यवसाय में निवेश की शुरूआत करना लगभग असंभव होगा, यदि सरकार उन्हें वितीय सहायता देने के लिए उत्सुक नहीं है। इसी प्रकार सरकार को भी इस बात का कोई भी संकेत कि वितीय सहायता आवश्यक है, नहीं प्राप्त होगा यदि उद्यमी इसे सूचना उपलब्ध नहीं करता है और यह दलील भी सार्थक नीतिगत सहायता की आवश्यकता है यह भी नहीं उपलब्ध करता है।

2. **संस्थाएंः** संस्थानिक संरचनाएं, नवाचार प्रणाली का केन्द्रिय बिन्दु होती है, ये संस्थाएं हीं है जो समाज में खेल के नियमों कि आवश्यकता की पूर्ति करती है और इसके विपरीत भी। संगठित एवं असंगठित संस्थाओं के मध्य अन्तर किया जा सकता है, जैसे– असंगठित संस्थायें बेहतर रणनीति तथा वास्तविक आकार कर्ताओं के मध्य सामूहिक अदान–प्रदान के मध्यम से प्राप्त करती है, जबकि संगठित संस्थयें किसी प्राधिकरण के द्वारा संहितावद्ब लागू किये गय नियमों के मध्यम से अपना वास्तविक स्वरूप प्राप्त करती है। असंगठित संस्थाये आदर्शात्मक या संज्ञानात्मक हो सकती है। आदर्शात्मक नियम नैतिक सार्थकता से सम्बन्धित सामाजिक प्रतिमान के रूप मं हो सकते है या सामूहिक बुद्विमता से निर्धारित हो सकते है। सरकारी कानून एवं नीतिगकत निर्णय तथा कार्य के सिद्वान्त या संविदा संगठित संस्थाओं के उदाहरण है, जबकि कम्पनी के द्वारा अपशिष्ट को साफ करने या रोकने की जिम्मेदारी लेना आदर्शात्मक नियम का उदाहरण है।

3. **तकनीकी कारकः** तकनीकी संरचनाओं में शिद्वकृतियां एवं तकनीकी आधार संरचनाएं शामिल की जाती है। इनके अन्तर्गत लागत, सुरक्षा, एवं विश्वसनीयता से मुक्त तकनीकी–आर्थिक शिल्प–कृतियों के क्रियाकलाप भी आते है, ये विशेषताये तकनीकी परिवर्तन एवं संस्थानिक परिवर्तनों के क्रियाविधि एवं पुनर्निवेशन को समझने के लिए महत्वपूर्ण होती है, उदाहरण के लिए यदि शोध एवं विकास सहायता, योजना एक ऐसी तकनीक के विकास को सहयोग देती है, जिसके परिणामस्वरूप क्रियाएं सुरक्षा एवं व्यवसाय में एवं व्यवसाय में सुधार होगा तो इससे प्रभावित होकर अन्य सहायक योजनाएं जिसमें प्रायोगिक प्रदर्शन भी सम्मिलित है, के लिए मार्ग प्रशस्त करेगी। आगे, यह तकनीक सुधार के क्षेत्र में और भी लाभदायक हो सकता है। संरचनात्मक कारकों के सम्बन्ध में यह कि इनसे नई प्रणालियों के विकास की संभावना कम है। एक वास्तविक प्रणाली में ये सभी कारक एक–दूसरे से जुड़े हुये होते है यदि इनके माध्यम से गहन विन्यास की व्यवस्था का प्रारूप निर्मित होता है तो इसे नेटवर्क कहते है। एक ईधन सेल के प्रयोग पर कार्य करने वाली कार्यों के मध्य संगठन जो

समस्या निराकरण को दिनचर्या के द्वारा निर्देशित तथा अनुदान कार्यक्रम द्वारा सहायता प्राप्त है, इसके उदाहरण अन्तर्गत आयेगा। इसी प्रकार उद्योगों के मध्य सहयोग सामूदायिक शोध, एवं नीतिगत नेटवर्क, प्रयोगकर्ता–आपूर्तिकर्ता के बीच का सम्बन्ध इत्यादि सभी नेटवर्क के उदाहरण है।

तकनीकी नवाचार प्रणाली का प्रणालीगत गत्यात्मकता

सरंचनाओं का विश्लेषण विशिष्ट रूप से प्रायोगिक विशेषताओं में अंर्तदृष्टि उत्पन्न करता है, जो किसी समयविन्दु या किसी दी गई समयावधि के अन्तर्गत प्रौद्योगिकी के फैलाव में सहायक एवं बाधाओं दोनों को सम्मिलित करता है। संरचनाओं के अन्तर्गत उन कारकों को सम्मिलित किया जाता है जो समय के सापेक्ष सापेक्ष स्थिर बने रहते है; फिर भी कई प्रौद्योगिकियों के लिए विशेषकर जिनका विकास अभी–अभी हीं हुआ है, में ये संरचनायें पूर्णरूप से स्थापित नहीं होती है। इस कारण से प्रौद्योगिकी नवाचार प्रणाली के मूल्यांकन एवं विश्लेषण के लिए एक नया दृष्टिकोण अपनाया जाता है। यह दृष्टिकोण समय के साथ संरचनाओं के निर्माण पर केन्द्रित होता है न कि उनकी स्थिरता पर। इस दष्टिकोण का केन्द्रीय विचार यह है कि इसके अन्तर्गत उन सारे क्रियाओं को जो नवाचार के प्रणालीगत क्रियाओं के विकास फैलाव एवं प्रयोग में योगदान करती है। ये प्रणालीगत क्रियायें उन क्रियाकलापों को जो तकनीकी नवाचार प्रणाली के निर्माण को प्रभावित करती है; के प्रकारों के रूप में समझा जाता है, तकनीकी नवाचार प्रणाली के विकास को प्रभावित करने वाली महत्वपूर्ण प्रायोगिक क्रियायें निम्न हैं।

उद्यमी क्रियाकलापः उद्यमी की मुख्य भूमिका ज्ञान को व्यवसायिक अवसरों और अन्ततः नवाचार के रूप में परिवर्तित करने में है। उद्यमी क्रियाकलापों के अन्तर्गत उन परियोजनाओं को सम्मिलित किया जाता है, जिनका उद्देश्य किसी प्रायोगिक या व्यवसायिक वातावरण में विकसित हो रही प्रौद्योगिकी के उपयोगिता को सिद्व करना होता है। ऐसी परियोजनाएं मुख्यतः प्रयोगों एवं प्रदर्शनों के रूप में होती है।

ज्ञान का विकासः ज्ञान के विकास से सम्बन्धित क्रियाकलापों के अन्तर्गत कार्यों को सिखाना जिसमें न केवल उभरती हुई प्रौद्योगिकी से सम्बन्धित कार्य आयेगें बल्कि बाजार, नेटवर्क, प्रयोग आदि से सम्बन्धित कार्य भी आयेगें। सिखाने के क्रियाकलापों के कई प्रकार है उनमें से कुछ महत्वपूर्ण वर्ग जैसे कि खोज करते–करते सिखना और कार्य करते–करते सिखना जिसमें पहला कला मूलभूत विज्ञान में शोध एवं विकास कार्यों से सम्बन्धित है, जबकि दूसरा व्यवहारिक परिप्रेक्ष्य में सीखने के क्रियाकलाप को सम्मिलित करता है, ऐसा यह या तो प्रयोगशाला में प्रयोग के माध्यम से या परीक्षण को अंगीकृत करने के द्वारा किया जाता है।

ज्ञान का फैलाव/ज्ञान का आदान–प्रदानः तकनीकी नवाचार प्रणाली का विरोधीकृत संगठन संरचना नेटवर्क की तरह ही है। नेटवर्क का प्राथमिक कार्य इससे संबंधित सभी क्षेत्रों के मध्य ज्ञान के अदान–प्रदान को प्रोत्साहित करना है। ज्ञान के प्रवाह से सम्बन्धित क्रियाओं के अन्तर्गत कर्ताओं के मध्य भागीदारी जैसे कि तकनीक के विकास करने वाले कार्यशालाओं आयोजन करने वाले तथा

संगोष्ठि इत्यादि। नवाचार प्रणाली दृष्टिकोण प्रणाली इस बात पर जोर देता है कि नवाचार केवल वहीं पर होता है, जहां विभिन्न क्षेत्रों के कर्ता एक–दूसरे को प्रभावित करते हैं। प्रयोग करते–करते सीखना अन्तक्रिया पर आधारित अधिगम का एक विशिष्ट प्रकार है, जिसमें तकनीकी नवाचार के प्रयोगकर्ताओं के अनुभव पर आधारित क्रियायें सम्मिलित होती है, उदाहरण के लिए प्रयोगकर्ता, उत्पादक के मध्य अन्तःक्रिया पर आधारित कार्य है।

परीक्षण या मार्गदर्शनः खोज संबंधित क्रियाओं के मार्गदर्शन से आशय कर्ताओं के उभरती हुई तकनीक को सहायता प्रदान करने से संबंधित प्रत्याशाओं, जरूरतों, एवं आवश्यकताओं को आकार प्रदान करना है। खोज के मार्गदर्शन से आशय तकनीक से संबंधित व्यक्तिगत निर्णय है, परन्तु यह एक मजबूत संस्था का भी रूप ले सकता है, उदाहरण के लिए जैसा कि जैसा कि नीतिगत लक्ष्य। समुदाय में विभिन्न कर्ताओं द्वारा व्यक्त प्रत्याशाओं एवं प्रतिभा भी खोज के निर्देशक के रूप में जाने–जाते हैं। खोज के मार्गदर्शन सकारात्मक एवं नकारात्मक दोनों हो सकते हैं। खोज के सकारात्मक मार्गदर्शन का अर्थ तकनीकी के विकास के किसी विशेष क्षेत्र में धनात्मक संकेत – प्रत्याशाओं, प्रतिज्ञा, नीतिगत सिद्धान्त का अभिसरण है। नकारात्मक खोज के मार्गदर्शन कि स्थिति में यह विषय से अस्वीकृति वाला होगा। चूंकि संसाधन सीमित मात्रा में है, इसलिए यह महत्वपूर्ण है कि हमारा मुख्य ध्यान नवाचार के विकास पर हो।

बाजार की रचनाः उभरती हुई प्रौद्योगिकी से इस बात की आशा नहीं की जा सकती है कि वे वर्तमान प्रौद्योगिकीयों से प्रतियोगिता कर पायेगी। नवाचार को प्रेरित करने के लिए सामान्यतः यह आवश्यक होता है कि कृत्रिम या आला बाजारों का निर्माण किया जाये। बाजार की रचना से सम्बन्धित क्रियाओं के अन्तर्गत उन कार्यों को सम्मिलित किया जाता है जो उद्यमान प्रौद्योगिकी के मांग के सृजन मं योगदान कर सकती है, यह योगदान उद्यमान प्रौद्योगिकी के प्रयोग को वितीय सहायता देकर भी किया जा सकता है या प्रतियोगी प्रौद्योगिकी के उपर कर लगाकर किया जा सकता है।

संसाधनों का संघटनः संसाधनों के संघटन से आशय वितीय, भौतिक तथा मानवीय पूंजी का आंवटन है। संसाधनों के संघटन से संबंधित विशिष्ट कार्यों में निवेश व सहायता सम्मिलित किये जाते है। संसाधन संघटन से संबंधित कार्य मूलभूत आर्थिक चरों को प्रदर्शित करते है। इसके महत्व को इस रूप में समझा जा सकता हैः एक उभरती हुई प्रौद्योगिकी की सहायता किसी भी प्रकार से नहीं की जा सकती है, यदि वितीय या प्राकृतिक संसाधनों का अभाव है या यदि उपयुक्त कौशल एवं प्रतियोगिकता से मुक्त कर्ताओं का अभाव है।

संगठन के समर्थन से सहायताः किसी उद्यमान प्रौद्योगिकी का विकास प्रायः वर्तमान प्रौद्योगिकी प्रणाली में रूचि दिखाने वाले कर्ताओं से प्रतिरोधक होती है। एक तकनीकी नवाचार प्रणाली का विकास करने के लिए अन्य कर्ताओं को इस जड़ता के सापेक्ष प्रतिक्रिया करनी चाहिए। ऐसा प्रणाली के संस्थानिक समाकृति के पहचान के लिए प्राधिकरण से निवेदन करके किया जा सकता है। संगठन के समर्थन संबधित सहायता के अन्तर्गत तथ्य संबंधित समूहों की ओर से सलाहकारी कार्य तथा राजनीतिक जनमत सम्मिलित किये जाते हैं। इस प्रणाली की क्रिया को खोज के मार्गदर्शक के एक विशेष प्रकार के रूप में भी व्यक्त किया

जा सकता है। वैसे भी जनमत एवं सलाह किसी खास प्रौद्योगिकी क समर्थन में दिये जाने वाले तर्क है। इस श्रेणी को अन्य से अलग करने वाली आवश्यक विशेषताएं जैसे कि संगठन के समर्थन में शक्ति नहीं होती है जैसे कि कि सरकार, संगठित संरंचनाओं को प्रत्यक्ष रूप में परिवर्तित करना आदि है। इसके स्थान पर कार्य करने की धारणा को प्रयोग में लाना चाहिए। दृष्टिकोण इस विचार पर बल दता है कि किसी प्रणाली के अन्तर्गत संरचनात्मक परिवर्तन प्रतियोगी हित धारक संस्थाओं का परिणाम है, जसमें से प्रत्येक अलग मुल्यों एवं विचारों को व्यक्त करता है। इन सबका परिणाम राजनीतिक शक्ति द्वारा निर्धारित होता है।

22.8 समाहार करें

नवाचार किसी वस्तु या सेवा में नए विचारों के सृजन तथा रूपान्तरण की प्रक्रिया है। मौजूदा संसाधनो से अधिक मूल्य प्राप्त करने में यह जानकारी, कल्पना एवं पहल का एक नियोजित प्रयोग है। नवाचार ऐक ऐसा काम है, जिसे उच्च स्तर के ज्ञान और सरलता भी आवश्यकता होती है, सफल होने के लिए। नवाचारों को ग्राहकों और बाजार पर विशेष ध्यान देने के लिए अपनी शक्तियों का निर्माण करना चाहिए।

प्रौद्योगिकी, माल/वस्तुओं एवं सेवाओं के डिजाईन, उत्पादन एवं उपभोग में वैज्ञानिक ज्ञान का उद्देश्यपूर्ण अनुप्रयोग है। यह विज्ञान और इंजीनियरिंग का परिणाम है, जो व्यावाहारिक मानवीय साधनों के लिए प्राकृतिक संसाधनों का उपभोग करने लिए उपकरण और प्रणालियां को डिजाईन करने एवं बनाने के लक्ष्य की प्रक्रिया है। दोनों नवाचार एवं प्रौद्योगिकी वर्तमान एवं भविष्य के लिए मानव जीवन के लिए बहुत महत्वपूर्ण है।

22.9 सारांश

खेल सिद्धान्त की इस इकाई में हमने प्रतिस्पर्धी स्थितियों की अवधारणा का अध्ययन किया जहां प्रतिस्पर्धी खेल की विशेषताओं एवं इसकी रणनीतियों पर विचार किया गया है। अधिकतम–न्यूनतम सिद्धान्त पर संक्षेप मं चर्चा की जाती है एवं प्रयाप्त चित्रण के साथ प्रभूत्व की व्याख्या की जाती है। आगे, इसके अलावा ग्राफिक दृष्टिकोण ने $2 \times n$ एवं $m \times 2$ गेम्स/खेल क लिए अध्ययन किया हैं यहां दिये गये मॉडल निर्णय सिद्धान्त एवं निर्णय विश्लेषण में बहुत उपभोगी है।

इस इकाई में हमने यह भी अध्ययन किया कि एक खेल जिसमें n खिलाड़ी भाग लेते हैं उन्हें n–व्यक्ति खेल कहा जाता हैं। एक खेल जिसमें दो खिलाड़ी भाग लेते हैं, उन्हें 2–व्यक्ति खेल कहा जता है। अगर कोई खेल ऐसा होता है कि जब भी खिलाड़ियों के लाभ व वेतन–भुगतान चला जाता है, शून्य है, इसे शून्य योग खेल/गेम कहा जाता है। एक शून्य योग गेम जिसमें दो खिलाड़ी हैं, जो व्यक्ति योग गेम कहलाता है। इसे आयताकार खेल भी कहा जाता है। एक दो व्यक्ति–योग गेम में एक खिलाड़ी का लाभ दूसरे के हानि के बराबर होता है हम खेल में देख सकते हैं, जब वह खेल प्रतियोगिता में भाग लेता है तो वह अपने पूर्वनिर्धारित नियमों क आधार पर कूटनीतिक चाल के अनुसार कार्य करता है।
खेल खिलाड़ी की रणनीति ''शुद्ध रणनीति'' या ''मिश्रित रणनीति'' हो सकती है। एक खेल खेलते समय, एक खिलाड़ी की शुद्ध रणनीति प्रतिद्वंद्वी की रणनीति के बावजूद एक निश्चित कार्यवाही की प्रक्रिया को अपनाने की अपनी पूर्वकल्पना है।

22.10 शब्दावली

नवाचारः किसी वस्तु या सेवा में नए विचारों क सृजन तथा रूपान्तरण की प्रक्रिया है।

प्रौद्योगिकीः से आशय किसी मूल्य को प्राप्त करने के लिए मानसिक एवं शारीरिक प्रत्यनों के अनुप्रयोग द्वारा सृजित ऐसे उपक्रमों के रूप से है, जो भौतिक एवं अभौतिक दोनों हो सकते है।

22.11 बोध प्रश्न

(अ) रिक्त स्थानों को भरें

1. नवप्रर्वतन द्वारा .... क्रयशक्ति का सृजन करता है।
2. .... स्तर के संदर्भ में आन्दोलकारी तकनीकी विकास हीं जटिल होता है।
3. एक व्यक्ति जो उंच प्रबंधन का नियमन करता है उत्पाद की गुणवता को .... से सूरक्षित रखता है।
4. मानवता को प्राप्त किसी भी क्षेत्र मं तकनीकी की उपलब्धता .... जाना जाता है।
5. तकनीकी अवसर .... का परिणाम होता है।
6. तकनीकी नवप्रर्वतन व्यवस्था .... समाहित करता है।

(ब) सत्य या असत्य

1. नवप्रर्वतन अविष्कार से अलग है।
2. नवप्रर्वतन की विद्या खोजी विद्या नहीं है।
3. नवप्रर्वतन वृद्धिमान से स्तर के भिन्न होता है।
4. संगणक सॉफटवेयर द्रव्य तकनीकी का उदाहरण है।
5. सूचना संस्थान आदर्शात्मक या नैद्वानिक हो सकता है।
6. खोज का निर्देशन समूह से सम्बन्धित तकनीक है।

22.12 बोध प्रश्नों के उत्तर

(अ) 1. मूल वर्धमान, 2. कला का स्तर, 3. सहयोगी कार्यकारी, 4. कला का स्तर, 5. विज्ञान व प्रौद्योगिकी, 6. प्रवैगिक ज्ञान प्रतियोगी नेटवर्क।

(ब) 1. सत्य, 2. असत्य, 3. सत्य, 4. असत्य, 5. सत्य, 6. असत्य।

22.13 स्वपरख प्रश्न

(अ) लघु उत्तरीय प्रश्न

1. नवप्रर्वतन के विभिन्न आयामों की व्याख्या करें।
2. नवप्रर्वतन के कितनी श्रेणियां है?
3. तकनीकी के अर्थ की व्याख्या करें तथा इसके क्षेत्र की चर्चा करें।

(ब) दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

1. नवप्रर्वतन के विभिन्न विद्वानों की व्याक्ष्या करें।
2. तकनीकी नवप्रर्वतन व्यवस्था के प्रवैगिक उपागम व्यवस्था की व्याख्या करें।

22.14 सन्दर्भ पुस्तकें

1. Per F. Drucker, Innovation and Entrepreneurship Practice and Principles, Managing Technology and Innovation Edited by – Robert M. Verburg, J. Rolandortt & Willemijn M. Dicke, Published by Routledge, New York, USA.
2. MO-WHEE 7358-‘2-sE-CHOA.OXD-7/27/09.

इकाई 23 जोखिम, अनिश्चितता और निर्णय निर्धारण

इकाई की रूपरेखा

23.1 प्रस्तावना
23.2 निर्णय लेने की समस्या के तत्व
23.3 निर्णय निर्धारण के स्थितियों के प्रकार
23.4 निश्चितता के अन्तर्गत निर्णय निर्धारण
23.5 अनिश्चितता के अन्तर्गत निर्णय निर्धारण
23.6 जोखिम के अन्तर्गत निर्णय निर्धारण
23.7 निर्णय वृक्ष
23.8 सारांश
23.9 शब्दावली
23.10 बोध प्रश्न
23.11 बोध प्रश्नों के उत्तर
23.12 स्वपरख प्रश्न
23.13 सन्दर्भ पुस्तकें

उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप इस योग्य हो सकेंगे कि –

- जोखिम, अनिश्चितता तथा निर्णय निर्धारण की परिभाषा की व्याख्या कर सकें।
- जोखिम तथा निर्णय के प्रकार की सूची का वर्णन कर सकें।
- जोखिम तथा अनिश्चितता के बारे में जानकारी तथा कुल लागत का मूल्यांकन कर सकें।
- निर्णय वृक्ष की अवधारणा को समझ सकें।

23.1 प्रस्तावना

निर्णय निर्धारण की प्रक्रिया विभिन्न वैकल्पिक चुनावों में दिये गये संयोगों में, समुचित विकल्प का चुनाव जो उसके अन्तिम उद्देश्य को प्राप्त करने में सहायक हो, सम्बन्धित है। आप एक विद्यार्थी के रूप में, आपके लिए आने वाले परीक्षा में अधिक अंक प्राप्त करने के लिए किस प्रकार के मॉडल या किताबें पढ़े जो आपके लक्ष्य को प्राप्त करने में सहायक हो या कितना अधिक घण्टे अधिक समय दे; इस प्रक्रिया का निर्णय आपके अन्तिम उद्देश्य को प्राप्त करने में सहायक होती है। सांख्यिकीय निर्णय सिद्धान्त बहुत गुणात्मक तकनीकी की सहायता उपलब्ध कराता है जो किसी भी निर्णय लेने की स्थिति में सहायक होती है और मामले के विभिन्न परिस्थितियों में अन्तिम निर्णय पर पहुंचने में सहायक होता है। सांख्यिकीविद् के पास विभिन्न प्रकार के सिद्धान्त का प्रयोग करता है। जैसे सांख्यिकीय निर्णय सिद्धान्त, बेयजीयन निर्णय सिद्धान्त और सामान्य निर्णय सिद्धान्त आदि हैं। एक प्रबन्धक के पास बहुत सारे निवेश के चुनाव का विकल्प होता है जिसमें से किसी एक को चुनता है। जो लाभ–हानि के आधार पर प्रत्येक वैकल्पिक चुनाव पर विचार करता है। निर्णय सिद्धान्त का प्रयोग करते हुए दिये

गये विकल्पों में चुनाव करना तथा आर्थिक क्रियाकलापों में पड़ने वाले प्रभावों का विवेचना करना है।

23.2 निर्णय लेने की समस्या के तत्व

कुछ तत्व निर्णय लेने की समस्या को सामान्य रूप से प्रभावित करते हैं। जो निम्नलिखित है:

1. **निर्णय निर्धारकः** व्यक्तिगत रूप से या लोगों के समूह द्वारा उपलब्ध क्रियाकलापों में समूचित क्रियाकलाप का चुनाव करने की प्रक्रिया को निर्णय निर्धारण तथा निर्णय लेने को निर्णय निर्धारक कहते हैं।
2. **क्रिया विधिः** क्रिया विधि को क्रियाकलाप कहते है। किसी भी समस्या के समाधान के लिए सभी सम्भव क्रिया विधि का प्रयोग किया जाता है।
3. **प्रकृति की अवस्थाः** प्रकृति की अवस्था को कभी–कभी निष्कर्षों कया धटनाक्रम कहते हैं। निर्णय निर्धारक भविष्य के सम्भावित घटनाक्रम का एक सुव्यवस्थित सूची तैयार करता है। जबकि निर्णय निर्धारक का भविष्य में होने वाले विशिष्ट घटनाक्रम पर कोई निशिचतता नहीं रहता है।
4. **मुनाफाः** यह एक विशिष्ट क्रिया विधि तथा प्रकृति के स्वरूप का संयुक्त रूप से प्रभावी लाभ से जुड़ा होता है।
5. **मुनाफा सूचीः** एक दिये हुये मुनाफा सारणी की सूची प्रकृति की अवस्था तथा एक दिये हुये क्रिया विधि की समस्या को सारणीबद्ध करता है। प्रत्येक क्रिया विधि तथा प्रकृति की अवस्था का संयोग मुनाफे की गणना करता है। आईए हम इसे खेल सिद्धान्त से समझने की कोशिश करेगें। प्रकृति की अवस्था या परिणाम को हम O_1, O_2, …………..O_n से प्रदर्शित करते हैं तथा विभिन्न क्रियाविधि या कुटनीति को हम S_1, S_2, …………..S_n से प्रदर्शित करते हैं। एक दिये हुए O_1 तथा S_1 संयोग से सम्बन्धित मुनाफा सूची में a_{ij} से प्रदर्शित करते हैं। इस प्रकार के मुनाफा सूची को हम अगले पेज पर प्रदर्शित करेगें।

क्रिया विधि

States of Nature	S_1	S_2……………….S_j……………..S_n
O_1	a_{11}	a_{12}………………a_{ij}……………….a_{1n}
O_2	a_{21}	a_{22}………………a_{2j}……………….a_{2n}
¦	¦	¦ ¦ ¦
O_i	a_{i1}	a_{i2}………………a_{ij}……………….a_{in}
¦	¦	¦ ¦ ¦
O_m	a_{mi}	a_{m1} ……………..a_{mj}……………..a_{mn}

पे ऑफ या मुनाफा को लाभ के सन्दर्भ में, लागत के सन्दर्भ में या हानि के विभिन्न अवसर के रूप में मुल्यांकित करते हैं या प्रदर्शित करते है जब ये पे ऑफ लाभ के सन्दर्भ में प्रतीत होते हैं तब वे मुनाफा कहे जाते है एक पे ऑफ सूची सभी सम्भावित परिणाम प्रकृति की अवस्था तथा सम्भावित क्रिया विधि के

बीच मूल्य के सम्बन्ध को बताता है। एक पे ऑफ सूची के कॉलम के शीर्षक में विभिन्न प्रकार के क्रिया विधि को प्रदर्शित किया जाता है जो निर्णय निर्धारक चुनाव करता है। जबकि नीति निर्धारक द्वारा पंक्ति के शीर्षक में विभिन्न प्रकृति की अवस्था या परिणाम को स्वीकार्य होता है। प्रदर्शित किया जाता है। कोशिका का मूल्य a_{ij} पे ऑफ में क्रिया विधि S_1 द्वारा चली जाती है जब प्रकृति की अवस्था या परिणाम को O_1 द्वारा सभी के लिये होता है। $i = 1, 2, 3, \ldots\ldots\ldots\ldots\ldots m$ तथा $j = 1, 2, 3, \ldots\ldots\ldots\ldots\ldots n$ प्रतिशत करता है। एक पे ऑफ सशर्त मूल्य या सशर्त में जुड़ा हे कि प्रत्येक क्रिया विधि के द्वारा निश्चित लाभ या हानि, एक दिये गये विशिष्ट प्रकृति की अवस्था या (परिणाम) घटित होने से सम्बन्धित क्रिया विधि तथा प्रकृति की अवस्था का सशर्त मूल्य है।

23.3 निर्णय निर्धारण के स्थितियों के प्रकार

निर्णय समस्या एक पे ऑफ आव्यूह में दिया गया है। नीति निर्धारण की प्रकिया निर्णय जो विभिन्न परिस्थितियों में लिया गया है पर निर्भर करता है। ये परिस्थितियां निम्नलिखित तीन बड़े वर्ग में वर्गीकृत किया जाता है:

1. निश्चितता के अन्तर्गत निर्णय– निर्धारण।
2. अनिश्चितता के अन्तर्गत नीति निर्धारण।
3. जोखिम के अन्तर्गत नीति निर्धारण।

हम इस प्रकार निर्णय निर्धारक की प्रक्रिया को निम्नलिखित प्रकारों में बांट सकते हैं:

1. निश्चितता के अन्तर्गत निर्णय निर्धारण।
2. अनिश्चितता के अन्तर्गत नीति निर्धारण।
3. जोखिम के अन्तर्गत नीति निर्धारण।

23.4 निश्चितता के अन्तर्गत निर्णय निर्धारण

निश्चितता की स्थिति बहुत हीं कम पाई जाती है। जब सार्थक निर्णय सामने आता है, निश्चितता की स्थिति के अन्तर्गत नीति–निर्धारक विभिन्न प्रकृति की अवस्था को जानता रहता है जो भविष्य में होगें। वह प्रत्येक क्रिया विधि को निश्चितता के साथ परिणाम को जानता रहता है। इस प्रकार के स्थिति के अन्तर्गत निर्णय–निर्धारक समरूपी कॉलम के पे ऑफ सूची के कॉलम में केन्द्रित होना चाहिए तथा कियाविधि की पे ऑफ का चुनाव करना चाहिए।

23.5 अनिश्चितता के अन्तर्गत निर्णय निर्धारण

एक अनिश्चितता की स्थिति तब उत्पन्न होती है जब एक चयनित कियाविधि की सम्भावित एक से अधिक होता है। पे ऑफ आव्यू हके सन्दर्भ में यदि निर्णय निर्धारक A_1 कुटनीति चाल को चयन करता है तो उसके पे ऑफ में X_{11}, X_{12}, X_{13} आदि, जो प्रकृति की अवस्था S_1, S_2, S_3 आदि पर निर्भर करता है, को चाल के रूप में प्रयोग करने जा रहा है। एक निर्णय समस्या तब आती है जहां एक निर्णय निर्धारक जब एक से अधिक विभिन्न सम्भावित अवस्था से परिचय होता है। किन्तु अपर्याप्त सूचना के चलते घटित होने की प्रायिकता कम होती है। इस प्रकार की शर्त को अनिश्चितता के अन्तर्गत निर्णय लेने की प्रक्रिया कहते हैं।

बहुत सारे कसौटी दिये होने पर अनिश्चितता की वातावरण में अनुकुलतम क्रिया विधि का चयन करना होता है इनमें से प्रत्येक कसौटी निर्णय–निर्धारक के लेने वाले मान्यता पर निर्भर करता है।

1. **अधिकतम कसौटीः** यह मानदण्ड निराशावादी मानदण्ड के नाम से भी जाना जाता है यह निर्णय निर्धारक इस मानदण्ड का तब प्रयोग करता है जब भविष्य को लेकर अधिन्यूनतम पे ऑफ मं अधिकतम के न्यूनतम को प्रदर्शित करता है। एक निराशावादी निर्णय–निर्धारक प्रत्येक सम्भावित क्रियाविधि को न्यूनतम पे ऑफ को अधिकतम तथा प्रासंगिक क्रिया विधि का चयन करना होता है। यह इसे निम्नलिखित उदाहरण द्वारा समझा जा सकता है।

   उदाहरणः हम यह मानते है कि किसी परिस्थिति में निर्णय निर्धारक के पास तीन सम्भावित विकल्प A_1, A_2, A_3 है जहां प्रत्येक सम्भावित परिणाम चार घटनाक्रम S_1, S_2, S_3, S_4 को प्रभावित करते हैं। A_i और S_i के प्रत्येक संयोग को निम्नलिखित सूची से दिया गया है।

पे ऑफ आव्यूह

Events → / Actions ↓	S_1	S_2	S_3	S_4	Min. Payoff	Max. Payoff
A_1	27	12	14	26	12	27
A_2	45	17	35	20	17	43
A_3	52	36	29	15	15	52

   हलः चूंकि दिये गये न्यूनतम पे ऑफ में 17 अधिकतम है अतः अनुकूलतम क्रिया विधि A_2 है।

2. **.अधि अधिकतम कसौटीः** इस मानदण्ड को आशावादी मानदण्ड कहा जाता है। यह मानदण्ड एक निर्णय निर्धारक तब प्रयोग करता है जब वह भविष्य के प्रति आशावदी हो। अधि अधिकतम उच्चतम पे ऑफ में अधिकतम स्तर को प्रदर्शित करता है। एक आशावादी निर्णय निर्धारक प्रत्येक सम्भावित क्रिया विधि को उच्चतम पे ऑफ में प्रदर्शित करता है। अधिकतम पे ऑफ का अधिकतम तथा प्रासंगिक क्रिया विधि का चयन करना होता है। उपरोक्त उदाहण में A_3 एक अनुकुलतम क्रिया विधि को सन्तुष्ट करता है।

3. **पश्च्याताप मानदण्डः** यह मानदण्ड पश्चाताम पर केन्द्रित है जो निर्णय–निर्धारक द्वारा दिये गये विभिन्न क्रिया विधि में चयन करता है, पश्च्याताप श्रेष्ठ पे ऑफ पर जो हम महसूस कर रहे हैं तथा प्रकृति की अवस्था के द्वारा जो घटित होने हा रहा है उन दोनों के अन्तर को परिभाषित करता है। ये अन्तर श्रेष्ठ विकल्प न चयनित किये जाने पर हानि के परिमाण को मापता है। यह हानि के अवसर या अवसर के रूप में जाना जाता है। एक दिये गये पे ऑफ आव्यूह में पे ऑफ में क्रिया विधि A_1, A_2 है जो प्रकृति की अवस्था S_i है। X_{1j}, X_{2j}, ………………….., Xnj के अन्तर्गत लिया गया हैं। इनमें से X_{2j} को

हम उच्चतम मानते हैं तब A_i क्रिया विधि को पश्च्यातापक्रिया विधि चूने जाने पर R_{ij} से प्रदर्शित किया गया है। R_{ij} जो $X_{ij} - X_{nj}$, i = 1, से लेकर n तक दिया गया है। हम देखते हैं कि पश्च्याताप का मान शून्य होता है। इस प्रकार विभिन्न क्रिया विधि के प्रकृति की अवस्था के अन्तर्गत पश्च्याताप मानदण्ड की गणना कर सकते हैं। पश्च्याताप मानदण्ड न्यूनाधिक्य सिद्धान्त पर आधारित है अर्थात् प्रत्येक निर्णय–निर्धारक अपने अधिकतम पश्च्याताप बिन्दु को न्यूनतम करना चाहता है। इसलिए एक निर्णय–निर्धारक दिये गये प्रत्येक क्रिया विधि का चयन करता है तथा प्रत्येक क्रिया विधि जो अनुकूलतम पश्च्याताम विधि को प्रदर्शित करता है। पश्च्याताम आव्यूह के उदाहरण को निम्नलिखित तरीके से लिखा जाता है।

पश्च्याताप आव्यूह

Events → / Actions ↓	S_1	S_2	S_3	S_4	Max. Regret
A_1	25	24	21	0	25
A_2	7	19	0	6	19
A_3	0	0	6	11	11

अधिकतम पश्च्याताप कॉलम में दिये गये क्रिया विधि में न्यूनतम है। अतः A_3 अनुकूलतम क्रिया विधि है।

4. **हरविश्ज मानदण्डः** अधि अधिकतम तथा अधि–न्यूनतम के बारे में उपर बात कर चुके है जो एक निर्णय निर्धारक या तो निराशावादी मानते है या आशावादी। एक ओर वास्तविक दृष्टिकोण को हम आशावादी या निराशावादी निर्णय–निर्धारक द्वारा निर्णय निर्धारक की अंश या सूची के आधार पर गणना करते हैं। यदि ∝ स्थिर है जो 0–1 के बीच में आता है और आशावादी के कोटि को प्रदर्शित करता है तब निराशावादी कोटि 1–∝ होगी। तब एक क्रिया विधि के अधिकतम तथा न्यूनतम पे ऑफ आव्यूह की एक औसत भार ∝ तथा 1–∝ दिया जाता है। यदि ∝ = 0. 5 हो तो निर्णय–निर्धारक इसे तटस्थ कहता है। उपरोक्त दिये गये पे ऑफ आव्यूह के उदाहरण में इसे हम लागू करते हैं और मानते है कि आशावादी सूचकांक 0.7 है।

Action	Max. Payoff	Min. Payoff	Weighted Average
A_1	27	12	$27 \times 0.7 + 12 \times 0.3 = 22.5$
A_2	45	17	$45 \times 0.7 + 17 \times 0.3 = 36.6$
A_3	52	15	$52 \times 0.7 + 15 \times 0.3 = 40.9$

उपरोक्त सारणी में A_3 अधिकतम है जो अनुकूलतम क्रिया विधि है।

5. **लॉप्लास मानदण्डः** विभिन्न प्रकृति की ज्ञान की आभाव में घटित होने की प्रायिकता के बाद एक सम्भावित घटनाक्रम जो सभी को समानरूप से घटित हाने को प्रदर्शित करता है यदि प्रकृति की अवस्था n है तो प्रत्येक प्रायिकता के घटित होने का मान 1/n है। इस प्रायिकता से हम प्रत्याशित पे ऑफ के प्रत्येक क्रिया विधि तथा क्रिया विधि से प्रत्याशित मूल्य को हम अनुकूलतम क्रिया विधि के रूप में देखते हैं।

23.6 जोखिम के अन्तर्गत निर्णय निर्धारण

इस प्रकार के निर्णय लेने की समस्या मं एक से अधिक परिणाम होते हैं तथा यह एक प्रत्येक सम्भावित परिणाम के प्रायिकता को परिभाषित करता है। अन्य शब्दों में निर्धारक प्रत्येक घटित प्रकृति की अवस्था का प्रायिकता जानता रहता है।

1. **प्रत्याशित मौद्रिक मूल्यः** अधिकतम प्रत्याशित मौद्रिक मूल्य के आधार पर श्रेष्ठ कुटनीति का चयन किया जाता है। एक क्रिया विधि का प्रत्याशित मौद्रिक मूल्य उत्पाद के योग का पे ऑफ में दिये गये परिमाण के प्रायिकता मूल्य से गुणा करके प्राप्त करते हैं। यदि $m_1, m_2, \ldots\ldots\ldots\ldots,$ m_n पे ऑफ में दिये गये प्रकृति की अवस्था को प्रदर्शित करते हैं तो उसी प्रकार $S_1, S_2, \ldots\ldots\ldots\ldots\ldots\ldots\ldots\ldots, S_n$ प्रायिकता को प्रदर्शित करते हैं और दिये गये $S_1, S_2, \ldots\ldots\ldots\ldots\ldots\ldots\ldots\ldots, S_n$ की प्रायिकता का मूल्य $t_1, t_2, \ldots\ldots\ldots\ldots\ldots\ldots\ldots\ldots, t_n$ है तब प्रत्याशित मौद्रिक मूल्य $= m_1p_1 + m_2p_2 + \ldots\ldots\ldots\ldots + m_np_n = \sum mp$ है।
2. **प्रत्याशित अवसर हानिः** निर्णय सिद्धान्त का एक अन्य मापदण्ड प्रत्याशित अवसर हानि कहा जाता है। प्रत्याशित अवसर हानि लाभ की वह मात्रा है जो सबसे उतम क्रिया विधि मे न लिये जाने पर प्राप्त होता है। प्रत्याशित अवसर हानि की गणना करने के लिए हमे सशर्त अवसर हानि को प्राप्त करना होगा। सशर्त अवसर हानि शून्य है तो सशर्त अवसर लागत की अन्य क्रिया पे ऑफ की अनुकूलतम क्रिया विधि तथा किये गये क्रिया के बीच अन्तर को प्रदर्शित करता है जो हमेशा धनात्मक होता है। जब हम पे ऑफ के स्थान पर अवसर हानि को प्रदर्शित करते हैं तो हमें हानि सारणी प्राप्त होती है। यदि l_{ij} (हानि सारणी का तत्व) S द्वारा किये गये क्रिया का अवसर हानि है जब प्रकृति अवस्था O_i हो तब l_{ij} निम्नलिखित सम्बन्ध को सन्तुष्ट करता है।

$$l_{ij} = \max p_{ij} - p_{ij}$$

सभी के लिए, $i = 1, 2, \ldots\ldots\ldots\ldots\ldots\ldots\ldots n$

$j = 1, 2, \ldots\ldots\ldots\ldots\ldots\ldots, m$

3. **पूर्ण सूचना का प्रत्याशित मूल्यः** पूर्ण सूचना का प्रत्याशित मूल्य पूर्ण सूचना के अनुकूलतम निर्णय का लाभ तथा पूर्ण सूचना सहित अनुकूलतम निर्णय के प्रत्याशित लाभ के अन्तर को प्रदर्शित करता है। यह पूर्ण सूचना में प्रत्याशित लाभ की निश्चितता के अन्तर्गत पे ऑफ का प्रत्याशित मूल्य कहा जाता है। अनिश्चितता के करण पूर्ण अनुमान अवसर हानि को कम करता है। उच्चतम पे ऑफ में पूर्ण भविष्यवक्ता के अनुपस्थिति में अनुकूलतम क्रिया प्रत्याशित लाभ को प्रदर्शित करता है। पूर्ण सूचना से

प्रत्याशित लाभ तथा प्रत्याशित के अन्तर को पूर्ण सूचना का प्रत्याशित मूल्य कहा जाता है। पूर्ण सूचना का प्रतयाशित मूल्य अधिकतम मूद्रा की मात्रा को प्रदर्शित करता है जो एक निर्णय निर्धारक प्रकृति की अवस्था का सुयोग्य सूचना पाने के लिए करता है। हम ये देखते है कि पूर्ण सूचना का प्रत्याशित लाभ हमेशा अनिश्चितता के अन्तर्गत अनुकूलतम किया विधि के प्रत्याशित हानि के बराबर होता है।

23.7 निर्णय वृक्ष

एक निर्णय वृक्ष के प्रक्रिया के भिन्न जैवकों जैसे क्रिया विधि, जोखिम भरा सम्भावित परिणाम का ग्राफीय निरूपण है। यह एक निर्णय निर्धारक को वैकल्पिक हल निकालने के लिए दिये गये विभिन्न वैकल्पिक की प्रायिकता में से सबसे अच्छा वैकल्पिक प्रयोग चयन करने में सहायक होता है। निर्णय वृक्ष का आधार निर्णय बिन्दु कहा जाता है यह सामान्यतया आयत के आकार का होता है। वृक्ष की शाखायें घटनाक्रम अवसर से शुरू होती है। घटनाक्रम अवसर को एक वृत द्वारा प्रदर्शित किया जाता है। प्रत्येक घटित अवसर, दो या दो से अधिक सम्भावित प्रभाव उत्पन्न करता है और तब अनुमानी निर्णय बिन्दु का नेतृत्व करता है। एक प्रबन्धक अन्तिम निर्णय लेने में एक अच्छे अनुसंधान के विभिन्न प्रायिकता तथा उससे जूड़े विभिन्न घटित अवसर को ध्यान रखकर निर्णय लेता है।

एक निर्णय वृक्ष विश्लेषण भविष्य के क्रिया के निर्णय तथा घटनाक्रम के परिणाम एक समयोपरान्त प्राप्त होने वाले परिणाम का समूचित चित्रण है प्रत्येक क्रिया घटनाक्रम पर निर्भर करता है जो सामान्यतया पूर्ण जानकारी में नहीं होती है। आप एक शर्त सम्बन्धित निर्णय की कल्पना कीजिए। जिसका निर्णय सामान्यतया हां या ना, जीत या हार के निर्णय को निम्नलिखित चिन्ह में दर्शाया गया है।

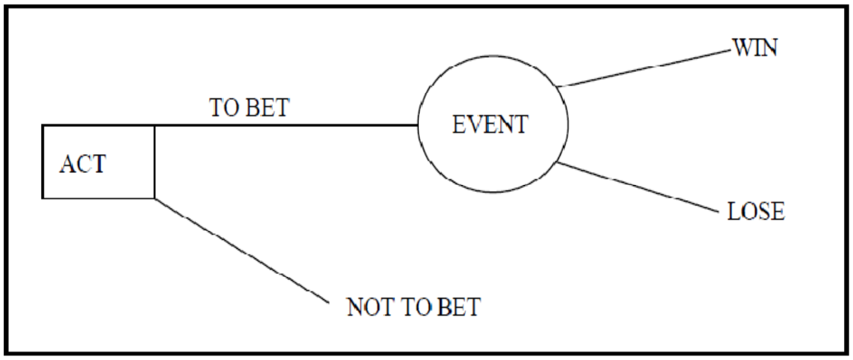

चित्र 23.1

विश्लेषण को अर्थपूर्ण बनाने के लिए तथा निर्णय निर्धारक तंत्र को प्रभावी बनाने के लिए यह आवश्यक है कि एक निर्णय मापदण्ड बनाना पड़ता है। व्यापारिक निर्णय में सामान्यतया अधिकतम मौद्रिक लाभ मापदण्ड का प्रयोग किया जाता है, जो अन्य रूप में रोजगार, पूंजी का प्रयोग, कम्पनी का छवि आदि को ध्यान में रखता है।

वैकल्पिक निवेश को प्रदर्शित करने के लिए सारणी

Alternative		Outcomes (₹)		Expected Valuc (₹)
A	10000	20000	30000	17000
B	15000	30000	10000	18500
C	5000	15000	40000	15000
Probabilities	0.5	0.3	0.2	

सारणी में A वैकल्पिक निवेश द्वारा निवेशक को दस हजार रूपये आय की प्राप्ति होती है यदि प्रायिकता मान 0.5 है। जबकि तीस प्रतिशत अवसर पर दो बार प्राप्तियां तथा बीस प्रतिशत अवसर पर तीन बार प्राप्तियां होती है। ठीक उसी प्रकार प्रत्याशित प्राप्तियां तथा प्रत्याशित प्रायिकता अन्य वैकल्पिक निवेश अवसर के लिए स्पष्ट है। निवेशक तब अंकगणितीय आधार पर प्रायिकता के प्रत्याशित मूल्य के आधार पर सम्भावित परिणाम की गणना करता है। यहां के द्वारा निवेश से प्रत्याशित मूल्य को निम्न प्रक्रिया द्वारा लागू किया जाता है।

प्रत्याशित मूल्य = $10000 \times 0.5 + 20000 \times 0.3 + 30000 \times 0.2 = 17{,}000.00$।

इस प्रकार की समस्या को हम निर्णय वृक्ष के द्वारा भी हल कर सकते है। वैकल्पिक निवेश के द्वारा लिया गया निर्णय 8500 है जो अन्य वैकल्पिकों से अधिक आय को बताता है। एक निर्णय वृक्ष को सूचना के आधार पर निम्नलिखित आकार में बनाया जा सकता है।

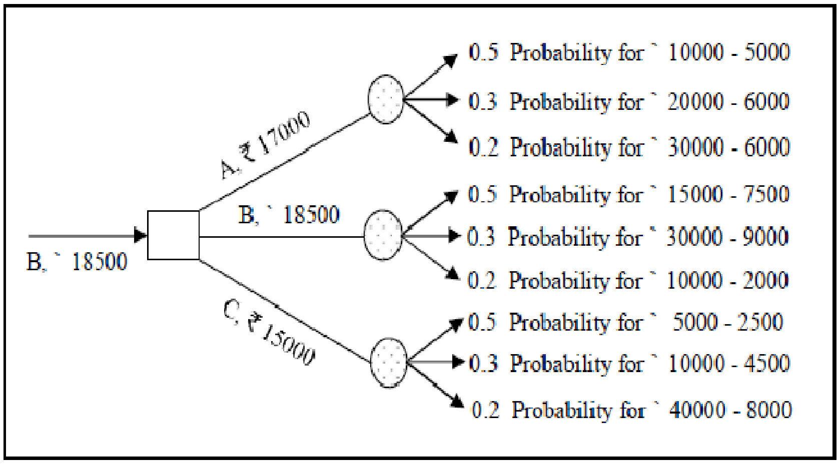

चित्र 23.2

एक निर्णय वृक्ष निर्णय निर्धारक प्रक्रिया को स्पष्ट रूप से व्याख्या करता है यह एक संयोगात्मक समस्या अर्थात् जहां पे ऑफ एवं औसत लागत सारणी एक समय में लिये गये निर्णय का अन्तिम परिणाम के रूप को प्रदर्शित करते हैं, लेकिन अधिकतर निर्णय समय पर निर्भर करते हैं और प्रकृति में आने वाले निर्ण को प्रभावित करते हैं। निर्णय वृक्ष स्थिति तथा निर्णय की अवधि को समकालिक रूप से संन्तुष्ट करते हैं।

23.8 सारांश

जोखिम के अन्तर्गत लिया गया निर्णय जब बहुत सारे परिणामों से जुड़े एक निर्णय तथा उन निर्णयों की प्रायिकता का ज्ञान हो निर्णय आसान होता है। इन परिणामों को अधिक बदलाव अधिक जोखिम को बताता है। परिणामों का समूह तथा उनसे जुड़े प्राथमिकता प्रायिकता वितरण को बताता है। यदि परिणामों की प्रायिकता का ज्ञान हो तो निर्णय में अनिश्चितता का सामना करना पड़ता है व्यवहारवादी कहते हैं कि यदि जोखिम कम होगा तो जुआड़ी का रूपये कके मूल्य के खेल में अधिक प्रत्याशा होगी। ठीक इसके विपरीत अनिश्चितता जुआड़ी के खेल के बराबर है तो खेल के प्रत्याशित रूपये के मूल्य का कम प्रत्याशा होगी। एक बीमा बाजार में बहुत सारे लोग जोखिम के प्रति अनिच्छूक होते हैं। जबकि खेल बाजार में लोग जोखिम के प्रति इच्छूक होते हैं। जोखिम का क्षतिपूर्ति करने का सबसे उपयुक्त विधि जब निर्णय लेते समय जोखिम के प्रीमियम के दर को भविष्य के लाभ पर प्राप्य किया जाता है। जोखिम प्रीमियम जोखिम को बढ़ाता है जो निर्णय लेने में समस्या पैदा करता है, ठीक इसी प्रकार एक अन्य विधि द्वारा जोखिम के निर्णय को निश्चितता के रूप में मूल्यांकित करता हैं।

निर्णय वृक्ष विश्लेषण हमें क्रिया तथा घटनाक्रम की उद्देश्य के विभिन्न भागों पर निर्णय लेने पर स्थापित मानदण्ड के अनुसार योग्य बनाता है। किन्तु इसका ये आशय नहीं है कि यह मानदण्ड निर्णय को हमेशा सन्तुष्ट करे। इस प्रकार के निर्णय लेते समय व्यक्तिगत अधिमान को संस्थागत योग्यता की वास्तविकता, वित्तीय स्थिरिता जोखिम वहन करने की क्षमता आदि के साथ निर्णय लेना पड़ता है। निर्णय वृक्ष विश्लेषण एक प्रकार की तकनीकी है जो निर्णय लेने में मदद करती है। किन्तु अन्तिम निर्णय निष्कर्ष पर नहीं पहुंच पाते हैं।

23.9 शब्दावली

निर्णय वृक्षः यह एक निर्णय निर्धारक को वैकल्पिक हल निकालने के लिए दिये गये विभिन्न वैकल्पिक की प्रायिकता में से सबसे अच्छा वैकल्पिक प्रयोग चयन करने में सहायक होता है।

23.10 बोध प्रश्न

(अ) रिक्त स्थानों को भरें

7. .... लाभ या हानि की स्थितियां हो सकती है।
8. .... निराशावाद के कारक के रूप में जाने जाते हैं।
9. पूर्ण प्रतियोगिता में 'प्रत्याशित ला निश्चितता में .... कहलाता है।
10. निर्णय वृक्ष की संरचना .... होता है।

(ब) सत्य या असत्य

7. एक निर्णय कर्ता को भविष्य के संभावित घटनाओं का सार अवश्य हीं तैयार करना चाहिए।
8. एक पे ऑफ सारणी सभी संभावित स्थितियों के प्रकृति के बीच के सम्बन्ध को दर्शाता है।
9. अधि अधिकतम पे ऑफ को अधिकतमीकरण को दर्शाता है।
10. निर्णय वृक्ष का निर्णय बिन्दु चक्रीय रूप में होता है।

23.11 बोध प्रश्नों के उत्तर

(अ) 1. पे ऑफ, 2. अधि न्यूनतम मापदण्ड, 3. पे ऑफ की प्रत्याशित मूल्य, 4. क्षैतिज।

(ब) 1. असत्य, 2. सत्य, 3. सत्य, 4. असत्य।

23.12 स्वपरख प्रश्न

7. निर्णय समस्या के विभिन्न अव्ययों की चर्चा करें।
8. पे ऑफ की व्याख्या करें।
9. जोखिम की स्थिति मे निर्णय लेने की प्रक्रिया की व्याख्या करें।
10. उन परिस्थितियों की चर्चा करें, जिसमें निर्णय वृक्ष विधि अन्य निर्णय लेने वाली प्रक्रियाओं से बेहतर है।

23.13 सन्दर्भ पुस्तकें

1. Mehta, P.L., Managerial Economics – Analysis, Problem and Cases, Sultan Chand & Sons, New Delhi.
2. H.L. Ahuja, Business Economics Micro- S. Chand & Co. Ltd., New Delhi, 1999.
3. S.K., Mishra and V.K. Puri, Advanced Microeconomic Theory, Himalaya Publishing House, Mumbai, 2001.
4. Drucker, Peter F., Practice of Management, Heinemann: London.
5. Reddin, W.J. Effective Management by Objectives. Tata McGraw Hill, New Delhi.
6. Seo K.K. Managerial Economics, Surjeet Publications, Delhi, 1938.

*****